बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

जन्म : 14 अप्रैल 1891 परिनिर्वाण : 6 दिसंबर 1956

बाबासाहेब

डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 12

डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 12
रुपये की समस्या : इसका उद्भव और समाधान

पहला संस्करण : 1998
दूसरा संस्करण : 2011
तीसरा संस्करण : 2013

ISBN : **978-93-5109-012-0**

© सर्वाधिकार सुरक्षित

आवरण परिकल्पना : विनय कुमार पॉल
पुस्तक के आवरण पर उपयोग किया गया मोनोग्राम बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के लेटरहेड से साभार

मूल्य : सामान्य (पेपरबैक) : ₹ 40

प्रकाशक :
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली – 110 001
फोन : 011–23320571, 23320576, 23320589
फैक्स : 23320582
वेबसाइट : www.ambedkarfoundation.nic.in

मुद्रक : अरिहंत ऑफसेट, जनकपुरी, नई दिल्ली

आधुनिक भारत के निर्माता

बाबा साहेब एक कुशल शिक्षाविद्, न्यायविद्, राजनीतिज्ञ तथा सामाजिक क्रांति के अग्रदूत थे। वे जीवन भर समाज के कमजोर वर्गों, विशेषकर दलितों व शोषितों के उत्थान के प्रति समर्पित रहे और आधुनिक भारत के निर्माण तथा समाज उत्थान मे उनका योगदान अविस्मरणीय है।

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के रास्ते पर चलकर ही समतामूलक समाज के सपने को साकार किया जा सकता है।

के. आर. नारायणन
राष्ट्रपति।

परामर्श सहयोग

श्रीमती मेनका गांधी
कल्याण राज्य मंत्री, स्वतंत्र प्रभार, भारत सरकार

श्री डी.के. मणवालन
सचिव
कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार

श्री ए.के. चौधरी
संयुक्त सचिव (सदस्य सचिव)
कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार

श्री एच. आर. भीमाशंकर
निदेशक
डाक्टर अम्बेडकर प्रतिष्ठान

संपादक

श्री उमराव सिंह

संकलन (अंग्रेजी)

श्री वसंत मून

अनुवादक

श्री कृष्ण गोपाल

श्री अफला सिंह वर्मा

श्री अशोक

श्री आर. डी. निमेश

पुनरीक्षक

श्री बी. आर. टमटा

प्रोडक्शन मैनेजर

श्री वी. हरिहरन

विजनेस मैनेजर

श्री जसवंत सिंह

द्वितीय संस्करण के पुनरीक्षक

श्री सुधीर हिलसायन

dqekjh lSytk

KUMARI SELJA

Lkkekftd U;k; vkj vf/kdkfjrk ea=h
Hkkjr ljdkj
MINISTER OF SOCIAL JUSTICE & EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA
rFkk
v/;{k] Mk- vEcsMdj izfr"Bku
CHAIRPERSON, DR. AMBEDKAR FOUNDATION

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय का स्वायत्तशासी संस्थान, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के लेखों एवं भाषणों के खंड संख्या 12 का पुनः संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

भारत रत्न डॉ. बी. आर. अम्बेडकर भारतीय सामाजिक–राजनीतिक आंदोलन के ऐसे पुरोधा रहे हैं, जिन्होंने जीवनपर्यन्त समाज के आखिरी पायदान पर संघर्षरत् व्यक्तियों की बेहतरी के लिए कार्य किया। डॉ. अम्बेडकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे इसीलिए उनके लेखों में विषय की दार्शनिक मीमांसा प्रस्फुटित होती है। बाबासाहेब का चिंतन एवं कार्य समाज को बौद्धिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समृद्धि की ओर ले जाने वाला तो है ही, साथ ही मनुष्य को जागरूक मानवीय गरिमा की आध्यात्मिकता से सुसंस्कृत भी करता है।

बाबासाहेब का संपूर्ण जीवन दमन, शोषण और अन्याय के विरुद्ध अनवरत क्रांति की शौर्य–गाथा है। वे एक ऐसा समाज चाहते थे जिसमें वर्ण और जाति का आधार नहीं बल्कि समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व व मानवीय गरिमा सर्वोपरि हो और समाज में जन्म, वंश और लिंग के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव की कोई गुंजाइश न हो। समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के प्रति कृतसंकल्प बाबासाहेब का लेखन प्रबुद्ध मेधा का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

भारतीय समाज में व्याप्त विषमतावादी वर्णव्यवस्था, जिसके तहत मानव–मानव में भेद किया जाता था, से डॉ. अम्बेडकर कई बार टकराए। इस टकराहट से डॉ. अम्बेडकर में ऐसा जज़्बा पैदा हुआ, जिसके कारण उन्होंने समतावादी समाज की संरचना को अपने जीवन का मिशन बना लिया। समतावादी समाज के निर्माण की प्रतिबद्धता के कारण डॉ. अम्बेडकर ने विभिन्न धर्मों की सामाजिक–धार्मिक व्यवस्था का अध्ययन व तुलनात्मक चिंतन–मनन किया।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के अन्य खंडों को भी शीघ्र प्रकाशित करने में प्रयासरत है। मुझे पूरी आशा है कि पाठकों को शीघ्र ही अप्रकाशित अन्य खंड भी पुस्तकों के आकार में प्राप्त हो जाएंगे।

आशा है, पाठकगण इस खंड के बारे में अपने अमूल्य विचार एवं सुझाव उपलब्ध करवाएं जिससे कि इन अनूदित खंडों की गुणवत्ता एवं साज–सज्जा को आगामी खंडों में आने वाले समय में बेहतर बनाया जा सके।

सैलजा

(कुमारी सैलजा)

परामर्श सहयोग

कुमारी सैलजा
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार
एवं
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री डी. नैपोलियन
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री पी. बलराम नाईक
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्र

श्री अनिल गोस्वामी
सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

श्री संजीव कुमार
संयुक्त सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार
एवं सदस्य सचिव, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री विनय कुमार पॉल
निदेशक
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री कुमार अनुपम
विशेष कार्याधिकारी

डॉ. शशि भारद्वाज
सम्पादक

श्री जगदीश प्रसाद 'भारती'
व्यापार प्रबंधक

सत्यमेव जयते

कल्याण राज्य मंत्री, भारत
(स्वतंत्र प्रभार)
शास्त्री भवन नई दिल्ली-110001
भारत
MINISTER OF STATE FOR WELFARE
(INDEPENDENT CHARGE)
SHASTRI BHAWAN
NEW DELHI-110001

श्रीमती मेनका गांधी
SMT. MANEKA GANDHI

संदेश

बाबा साहेब डा. बी. आर. अम्बेडकर अप्रतिम देशभक्त थे। वे देश को स्वस्थ और सबल देखना चाहते थे। लोग कहते हैं 'मैं पहले भारतीय हूं और बाद में कुछ और', लेकिन बाबा साहेब कहते थे 'मैं पहले भारतीय हूं और बाद में भी भारतीय हूं'। चाहे राजनीतिशास्त्र हो, समाजशास्त्र हो, इतिहास, संस्कृति या अर्थशास्त्र हो, कानून हो या धर्मशास्त्र या फिर नृवंशशास्त्र, जिस विषय को भी उन्होंने छू दिया, उसमें चमक आ गई। दार्शनिक होता ही वह है जो विषय की गहराई में डूबकर अदृश्य द्रव्यों को निकालकर मानव के लिए सुलभ करता है। बाबा साहेब ऐसे ही दार्शनिक थे। कबीर के शब्दों में 'जिन खोजां तिन पाइया'। बाबा साहेब की अपूर्व प्रतिभा और अकाट्य तर्कों के समक्ष हम सभी नतमस्तक हैं। हमारी सरकार उनके चिंतन को जन–जन तक पहुंचाने के लिए कृतसंकल्प है।

डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान उनके लेखन एवं भाषणों पर आधारित संपूर्ण वाङ्मय को हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित कर रहा है, जिसका देश और विदेशों में व्यापक स्वागत हुआ है। इसी क्रम में पाठकों के समक्ष शोधपरख सामग्री 'रुपये की समस्या' (भारतीय मुद्रा एवं बैंकिंग का इतिहास), एवं 'विविध लेख' प्रस्तुत करते हुए अत्यंत हर्ष का अनुभव कर रही हूं।

इसके माध्यम से हम भारत की आजादी की पचासवीं वर्षगांठ के अवसर पर ब्रिटिशकालीन भारत की अर्थव्यवस्था की कार्यशैली एवं आजादी के संघर्ष की पृष्ठभूमि का अवलोकन कर सकते हैं, जिससे भारतीय अर्थशास्त्रियों एवं वित्त प्रबंधकों को अनुसंधान करने की प्रेरणा मिलेगी।

इस परियोजना से जुड़े सभी महानुभाव बधाई के पात्र हैं।

(श्रीमती मेनका गांधी)

विषय-वस्तु

अध्याय		पृष्ठ संख्या
दूसरे संस्करण की भूमिका		
लेखकीय भूमिका		
प्राक्कथन – प्रोफेसर ऐडविन केनन		
1.	दोहरे मानक से रजत मानक तक	1
2.	रजत मानक और इसकी सममूल्यता का विस्थापन	47
3.	रजत मानक और इसकी अस्थिरता के दोष	85
4.	स्वर्ण मानक की ओर	117
5.	स्वर्ण मानक से स्वर्ण विनिमय मानक तक	159
6.	विनिमय मानक की स्थिरता	175
7.	स्वर्ण मानक की ओर वापसी	241
8.	विविध आलेख, वक्तव्य, साक्ष्य, समीक्षाएं और भूमिकाएं आदि	297
9.	अनुक्रमणिका	385

दो शब्द

भारत रत्न बाबा साहेब डॉक्टर भीमराव रामजी अम्बेडकर का जीवन खांड से बनी हुई रोटी के समान था, जिधर से भी तोड़िए मीठी ही मीठी। उन्होंने भारतीय जातीय व्यवस्था से उत्पन्न उपेक्षा के गरल को पी लिया लेकिन भारत को सुधा का पान कराया। उन्होंने वही कार्य किया जिससे भारत का गौरव बढ़े, भारत का विकास हो। भारत की कोरी चादर पर लगे हुए छुआछूत के कलंक को जिस ताकत और ईमानदारी से मिटाने का प्रयास डॉक्टर अम्बेडकर ने किया वैसा कभी किसी ने नहीं किया। बाबा साहेब बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे।

बाबा साहेब डॉक्टर अम्बेडकर की देश सेवाओं के लिए उनके सम्मानार्थ डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की स्थापना की गई है। प्रतिष्ठान की निम्नलिखित परियोजनाएं हैं :–

1. डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुस्तकालय
2. डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार
3. डॉ. अम्बेडकर विदेश छात्रवृत्ति
4. डॉ. अम्बेडकर पीठिकाओं (चेयर्स) की स्थापना
5. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय का भारतीय भाषाओं में प्रकाशन
6. हिंदी और अंग्रेजी की मिली-जुली त्रैमासिक डा. अम्बेडकर फाउण्डेशन पत्रिका का प्रकाशन
7. डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार
8. डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय स्मारक (26 अलीपुर रोड़, दिल्ली)।

हम प्रतिष्ठान की ओर से माननीय श्री बलवंत सिंह रामूवालिया, कल्याण मंत्री, भारत सरकार एवं श्री के.के. बख्शी, सचिव, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने परियोजनाओं को त्वरित कार्यान्वित करने के लिए सद् परामर्श दिया है और परियोजना में लगे कार्यकर्ताओं को उत्प्रेरित किया है।

प्रस्तुत खण्ड 12 में 'रुपये की समस्या', (भारत में मुद्रा और बैंकिंग का इतिहास) अर्थव्यवस्था से जुड़े विविध शोधपरक लेख सुधी पाठकों एवं शोधार्थियों के लिए आधार सामग्री का कार्य करेंगे और नई प्रेरणा जगाएंगे, ऐसी मुझे आशा है।

आशा और पूर्ण विश्वास है कि हमारे पाठक हमें अपने सुझावों से अवगत कराएंगे।

नई दिल्ली

ऐ.के. चौधरी
सदस्य सचिव,
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

पुस्तक – 1

प्रकाशकीय

जैसे–जैसे बाबा साहेब डॉक्टर अम्बेडकर के साहित्य का सुधी पाठक अध्ययन कर रहे हैं, वैसे–वैसे उनके प्रति सम्मान की भावना और उनके साहित्य की मांग निरंतर बढ़ती जा रही है और अब तक प्रकाशित सभी खण्डों का पाठक वर्ग में स्वागत हुआ है।

इसी श्रृंखला में प्रस्तुत खण्ड 12 और (अंग्रेजी खण्ड 6 का उत्तरार्ध) सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा हैं।

खंड 12 में "रुपये की समस्या" (भारत में मुद्रा और बैंकिंग का इतिहास), विविध लेख बाबा साहब डॉक्टर अम्बेडकर के शोध के सुपरिणाम हैं। इस सामग्री में ब्रिटिश कालीन भारत की अर्थव्यवस्था की एक झलक मिलेगी। शोधकर्ता की गहन और वैज्ञानिक सोच पाठकों एवं शोधार्थियों के मन में नवचेतना का संचार करेगी ऐसी आशा है।

हम अपने संपादक मण्डल, अनुवादकों, पुनरीक्षकों आदि सभी सहयोगियों का आभार व्यक्त करते हैं, जिनके कठिन परिश्रम और निष्ठा से यह प्रकाशन संभव हो सका है। आशा है सुधी पाठक अन्य खण्डों की भांति इस खण्ड का भी पूर्ववत स्वागत करेंगे।

नई दिल्ली

एच. आर. भीमाशंकर
निदेशक
डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

रुपये की समस्या

इसका उद्भव और समाधान

बी. आर. अम्बेडकर
वाणिज्य एवं अर्थशास्त्र के सिडनहम
महाविद्यालय बंबई के समटाइम्स प्रोफेसर

लंदन
पी.एस.किंग एण्ड संस, लिमिटेड
औरचार्ड हाउस
2 एण्ड 4 ग्रेट स्मिथ स्ट्रीट
वेस्ट मिनिस्टर
1923

प्रथम संस्करण की भूमिका

आगामी पृष्ठों में मैने उन घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जिनका संबंध विनिमय मानक स्थापित करने और उसके सैद्धांतिक आधार की जांच करने की दिशा से संबंधित है।

इस विषय में ऐतिहासिक पक्ष के विवेचन के प्रयास में मैंने इस बात की सावधानी रखी है कि इस विषय में अन्य महानुभावों द्वारा कही गई बातों को न दुहराया जाए। उदाहरणार्थ विनिमय के मानक की वास्तविक कार्यप्रणाली के विवेचन के लिए मैं सामान्य विवेचन तक ही सीमित रहा हूं और उतने ही आवश्यक विवरण प्रस्तुत किए हैं जिनसे पाठक उस आलोचना का अनुसरण कर सकें जो मैंने प्रस्तुत की है। यदि अधिक विवरण की आवश्यकता हो तो ऐसे विवरण अन्य ग्रंथों में विस्तारपूर्वक दिए गए हैं। उनकी यहां पुनरावृत्ति अनावश्यक होगा। इसके अतिरिक्त, इससे मेरे तर्क का युक्तिसंगत चित्रण भी धुंधला पड़ जाएगा। परंतु अन्य दृष्टिकोण से मैं व्यापक ऐतिहासिकता की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने के लिए बाध्य था जो कि अन्य लेखकों द्वारा नहीं किया गया है। भारतीय मुद्रा पर उपलब्ध ग्रंथों से कम से कम इस बात का यथेष्ट संकेत नहीं मिलता कि किन परिस्थितियों के कारण सन् 1893 के सुधारों की आवश्यकता हुई। मेरी धारणा है कि प्रारंभिक इतिहास के अध्ययन की अधिक आवश्यकता है ताकि पाठक को ऐसा परिप्रेक्ष्य मिल सके जिससे वह स्वयं उन मुद्दों का निर्णय कर सके जो मुद्रा संकट और उनके दिए गए समाधान में निहित हैं। इसी दृष्टिकोण से मैंने 1800 से 1893 तक की भारतीय मुद्रा के इतिहास की सर्वाधिक उपेक्षित अवधि का अध्ययन किया है। अन्य लेखकों ने विनिमय-मानक की कहानी का आकस्मिक रूप से वर्णन ही नहीं किया है बल्कि उन्होंने इस विचार को भी लोकप्रिय बनाया है कि विनिमय--मानक भारत सरकार के चिंतन की देन है। लेकिन मुझे लगा कि यह सबसे बड़ी भूल है। वास्तव में भारतीय मुद्रा के लिए सबसे रोचक बात यह है कि किस प्रकार स्वर्ण मानक, स्वर्ण विनिमय मानक में परिवर्तित हो गया। इस त्रुटि का पर्दाफाश करने के लिए कुछ पुराने तथ्यों को, जिन्हें लोग विस्मृत कर चुके हैं, पुनः सामने लाने को बाध्य होना पड़ा।

प्रो. कीन्स की पुस्तक के अतिरिक्त सैद्धांतिक पक्ष की दृष्टि से अन्य कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है, जिसमें इसके वैज्ञानिक आधार का अध्ययन समाहित हो। परंतु उनके निष्कर्ष से मेरे निष्कर्ष बिल्कुल विपरीत हैं। विनिमय--मानक संबंधी उनकी लगभग हर मान्यता से हमारे मतभेद थे। यह मतभेद उस आधारभूत तथ्य से उद्भूत होता है जिसकी प्रो. कीन्स ने सर्वथा उपेक्षा की है कि जब तक रुपये की सामान्य क्रय शक्ति को स्थिर

माता-पिता ने जो मेरे लिए त्याग और शिक्षा में मार्गदर्शन किया है, उसके प्रति आभार एवं स्मृति स्वरूप सादर समर्पित।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर

द्वितीय संस्करण की भूमिका

'दि प्राब्लम ऑफ रुपी' (रुपये की समस्या) प्रथम बार सन् 1923 में प्रकाशित हुई थी। उसके प्रकाशन काल से ही, उसकी बहुत मांग रही है, इतनी अधिक कि एक या दो वर्ष के अंदर ही यह पुस्तक अप्राप्य हो गई। इस पुस्तक की मांग निरंतर बनी रही, लेकिन दुर्भाग्यवश मैं इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण प्रकाशित न कर सका। इसका कारण यह था कि मैंने अर्थशास्त्र से हटकर अपना कार्यक्षेत्र विधि और राजनीति बना लिया था, जिससे उत्पन्न समयाभाव के कारण यह संभव नहीं था कि मैं इस कार्य को पूरा कर सकूं। इसलिए मैंने एक अन्य योजना बनाई। इस योजना के अंतर्गत "भारतीय मुद्रा और बैंकिंग" के नवीनतम संस्करण को दो खंडों में प्रकाशित करना था और इन दोनों खंडों में से प्रथम खंड का संबंध "रुपये की समस्या" से है। द्वितीय खंड 1923 से आगे "भारतीय मुद्रा और बैंकिंग का इतिहास" होगा।

अब पाठकों के समक्ष प्रस्तुत खंड 'दि प्राब्लम ऑफ रुपी' (रुपये की समस्या) का अलग नाम से मात्र पुनर्मुद्रण ही है। मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता है कि मेरे कतिपय मित्रों ने जो अर्थशास्त्र के विषय में अध्यापन कार्य करते हैं, मुझे आश्वस्त किया है कि भारतीय मुद्रा के क्षेत्र में 1923 के पश्चात् न कुछ कहा गया है और न कुछ लिखा गया है। अतः रुपये की समस्या के संबंध में जो स्थिति सन् 1923 में विद्यमान थी उसमें मुझे किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।

मुझे आशा है कि यह पुनर्मुद्रण पाठकों को पूर्ण रूप से नहीं, तो आंशिक रूप से अवश्य ही संतुष्ट करेगा। मैं उन्हें यह आश्वासन दे सकता हूं कि उन्हें द्वितीय खंड के लिए अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। उसे यथासंभव अविलंब प्रकाशित करने के लिए मैं दृढ़प्रतिज्ञ हूं।

डा. बी.आर. अम्बेडकर

राजगृह
बंबई
7.5.1947

चिरस्थायी आभार स्वरूप

पूज्य माता-पिता

की

पुण्य स्मृति में समर्पित

जिनके त्याग और प्रबोधन से

मेरी शिक्षा का पथ प्रशस्त हुआ

बटलर एण्ड टेनर फ्रोम एवं लंदन, ग्रेट ब्रिटेन द्वारा मुद्रित

भारतीय मुद्रा
एवं
बैंकिंग का इतिहास

बी.आर. अम्बेडकर
वाणिज्य एवं अर्थशास्त्र के सिडनहम
महाविद्यालय, बंबई में राजनीतिक
अर्थ–वित्त व्यवस्था के समटाइम्स प्रोफेसर

(1947 के संस्करण का पुनर्मुद्रण)

नहीं किया जाता तब तक कुछ भी स्थिर नहीं हो सकता। विनिमय–मानक ऐसा नहीं करता। यह मानक सिर्फ रोग–लक्षण से ही संबंधित है, रोग की तह में नहीं पहुंचता वास्तव में, जैसा कि मैंने स्पष्ट किया है कि यदि कुछ भी है तो यह रोग को बढ़ाता है।

जब मैं इसके समाधान की बात करता हूं तो मैं पुनः उन अधिकांश महानुभावों के साथ टकराव की स्थिति में आ जाता हूं जो मेरे समान ही विनिमय–मानक के विरोधी हैं। यह कहा जाता है कि रुपये की स्थिरता का सबसे उत्तम उपाय उसे प्रभावकारी ढंग से स्वर्ण में बदल देने से उपलब्ध होता है। मैं इस बात से इंकार नहीं करता कि रुपये को स्थिर करने का यह एक उपाय है, परंतु मेरा विचार है कि इससे भी कहीं अधिक अच्छा उपाय यह होगा कि रुपये के जारी किए जाने की निर्धारित सीमा के साथ अपरिवर्तनीय रुपया मान लिया जाए। वास्तव में यदि इस विषय में मेरा वश चलता तो मैं यह प्रस्ताव करता कि भारत सरकार को रुपये गला देने चाहिए और उन्हें बुलियन (सर्राफा) के समान बेच देना चाहिए तथा उपलब्ध राशि का राजस्व के प्रयोजनों के रूप में उपयोग करना चाहिए और अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति करनी चाहिए। परंतु यह एक क्रांतिकारी प्रस्ताव होगा और इसलिए मैं इसको लागू करने का आग्रह नहीं करूंगा, यद्यपि मैं इसे मुख्य रूप से ठोस प्रस्ताव मानता हूं। खैर मुख्य बात टकसालों को बंद करने की है न केवल जनता के लिए जैसे कि वे हैं अपितु सरकार के लिए भी। यदि एक बार ऐसा हो जाता है तो मैं यह साहपूर्वक कहता हूं कि इस मामले में निर्धारित रुपये की मुद्रा के साथ विधिमान्य चलार्थ के रूप में सोने पर आधारित भारतीय मुद्रा उन सिद्धांतों के समरूप कि जो अंग्रेजी मुद्रा पद्धति में समाहित हैं।

यह ध्यान देने योग्य बात होगी कि मैं फाउलर समिति की सिफारिशों की ओर जाने का प्रस्ताव नहीं करता। वे सभी व्यक्ति जो स्वर्ण मानक से स्वर्ण विनिमय–मानक तक भारतीय मुद्रा के परिवर्तन के प्रति खेद प्रकट करते हैं, यह प्रतिपादित करते हैं कि सभी कुछ बिल्कुल ठीक हो जाता यदि सरकार ने उस समिति की सिफारिशों का पूर्णतया पालन किया होता। मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं। दूसरी ओर मुझे ऐसा लगता है कि भारतीय मुद्रा उस परिवर्तन में समाहित हुई क्योंकि सरकार ने उन सिफारिशों का पालन किया। कुछ लोग उस रिपोर्ट को उसकी बुद्धिमता की दृष्टि से उत्कृष्ट (क्लासिक) समझते हैं जबकि उस रिपोर्ट को मैंने देखा कि यही वह समिति थी जिसने स्वर्ण मानक की सिफारिश करते समय यह भी सिफारिश की और इस प्रकार हडौल समिति की मूर्खता को स्थायित्य प्रदान किया कि सरकार सबसे सहज मुद्रा सिद्धांतों के अनुसार जनता की आवश्यकताओं के लिए अपने ही खाते से रुपए की ढलाई करे, बिना इस बात को समझे कि बाद की सिफारिश पहले की सिफारिश की विध्वशंक है। वास्तव में जैसा कि

मैं तर्क देता हूं कि फाउलर सनिति के सिद्धांतों को त्याग देना चाहिए यदि हमें भारतीय मुद्रा को स्थायी आधार पर रखना है।

मुझे इस बात का आभास है कि इस संबंध में मैंने अपने लेख में मुद्रा के सिद्धांतों पर एक प्रकार से लंबी बहस की है। इस प्रक्रिया को अपनाने का औचित्य दोहरा है। सर्वप्रथम मैं भारतीय मुद्रा के बारे में अन्य लेखकों के विचारों से इतना अधिक असहमत हूं कि मेरे लिए यह आवश्यक हो गया है कि मैं अपने दृष्टिकोण को सिद्ध करूं भले ही मुझे इस बात का दोषी बनाने पड़े कि मैंने तथ्यों को आवश्यकता से अधिक विस्तारपूर्ण बनाया। परंतु यह मेरा दूसरा न्याय संगत तर्क है जो मुझे इस बात की अधिक छूट देता है। यि बात इस तथ्य में निहित है कि मैंने प्राथमिक रूप से भारतीय जनता के लाभ के लिए लिखा है क्योंकि मुद्रा–सिद्धांतों में उनकी पकड़ इतनी अच्छी नहीं है, जितनी होनी चाहिए। अतः इस बात पर सहमति होगी कि ऐसे विषय पर अपने विचारों की पुष्टि में युक्तिसंगत के लिए जिस पर मेरे निष्कर्ष आधारित हैं। कम लिखने की अपेक्षा विस्तार से लिखना अधिक श्रेयकर हैं

1913 तक भारतीय मुद्रा के विषय में स्वर्ण विनिमय–मानक भारत सरकार द्वारा स्वीकृत लक्ष्य नहीं था और यद्यपि उस वर्ष में नियुक्त चेम्बरलेन कमीशन ने इसे बनाए रखने के पक्ष में रिपोर्ट दी थी फिर भी इस बारे में भारत सरकार ने युद्ध समाप्त होने तक इन सिफारिशों को कार्यान्वित न किए जाने के लिए वचन दिया था और जनता को यह अवसर दिया था कि जनता इस बारे में अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करे। फिर भी जब विनिमय–मानक गत युद्ध के दौरान अपने आधार समेत हिल गया था तो भारत सरकार अपने वचन से विमुख हो गयी और बार–बार विरोध प्रकट करने पर भी स्मिथ समिति के विचारणीय विषय को सीमित दायरे में कर दिया। ऐसे कानून बनाने के लिए कहा गया जो विनिमय–मानक के स्थायित्व को सुनिश्चित करने के लिए उपयोगी सिद्ध हो। मानो उस मानक को भारतीय मुद्रा के विषय के बारे में अंतिम रूप समझा गया हो। अब चूंकि स्मिथ समिति के उपायों ने विनिमय–मानक के स्थायित्व को सुनिश्चित नहीं किया है, अब मालूम हुआ है कि सरकार और जनता भारतीय मुद्रा पद्धति को ठोस आधार पर रखने के इच्छुक है। इस समय मेरे लिए इस पुस्तक के प्रकाशन का उद्देश्य यह है कि इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए आधार प्रस्तुत किया जाए।

मैं इस प्रस्तावना को तब तक अंतिम रूप नहीं दे सकता जब तक कि मैं अपने गुरू लंदन विश्वविद्यालय (स्कूल ऑफ इक्नॉमिक्स) के प्रोफेसर एडविन केनन के प्रति अपनी भावभीनी कृतज्ञता प्रकट न कर लूं। उनकी मेरे प्रति सहानुभूति और मेरे इस कार्य में गहरी रूचि ने मेरे ऊपर इतने अहसान रख दिए है कि जिनसे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। मैं यह कहने में प्रसन्नता महसूस करता हूं कि मेरी यह कृति उनकी गहरी देख–रेखी में लिखी गई। यद्यपि वे कदापि उन विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं हैं जो

चेतावनी

26 जनवरी, 1950 को हम अंतर्विरोधों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में हम समानता प्राप्त करेंगे और हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता होगी। राजनीति में हम एक आदमी एक वोट, एक वोट एक कीमत के सिद्धांत को पाने जा रहे हैं। हम सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में अपने सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे के अंतर्गत एक आदमी, एक कीमत के सिद्धांत को अस्वीकार करते रहेंगे।

प्रतिरोधों के इस जीवन को हम कब तक वहन करते रहेंगे? हम अपने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में कब तक समानता को नकारते रहेंगे?

अगर यह असमानता की स्थिति लगातार बनी रही तो राजनैतिक स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाएगी। जितनी जल्दी हो सके इस अंतर्विरोध को खत्म करना होगा, वरना वे लोग जो इस असमानता को भोग रहे हैं, राजनैतिक लोकतंत्र के ढांचे का जिसे संविधान सभा ने बड़ी मेहनत से बनाया है, उड़ाकर रख देंगे।

25 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर द्वारा दिए गए भाषण से उदधृत।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
25, अशोक रोड
नई दिल्ली–110 001

अध्याय एक

दोहरे मानक से रजत मानक तक

निजी संपत्ति और वैयक्तिक लाभ की आकांक्षा पर आधारित व्यापार, समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसके बिना इसके सदस्यों के लिए अपने श्रम से निर्मित विशेष उत्पादों का वितरण कठिन होगा। निश्चय ही लाटरी अथवा एक प्रशासकीय मुक्ति इसकी प्रवृति के विरुद्ध होगी। वास्तव में यदि इसे अपना स्वरूप अक्षुण्ण रखना है तो पृथक उद्योग के उत्पादों के आवश्यक वितरण के लिए केवल एक ही रास्ता है, वह है निजी व्यापार का। परंतु अनिवार्यतः एक व्यापारिक समाज धन केन्द्रित समाज होता है एक ऐसा समाज जो आवश्यकतानुसार अपना लेन/देन मुद्रा द्वारा संपन्न करता है। वास्तव में, यह वितरण मुख्यतः उत्पादों से उत्पादों का विनिमय नहीं होता वरन् मुद्रा के बदले उत्पाद होता है। अतः इस प्रकार के समाज में मुद्रा ऐसी धुरी बन जाती है जिस पर सभी कुछ घूमता है।

समस्त मानवीय प्रयासों, रुचियों, इच्छाओं और आकांक्षाओं का केंद्र बिंदु धन है, अतएव व्यापारिक समाज मूल्य की दुनिया में कार्य करने को बाध्य है, जहां सफलताएं और असफलताएं उत्पादन मूल्य की अपेक्षा उत्पादन लागत के मध्य सूक्ष्म परिगणना पर आधारित होती है।

अर्थशास्त्रियों ने निस्संदेह इस बात पर बल दिया है कि मूलभूत रूप से धन से बढ़कर अन्य कोई वस्तु महत्वपूर्ण नहीं हो सकती। जो अपने सर्वोत्तम रूप में एक ऐसा विशाल चक्र है जिसके माध्यम से समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसके जीवन निर्वाह, सुख/सुविधाओं ओर आमोद–प्रमोद के साधनों का उचित अनुपात में नियमित रूप से वितरण होता रहता है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से धन का मूल्यांकन निश्चित रूप से परिभाषित किया जा सकता है कि नहीं यह एक खुली चर्चा का विषय है। परंतु इतना सुनिश्चित है कि धन के प्रयोग के बिना "जीवन निर्वाह, सुख/सुविधाएं और आमोद–प्रमोद के साधनों का यह वितरण", साधारणतया उपलब्ध होना तो दूर,

---

* डब्लू.सी. मिचैल, "द रैशनेलिटी ऑफ इकनामिक एक्टीविटी" जर्नल ऑफ पालिटिकल इकौनौमी, 1910, खंड 18, पृष्ठ 97 और 197 साथ ही देखें उन्हीं द्वारा लिखित "दि रोल ऑफ मनी इन इकनामिक थियरी", अमेरीकन इकनामिक रिव्यू (सप्लीमेंट) खंड 6, नं. 1 मार्च, 1916

को बंद कर दिया है, जब कि चांदी के सिक्कों को ढालने के लिए अनुपात लाभप्रद था। चांदी के सिक्कों का और स्वर्ण का कानूनी चलन सिद्धान्ततः कोई नई बात नहीं होगी, यद्यपि कुछ छोटे स्तर पर फ्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य में ऐसा हुआ।

कभी–कभी यह आरोप लगाया जाता है कि भारत सोने के सिक्के नहीं चाहता मुझे विश्वास नहीं होता कि भारत जैसे देश की परिस्थिति और वातावरण समुचित आकार के सोने के सिक्के सुविधाजनक नहीं होंगे। यह दोषारोपण उस पुराने दोषारोपण जैसा ही है कि अंग्रेज कागजी सिक्कों की अपेक्षा सोने के सिक्कों को पसंद करते हैं। इसका कोई आधार नहीं कि सिवाय इसके कि कानूनी रूप से 5 पौंड से कम के नोटों को इंग्लैंड और बेल्स में बंद कर दिया गया था जबकि स्कॉटलैंड, आयरलैंड और तकरीबन सभी अंग्रेजी बोलने वाले देशों में 1 पौंड या कम के नोटों के प्रचलन की छूट थी। ऐसा लगता है कि भारत में रुपये का महत्व इस निर्णय पर आधारित है जिसे स्वर्ण मानक प्रणाली के चलने के पूर्व कंपनी ने भारत में शुरू किया। इंग्लैंड में 1816 ई. में टोकन के रूप में चांदी को स्थान दिया गया। कभी यह सोचा गया था और आज भी वही स्थिति बनी हुई है। यह इसलिए नहीं कि भारत सोने को पसंद नहीं करता बल्कि इसलिए कि योरोपियन इसे इस हद तक पसंद करते हैं कि वे दूसरों को हिस्सेदार बनाना नहीं चाहते।

पूर्वी देशों में सोना जाए इसके लिए विमुखता का कारण सिर्फ नैतिक कारणों से ही अवमान्य नहीं है बल्कि संसार के अधिकांश देशों के आर्थिक हितों के विरुद्ध भी है जिन्होंने युद्ध से पूर्व स्वर्ण मानक को अपनाया था और आज भी उसका प्रचलन है और निकट भविष्य में चलते रहने की संभावना है। सोना उपभोग्य वस्तु नहीं हैं इन देशों के लिए इसका उपयोग वांछनीय है, भले व्यय पर प्रतिबंध के लिए हो या व्यय कम करने के लिए हो। पिछली शताब्दी के अंतिम वर्षों में इसका प्रचुर मात्रा में उत्पादन हुआ है। इसलिए कि उसकी क्रय शक्ति बरकरार रहे और इसकी कीमत स्थायी बनी रहे और इसकी मानक कीमत बरकरार रहे, जब तक यह साबित न हो जाए कि इसके रखने वाले यथेष्ट मात्रा में सोना रखने के इच्छुक हैं और नए स्टाकिस्ट इसे रखने को तैयार हैं। युद्ध से पहले यूरोप में केन्द्रीय बैंकों ने आपूर्ति को रोक दिया और सोने को अधिक तादाद में जमा कर लिया और आपूर्ति पर बंदिश लगा दी। सोने के आपूर्ति न होने से सामान्य उपभोग की वस्तुओं की महंगाई कम हो गई, यद्यपि ऐसा करना बड़ी भूल थी। युद्ध के समय से ही फेडरल रिजर्व बोर्ड जो अमेरिका के लोग जो सामान्य वस्तुओं को बढ़ने देना नहीं चाहते थे सहायता प्राप्त थी, ने गोरे लोगों का सोने की खानों के उत्पाद में आने वाले भार को अपने ऊपर ओढ़ लिया। जिस प्रकार से संयुक्त राज्य ने चांदी खरीद कर उसकी कीमत को स्थिर नहीं रख सका, इसी तरह वे सोने की कीमत को अंततः स्थिर नहीं रख सका। उच्च प्राधिकारियों की सलाह के बावजूद सोने की कीमत को बनाए नहीं रख सकेंगे। लेकिन इसकी बिल्कुल संभावना नहीं है कि यूरोप की केन्द्रीय बैंकों की मांग उसकी रक्षा नहीं कर सकेगी। अनुभव से यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि

फाइनेसँर्स के दृढ़ रिजर्व के बावजूद चांदी की मुद्रा कम नहीं हो सकी। यह इसलिए हुआ कि चांदी की मुद्रा के लिए कागज नहीं था। पूर्ण रूप से सोने के सिक्कों में बदले जाने, पिघलाए जाने और निर्यात होने पर भी यह सिद्धांत तथा व्यावहारिक रूप से सिद्ध हो गया है कि सोने का थोड़ा सा भंडार भी पूर्ण रूप से आतंरित और अंतर्राष्ट्रीय मांग की पूर्ति कर सकता है। बैंक की अपेक्षा, व्यक्तियों द्वारा अधिक मांग की संभावना है। यह विचारणीय है कि कुछ देश जिन्होंने कागजी मुद्रा को हास्यस्पद होने की स्थिति तक कम कर दिया है। वे कागज लेने से इंकार कर सकते हैं और सोने के सिक्कों की मांग कर सकते हैं। लेकिन इसकी अधिक संभावना है कि वे वर्तमान कागज के स्थान पर बढ़िया कागज की मुद्रा स्वीकार कर अधिक प्रसन्न होंगे और धातु के सिक्कों के लिए जिद नहीं करेंगे। कुल मिलाकर निश्चित रूप से ऐसा लगता है कि यूरोप और यूरोप के अधीन देशों में युद्ध से पहले पहल की। सोने की मांग की अपेक्षा कम होगी। यह बढ़ेगी भी तो बहुत धीरे–धीरे या बिल्कुल नहीं बढ़ेगी।

इस प्रकार कुल मिलाकर यह भय है कि सोने की कीमत कम हो जाएगी और इसके विपरीत दूसरी चीजों के भाव गिर जाएंगे। इसका स्पष्ट इलाज यह है कि अंतर्राष्ट्रीय समझौते के अंतर्गत इसके उत्पादन पर प्रतिबंध लगा दिया जाए और संसार के संसाधनों को खानों में आगे आने वाली पीढ़ी के लिए सुरक्षित कर दिया जाए। दूसरा उपाय यह है कि एक अंतर्राष्ट्रीय आयोग के द्वारा कागजी मुद्रा बांट दी जाए और उसकी राशि को विनियमित कर दिया जाए ताकि इसके भाव स्थिर रह सके। यह सुझाव कालेज में प्रोफेसर द्वारा पढ़ाए जाने के लिए ठीक हैं। लेकिन व्यावहारिक राजनीति के संदर्भ में न आज और न निकट भविष्य में व्यवहार्य हैं। कठिनाई के बावजूद एक व्यावहारिक मार्ग है पूर्व के देशों में सोने की मुद्रा लागू कर दी जाए अगर ये देश सोने का उत्पादन का अधिकांश भाग को आने वाले वर्षों में से लें। इससे हमें उस समय तक राहत मिल जाएगी; जब तक कि उतने संसाधन उपलब्ध थे जितने संसाधन हो[1] जिनका पता न लग जाए। इसके बाद या तो हम बिना परिवर्तन किए कार्य करते रहेंगे या नई व्यवस्था का पता लगा लेंगे। यह तर्क उन लोगों को पसंद नहीं आएगा जो सिर्फ बढ़ती कीमतों से होने वाले लाभ भर की सोचते हैं, लेकिन यह उन लोगों को अवश्य आएगा जो अधिकांश जनसंख्या जो अतिरिक्त लाभ कमाने वाले लोगों की भावना के कारण उत्पीड़ित होते हैं। अंततोगत्वा मानव जाति के लिए स्थिरता ही सर्वश्रेष्ठ है।

—ऐडविन केनन

मैने अभिव्यक्त किए है। मैं इतना ही कह सकता हू कि उन्होंने मेरे सैद्धांतिक बहस के दौरान उठाए गए तथ्यों को गंभीरता से जांच की है और मुझे अनेक भूलों से बचाया है। विल्सन कॉलेज के प्रोफेसर वाडिया के प्रति भी मैं धन्यवाद व्यक्त करता हू कि उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अधिक मनोयोग से प्रूफ–संशोधन का नीरस कार्य सम्पन्न किया।

प्राक्कथन

प्रोफेसर ऐडविन केनन

मुझे प्रसन्नता है कि श्री अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक के संबंध में कुछ शब्द लिखने का अवसर प्रदान किया है।

वे जानते हैं कि मैं बहुत कुछ उनकी आलोचना से असहमत हूं। 1893 में, मैं उन गिने चुने अर्थशास्त्रियों में था, जिनका विश्वास था कि रुपये को उस समय के प्रस्तावित तरीके से स्वर्ण के साथ नियत अनुपात में रखा जा सकता है। कुछ वर्षों के बाद भी जबकि अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आए हैं, मैं अपने विश्वास से डिगा नहीं हूं। (इकोनोमिक रिव्यू, जुलाई 1898 पृष्ठ 400–403 देखें) मैं इस व्यवस्था के खिलाफ श्री अम्बेडकर के आक्रामक दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूं और न ही मैं उनके अधिकांश तर्क–वितर्कों एवं दलीलों को स्वीकार करता हूं। किंतु यह मानते हुए कि वे बिल्कुल गलत हैं और उन्होंने कुछ प्रहार किए हैं, फिर भी मैं यही कहूंगा कि मैंने उनके विचारों और उनके द्वारा दिए गए तर्कों में प्रेरणाप्रद ताजगी का अनुभव किया है। जैसा कि श्री अम्बेडकर बताते हैं कि कुछ अर्थशास्त्री उनके विचारों का विरोध करते हैं, लेकिन मेरे जैसे अनुभवी अध्यापक की मान्यता है कि अम्बेडकर के विचार मौलिक हैं और उन पर गहन चिंतन की आवश्यकता है।

उनके व्यावहारिक निष्कर्षों से मुझे यह सोचना पड़ रहा है कि वह ठीक हैं। साधारण स्वर्ण मानक के स्थान पर स्वर्ण विनिमय प्रणाली के अख्तियार करने पर देश को सिर्फ इतना लाभ होगा कि यह सस्ता है। यह सस्ता इस रूप में है कि स्वर्ण मानक की अपेक्षा धातुमुद्रा के रूप में लागत कम है। सिवाय इसके कि प्रशासकों एवं विधायकों को इसे परिवर्तित करवाना कठिन होगा। इस प्रणाली से जो बचत लाभ होगी वह अत्यल्प होगी। यो कहिए कि नहीं के बराबर होगी। हाल ही के दोनों युद्धरत और तटस्थ क्षेत्रों के अनुभव निश्चित रूप से दिखाते हैं कि एक स्वर्ण मानक युद्ध से पूर्व, जैसा कि हम समझते थे, निर्दोष और क्रियाशील नहीं है, निर्दोष और क्रियाशील होने के कारण स्वर्ण विनिमय स्वर्ण–मानक की अपेक्षा अधिक निकट है। जो प्रकाशक और विधायक स्वर्ण मानक को मानते हैं उनकी संख्या कम है। लेकिन स्थिति यह है कि इसके दस से बीस गुनी रहने की संभावना रहेगी जो स्वर्ण विनिमय मानक मानते हैं।

जिस योजना को मानने की श्री अम्बेडकर वकालत करते हैं वह यह है कि रूपये की समस्या को आगे बढ़ने से रोका जाए और यह है कि टकसालों को स्वर्ण आयातकों और विक्रेताओं के लिए नियत कीमत पर खोल देना चाहिए। इससे कुछ समय में भारत के पास रुपये के नियत स्टॉक के साथ सोने के पिघलने एवं निर्यात करने योग्य सिक्कों की मुद्रा हो जाएगी। इस तथ्य के पीछे यूरोप का इतिहास है। अठारहवीं शताब्दी के इंग्लैंड में स्वर्ण मानक इसलिए अपनाया गया क्योंकि विधायकों ने ऐसा अनुपात रखने की इजाजत दे दी थी जिससे रुपये के सिक्कों का समर्थन न मिल सके। उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस और दूसरे देशों ने स्वर्ण मानक को अपनाने के लिए चांदी ढालने की टकसालों

यदि पूर्ण रूप से स्थगित न भी हुए तो, बड़ी दुखद स्थिति में अवरुद्ध अवश्य होंगे। मुद्रा के अभाव में क्या उत्पादों का व्यापार संभव है? वस्तु–विनिमय की कठिनाइयां सभी अर्थशास्त्रियों के लिए एक स्थायी चुनौती बन गई है, इसमें वे अर्थशास्त्री भी सम्मिलित हैं, जो इस बात पर दृढ़ थे कि मुद्रा मात्र एक आवरण है। वस्तु–विनिमय की कठिनाइयों का निराकरण करके मुद्रा न सिर्फ व्यापार को सरल बनाने के लिए आवश्यक है, वरन् विशिष्टता प्रदान करके उत्पादन में वृद्धि के लिए भी जरूरी है। क्योंकि उसके निमित्त विशिष्टता के लिए कौन चिंता करेगा यदि वह अपने उन उत्पादों का व्यापार अन्य व्यक्तियों के उन उत्पादों के साथ करने में समर्थ नहीं हो सका जिनको कि वह चाहता था? व्यापार उत्पादन का सेवक है। और यदि व्यापार की समृद्धि नहीं हो सकती तो उत्पादन ही मुरझा जाएगा। अतः यह स्पष्ट है कि यदि व्यापारी समाज को जीवित रहना है और विशिष्ट उद्योग में अधिकतम लेन–देन के फलस्वरूप स्वतः अनगिनत लाभों का रसास्वादन करना है तो मुद्रा की ठोस पद्धति अपनानी होगी।[1]

मुगल साम्राज्य की समाप्ति पर भारत को यदि तत्कालीन मानदंडों से देखा जाए तो भारत आर्थिक रूप से एक उन्नत देश था। इसका व्यापार विस्तृत था, इसकी बैंकिंग संस्थाएं सुविकसित थी और इसके लेन–देन में साख की सराहनीय भूमिका थीं। परन्तु विनिमय का माध्यम और मूल्य का आम मानक अन्य बातों के साथ भारतीय जनता की अर्थव्यवस्था में सबसे अधिक अभावग्रस्त प्रतीत होता रहा जब भारतीय जनता अठारहवीं शताब्दी के मध्य में ब्रिटिश शासन के आधिपत्य में आई। इस घटना के प्रादुर्भाव से पूर्व भारत की मुद्रा सोना और चांदी दोनों में ही थी। हिन्दू सम्राटों के अधीन सोने पर जोर दिया गया था जबकि मुसलमान बादशाहों के शासन में परिचालन–माध्यम के रूप में चाँदी का प्रमुख स्थान था।[†] भारत में मुगल साम्राज्य में आर्थिक प्रणाली के जन्मदाता अकबर के समय से मुद्रा की इकाई सोने की मोहर तथा चाँदी का रुपया थी। मोहर और रुपया दोनों ही सिक्कों का समान भार अर्थात 175 ग्रेन ट्राय[‡] था और दोनों ही सिक्कों को किसी धातु के मिश्रण के बिना ढाला जाता था अथवा कम से कम ये दोनों सिक्के शुद्ध माने जाते थे।[§] परन्तु क्या उनका मूल्य एकाकी मानक का था या नहीं था, यह बात संदेहास्पद है। यह विश्वास किया जाता है कि मोहर और रुपया दोनों ही उस समय मूल्य के आम साधन थे और उन दोनों में कोई भी साधन निर्धारण विनिमय की दर के बिना परिचालित किया जाता था। अतः यह मानक

1 इस संपूर्ण बहस के लिए द्रष्टव्य एच.जे. डेवेन पोर्ट कृत 'दि इकनामिक्स ऑफ इंटरप्राइज' (1913) चैप्टर 2 एवं 3

† प्रिंसेप, जे., उपयोगी तालिका, कलकत्ता 1834 पृष्ठ 15–16

‡ राबर्ट चालमर्स "हिस्ट्री आफ कोलोनियल करेंसी" 1893 पृष्ठ 336-340

§ डा. पी केल्ली "यूनिवर्सल केम्विस्ट, 1811, 115

इस प्रकार का था जिसे जेवान्स ने दोहरे मानक* की अपेक्षा समानान्तर मानक कहा।† यह स्पष्ट है कि व्यवहार में कुछ क्षति के बिना अनुपात की कमी का आकलन नहीं किया जा सका। परन्तु इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि ऐसी विलक्षण युक्ति में आरामदायक परिस्थिति मौजूद थी जिसके द्वारा एक दूसरे से असंबंधित मोहर और रुपया साम्राज्य‡ के तांबे के सिक्के दाम के निर्धारित अनुपात में था। अतः यह मानने योग्य है कि एक जैसी वस्तु से स्थायी रहने के फलस्वरूप मोहर और रुपया दोनों ही सिक्के निर्धारित अनुपात में परिचालित थे।

दक्षिण भारत में, जहां मुगलों का प्रभाव या चाँदी के सिक्के का प्रचलन नहीं था वहां प्राचीन हिंदू राजाओं का सोने का सिक्का पगोडा मानक मूल्य के रूप में प्रचलित था तथा विनिमय का माध्यम था तथा ईस्ट इंडिया कंपनी के आने तक इसका प्रचलन जारी था।

मुगल सम्राटों ने सदैव सिक्का ढालने का अधिकार "इंटर जूरा मैजिस्टैटिस"[1] के रूप में समझा और इसका श्रेय उन्हे जाता है कि इसे उन्होंने इस उत्तरदायित्व की भावना से कार्यान्वित किया। मुगल सम्राटों ने अपने सिक्कों की गुणवत्ता कभी कम करने की नीचता नहीं दिखाई। मुगल सम्राटों ने सिक्का ढालने की अपरिपक्व टैकनॉलाजी की अनदेखी करते हुए अपने साम्राज्य[2] के सबसे सुदूर भागों में भी

---

* मनी एण्ड मेकेनिज्म ऑफ एक्सचेंज (1890) पृष्ठ 95

† डॉ० पी० केली का विचार यह है कि उन्होंने अपने बाजार के अनुपात (स्था. उद्धरण) से परिचलित किया है। दूसरी ओर, सर आर०टेम्पल का कहना है: "प्राचीन और मध्यकालीन भारत में प्रत्येक धातु के सिक्कों का तुलनात्मक मूल्य राज्य द्वारा निर्धारित किया गया था और औपचारिक सीमा के बिना सभी सिक्के वास्तव में वैध सिक्के माने गए थे।" ("जनरल मॉनेट्री प्रेक्टिस इन इंडिया" भारत में सामान्य मुद्रा का व्यवहार जर्नल ऑफ दी इन्स्टीट्यूट ऑफ बैंकर्स खण्ड II, पृष्ठ 406")। अन्य किसी दूसरे अवसर पर उन्होंने कहा: "प्राचीन हिन्दू मुद्रा एकल मानक के साथ स्वर्ण की बनी थी। मुसलमानों ने चाँदी की मुद्रा प्रारंभ की और बाद में ब्रिटिश शासन काल में स्वर्ण और चांदी दोनों का दोहरा मानक बन गया (वही, खंड XV, पृष्ठ 9)। इसकी तुलना में इस बात पर ध्यान दिया जाए कि प्रीएम्बल टु करैंसी रैगुलेशनस XXXV, 1793 और प्रारंभिक समय के अन्य मुद्रा विनिमय इस बात पर जोर देते हैं कि ब्रिटिश शासन काल से पूर्व मोहर और रुपये के बीच कोई अनुपात निर्धारित न था।

‡ देखिए–इंडियन जर्नल ऑफ इकॉनामिक्स, जुलाई, 1918 पृ० 169 पर प्रौफेसर एस. वी. वेंकटेश्वर की लेख – "मुगल करैंसी एंड कौइनेज (मुगल कालीन मुद्रा और सिक्के)" और एफ एटकिंसन द इंडियन करैंसी किशचन कुए (भारतीय मुद्रा का प्रश्न) (1894)" पृष्ठ 91

1. मुस्लिम इतिहासकार खाझी खाँ के अनुसार इस स्रोत ने सम्राट औरंगजेब को नाराज कर दिया कि 1694 में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने सम्राट के नाम पर बम्बई में रुपये के कुछ सिक्के ढाले (इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, खंड IV पृ० 515)।

2. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया (खंड IV, पृष्ठ 514) में यह बताया गया है कि दिल्ली में केवल एक टकसाल थी जिसमें शाही सिक्के ढाले जाते थे। सम्राट शेरशाह ही पहले सम्राट थे जिन्होंने सिक्का ढालने के लिए अनेक टकसालों को प्रारम्भ किया और यह प्रथा अकबर से लेकर बहादुरशाह द्वितीय जैसे सम्राटों तक चलती रही। इन टकसालों की संख्या लगभग 200 थी। ईस्ट इंडिया मॉरल एंड मैटीरियल प्रौग्रेस रिपोर्ट (नीति और पदार्थ–प्रगति पर ईस्ट इंडिया की रिपोर्ट), 1872-73 में यह स्पष्ट है कि इनमें से प्रत्येक टकसाल सोना, चाँदी और ताँबा जैसी तीन धातुओं के सिक्के तैयार करने में लगी हुई थी, परन्तु कुद टकसालों में केवल साने के ही सिक्के ढाले जाते थे और अन्य टकसालों में चांदी तथा तांबे के सिक्के ढाले जाते थे। (देखिए, रिपोर्ट पृष्ठ 11-12)

स्थित विभिन्न टकसालों से जारी किए गए सिक्कों के मानक से मूल रूप से भिन्न नहीं होने दिया। आगे दी गई तालिका में मुगल–रुपयों की कसौटियां दिखाई गई हैं कि मुगल साम्राज्य के काल में सिक्के का मानक 175 ग्रेन शुद्ध भार के स्तर तक रखा गया।[1]

रुपये का नाम	शुद्ध ग्रेन में भार	रुपये का नाम	शुद्ध ग्रेन में भार
लाहौर का अकबरी	175.0	दिल्ली सोनत	175.0
आगरे का अकबरी	174.0	दिल्ली आलमगीर	175.0
आगरे का जहांगीरी	174.6	पुराना सूरत	174.0
इलाहाबाद का जहांगीरी	173.6	मुर्शिदाबाद	175.9
कंधार का जहांगीरी	173.9	1745 का फारसी रुपया	174.5
आगरे का शाहजहांनी	175.0	पुराना ढाका	173.3
अहमदाबाद का शाहजहांनी	174.2	मुहम्मदशाही	170.0
दिल्ली का शाहजहांनी	174.2	अहमदशाही	172.8
दिल्ली का शाहजहांनी	175.0	शाहआलम	175.8
लाहौर का शाहजहांनी	174.0		

जब तक साम्राज्य ने अक्षुण्ण प्रभाव बनाए रखा तब तक टकसालों की बहुलता में खतरा न होकर लाभ ही था क्योंकि एक ही सत्ता के एक विभाग की अनेक शाखाएं थीं। परन्तु मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद उसके अलग-अलग टुकड़ों में विभाजन के फलस्वरूप शाही टकसाल की विभिन्न शाखाएं सिक्का ढालने के प्रयोजन से स्वतंत्र कारखानों में परिवर्तित हो गई। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद स्वतंत्रता के सामान्य होड़ के कारण संप्रभुता के सबसे अचूक लक्ष्य के रूप मे सिक्का ढालने का अधिकार तत्कालीन राजनीतिक खिलाड़ियों के लिए सर्वोपरि बन गया था यह भी अन्तिम सुविधा थी, जिससे पतनोन्मुख राजवंश चिपटे रहे और यही उन साहसी सत्ता हथियाने वालों का प्रथम लक्ष्य बन गया। इसका परिणाम यह हुआ। वह अधिकार जो कभी पूर्ण निष्ठा से कार्यान्वित किया जा रहा था उसका अनुशासनहीनता से दुरुपयोग किया गया। प्रत्येक स्थान पर टकसालें पूरे जोर शोर के साथ चलाई गई और शीघ्र ही देश में विभिन्न प्रकार के सिक्के नजर आने लगे राजवंशों का शीघ्र ही लगातार उत्थान तथा पतन होने लगा और इससे विनिमय का आश्चर्यचकित माध्यम भी प्रस्तुत हुआ। यदि इन मुद्रा के व्यापारी राजाओं ने मुगल सम्राटों के मूल मानक के समान अपनी मुद्राओं को बनाए रखा होता तो समान मूल्य के भिन्न-भिन्न प्रकार के सिक्कों को बनाने से कोई

1. प्रिसेज जे. सामने का उद्धरण, पृष्ठ 18

चिन्ता की बात नहीं थी। परन्तु उन्होंने यह धारणा बना ली थी कि उनकी प्रजा द्वारा जिस मुद्रा का उपयोग होता था वह मुद्रा उनके द्वारा बनाई गई है। अतः इस क्षेत्र में वे जैसा चाहें कर सकते हैं तथा उन्होंने अनेक सिक्कों को घटिया धातु का बनाना शुरु कर दिया यद्यपि उसका मूल्य वही रखा जो इन सिक्कों में धातु की अलग-अलग मिश्रण के कारण मुद्रा ने अपना प्रमुख गुण सार्वजनिक मान्यता व तुरन्त लेने-देन क्षमता को आवश्यक रूप से खो दिया।

इस स्थिति के फलस्वरूप उत्पन्न बुराइयों की केवल कल्पना की जा सकती है। जब सिक्कों के तत्वों में उन पर अंकित मूल्य को झुठला दिया गया तो वे केवल व्यापार की वस्तुएं ही रह गए और कहने के लिए कोई भी मुद्रा ऐसी नहीं रही जिसे विनिमय के लिए तुरंत साधन माना जाए। प्रत्येक सिक्के के सर्राफा मूल्य को सुनिश्चित किया जाता था ताकि इसे दायित्वों* के अंतिम वहन के लिए स्वीकार किया जाए। इस प्रकार गरीबों और अनजान लोगों को धोखा देने का अवसर इंग्लैंड में 1696 के सिक्कों के पुनर्गठन के पूर्व की अपेक्षा कहीं कम† नहीं रहा होगा। इस प्रकार लगातार सिक्कों में मिश्रित धातुओं की स्थिति की मिलावट की पहचान के लिए सिक्कों को तौलने, उनका मूल्यांकन करने और उन्हें कसौटी पर घिसकर उनका पता लगाना इस बुराई का एक पक्ष उजागर हुआ। उन्होंने दूसरा भयंकर पक्ष भी प्रस्तुत किया। साम्राज्य के पतन के साथ ही सम्पूर्ण भारत में शाही वैध मुद्रा जैसी वस्तु लोप हो गई। इसके स्थान पर साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने की स्थिति में अलग-अलग राज्य-क्षेत्रों में स्थानीय मुद्रा बनने लगी। ऐसी परिस्थितियों में वस्तु विनिमय, वस्तु के बदले आवश्यक भुगतान में दिए गए सिक्कों की सरार्फा मूल्य से परिसमाप्त नहीं किया गया। व्यापारियों को इस बात से आश्वस्त होना पड़ता था कि सिक्के उनके निवास क्षेत्र में भुगतान के वैध माध्यम हैं। इस विषय पर बंगाल करैंसी रेग्यूलेशन 35, 1793 की प्रस्तावना इस विषय में बहुत

---

* छोटे सिक्कों के सर्राफा के वास्तविक मूल्य का पता लगाने की आवश्यकता थी जिसने मुद्रा बदलने वाले वर्ग को जन्म दिया जो सर्राफ कहलाया, जिन्हें सिक्कों पर खुदी हुई तारीखों और उनकी विचित्रताओं के आधार पर सिक्कों की मानक शुद्धता की दृष्टि से उचित मूल्यांकन में विशेषज्ञता प्राप्त थी।

† यह बताया गया है कि डॉ० रॉक्सबर्ग इस बात के साक्षी थे। मुद्रा की खराब हालत के कारण गरीबों की दुर्दशा से इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने तारीख 30 जून 1791 को ए. डैलरीम्पल को लिखे पत्र में इस बुराई का विशेष रूप से जिक्र किया और इस हेतु अपने ओरियंटल रिपरटरी (2 खंड, लंदन, 1808) में एक लेख लिखा जिसका विषय था कि कम्पनी के उन राज्य क्षेत्रों में परिचालित चालू सिक्का शासक और शासित दोनों के लिए ही सबसे ठोस और अधिक समय तक लाभ देने वाले हों और यह भी लिखा कि "आप इस अवगुण को सही कर सकते हैं और ऐसा करने पर आपको स्वर्ग मिलेगा यदि दीन-दुखियों ने आपके लिए प्रार्थना की हो और मैं भी स्वर्ग के समीप एक कदम आगे बढ जाऊंगा। ए. डैलरीम्पल कृत, "औबजरवेशन्स ऑन दि कॉपर कौडनेज वांटिड इन दि सरकारस", लंदन, 1794, पृष्ठ 1 पर अंकित।

अच्छा प्रकाश डालती है। यह कहता है:–

"बंगाल, बिहार और उड़ीसा के मुख्य जिलों में से प्रत्येक जिले में अपनी ही प्रकार की चाँदी की मुद्रा है....... जो उन जिलों में जहां यह क्रमशः परिचालित होती है, सभी लेन–देन के लिए मूल्यांकन हेतु समान है।

* * * * *

"यदि रैयत (किसान) को किसी विशेष प्रकार के रुपये में अपना लगान अदा करना है तो अलबत्ता उन्हें निर्माताओं को अपने अनाज अथवा कच्चा माल देकर रुपये प्राप्त करने थे जबकि निर्माता रैयत के इसी प्रकार के सिद्धान्तों से प्रवृत्त होकर उन व्यापारियों से रुपये की वही किस्में लेते थे जो कपड़े अथवा सामान खरीदने आते थे।"

"तदनुसार सभी प्रकार के पुराने रुपये शीघ्र कुछ विशेष जिलों की मुद्रा बन गए और उसके परिणामस्वरूप प्रत्येक रुपये का मूल्य उस जिले में बढ़ा दिया गया जिसमें उसका प्रचलन था क्योंकि सभी लेन–देन में उसकी मांग की गई थी। एक अन्य परिणाम के रूप में जिले में लाया गया प्रत्येक प्रकार का रुपया उस रुपये के मूल्य से कहीं अलग होने के कारण अस्वीकार कर दिया जाता था जिसके आधार पर निवासी अपनी सम्पत्ति का मूल्यांकन करने के लिए अभ्यस्त हो गए थे अथवा यदि इसे प्राप्त किया जाना था तो इस पर वही बट्टा लगाया गया जो उस जिले में प्रचलित रुपये के लिए सर्राफ के घर पर विनिमय हेतु भुगतान किया जाता था अथवा किसी अन्य व्यक्ति को भुगतान के एवज में उसे देने के लिए बट्टा दिया जाता था।

* * * * *

"एक जिले में चालू सिक्के की इस अस्वीकृति से जब दूसरे जिले में भुगतान करना पड़ता तो देश के विभिन्न भागों में सौदागर व्यापारी, मालिक और भूमि जोतने वाले किसान एक दूसरे के साथ अपने व्यवसायिक लेन–देन में विनिमय द्वारा समान हानि तथा उन्हें सभी प्रकार की उन असुविधाओं का सामना करना पड़ता था जो आवश्यक रूप से पैदा हो जाती थी। यह स्थिति अलग और स्वतंत्र सरकारों के अन्तर्गत कई जिलों की थी और उनमें से प्रत्येक जिले का अलग सिक्का था।"

यह ऐसी स्थिति थी जहां व्यापार वस्तुओं की अदला–बदली तक सीमित रह गया था। चाहे कोई व्यक्ति विनिमय के आम माध्यम की अनुपस्थिति द्वारा अदला–बदली को प्रमुख समझे अथवा विनिमय के माध्यम की बहुलता की उपस्थिति समझे, चाहे जो भी हो यह स्पष्ट है कि 'दोहरे संयोग' के अभाव को व्यापार में लगे लोगों ने महसूस कर लिया होगा। कोई व्यक्ति यह भी विचार कर सकता

है कि यह ऐसा मामला नहीं हो सकता था क्योंकि माध्यम धातु की सिक्के नुमा वस्तु थे। परन्तु यह याद रखना है कि भारत में सिक्कों का परिचालन सिक्कों की बारिकी और वैधता में भिन्नता के कारण सिक्कों के वे विभिन्न प्रकार निर्मित किए गए जो किसी विशेष प्रकार के सिक्कों के प्रति विनिमय द्वारा लेन-देन को आवश्यक रूप से बंद नहीं कर पाए, कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में सिक्का एक ऐसा बीच का माध्यम बन गया जिससे पुनः अन्य से अदला-बदली हो सकती थी और यह क्रम तब तक चलता रहता जब तक सिक्के का वांछनीय प्रभार प्राप्त न होता। यह पर्याप्त संकेत है कि समाज अदला-बदली की स्थिति में डूब गया था। यदि इस स्थिति में इतनी ही कमी होती तो यह कमी उतनी ही खराब होती जैसी कि सिक्कों की विविधता के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की होती है, परन्तु इसमें इस तथ्य से अधिक जटिलता आ गई कि यद्यपि सिक्कों के मूल्य–वर्ग समान थे तथापि सिक्कों में धातुओं की मिलावट में काफी अंतर था। इस कारण एक सिक्के पर छूट बढ़ौती उसी प्रकार के व उसी नाम की तुलना में निर्धारित किया जाता था। कितनी छूट या बढ़ोतरी मिलेगी इस ज्ञान के अभाव में प्रत्येक व्यकित को इस बात का ध्यान रखना होता था कि वह उसी प्रकार के सिक्के प्राप्त करे जो वह जानता है तथा जो उसके राज्य क्षेत्र में परिचालित हैं। कुल मिलाकर ऐसी स्थिति से उत्पन्न वाणिज्य की बाधाएं उन बाधाओं से कम न हो सकी जो लाइकरगस के अध्यादेश से उत्पन्न हुई थी जिसने लेसडेमोनिनों को लोहे की मुद्रा उपयोग करने के लिए बाध्य कर दिया था ताकि उसका भार उन्हें अधिक व्यापार करने से रोक सकें। यह स्थिति खीझ उत्पन्न करने अतिरिक्त कटुता के कारण अधिक गंभीर हो गई थी। मुद्रा के उपलब्ध कराने में निवेश की गई पूंजी समुदाय के उत्पादनशील संसाधनों पर लगाया गया कर होती है फिर भी जेम्स विलसन* ने जो कुछ भी लिखा है उस पर कोई भी प्रश्न नहीं उठ सकता :–

> "कि समय और श्रम जो सिक्के की मध्यस्थता से जो बचत होती है वस्तुओं की अदला–बदली की पद्धति की तुलना में उत्पादनशील संसाधनों से ली गई पूंजी के भाग के लिए पर्याप्त पारिश्रमिक निर्धारण करता है जिससे वस्तुओं के एकाकी परिचालन में कार्य करे और देश की अवशेष पूंजी को अधिक उत्पादन के काम में ला सकें।"

इसके बाद उस मुद्रा–पद्धति के बारे में क्या कहा जाए जिसने अदला-बदली के दुष्परिणामों को दूर नहीं किया जबकि उत्पादनशील स्रोतों से बहुत बड़ी पूंजी हटा ली गई जो वस्तुओं के एकाकी परिचालक के रूप में काम कर सकें? दूषित मुद्रा, मुद्रा के अभाव से कहीं अधिक खराब होती है। मुद्रा का अभाव कम से

* कैपीटल करैंसी एंड बैंकिग, 1847 पृष्ठ 15

कम लागत की रक्षा करता है परन्तु समाज के पास मुद्रा होनी चाहिए और यह उत्कृष्ट मुद्रा होनी चाहिए। निकृष्ट मुद्रा से उत्कृष्ट मुद्रा पैदा करने का कार्य-भार ईस्ट इंडिया कम्पनी के कंधों पर पड़ा जो इस बीच भारत में मुगल साम्राज्य की उत्तराधिकारी बन गई थी।

सर्वप्रथम 25 अप्रैल, 1806* को कम्पनी के निदेशकों ने अपनी प्रसिद्ध विज्ञप्ति द्वारा सुधार के आधार व्यक्त किए जो उन्होंने भारत में अपने राज्य क्षेत्र के प्रशासकीय प्राधिकारियों को भेजे। इस ऐतिहासिक विज्ञप्ति में कम्पनी के निदेशकों ने कहा:–

"17. यह एक मत है जिसका समर्थन सर्वोत्तम प्राधिकारियों द्वारा किया गया है और जो अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि सोने और चाँदी के सिक्के निर्धारित तुलनात्मक मूल्यों के आधार पर भुगतान करने के लिए वैध सिक्के के रूप में प्रचलित नहीं किए जा सकते;....... बिना हानि के या इस हानि का कारण उन धातुओं के समय–समय पर परिवर्तित मूल्यों का होना है जिनसे इन सिक्कों का निर्माण होता है। सोने और चाँदी के सिक्के का अनुपात कानून द्वारा निर्धारित किया जाता है और यह धातुओं के मूल्य के अनुसार होता है तथा यह सबसे न्यायपरक सिद्धांतों पर आधारित हो सकता है, परन्तु बदलती हुई परिस्थितियों के कारण चाँदी की तुलना में सोने का अधिक मूल्य हो सकता है। उसकी तुलना में जब इन दोनों के बीच अनुपात निर्धारित किया था। इसलिए यह लाभप्रद हो जाता है यदि चांदी या सोने का विनिमय किया जाए ताकि धातु का बना सिक्का परिचालन से हटा लिया जाए और यदि सोने की तुलना में चाँदी के मूल्य में वृद्धि हो तो इन्हीं परिस्थितियों में चांदी के सिक्के की मात्रा परिचालन में कम हो जाएगी। चूंकि इन दोनों धातुओं के मूल्य की घटा–बढ़ी को रोकना संभव नहीं है अतः इन धातुओं से बने सिक्कों से उभरते परिणामों को बचाना भी अव्यावहारिक है धातुओं के मूल्यों में घटा–बढ़ी के अनुसार सोने और चांदी के सिक्कों के तुलनात्मक मूल्यों के समायोजन से अनवरत कठिनाइयां उत्पन्न होंगी और इस प्रकार के सिद्धांत की स्थापना से सदैव असुविधा और हानि उत्पन्न होगी।"

इसलिए उन्होंने भविष्य में भारतीय मुद्रा के लिए एक ही धातु के बने सिक्कों के पक्ष में अपने मत की घोषणा की और यह निर्धारित किया:–

"21.....कि चांदी (भारत में) लेखा की व्यापक मुद्रा होनी चाहिए और वे सभी लेखे रुपये, आने और पैसे के मूल्य–वर्ग में रखे जाने चाहिए। फिर भी रुपया वैसा नही रहा जैसा कि मुगल सम्राटों ने भार और बारीकी की दृष्टि से उसे ढाला था। प्रस्ताव कि "9..........नया रुपया............का कुल भार होगा :–

* एच.ऑफ सी. रिटर्न, 127, 1898

ट्राय ग्रेन	180
1/12 मिश्र धातु को घटाइए	15
और शुद्ध चांदी ट्राय ग्रेन में मिश्रण	165

यही वे प्रस्ताव थे जो निदेशक मंडल (कोर्ट ऑफ डायरेक्टर) ने भारतीय मुद्रा के सुधार के लिए प्रस्तुत किए।

180 ग्रेन ट्राय भार के रुपये तथा भारत की भावी मुद्रा पद्धति के लिए यूनिट के रूप में 165 ग्रेन शुद्ध चाँदी का मिश्रण तर्कसम्मत विकल्प था।

रुपये का इस विशेष भार के चयन का मुख्य कारण इस इच्छा को व्यक्त करता है कि प्रचलित व्यवस्था से कम से कम भिन्नता होनी चाहिए। उन्होंने इस बात का प्रयास किया कि सिक्कों को द्विधातु के आधार पर बनाए रखने की मुगलों की अव्यवस्थित मुद्रा पद्धति को व्यवस्थित किया जाए। अतः तीन प्रेसीडेंसियों की सरकारों ने पहले ही अपने व्यय क्षेत्रे में विनिमय के लिए देश में विरल माध्यम के रूप में परिचालित सोने और चांदी के सिक्कों का चयन किया। चयन किए गए सिक्कों के भार और बारीकी को मुद्रा की प्रमुख यूनिटों के अन्य विवरण संक्षिप्त तालिका –I (पृष्ठ 10) में देखा जा सकता है।

अलग–अलग प्रेसीडैंसियों की मुख्य इकाइयों को प्रमुख एकल इकाई में परिवर्तित करने के लिए सबसे निकट और सबसे कम असुविधाजनक भारत की ऐसी मात्रा स्पष्टतया 180 ग्रेन जो एक ही समय में पूर्ण सांख्यिक होगी क्योंकि किसी उल्लिखित डिग्री में वर्तमान इकाइयों में से किसी भी इकाई के भार से किसी भी मामले में अलग नहीं थी। इसके अतिरिक्त यह विश्वास किया गया था। कि 180 अथवा 179.5511 ग्रेन उस रुपये के सिक्के का मानक भार था जो मूलतः मुगल टकसालों से जारी किया गया था। अतः इसका अंगीकार वस्तुतः पुरानी इकाई की ही पुनरावृत्ति थी और यह एक नवीन* इकाई का प्रवेश नहीं था। 180 ग्रेन की इकाई के पक्ष में एक अन्य लाभ का दावा यह था कि इस प्रकार की मुद्रा की इकाई फिर से वही बन जाएगी जो बंद हो गई थी और इस इकाई का वही भार होगा। यह सहमति व्यक्त की गई कि भारत में पहले सभी भार की इकाई मुख्य सिक्के की इकाई से सम्बद्ध रही इसलिए सेर और हाथ के भार रुपये के गुणांक रहे जिनका मूलतः भार 179.6 ग्रेन ट्राय रहा। यदि मुख्य सिक्के के भार को 180 ग्रेन ट्राय से अलग स्थापित किया जाना था तो यह विश्वास किया जाना था कि यह स्थिति उस प्राचीन प्रथा के बदलाव से कोई अच्छी नहीं होती जो अन्य भारों और मापन के आधार सिक्के के भार के अनुरूप बनाई गई थी। इसके अलावा

* देखिए पैदा 26-28, कलकत्ता, टकसाल समिति के जेम्स प्रिंसैप का पत्र। इस पत्र की प्रकाशन 1836 में कलकत्ता के जॉन मूलर द्वारा किया गया जो भारतीय तालिकाओं के परिशिष्ट में दिखाया गया है।

180 ग्रेन की इकाई का भार इस दृष्टिकोण से न केवल उपयुक्त था अपितु अपने पक्ष में भार की अंग्रेजी इकाई के साथ भारतीय इकाई के भार को आत्मसात करने की सुविधा को बढ़ाने के पक्ष में भी रहा।[1]

मुद्रा की मुख्य इकाई के भार को 180 ग्रेन ट्राय तक निर्धारित[2] करने के पक्ष में ये कारण थे तथापि 165 ग्रेन शुद्ध भार की परियोजना अपने आप में उचित

तालिका–1

मुद्रा की मुख्य इकाइयां

....की सरकार द्वारा जारी	राज्य क्षेत्र जिसमें परिचालित किया गया	जारी करने वाला प्राधिकारण और तारीख	चाँदी के सिक्के			सोने के सिक्के		
			नाम	भार ट्राय ग्रेन	शुद्ध अंश ट्राय ग्रेन	नाम	भार ट्राय ग्रेन	शुद्ध अंश ट्राय ग्रेन
बम्बई	प्रेसीडेंसी		सूरत रुपया	179.0	164.740	मोहर	179	164.740
मद्रास	प्रेसीडेंसी		आकोर्ट रुपया	176.4	166.477	स्टार पैगोडा	32.40	42.55
	बंगाल,बिहार और उड़ीसा कटक	विनिमयक XXXV 1793 का XII,1805 का	सिक्का रुपया (उन्नीसवां सन्)	179.66	175.927	मोहर	190.804	189.40
बंगाल	हवाले किए कए प्रांत		फर्रुखाबाद रुपया					
	विजित प्रांत	XIV,1803का	पैंतालीसवें सन् का लखनऊ सिक्का	173	166.135	-	-	
	बनारस प्रांत	III, 1806का	बनारस रुपया (मछलीघर)	175	168.875	-	-	

1. वही, पैरा 28 अंग्रेजी और भारतीय की पद्धतियां एक दूसरे के समान रहीं, इसका उल्लेख इस प्रकार है:–

भारतीय	अंग्रेजी
8 रती = 1 माशा	= 15 ट्राय ग्रेन
12 माशा = 1 तोला (अथवा सिक्का)	= 180 ट्राय ग्रेन
80 तोला = 1 सेर	= 2½ ट्राय पौंड
40 सेर = 1 मन	= 100 ट्राय पौंड

2. रुपये के भार की इकाई के रूप में 180 ग्रेन ट्राय की परियोजना पर केप्टिन जर्विस के मतभेद के बारे में ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। उनका सुविस्तृत ग्रंथ देखिए जिसका नाम है– दी एक्स्पीडियन्सी एण्ड फेसेलिटी ऑफ एस्टेबिलिशिंग द मेट्रोलाजिकल एण्ड मॉनेटेरी सिस्टम्स थ्रूआउट इंडिया ऑन ए सांइटिफिक एण्ड परमानेट बेसिस ग्रडिऐड ऑन एन एनेलिटकल रिव्यू ऑफ द बेटस, मेजर्स एण्ड काइंस ऑफ इंडिया भारत के भार, मापन और सिक्कों के विश्लेषणात्मक समीक्षा पर आधारित वैज्ञानिक तथा स्थायी आधार पर भारत भर में माप पद्धति और मुद्रा पद्धति के स्थापित किए जाने की तात्कालिता तथा सुविधा) .... बम्बई, 1836 पृष्ठ 49-64

थी। शासकीय विचार के अनुसार 165 ग्रेन का चयन करना था जैसाकि शुद्धता का स्तर था और यह स्थिति मानक भार के चयन करने में भी रही ताकि वर्तमान प्रबंध में यथासंभव कुछ भी बाधा न हो। शुद्धता का यह मानक चांदी के उन सिक्कों से नितांत भिन्न नहीं था जिन्हें भारत की विभिन्न सरकारों ने अपनी मुद्रा की मुख्य इकाइयों के रूप में मान्यता प्रदान की थी। इसके विवरण आगे दिए गए तुलनात्मक विवरण पत्र में दिए गए हैं।

तालिका II

मुख्य मान्यता प्राप्त रुपये से भिन्न शुद्धता के प्रस्तावित मानक का अपसरण

मुख्य इकाइयों के रूप में मान्य चाँदी के सिक्के तथा उनकी शुद्धता		प्रस्तावित चाँदी के रुपये की मानक शुद्धता ट्रायग्रेन	प्रस्तावित रुपये की तुलना में अधिक मूल्यांकन		प्रस्तावित रुपये की तुलना में कम मूल्यांकन	
सिक्के का नाम	उसका शुद्ध अंश ट्राय		ग्रेन में	पी.सी. द्वारा	ग्रेन में	पी.सी. द्वारा
सुरत रुपया	164.74	165	-	-	.26	.157
आर्कोट रुपया	166.477	165	1.477	.887	-	-
सिक्का रुपया	175.927	165	10.927	8.211	-	-
फरुखाबाद रुपया	166.135	165	1.135	.683	-	-
बनारस रुपया	169.251	165	4.251	2.511	-	-

इस प्रकार यह देखा जाएगा कि सिक्का और बनारस के रुपये के सिवाय शुद्धता का प्रस्तावित मानक अन्य रुपयों से इतना अधिक मिलता जुलता था कि पर्याप्त विस्थापन के बिना पूर्ण एकरूपता के प्राप्त करने की रूचि ने उसके अंगीकरण की सभी संभव आपत्तियों को अस्वीकार कर दिया। एक दूसरा विचार शुद्धता के मानक के रूप में 165 ग्रेन के चयन में निदेशकों के अधिकरण में छाया रहा, वह यह था कि मानक भार के रूप में 180 ग्रेन के साथ मिलकर ऐसी व्यवस्था की गई कि रुपये को 11/12 शुद्ध बनाया गया। विशेष प्रकार की शुद्धता को निश्चित करने की बात निदेशकों के अधिकरण के लिए अत्यन्त तकनीकी बात थी। परन्तु 1803 में नियुक्त टकसाल और सिक्कों के ढालने के लिए ब्रिटिश समिति की राय थी कि "1/12 मिश्रित धातु और 11/12 शुद्ध धातु अधिक मंहगे प्रयोग होते हुए भी सर्वोत्तम अनुपात सिद्ध हुए अथवा कम से कम इतने अच्छे थे जिनका चयन किया जा सकता था।" इस मानक को इतना अधिक अधिकारपूर्वक ढंग से स्वीकार किया गया कि अधिकरण ने अपनी भारतीय मुद्रा की नवीन योजना में उसे सम्मिलित कर लिया। इसलिए उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की कि रुपये को 11/12 शुद्ध रखा जाए। परन्तु ऐसा करने के लिए रुपये में 165 ग्रेन की शुद्धता बनाई रखनी थी और उपरोक्त कारखानों से उन्होंने रुपये में ऐसी शुद्धता रखने

की इच्छा व्यक्त की* भावी घटनाओं के लाभप्रद आधार से एकाकी धातु के लिए निदेशकों के अधिकरण की वरीयता की समीक्षा करते हुए कोई भी व्यक्ति इसे अदूरदर्शी दृष्टि मानने की सोच सकता है। फिर भी ऐसे समय में इस पक्ष में निर्णय के लिए समुचित आधार था। इस सम्बन्ध में प्रथम कार्यवाही के रूप में तीनों महाप्रान्तों ने जिन्हें दृष्टि से महाप्रान्तों में विभाजित किया गया था प्रान्त में सरकार स्थापित होते ही इसे अंगीकार कर लिया तथा मुगलों के समानांतर मानक को मोहर, पैगोड़ा और रुपए के बीच विनिमय के वैध अनुपात की स्थापना द्वारा दोहरे मानक में परिवर्तित किया गया परन्तु किसी भी महाप्रान्त में इस प्रयोग को पूरी सफलता प्राप्त नहीं हुई।

बंगाल† में सरकार ने 2 जून, 1766 को 179.66 ग्रेन ट्राय के भार के सोने की मोहरें जारी करने का निश्चय किया और इस मोहर में 149.92 ग्रेन ट्राय शुद्ध धातु थी और इसे रुपये के 14 सिक्के के मूल्य का वैध सिक्का माना गया ताकि खजानों में राजस्व–वसूलियों को अवरुद्ध करने के अपने ही कार्य से अधिकांशतया उत्पन्न मुद्रा–अभाव की पूर्ति हो सके जो वाणिज्य के लिए प्रतिकूल था। यह 16.45:1 का वैध अनुपात था और यह 14.81:1 के बाजार के अनुपात से नितांत भिन्न था। इन दोनों सिक्कों के साथ–साथ परिचालन को सुरक्षित रखने का प्रयास असफल सिद्ध हुआ। चीन, मद्रास और बंबई को बंगाल की चाँदी की निकासी के कारण मुद्रा की स्थिति खराब हो गई। इतना ही नहीं सरकार ने 20 मार्च, 1769 को एक दूसरी सोने की मोहर जारी की जिसका भार 190.773 ग्रेन ट्राय था और जिसमें 190.086 ग्रेन शुद्ध सोना था जिसका मूल्य रुपये के 16 सिक्के के बराबर निर्धारित किया गया। यह 14.81:1 का वैध अनुपात था और यह अनुपात भारत (14:1) और यूरोप (14.61:1) दोनों के बाजार–अनुपात से अधिक था। यह दूसरा प्रयास था कि दोनों ही सिक्कों का एक साथ परिचालन किया जाए परन्तु यह पहले प्रयोग के समान ही सफल नहीं हो सका। सही अनुपात लगाने का कार्य इतना उलझन भरा लगने लगा कि सरकार ने 3 दिसम्बर, 1788 को सोने के सिक्के की ढलाई बंद करके एक धातु के सिक्के ढालने का काम फिर से प्रारंभ कर दिया और जब मुद्रा अभाव का फिर दबाव हुआ तो सरकार ने विवश होकर सोने के सिक्के को ढालने का काम फिर शुरू किया। सरकार ने इस बात को वरीयता दी कि मोहर और रुपये को बाजार के मूल्य पर परिचालित किया जाए और इस हेतु किसी भी निर्धारित अनुपात द्वारा उनमें सह संबंध स्थापित

* देखिए, दि डिस्पैच, सामने के पृष्ठ पर उद्धृत पैरा–9

† एफ.सी. हैरीसन, "सोने के संबंध में भारत सरकार अतीत कार्य इकोनॉमिक जर्नल खंड–III पृ० 54 बंगाल पब्लिक कंस्लटेशन, दिनांक 29 सितम्बर, 1796 को जान शोर द्वारा दिया गया विवरण।

करने का प्रयास नहीं किया। 1793 में तीसरा प्रयास किया गया बंगाल में दोहरा मानक स्थापित किया जाए। उस वर्ष एक नयी मोहर जारी की गई। जिसका मान 190.895 ग्रेन ट्राय था और 189.4037 ग्रेन शुद्ध सोना था और इसे रुपये के 6 सिक्कों के बराबर मूल्य का वैध सिक्का माना गया। इसका अनुपात 14.86:1 था परन्तु यह अनुपात उस समय बाजार में विद्यमान अनुपात के समान नहीं था अतः बंगाल में द्विधातु के सिक्के स्थापित करने का तीसरा प्रयास भी ठीक उसी तरह असफल हो गया जैसा कि 1766 और 1769 में असफल प्रयास किया गया था।

इसी प्रकार मद्रास सरकार* के प्रयास बंगाल सरकार के प्रयासों से कहीं अधिक असफल सिद्ध हुए। उस महाप्रान्त में ब्रिटिश सरकार के अधीन द्विधातु के सिक्के ढालने का प्रथम प्रयास वर्ष 1749 में किया गया था जब 350 आर्कोट रुपये 100 स्टार पैगोडा के समान वैध माने गए थे। उस समय प्रचलित बाजार भाव के अनुपात की तुलना में इस अनुपात में पैगोडा की कीमत कम आंकी गई और यह पैगोंडा महाप्रान्त का सोने का सिक्का था। पैगोडा के विलुप्त हो जाने के कारण मुद्रा की बहुत कमी हो गई और सरकार दिसंबर, 1750 में फिर से इस मुद्रा को पुनर्जीवित करने पर बाध्य हो गई। यह कार्य दोहरी योजना के अपनाने से सम्पन्न किया गया। एक ओर सरकार के खाते में सोने का आयात किया गया जिससे टकसाल के अनुपात को बाजार के अनुपात के बराबर लाया जाय और दूसरी ओर सरकारी खजानों में केवल पैगोडा द्वारा ही प्राप्तियां और भुगतान करने पर मजबूर किया गया।

दूसरी युक्ति बहुत छोटे मूल्य की रही परन्तु पहली स्थिति अपनी विशाल मात्रा के कारण स्थिति को सुधारने में अधिक फलदायक सिद्ध हुई। दुर्भाग्यवश यह मामला बिल्कुल अस्थायी था। 1756 और 1771 के बीच की अवधि में रुपये और पैगोडा के बराबर भाव के अनुपात में काफी परिवर्तन हुआ। 1756 में यह अनुपात 364:100 था और 1768 में यह अनुपात 370:100 रहा। 1768 के बाद भी ऐसा नहीं था कि 1749 में निर्धारित वैध अनुपात के समान बाजार भाव के अनुपात रहे और यह स्थिति 12 वर्ष तक स्थिर बनी रही परन्तु चांदी के आयात में वृद्धि होने के कारण द्वितीय मैसूर युद्ध को आगे बढ़ाना आवश्यक समझा गया जिसके फलस्वरूप इस अनुपात में व्यवधान पड़ गया और यह अनुपात युद्ध की समाप्ति के बाद 400 अर्कोट रुपए 100 स्टार पैगोडा रह गया। युद्ध की

---

* इंडियन जर्नल आफ इकोनोमिक्स जनवरी, 1921 ने प्रकाशित एच. डौडवैल का लेख "सबस्टीट्यूशन ऑफ सिलवर फार गोल्ड इन साउथ इंडिया (दक्षिण भारत के सोने के स्थान पर चॉंदी का स्थानापन्न)।

समाप्ति के बाद मद्रास की सरकार ने एक अन्य प्रयास किया कि रुपये और पैगोडा के बीच साथ–साथ परिचालन किया जाए परन्तु बाजार भाव अनुपात 400:100 के वैध अनुपात को स्थापित करने के बजाय उस समय महाप्रान्त में सोने के आयात की वृद्धि के कारण यह आशा बंधी कि बाजार का अनुपात इतना बढ़ जाएगा कि वह 1749 में स्थापित वैध अनुपात के बराबर होगा। इस प्रकार से उत्पन्न नवोदित उत्साह में यह निर्णय किया गया कि 1790 के अनुमान के अनुरूप इस अनुपात को 365:100 निर्धारित किया गया। वांछित परिणाम से स्थिति का भिन्न होना आवश्यक था क्योंकि यह पैगोडा का मूल्यांकन कम करना था परन्तु इस भूल के सुधार की अपेक्षा सरकार ने 1779 में 350:100 के अनुपात में वृद्धि कर स्थिति को और बिगाड़ दिया जिसका कुप्रभाव यह हुआ कि पैगोड़ा पूर्णतया परिचालन से बाहर हो गया और इस प्रकार द्विधातुवाद का अंतिम प्रयास बुरी तरह असफल रहा।

ऐसा प्रतीत होता है बंबई की सरकार द्विधातुवाद की यांत्रिकी में अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान प्राप्त कर चुकी थी यद्यपि इससे पद्धति की व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर करने में कोई सहायता नहीं मिली। पहली बार जब महाप्रान्त* में द्विधातुवाद का कार्य प्रारंभ किया गया था तो मोहर और रुपए का अनुपात 15.70:1 था परन्तु इस अनुपात पर मोहर की दर अधिक पायी गई और तदनुसार अगस्त, 1774 में टकसाल के अधिकारी को यह निदेश दिया गया कि वेनिश के मुद्रा शुद्धता से सोने की मोहरों के सिक्के ढाले जाएं और उनका भार चांदी के रुपये के भार के समान हो। इस परिवर्तन से वैध अनुपात 14.83:1 पर जो लगभग, बिल्कुल ठीक वैसा नहीं था जैसा कि तत्कालीन बाजार भाव की अनुपात 15:1 प्रचलित था और कोई भी अनहोनी घटना नहीं घटी अतः द्विधातुवाद को अन्य दोनों महाप्रान्तों की तुलना में बम्बई में अधिक सफलता मिल जानी चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होना था, क्योंकि सूरत के नबाव की बेईमानी के कारण स्थिति बिल्कुल ही बदल गई क्योंकि उन्होंने बम्बई के रुपये के समान भार तथा शुद्धता वाले रुपये का 10, 12 और यहा तक कि 15 प्रतिशत भाग में खोट मिला दिया। इस खोट मिलावट के काम का अहितकर प्रभाव बम्बई महाप्रान्त के द्विधातु पद्धति पर नहीं पड़ता यदि यह तथ्य न होता कि नवाब (सूरत के नवाब) के रुपयों के बारे में यह समझौता किया गया था कि कम्पनी के क्षेत्र में बम्बई के रुपयों के समान ही उनका परिचालन किया जाएगा। उनके वैध सिक्के मानने के फलस्वरूप सूरत के रुपये एक बार खोट मिलावट के बाद बम्बई के रुपयों को परिचालन

* अनुलग्नक सहित बम्बई महाप्रान्त मे हिस्ट्री ऑफ कोईनेज पर डॉक्टर स्कॉट की रिपोर्ट, पब्लिक कन्सलटेशन्स (बम्बई, तारीख 27 जनवरी, 1801)।

से बाहर ही नहीं कर दिए गए अपितु मोहर भी परिचालन से अलग हो गई क्योंकि सूरत के रुपयों की खोट मिलावट के बाद यह अनुपात सोने के लिए भी अहितकर हो गया और सफल द्विधातु पद्धति का एक अन्य अवसर खो गया। एक बार फिर मोहर और रुपये के बीच द्विधातु के अनुपात निर्धारण का प्रश्न उठा जब बंबई की सरकार ने सूरत के रुपयों को अपनी ही टकसाल में ढालने की अनुमति प्रदान की। 1744 के विनिमय के अनुसार सोने की मोहर ढालने के काम का प्रश्न ही नहीं उठता। बम्बई की मोहर में शुद्ध सोने का अंश 177.38 ग्रेन था और 1800 के मानक के 15 सूरत रुपयों में चाँदी का अंश 247.11 ग्रेन रहा। इस विनिमय के अनुसार चांदी सोने का अनुपात 247.11/177.38 अर्थात् 13.9:1 हुआ। इस स्थिति में मोहर का मूल्य बहुत कम आंका गया अतः यह संकल्प किया गया कि सूरत रुपये की तुलना में मोहर के मानक में परिवर्तन कर दिया जाए और इस प्रकार यह अनुपात 14.9:1 रहा लेकिन बाजार का अनुपात 15.5:1 रहा अतः यह प्रयोग बिल्कुल ही सफल न हो पाया।

इस अनुभव के प्रकाश में ईस्ट इंडिया कम्पनी के निदेशकों के अधिकरण ने भारत में भावी मुद्रा पद्धति के आधार के रूप में एकल धातु मानक निर्धारित किया। सभी मुद्रा विषयक विनिमयों का मुख्य उद्धेश्य है कि मुद्रा की अलग–अलग इकाईयों में पारस्परिक मूल्य का स्थिर संबंध होना चाहिए। मूल्य में स्थाई निर्धारण के बिना मुद्रा की स्थिति अस्त–व्यस्त हो जाएगी और उस निर्धारण की अस्थायी अस्त–व्यस्तता के लिए कोई भी पूर्वोपाय विशेष लाभप्रद न होगा। मुद्रा के विभिन्न भागों के मध्य स्थिरता सुनियोजित मुद्रा पद्धति इतनी आवश्यक है कि हमें यह जानकर आश्चर्य नहीं है कि निदेशकों के अधिकरण ने इस पर अधिक महत्व दिया जैसा कि उन्होंने किया जबकि विशेष रूप से मुद्रा को ठोस और स्थायी आधार पर बनाए रखने के कार्य में लगे थे। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनका एकल धातु का चयन गलत सलाह के कारण था क्योंकि यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि दोहरे मानक की तुलना में इस प्रकार का एकल मानक इस स्थिरता को अपेक्षाकृत अधिक अच्छी सुरक्षा प्रदान करता है। पहले प्रकार में यह स्वतः उत्पन्न होता है जबकि दूसरे प्रकार में यह विवश होकर करना पड़ता है।

निदेशकों के अधिकरण की इन सिफारिशों को भारत की विभिन्न सरकारों पर छोड़ दिया गया ताकि वे अपने विवेक के अनुसार इनको कार्यान्वित करें जहां तक समय और कार्यविधि का संबध हैं इन आदेशों के समरूप कदम उठाने और यहां तक कि अधिकरण के कार्यक्रम के उन भागों को पूरा कर लेने पर कुछ समय लगा जिनका संबंध एक सी मुद्रा की स्थापना से था कि विभिन्न सरकारों के प्रयत्नों पर सबसे पहले ध्यान केन्द्रित किया गया।

अधिकरण द्वारा प्रस्तावित मुद्रा की इकाईयों में मुद्रा की वर्तमान इकाईयों को बदल देने का कार्य सर्वप्रथम मद्रास में सम्पन्न किया गया। 7 जनवरी, 1818 को सरकार ने एक घोषणा* जारी की जिसके द्वारा मुद्रा की पुरानी इकाईयों आर्कोट रुपया और स्टार पैगोडा के स्थान पर नई इकाइयां स्थापित की गई अर्थात् सोने का रुपया और चांदी का रुपया परिचालित किया गया जिनमें से प्रत्येक का भार 180 ग्रेन ट्राय था और जिसमें 165 ग्रेन शुद्ध धातु थी। 6 अक्तूबर, 1824 की घोषणा† द्वारा 6 वर्ष बाद बंबई द्वारा मद्रास का अनुसरण किया गया। इसके अनुसार यह घोषित किया गया कि मद्रास मानक का सोने व चांदी का रुपया सारे महाप्रान्त में एक मात्र वैध मुद्रा होगी। बंगाल की सरकार को कहीं बड़ी समस्या का समाधान करना था। इसके पास चांदी की मुद्रा की तीन अलग–अलग मुख्य इकाइयां थीं जिन्हें अधिकरण द्वारा प्रस्तावित मानक के अनुसार परिवर्तित किया जाना था। इसने समाप्त करने और परिवर्तन करने की पद्धति द्वारा पुनर्गठन का कार्य प्रारंभ किया। 1819 में इसने बनारस के रुपये से सिक्के ढालने का काम बंद दिया‡ और उसके स्थान पर फरुखाबाद का रुपया परिचालित किया गया। इसका भार तथा शुद्धता क्रमशः 180.234 और 135.215 ग्रेन ट्राय रखी गयी। देखने में ऐसा लगता था कि यह सही दिशा से भटक गया है। परन्तु यहां भी शुद्धता के संबंध में एक–रूपता का उद्धेश्य स्पष्ट था कि इससे मद्रास और बम्बई के नए रुपयों के समान फरुखाबाद का रुपया तैयार किया गया था और इसमें 11/12 शुद्धता थी। बनारस के रुपये से छुटकारा पाकर दूसरा कदम यह था कि फरुखाबाद रुपये के मानक को मद्रास और बम्बई के मानक में आत्मसात कर दिया जाए जैसा कि आगे दी गई तालिका में दिखाया गया है।

इस प्रकार द्विधातु पद्धति रद्द किए बिना अधिकरण द्वारा प्रस्तावित आदर्श यूनिट (इकाई) को अस्तित्व में लाने के लिए ठोस कदम उठाए गए जैसा कि आगे दी गई तालिका में दिया गया है।

* देखिए – फोर्ट सेंट जार्ज पब्लिक डिपार्टमेंट, कन्सलटेशन्स, न. 19, 7 जनवरी, 1818

† देखिए बम्बई फाईनेसियल कन्सलटेशन्स, 6 अक्तूबर, 1824

‡ बंगाल रग्यूलेशन 11,1819

तालिका III

सन् 1833 की समाप्ति होने तक सिक्का निर्माण की एकरूपता

सरकार जिससे सिक्का जारी किया	चांदी के सिक्के			सोने के सिक्के			वैध अनुपात
	मूल्य	भार	शुद्धता	मूल्य-वर्ग	भार	शुद्धता	
बंगाल	सिक्का रुपया	192	176 अथवा 11/12	मोहर	204.710	187.651	1 से 15 तक
	फरुखाबाद रुपया	180	165 अथवा 11/12	-	-	-	-
बम्बई	चांदी का रुपया	180	165 अथवा 11/12	सोने का रुपया	180	165 अथवा 11/12	1 से 15 तक
मद्रास	चांदी का रुपया	180	165 अथवा 11/12	सोने का रुपया	180	165 अथवा 11/12	1 से 15 तक

1833 की समाप्ति तक जैसी स्थिति थी उसका अनुमान करते हुए हमें यह लगता है कि बंगाल में सिक्का रुपया और सोने की मोहर के सिवाय निदेशकों की योजना का वह भाग प्राप्त कर लिया गया था जिसका संबंध सिक्का ढालने की एकरूपता से था। इसको पूर्ण करने की दिशा में कुछ नहीं बचा था। केवल सिक्का रुपये को हटा देना था और सोने का विमुद्रीकरण किया जाना था। इस अवसर पर अधिकरण के निदेशकों के और तीन भारत सरकारों के बीच विरोध उत्पन्न हो गया। सोने के विमुद्रीकरण करने में काफी अनिच्छा प्रकट की गई। मद्रास की सरकार जिसने अधिकरण की योजना के अनुसार अपनी मुद्रा में सुधार कार्य को सर्वप्रथम हाथ में लिया रुपये के ढालने के साथ-साथ सोने के सिक्के ढालना जारी रखने पर जोर ही नहीं दिया*

* निदेशकों के अधिकरण ने रुपये से अलग हटकर सोने के सिक्के ढालने तथा उनके परिचालन की अनुमति देने में सहमति व्यक्त की क्योंकि उन्होंने अपने राजकीय कागजात में यह कहा था:—

"16 यद्यपि हम इस औचित्य से पूर्णतया संतुष्ट हैं कि चांदी के रुपये को मूल्य और लेखे की मुद्रा का मुख्य साधन माना जाए। फिर भी हम किसी भी प्रकार इस बात के इच्छुक नहीं है कि सोने के सिक्के के परिचालन पर रोक लगा दी जाए अपितु हम सामान्य उपयोग के लिए उपयुक्त सिद्धांत के आधार पर सोने के सिक्कों को स्थापित करना चाहते हैं। हमारे मत के अनुसार इस सिक्के को सोने का रुपया कहना चाहिए तथा उसे उसी स्तर को ढालना चाहिए जैसा कि चांदी का रुपया ढाला जाता है। बंगाल रेग्यूलेशन 11, 1819 ।

अपितु अपने क्षेत्र में प्रचलित स्थायी अनुपात में दोहरी वैध मुद्रा की पद्धति से अलग हटने के लिए जोरदार शब्दों में इनकार कर दिया।* चाहे अधिकरण द्वारा बारबांर प्रतिवाद किया गया हो।† बंगाल की सरकार ने दृढ़ता के साथ द्विधातु के मानक‡ का साथ दिया। बिना अधिकरण की इस संबंध में बार–बार चेतावनी की परवाह किए बंगाल की सरकार भी द्विधातु मानक को जोर से पकड़े रही। सोने की मोहर को विभ्रमित‡ न कर उसने मानक को ही बदलना शुरु कर दिया।‡‡ शुद्ध अंतर्वस्तु 189.4037 से घटाकर 187.651 ट्राय ग्रेन कर दिया गया ताकि 1818 में मद्रास में अपनाए गए अनुपात के आधार पर द्विधातु पद्धति को पुनः स्थापित किया जाए। द्विधातु मानक के साथ उसका इतना अधिक चिपकाव था कि 1833§ में इसने सिक्का रुपये के भार और शुद्धता को क्रमशः 196 ग्रेन ट्राय तथा 176 ग्रेन (शुद्धता) में परिवर्तित कर दिया। इसका शायद कारण यह हो कि मोहर और रुपये में वैध और बाजार भाव अनुपात के बीच संभावित अंतर को ठीक करना था।§§ दूसरी ओर भारत सरकार अधिकरण की इच्छा से और अधिक आगे बढ़ना चाहती थी। अधिकरण के विचार से (अर्थात ऐसी मुद्रा जिसका निर्माण समान किन्तु स्वतंत्र इकाइयों द्वारा किया गया था) सब कुछ था जिसकी भारत को आवश्यकता थी। वास्तव में उन्होने सरकारों को समझाया कि उनकी यह इच्छा नहीं थी कि "मुद्रा के सरलीकरण के मामले में कुछ अधिक कार्य किया जाए और वे पूर्ण रूप से इस बात के इच्छुक थे कि सिक्का और मोहर का उसी प्रकार आत्मसात किए बिना रहने दिया जाए।"@ निस्संदेह एक रूप मुद्रा का परिचालन उस व्यवस्था में जो मुगलों के उत्तराधिकारियों ने छोड़ी थी एक अग्रणी कदम था। परन्तु यह पर्याप्त नहीं था और परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार आम मुद्रा की मांग थी जिसका आधार एकरूप मुद्रा के स्थान पर एकल इकाई था। एक रूप मुद्रा पद्धति के अंतर्गत प्रत्येक महाप्रान्त ने अपनी ही मुद्रा

* देखिए 19 अगस्त 1817 का फोर्ट सेंट जेम्स पब्लिक कंसलटेशन्स विशेषतया महालेखाकार का पत्र।

† देखिए :– 6 मार्च 1810, 10 जुलाई 1811 और 12 जून 1816 को मद्रास के लिए सार्वजनिक कागजात (पब्लिक डिस्पेच)।

‡ प्रिएम्बल टू दि बगाल रेग्यूलेशन, XIV, 1818

‡‡ फिर भी, इतने भार में 190.895 से बढ़ाकर 204.710 ट्राय ग्रेन की वृद्धि कर दी।

§ बंगाल रेग्यूलेशन, VII, 1833

§§ यह हो सकता है कि इस परिवर्तन का मंतव्य यह था कि सिक्का रुपये की 11/12 की शुद्धता से ढाला जाए।

@ देखिए, डिस्पैच टू बंगाल, तारीख 11 मार्च, 1829

में सिक्के ढाले और अन्य महाप्रान्तों की टकसालों में ढाले गए सिक्के टकसाल के सिवाय अपने क्षेत्र में वैध मुद्रा नहीं माने गए। मुद्रा की स्वतंत्रता अधिक हानिप्रद नहीं होगी यदि तीनों महाप्रांतों के बीच वित्तीय स्वतंत्रता भी बनी है। वास्तव में यद्यपि प्रत्येक महाप्रान्त में अपनी ही वित्तीय पद्धति थी तथापि वे अपने ही घाटों के वित्त के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहे। उनके बीच "आपूर्ति" की नियमित पद्धति थी और एक महाप्रान्त के अधिशेष की पूर्ति बराबर दूसरे महाप्रान्त के आहरण से की जाती थी ताकि अन्य क्षेत्रों में घाटे की राशियों की पूर्ति की जाए। एक आम मुद्रा के अभाव में इस संसाधन क्रिया में काफी बाधा आई। "आपूर्ति" क्रिया के मार्ग में आम मुद्रा के अभाव द्वारा उत्पन्न कठिनाइयों में स्वयं दो अलग-अलग तारीकों में अनुभव कराया गया। अन्य महाप्रान्तों की मुद्रा को वैध मुद्रा के रूप में उपयोग न करने के कारण प्रत्येक महांप्रान्त को वाणिज्य के घाटे तथा आत्मनिर्भर होने के लिए अधिक कार्यशील शेषों को बन्द करना पड़ा।* अधिक शेष की आवश्यकता को आरोपित करने वाली पद्धति ने अन्य महाप्रान्तों की कम प्रभावोंत्पादक राहत उत्पन्न की क्योंकि यह आपूर्ति उस महाप्रान्त की मुद्रा का रूप थी जिसने उसकी स्वीकृति दी थी और इससे पूर्व कि उसका उपयोग हो पाता, जरूरतमंद महाप्रान्त की मुद्रा को फिर से सिक्कों में ढालना पड़ता। फिर से सिक्कों के ढालने से न केवल हानि हुई अपितु इस पद्धति से स्पष्टतया सौदागरों को असुविधा तथा सरकार को लज्जा का सामना करना पड़ा।†

1833 की समाप्ति पर स्थिति यह थी कि अधिकरण ने यह इच्छा व्यक्त की कि चांदी के एकल मानक के साथ एकरूप मुद्रा रखी जाए जबकि भारत के

* बंगाल के महालेखापाल ने 21 नवम्बर, 1823 के अपने पत्र में कलकत्ता टकसाल समिति को लिखा :

"पैरा 32 शेष राशि मुद्रा की स्थिति पर आवश्यक रूप से निर्भर होनी चाहिए। यदि मद्रास, बंबई और फरुखाबाद के रुपये भार और आतंरिक मूल्य में अंतर किए बिना ही एक मानक भार और मूल्य में ढाले जाएं। उनकी अभिलेख भी एक ही हो किसी भी दशा में एक दूसरे से अन्तर न हों तो एक महाप्रान्त की बचत को सर्वथा अन्य महाप्रान्त की मुद्रा के घाटे की पूर्ति में उपभोग किया जाएगा बिना एक साल जाए और तीनों महाप्रान्तों के भुगतान के लिए उपलब्ध अधिक मुद्रा अनुपात में भारत की अवशेष मुद्रा घट जाएगी बंबई फाइनेंशियल कन्सलटेशन्स, 25 फरवरी, 1824"

† इस पद्धति के अवगण को बंबई में पहले ही महसूस किया गया था जहां सरकार को 9 अप्रैल, 1924 के घोषणा पत्र में यह कहना पड़ा था कि 1819 के फरुखाबाद रुपये को आर्दश मानते हुए अपने राज्य क्षेत्र में वैद्य मानक मुद्रा माना चाहिए ताकि बंगाल से पूति-क्रिया की सुविधा हो सके। देखिए बंबई फायनेंशियल कन्संलटेशन्स, 14 अप्रैल, 1841।

अधिकारियों ने द्विधातु मानक के साथ आम मुद्रा की इच्छा व्यक्त की। चाहे ये अलग–अलग विचार कुछ भी क्यों न हों मुद्रा की वास्तविक स्थिति बराबर रहती। दोनों ओर किसी ठोस परिवर्तन के बिना भी यों ही चलती रहती। 1833 में भारत के तीनों महाप्रान्तों की सरकारों के मध्य प्रशासनिक संबंधों में महत्वपूर्ण संवैधानिक परिवर्तन हुआ। उस वर्ष संसद के एक* अधिनियम द्वारा प्रशासन में साम्राज्यवादी पद्धति स्थापित की गई जिसके अनुसार समस्त भारत में सभी विधायकी और कार्यकारी प्राधिकार का केंद्रीकरण किया गया। इस प्रशासकीय पद्धति के परिवर्तन के कारण प्रचलित मुद्रा पद्धतियों में परिवर्तन भी करना पड़ा। इसके अनुसार स्थानीय सिक्कों के स्थान पर साम्राज्यवादी सिक्के लाए गए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इसने आम मुद्रा को एकरूप मुद्रा के स्थान में अधिक बढा दिया। भारत के प्राधिकारियों ने घटनाचक्र की शक्ति को स्वीकारने में कोई देरी नहीं की। संसद द्वारा स्थापित साम्राज्यवादी सरकार मुगलों के दीवान अथवा दलाल के रूप में कार्य करने से संतुष्ट नहीं थी जैसा कि अंग्रेज अब तक करते आए थे, उन्होंने इस बात को पसंद नहीं किया कि सिक्कों को उन मृतप्राय मुगल सम्राटों के नाम पर जारी किया जाय जो अब शासन नहीं करते।[†] वह इस बात के लिए आतुर थी कि झूठा चोगा उतार फेंका जाए और अपने ही नाम का साम्राज्यवादी सिक्का जारी किया जाए जो समस्त भारत के लिए समान हो जो समान आधिपत्य का प्रतीक होगा तदनुसार इस नीति को कार्य रूप में परिणित करने के लिए जल्दी ही कदम उठाए गए। साम्राज्यवादी सरकार के अधिनियम (1835 के 17) द्वारा समस्त भारत के लिए आम सिक्का जो एक मात्र विधिमान्य चलार्थ था लाया गया। परन्तु साम्राज्यवादी सरकार इससे भी आगे बढ़ गई और जैसे कि वह अधिकरण को कोई छूट दे रही हो क्योंकि अधिकरण ने इस आम मुद्रा के विरुद्ध जोरदार विरोध किया जहां तक इसने सिक्का[‡] रुपये को विस्थापित किया और कानून बनाया कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार क्षेत्र में से आगे से सोने के सिक्के को विधिमान्य चलार्थ नहीं माना जाएगा।[§]

यह बात बिल्कुल समझने योग्य है कि साम्राज्यवादी प्रशासन को आवश्यकता की मांग के अनुसार भारत भर के लिए आम मुद्रा की स्थापना की ओर अग्रसर होना पड़ा। परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि उसने द्वि–धातु की पद्धति को क्यों समाप्त कर दिया जबकि इतने अधिक समय से उसका परिचालन होता रहा था। वास्तव

* 3 तथा 4 विलियम 4 देखिए 85

† देखिए दि सेंटीमैंटस ऑफ टुकर इन हिस मैमोरियल्स ऑफ इंडियन गवर्नमेंट (एडिटिड बाई काये) 1853 पृष्ठ 17–18

‡ देखिए दियर फाइनेंसल डिस्पैच टु इंडिया सख्या 4 दिनांक 27–7–1836

§ सैक्शन 9 ऑफ एक्ट 17 आफ 1835

में जब इस बात का स्मरण किया जाए द्वि–धातु पद्धति के समाप्त करने के विरुद्ध अधिकारियों ने किस प्रकार विद्रोह किया और वे कितनी सावधानी बरतते कि अधिक उग्रता से उल्लंघन उनके सिक्कों की सुधार की प्रक्रिया इसमें जहां तक संभव हो क्रान्तिकारी परिवर्तन न लाए, सोने के विमुद्रीकरण सम्बन्धी अधिनियम की धारा एक दुखद आश्चर्य थी फिर भी अकस्मात पलटा खाने के लिए मुद्रा अधिनियम (1835) का 17 भारतीय इतिहास के आख्यान में स्मरण रहेगा इसने मुद्रा–सुधार के दीर्घकालीन और कठोर परिश्रम की प्रक्रिया के चरम बिंदु पर पहुंचा दिया तथा इसने भारत को चांदी के एक धातु वाले सिक्के का आधार बना दिया जिससे रुपये का भार 180 ग्रेन ट्राय और 165 ग्रेन शुद्धता रही जो देश भर में आम मुद्रा और एकाकी विधिमान्य रूप में प्रचलित हुई।

ब्रिटिश भारत के किसी भी विधान ने आने वाले वर्षों में इतना असंतोष उत्पन्न नहीं किया जितना कि 1835 के संख्या 17 अधिनियम ने किया। जहां तक अधिनियम ने द्विधातु पद्धति को रद्द किया, और सभी ने एकमत से इसे आश्चर्य से देखा। फिर भी इसके सभी आलोचक इस बात से अवगत नहीं हैं* कि इस अधिनियम ने मुख्यतया जो निर्णय दिया उसका संबंध द्विधातु–मुद्रा के स्थान पर एकल धातु मुद्रा का प्रचलन करना था। इस अधिनियम के बारे में आम राय थी कि इसने सोने के मानक के स्थान पर चांदी का मानक ला दिया परन्तु यदि इसकी सच्चाई के बारे में सामान्य रूप से अधिक ब्रोयोसे मानक भी हो तो भी इसके प्रति शत्रुता का व्यवहार किसी भी तरह न्यायसंगत नहीं होगा। 19वीं शताब्दी के मध्य में कैलीफोर्निया और आस्ट्रेलिया की स्वर्ण–खोजों का भारत के लिए क्या लाभ होता यदि उसने अपनी द्विधातु पद्धति को सुरक्षित रखना था? यह भली–भाँति विदित है कि चाँदी की तुलना में सोने के उत्पाद की वृद्धि से टकसाल में विविधता और वर्ष 1850 के बाद दोनों धातुओं के बाजार–अनुपातों में विविधता आई। चांदी की कमी का मूल्यांकन अधिक नहीं था फिर भी उस गंभीर स्थिति में द्विधातु अपनाने वाले देशों को गंभीर रूप से सामना करना था। इस स्थिति में जिसमें छोटे सिक्के समेत चांदी की मुद्रा तीव्र गति से परिचालन से बाहर हो रही थी। अमरीका† 1853 के कानून द्वारा इस बात के लिए बाध्य हो गया कि अपने छोटे चांदी के सिक्के के मानक को काफी कम कर दे ताकि डालर के बदले डालर का आकलन किया जाए जो उनके सोने के मूल्य से कम हो जिसके फलस्वरूप सिक्कों का परिचालन होता। फ्रांस, बेल्जियम, स्विट्जरलैंड और इटली में पारस्परिक वैध सिक्के‡

* देखिए एस. वी. डोरायस्वामी, इंडियन करेंसी, मद्रास, पेस्सिम

† लॉघलिन, जे. एल–हिस्ट्री ऑफ वाइमैटलिज्म, न्यूयार्क, 1886, पृष्ठ 79–83

‡ फ्रांस के सांस्कृतिक प्रभाव ने लेटिन मूल देशों को फ्रांसिसी पद्धति की ओर अग्रसर किया। 1831 में बेल्जियम ने राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद अपनी मुद्रा–पद्धति में परिवर्तन किया। 1832 के कानून के अनुसार बेल्जियम आर्थिक दृष्टि से फ्रांस का पिछलग्गू

के साथ फ्रांस के द्विधातु के मॉडल के आधार पर ऐसी एकरूप मुद्रा थी जिसे इसी प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। कहीं ऐसा न हो कि प्रत्येक देश* यानी अपनी चांदी की मुद्रा और विशेषकर छोटे सिक्कों को बचाने की अलग–अलग नीति के कारण वहां प्रचलित मुद्रा की सामंजस्यता अस्त–व्यस्त हो जाए और वे 20 नवम्बर 1865 को एक अधिवेशन में मिलने के लिए बाध्य हो गए ताकि पार्टियों को सामूहिक रूप से लेटिन यूनियन के नाते सिक्कों के परिचालन में 2 फ्रैंक के चांदी के सिक्के, एक फ्रैंक, 50 सेंटाइम और 900/1000 शुद्धता से 835/1000 शुद्धता के मानक से 20 सेंटाइम तक घटा लें और उन्हें सहायक सिक्के बना लें।† विधिमान्य चलार्थ की शक्ति को निरस्त कर दिया।

यह सत्य है कि सोने और चांदी के परस्पर मूल्यों में उथल–पुथल के फलस्वरूप भारत सरकार भी मुश्किल में पड़ गई परन्तु यह कष्ट भारत सरकार को स्वयं की मूर्खता के कारण हुआ‡ 1835 के मुद्रा कानून में सोने के मुक्त सिक्का–ढलाई

हो गया। उस कानून के अनुसार बेल्जियम ने पूर्णतया फ्रांस की मुद्रा–पद्धति को अपना लिया, और बेल्जियम इतना उसने 20 और 40 फ्रैंक के सोने के फ्रांसिसी सिक्कों तथा चांदी के 5 फ्रैंक सिक्कों और इस प्रकार बेल्जियम में विधिमान्य चलार्थ बना दिया। स्विटजरलैंड के 1848 के संविधान के अनुच्छेद 36 ने संघीय सरकार को सिक्का ढालने का प्राधिकार दे दिया। 7 मई, 1850 के कानून ने स्विटरजरलैंड के लिए फ्रांसिसी मुद्रा–पद्धति स्वीकार की: अनुच्छेद 8 में यह घोषणा की गई: "कि फ्रांसिसी पद्धति के काफी समीप ढाले गए चांदी के सिक्के वैध होने चाहिए और वे सिक्के स्विटजरलैंड मे ऋणों के भुगतान के लिए नियमित माध्यम बनें।" एकीकरण के पूर्व इटली ने विभिन्न राज्यों में स्विस वैंटनों के समान अपनी ही मुद्रा–पद्धति परन्तु इटली में राज्यों के एकीकरण के बाद सिक्कों की एकरूपता की इच्छा के साथ पुरानी पद्धतियों में से किसी पद्धति अथवा नयी पद्धति में से किसी के चयन की समस्या उठी ताकि वह पद्धति पूरे देश में आम पद्धति बन सके। फ्रांस के प्रति आभार स्वरूप कुछ इटली निवासियों के मस्तिकों में यह बात सर्वोपरि थी कि फ्रांस ने इटली को स्वतंत्रता दिलानें में सहायता की है। और फ्रांस की मुद्रा–पद्धति को इटली के लिए स्वीकार करने से इस उद्धेश्य की पूर्ति हो जाएगी। सौभाग्यवश सार्डिनिया में पहलें ही फ्रेंच पद्धति का प्रचलन था और 24 अगस्त 1862 का कानून पूरे इटली देश मे लागू कर दिया गया और लायर को इकाई माना गया तथा फ्रांस बेल्जियम और स्विटजरलैंड के सिक्कों को विधिमान्य चलार्थ मान लिया गया।

* देखिए एच.पी.विल्स–हिस्ट्री ऑफ द लेटिन मोनेटरी यूनियन, शिकागो, 1910 पृष्ठ 15, 27, 36, 37 स्विटजरलैंड ही पहला देश था जिसने चांदी को छोटे सिक्को में ढालने का काम किया ताकि उन सिक्कों का परिचालन हो सके परन्तु कम की गई शुद्धता के स्विटजलैंड सिक्के देश की सीमाओं के परे पहुंच गए और ये सिक्के लेटिन उदभव के अन्य देशों के विधिमान्य पदार्थ थे। अतः इन सिक्कों ने छोटे मूल्य वर्ग के अधिक मंहगे सिक्कों को हटाना शुरु कर दिया। जिनमें अधिक चांदी थी परन्तु जो समान नाममात्र के मूल्य पर परिचालित रहें। इससे फ्रांस (14 अप्रैल, 1864) में एक निर्णय हुआ जिसने संबंधित सभी लेटिन देशों की ओर से समायोजित कार्रवाई के लिए विधिमान्य चलार्थ की शक्ति को परास्त कर दिया।

† लेटिन यूनियन के अधिक विवरण के लिए देखिए–सामने का उद्धरण, 146-9

‡ देखिए–सी. रिटर्न का एच., ईस्ट इंडियन (क्रानेज), 1860 का 254

के लिए टकसालों को बंद नहीं किया था जिसका कारण शायद यह था कि सोने के सिक्कों की ढलाई सामन्ती कर राजस्व–प्राप्ति का एक स्रोत था जिसे सरकार छोड़ना नहीं चाहती थी किन्तु सोने का वैध सिक्का विधिमान्य चलार्थ नहीं था अतः सोने के सिक्के ढालने के लिए टकसाल में नहीं लाया गया और साम्राज्यवादी देय राशि सिक्के की ढलाई से प्राप्त न होने से सरकारी राजस्व में गिरावट आ गयी। राजस्व की इस कमी को दूर करने के लिए सरकार ने सोने के सिक्कों की ढलाई को प्रोत्साहित करने के लिए कदम उठाए। सर्वप्रथम* 1837 में साम्राज्यवादी देय राशि दो प्रतिशत से कम करके एक प्रतिशत कर दी गई परन्तु यह साधन इतना पर्याप्त नहीं था कि लोगों को टकसाल तक सोना लाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए जिसके फलस्वरूप साम्राज्यवादी देय राशि में वृद्धि नहीं हो सकी। इसकी दिशा में एक अन्य कदम उठाया गया, सरकार ने 13 जनवरी, 1841 को एक घोषणा जारी की जिसके अनुसार सार्वजनिक खजानों के प्रभारी अधिकारियों को यह अधिकार दिया गया कि वे 15 चांदी के रुपये के बराबर एक सोने की मोहर की दर पर सोने के सिक्के प्राप्त करें। कुछ समय तक कोई सोना प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि घोषणा द्वारा निर्धारित दर पर सोने का मूल्यांकन कम किया गया था।† परन्तु आस्ट्रेलिया और कैलीफोर्निया में सोने की खोजों ने इस स्थिति को बिल्कुल ही बदल दिया। सोने की मोहर का मूल्यांकन 15 रुपये की दर से करके उसका मूल्यांकन कम कर दिया गया था और अब सोने का अधिक मूल्यांकन किया गया तथा सरकार जो इस बात की उत्सुक थी कि सोना प्राप्त किया जाए। वही सरकार सोने के भारी मात्रा में आने से घबरा गई। सरकार ने एक ऐसे मार्ग का अनुसरण किया जिसके अनुसार एक ओर तो सोने के सिक्के को विधिमान्य चलार्थ मानने की घोषणा रद्द कर दी गई और दूसरी ओर सरकारी मांगों के परिसमापन के लिए सोना लेना प्रारंभ कर दिया गया। एक सिक्के ने सरकार को एक लज्जाजनक नुकसान की स्थिति में रख दिया, वह सिक्का जिसका कोई मूल्य नहीं था और जिसे अपने मूल्य से अधिक भुगतान सामान्यतया किया गया होगा। अपनी स्थिति का बोध होने पर सरकार ने सिक्कों की अधिक ढलाई द्वारा राजस्व की वृद्धि के सभी विचार त्याग दिए और 25 दिसम्बर, 1852 को शीघ्र ही एक अन्य घोषणा जारी की जिसके फलस्वरूप 1841 की घोषणा को वापस ले लिया गया। क्या यह अच्छा नहीं होता कि सोने के सिक्के को सामान्य विधिमान्य चलार्थ बनाकर इस अपमान से बच निकलने के बजाय उसकी आंशिक विधिमान्य चलार्थ शक्ति से उसे वंचित किया गया, परन्तु जहां तक भारत का संबंध है, भारत उन परीक्षणों और विपत्तियों से बचा रहा जिन्हें द्विधातु पद्धति

* देखिए–सी, रिटर्न का एच., ईस्ट इंडियन (कानेज), 1860 का 254 पृष्ठ 8

† वही, पृष्ठ 10

मानने वाले उन देशों ने उठाया था जो अपनी मुद्रा के चांदी के सिक्कों को आरक्षित करना चाहते थे, ऐसी स्थिति में द्विधातु पद्धति का निरस्त करना कोई छोटा लाभ नहीं था। इस कदम में वे महान गुण थे जिसने देश को उन आने वाले परिवर्तनों से सचेत कर दिया जो भले ही उस समय दिखाई नहीं दिए किन्तु जल्दी ही सामने आ गए।

भारत में द्विधातुवाद को रद्द किए जाने का कार्य 1835 के अधिनियम द्वारा सम्पन्न हुआ। अतः इस कार्य को निंदा का आधार नहीं बनाया जा सकता। परन्तु यह बात बहस का मुद्दा हो सकती है कि द्विधातुवाद की भर्त्सना चांदी के एकल धातुवाद के औचित्य का स्वतः प्रमाण नहीं है। यदि एकल धातुवाद को ही अपनाना था तो सोने के एकल धातुवाद को भी स्वीकार किया जा सकता था। वास्तव में चांदी के एकल धातुवाद को वरीयता देना कुछ विचित्र सा नही लगता जब हम यह स्मरण करते हैं कि एकल धातुवाद के समर्थक* लार्ड लिवरपूल के सिद्धान्त अधिकरण ने भारत में लागू करने चाहे थे। इंग्लैंड में तत्कालीन इसी प्रकार की मुद्रा के दोषों के खिलाफ उन्होंने सोने के एकल धातुवाद को निर्धारित किया था। अधिकरण इस मामले में अपने मार्गदर्शन से हटना स्वाभाविक रूप से इस गम्भीर पथ भ्रष्ट होने के औचित्य पर बहुत अधिक उत्तेजित कटु आलोचना हुई।† प्रारंभ में किसी की निष्ठा पर अंगुली उठाना बिल्कुल निराधार है। क्योंकि लार्ड लिवरपूल "स्वर्ण कीट" नहीं थे और ना ही अधिकरण के लोग "रजत मानव" थे। वास्तव में इनमें से किसी ने भी इस विचार से इस प्रश्न पर नहीं सोचा कि सोना अथवा चांदी में से किसका अधिक मान मूल्य है। वास्तव में जहां तक विचारणीय प्रश्न ध्यान देने योग्य था वह है अधिकरण की पसन्द, जो तत्कालीन विचारधारा के अनुसार निसन्देह लार्ड लिवरपूल के विचारों से कहीं अधिक अच्छा विकल्प था। न केवल सभी सिद्धांतवादी जैसे कि लॉर्ड हैरिस ओ पेटरी चांदी के मानक मूल्य के पक्ष में थे। परन्तु समस्त विश्व में व्यावहारिक रूप से चांदी का ही समर्थन किया गया था। इसमें कोई संदेह नहीं कि इंगलैंड ने 1816 में स्वयं को सोने के आधार पर रख लिया था परन्तु चांदी के सिक्के मुक्त भाव से ढालने के लिए अंग्रेजी टकसाल बंद करने से कहीं दूर वह अधिनियम शाही घोषणा‡ द्वारा कार्यान्वित किए जाने के हेतु बना रहा। यह सत्य है कि इस प्रकार की कोई घोषणा कभी जारी नहीं की गई परन्तु इस बात का भी अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि तत्कालीन अंग्रेजों ने मानक के प्रश्न को निर्धारित करने में

* बंगाल के गवर्नर सर जॉन शोर द्वारा प्रत्याशित *ए ट्रीटाइज ऑन दि कॉइनेज ऑफ रियल्म* अपने कार्यवृत्त में संग्रहीत, सामने का उद्धरण, पैरा 55

† देखिए एच.एम. डानिंग–*इंडियन करेंसी,* 1898 देखिए एस. वी. डोरइस्वामी का उद्धरण, यत्र–तत्र।

‡ देखिए डाना हार्टन–दि सिलवर पाउंड, 1887, पृष्ठ 161

मामले के रूप में स्वीकार कर लिया है। 1825 के संकट से यह विदित हुआ कि सोने के मानक ने सरलता से कार्य करने के लिए अंग्रेजी मुद्रा पद्धति के लिए संकीर्ण आधार प्रस्तुत किया और उस समय के विशेषज्ञों के मतानुसार[1] सोने का मानक इंग्लैंड की वाणिज्यिक वरीयता के मामले से कहीं दूर उस देश की समृद्धि के लिए अवरोध था क्योंकि इसने अपने को शेष विश्व से अलग कर लिया था जो अधिकांशतया चांदी के आधार पर था। यहां तक कि उस समय के अंग्रेजी राजनेताओं ने सोने के मानक की वरीयता के संबंध में निर्णय नहीं किया था। 1826 में हस्किसन ने वास्तव में यह प्रस्ताव किया कि सरकार को पूर्व विधिमान्य चलार्थ के चांदी के प्रमाण पत्र जारी करने चाहिए।[2] यहां तक कि 1844 तक मानक के प्रश्न पर कोई समझौता नहीं हो पाया क्योंकि हम देखते हैं कि पील के मंत्रिमंडल को दिए ज्ञापन[3] में चांदी अथवा द्विधातु मानक के पक्ष में किसी भी प्रकार कोई पश्चाताप अथवा पूर्वाभिरूचि से सोने के मानक को त्यागने की संभावना पर विचार किया गया था। वित्तीय अलगाव की कठिनाइयां स्पष्ट रूप से इतनी अजेय नहीं थी कि मानक में परिवर्तन के लिए बाध्य होना पड़े; परन्तु वे इतनी विकराल थीं कि पील को बाध्य होना पड़ा कि उन्होंने बैंक चार्टर एक्ट, 1844 में आंशिक रूप से हरिन्कनसन की योजना को सम्मिलित करते हुए अपना प्रसिद्ध प्रतिबंध शामिल किया था और चांदी की तुलना में नोटों के जारी[3] करने की अनुमति दी गई तथा जारी की गई मुद्रा का चौथाई अंश[4] रखा गया। वास्तव में चांदी की स्थिरता के बारे में व्यापक रूप से इतना अधिक विश्वास था कि 1847 में हॉलैंड ने व्यावहारिक रूप से सोने के एकल धातुवाद के स्थान पर चांदी के एकल धातुवाद[5] को बदल लिया क्योंकि उनके राजनेताओं का विश्वास था:–

"इंग्लैंड के समान हॉलैंड में मुद्रा पद्धति अपनाए जाने से वाणिज्यिक और औद्योगिक हितों के लिए विनाशपूर्ण सिद्ध हुई। सोने के मानक की स्वीकृति के बाद इस पद्धति के वित्तीय संबंधी आकस्मिक भाव–परिवर्तन किसी भी अन्य देश

---

1. देखिए–सिक्के के लिए समिति (1828) के समक्ष (लार्ड आशुबर्टन) को छोड़ते हुए 'ए' बैरिंग का साक्ष्य–1830 के सी रिटर्व 31 का एच
2. देखिए मंत्रिमंडल को दिया गया उनका ज्ञापन जो निब्ज द्वारा छापा गया–ए कॉलोक्यूए आफन करैंसी (1894) अनुलग्नक पृ० XLVII
3. इसके लिए इन डी डेस लिखित हिस्ट्री ऑफ द बैंक ऑफ इंगलैंड पूरक I देखिए।
4. इस निष्क्रय उपबध के मूल उद्देश्य के लिए देखिए–बैंक चार्टर एक्ट पर 20 मई, 1844 को पील का भाषण, हन्सार्ड, खंड LXXIV पृष्ठ 1334-35
5. सिद्धांत में हालैंड द्विधातु का सिक्का अपनाया किंतु 15.8.73 और 1 के अनुपात में वैध सिक्कैम का अवमूल्यन कर दिया गया कि सोने का सिक्का ही हॉलैंड में मुख्य रूप से प्रचालित हो गया।

की तुलना में अधिक बारबार और गंभीर हुए और इसके अनिष्टकारी प्रभाव इंग्लैंड की तुलना में हॉलैंड में थोड़े कम महसूस किए गए। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि चॉंदी के मानक की स्वीकृति से इंग्लैंड को इस बात से अलग रखा जाएगा कि वह इस प्रकार के आकस्मिक भाव–परिवर्तन के दौरान अपनी मुद्रा को हटाने से हॉलैंड के आंतरिक व्यापार में उथल–पुथल नहीं होगी तथा उन अवगुणों से उन्मुक्ति मिलेगी जो हॉलैंड में पैदा नहीं हुए थे और जिनके लिए हॉलैंड उत्तरदायी नहीं था।"[1]

परन्तु स्थायित्व ही ऐसा आधार नहीं था जिसके द्वारा अधिकरण अथवा लॉर्ड लिवरपूल ने अन्य धातुओं की तुलना में मानक धातु को अपना विकल्प बनाया। यदि ऐसा ही मामला होता तो शायद दोनों ने ही चांदी का चयन किया होता। जैसी की स्थिति थी, दोनों पक्षों के विकल्प का अन्तर केवल उथला था, अधिकरण का लॉर्ड लिवरपूल से मतभेद था इसमें कोई खराब इरादा नहीं था परन्तु वे दोनों एक आधारभूत प्रस्ताव पर सहमत हो गए थे कि मानक धातु के चयन में ही नहीं अपितु लोकप्रिय वरीयता भी निर्णायक थी। इस समझौते के कारक या तर्कसंगत रूप से उनमें उत्तर दिखने लगे। मुद्रा के सम्मिश्रण का विश्लेषण करने पर यह पता लगा कि इंग्लैंड में अधिकांशतया मुद्रा सोने में बनाई गई थी और भारत में अधिकतर मुद्रा चांदी में बनाई गई थी। यदि उनके आधार वाक्य को स्वीकार कर लिया जाए तो यह बताना सरल काम है कि लिवरपूल द्वारा इंग्लैंड में सोने को क्यों चुना गया और अधिकरण द्वारा भारत में चांदी को क्यों चुना गया। क्या मुद्रा का वास्तविक मिश्रण लोकप्रिय वरीयता का साक्ष्य है, इस बात को उस हठधर्मिता से नहीं कहा जा सकता जैसे कि अधिकरण और लॉर्ड लिवरपूल द्वारा किया गया था। जहां तक इंग्लैंड का संबंध है, लॉर्ड लिवरपूल की व्याख्या के बारे में महान अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो ने प्रश्न चिन्ह लगाया है। रिकार्डो ने अपने *"हाई प्राइस ऑफ बुलियन"* में लिखा है–

"लॉर्ड लिवरपूल ने अनेक कारण दिये जिनके अनुसार बिना किसी मतभेद से यह सिद्ध हो जाता है कि सोने का सिक्का लगभग एक शताब्दी से मूल्य का प्रमुख साधन रहा है परन्तु मेरे विचार से इसका श्रेय टकसाल के गलत अनुपातों को जाता है, सोने का बहुत अधिक मूल्य रखा गया, इसलिए चांदी अपने मानक पर भी परिचालन में रह सकती है। यदि नया विनिमय बनाया जाता और चांदी का

1. रिपोर्ट ऑफ दि यू. एस. सिल्वर कमेटी, 1876 पृष्ठ 68

मूल्य अधिक होता तब सोना लोप हो जाता और चांदी मानक सिक्का बन जाती[1] और यह संभव है कि लोकप्रिय वरीयता[2] की नहीं वरन टकसाल के अनुपात के कारण भारत में चादी के प्रावल्य प्रचलन का कारण रहा होगा।[3]

क्या लोकप्रियता के अलावा कोई अन्य कसौटी थी जो सोने के एकल धातुवाद के स्वीकार करने के लिए वरीयता बनी, यह विविदास्पद प्रश्न है। यह कहना पर्याप्त है कि चांदी के एकल धातुवाद का स्वीकार करना देश की आवश्यकताओं के लिए नितांत अपर्याप्त सिद्ध हुआ। यद्यपि जब वह अधिनियम बना उस समय इसका अच्छा समर्थन था। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इसी समय भारत के लोगों की अर्थव्यवस्था में महान परिवर्तन आ रहे थे। इस प्रकार का परिवर्तन वस्तुओं के आदान–प्रदान की अर्थव्यवस्था के स्थान पर रुपये के लेन–देन की अर्थव्यवस्था स्थापित करने के लिए था।

इस कायापलट में सहायक मुख्य कारणों में से प्रथम स्थान राजस्व और वित्त की ब्रिटिश पद्धति को दिया जाना चाहिए। भारतीय समाज को रोकड़, अभिबंध में परिवर्तित करने के प्रभाव पर्याप्त रूप से अनुभव नहीं किए गए हैं[4] यद्यपि वे अत्यंत वास्तविक थे। देशी शासकों के अधीन अधिकांश भुगतान वस्तुओं में किए जाते थे। सरकार द्वारा स्थायी सैन्य शक्ति बनाए रखी गई और नियमित रूप से उसके लिए भुगतान किया गया परन्तु यह सैन्य शक्ति अल्प मात्रा में थी। प्रादेशिक सेना के अधिकांश सिपाही जागीरदारों और अन्य जमीदारों द्वारा उपलब्ध कराए जाते थे तथा इन सामंतों के सैनिक अथवा परिचर अधिकांशतया अनाज, चारा और अन्य वस्तुओं पर रखे जाते थे जिन्हें उन जिलों द्वारा उपलब्ध कराया जाता था जहां वे रहते थे। वंशानुगत राजस्व और पुलिस अधिकारियों को सामान्यतया सेना की अवधि के अनुसार भूमि के अनुदान द्वारा भुगतान किया जाता था। खेतों में काम

1. वर्क्स पृष्ठ 271
2. श्री डॉडवेल ने अपने उत्कृष्ठ लेख–सामने के पृष्ठ पर उद्धरण में यह बताया हैं कि दक्षिण भारत में सोने के स्थान पर चांदी का चयन किया गया और यह स्थिति चांदी के लिए लोगों की स्वाभाविक वरीयता देने के कारण उत्पन्न हुई। वे श्री डोरैय स्वामी जैसे लेखकों के विचारों की पुष्टि करने के इच्छुक रहे कि वे इस बात में असफल रहे हैं कि उनके प्रतिपादति तथ्य उनके अपने शोध प्रबंध के प्रतिवादी है।
3. श्री एफ.सी. हेरीसन के कलकत्ता रिव्यू जुलाई, 1892 में प्रकाशित तखमी ने के अनुसार 1800 से 1835 तक भारत में कुल सिक्के इस प्रकार थे:–,

   सोना .... 3,845,000 औंस

   चांदी .... 3,781,250,000 औंस

   टिप्पणी–चादी के संबंध में रुपयों को औंस में बदल लिया जाता है ताकि तुना की जा सके।
4. देखिए अप्रैल, 1857 में बम्बई क्वार्टरली रिव्यू में "दि सिल्वर क्वश्चन ऐज रिगार्डस इंडिया" नामक लेख

करने वाले नौकरों और मजदूरों की मजदूरी अनाज द्वारा चुकाई जाती थी। राज्य के अधिकांश अधिकारियों को माल में भुगतान किया जाता था और राज्य सरकार अपने करों को बहुत कम रोकड़ में वसूल कर पाती थी। अंग्रेजी शासन के इस अपरिष्कृत राजस्व और वित्तीय पद्धति में किए गए नव–प्रयोग अत्यन्त व्यापक प्रकार के थे। जैसे ही अंग्रेजी शासन के अधीन एक राज्य क्षेत्र से लेकर दूसरा राज्य क्षेत्र आता गया, सबसे पहले कदम यह उठाया गया कि जमीदारों के ग्रामीण सैनिकों के स्थान पर नियमित रूप से गठित और अनुशासित स्थायी सेना बदल दी गई और इस सेना को अलग अलग सैन्य शहरों पर तैनात कर दिया गया तथा उन्हें नकदी में भुगतान किया गया, सेना के समान असैनिक कर्मचारियों, पूर्व राजस्व तथा अनुचरों सहित पुलिस अधिकारियों को उपलब्धियों तथा माल में प्राप्त अन्य अप्रत्यक्ष लाभ द्वारा भुगतान किया जाता था। इन अधिकारियों के स्थान पर राजस्व अधिकारियों और दण्डाधिकारियों को उनके अधिक से अधिक कर्मचारियों के साथ बदल दिया गया और उनको चालू सिक्के दिए गए। सेना, पुलिस और अन्य कर्मचारियों के ही भुगतान नहीं थे जिन्हें अंग्रेजी सरकार ने सिक्कों के आधार पर रखा इन प्रभारों के अलावा अन्य प्रभार भी थे जो देशी सरकारों की जानकारी में नहीं थे यथा "गृह प्रभार" और "लोक ऋण पर ब्याज" और ये सभी रोकड़ के आधार पर थे। राज्य ने नकदी में भुगतान शुरु कर दिया। अतः राज्य सभी करों को नकदी में वसूल करने के लिए बाध्य हो गया और प्रत्येक नागरिक नकदी में अदा करने पर बाध्य हो गया। नागरिक ने भी बदले में नकदी मिलने का आग्रह किया अतः समाज की संपूर्ण संरचना की पूरी कायापलट हो गयी।

भारत के लोगों के अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि इस समय व्यापार में अत्यन्त वृद्धि हुई। काफी समय तक अंग्रेजों की कर–नीति और नौचालन के कानून ने भारतीय व्यापार की वृद्धि पर भारी अंकुश लगा दिया। इंग्लैंड ने भारत को इस बात पर बाध्य किया कि भारत इंगलैंड की कपास और अन्य निर्मित वस्तुओं को नाममात्र (2½ प्रतिशत) शुल्क पर ले परन्तु इसके साथ ही इंगलैंड ने भारत की उन वस्तुओं के प्रवेश पर विषेधाज्ञा लगा दी जो भारत के राज्य क्षेत्र में तैयार की जाती थी और उन पर 50 से 500 प्रतिशत का निषेधात्मक शुल्क लगाया जाता था। इंगलैंड ने भारत के साथ कोई भी आदान–प्रदान नहीं किया परन्तु इंगलैंड ने अपने अन्य उपनिवेशों के साथ उन वस्तुओं के लिए भेद–भाव रखा जो उन उपनिवेशों में तैयार की जाती थी। इंग्लैंड के अनुचित व्यवहार के विरुद्ध भारी आन्दोलन[1] शुरु किया गया और अंत में सर रॉबर्ट पील ने 1842

1. देखिए–भारतीय वाणिज्य को प्रभावित करने वाले शुल्क के संबंध में ईस्ट इंडिया हाउस की बहस–एशिया हिटिक जर्नल एण्ड मंथली रजिस्टर फॉर ब्रिटिश एण्ड फॉरेन इंडिया, चाइना, अस्ट्रेलिया, लंदन, नई ऋंखला, खंड XXXVII, जनवरी और खंड XXXVIII मई, 1842

की संशोधित कर पद्धति द्वारा लगाए गए कम करों को भारत के उत्पादों के लिए स्वीकार कर लिया। नौचालन के कानून को निरस्त करने से भारतीय वाणिज्य के विस्तार को अधिक प्रोत्साहन मिला। इसके साथ ही भारतीय उत्पादों की मांग भी बढ़ने लगी। 1854 के क्रीमियन युद्ध ने रूस की आपूर्तियों को रोक दिया और उनके स्थान पर भारतीय उत्पाद लिए जाने लगे तथा 1853 में युरोप भर में रेशम की फसल के खराब होने के फलस्वरूप एशिया तथा भारत के रेशम की मांग बढ गई।

इन दोनों परिवर्तनों का प्रभाव मुद्रा संबंधी स्थिति पर स्पष्ट ही था। दोनों ने ही नकदी की अधिक मांग की। परन्तु नकदी को प्राप्त करना कठिन कार्य था। भारत काफी मात्रा में बहुमूल्य धातुएं उत्पन्न नहीं करता। उसे इन धातुओं के प्राप्त करने के लिए अपने व्यापार पर निर्भर रहना पड़ता था। यूरोपीय शक्तियों के आगमन के कारण भारत बहुमूल्य धातुओं के लिए पर्याप्त साधन नहीं जुटा सकता था। उस समय यूरोप में प्रचलित बहुमूल्य धातुओं के निर्यात पर निषेधाज्ञा लगी हुई थी[1] अतः उन्हें प्राप्त करने का एक मार्ग बन्द हो गया। परन्तु यूरोप से बहुमूल्य धातुओं के प्राप्त करने का बहुत कम अवसर था, और इस निषेध के न होने पर भी वास्तव में बहुमूल्य धातुएं भारत में नहीं आई जब ऐसी निषेधाज्ञाएं हटा ली गई।[2] "बहुमूल्य धातुओं के अंतः प्रवाह के रोकने का कारण श्री पेट्री द्वारा अपने नवम्बर, 1799 के कार्यवृत में मद्रास स्थित सुधार की समिति[3] (मद्रास कमेटी आफ रिफोर्म) में भलीभांति बताया गया है। श्री पेट्री के अनुसार यूरोपवासियों ने अपने राज्य क्षेत्रों के प्राप्त करने से पूर्व "यूरोप की धातुओं से भारत की बनी वस्तुओं को खरीदा। परन्तु उन्होंने भारत की चांदी और सोने से इन खरीदों को आगे बढ़ाया, राजस्व में विदेशी सर्राफे के स्थान की पूर्ति की और अपनी ही मुद्रा से अपने उद्योग का मूल्य सहजभाव से अदा किया। सर्वप्रथम वाणिज्य के सिद्धान्तों में इस क्रान्ति का बहुत कम अनुभव हुआ परन्तु जब अंग्रेजों ने समृद्ध तथा विस्तृत राज्यों को अपने हाथ में ले लिया और जब युद्ध तथा वाणिज्यिक प्रतियोगिता की सफलता ने अन्य यूरोपीय राष्ट्रों से इस प्रकार निर्धारित वरीयता प्रदान की ताकि पूर्व के

1. इंगलैंड द्वारा आरोपित उनके इतिहास के लिए देखिए—*रुडिंग—एन्नलस ऑफ क्रायनेज,* तीसरा संस्करण, खण्ड I पृष्ठ 353-4,372, 376, 386-7, *थॉमस वालेट, एन अपील टू सीफर, लदन,* 1660 पृष्ठ 26
2. इंगलैंड से भारत को बहुमूल्य धातुओं के निर्यात संबंधी आगे दिए गए आंकड़े अधिक रूचिकर है

   1652-1703.......£ 1,131,653 (श्री पेट्री के कार्यवृत से)

   1747-1795.......£ 1,519,654 (श्री पेट्री के कार्यवृत से)
3. देखिए लेख— "भारत के संबंध में दि सिल्वर किशचन"— बम्बई कार्टरली रिव्यू, अप्रेल, 1857 में प्रकाशित।

कुल वाणिज्य पर एकाधिकार हो जाए तथा जब पूर्व की निर्मित वस्तुओं के लिए यूरोप को प्रतिवर्ष लाखों की राशि भिजवाएं जानी थी, उस समय भारत के प्रत्येक भाग में इस क्रान्ति के घातक परिणाम देखे गए। ऐसी प्रचुर जल–धारा से वंचित होने के बाद नदी शीघ्र ही अपने किनारों से हट गई तथा अपने अधिक बहते हुए जल से समीपी खेतों को उर्वर बनाना बंद कर दिया।"

अब केवल यही मार्ग खुला था और जब बहुमूल्य धातुओं की प्राप्ति के लिए निषेधाज्ञाओं को हटाया गया तब इस कर की राशि की अपेक्षा अधिक सामान भेजना था ताकि उनमें संतुलन लाया जा सके। यह तभी संभव हुआ जब पील ने भारतीय सामान को कम कर पर स्वीकार किया तथा देश प्रथम बार अपनी बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुमूल्य धातुओं की प्रचुर मात्रा लेने में समर्थ हो पाया। परन्तु मुद्रा के रूप में काम करने के लिए इन बहुमूल्य पदार्थों की आपूर्ति की सुविधा अल्पकाल की थी। 1850 के बाद की कठिनाइयां बहुमूल्य धातुओं के प्राप्त करने के लिए भारत के मार्ग में अवरोध नहीं बनीं। अवरोध तो दूर रहा, बहुमूल्य धातुओं का निर्यात और आयात पूर्ण रूप से स्वतंत्र था तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए भारत की क्षमता भी काफी थी। बहुमूल्य धातुओं की किसी प्रकार की कोई कमी की कठिनाई नहीं थी क्योंकि तथ्य यह था कि 1850 के बाद बहुमूल्य धातुओं की वृद्धि काफी थी। इस कठिनाई के लिए भी स्वयं भारत उत्तरदायी था तथा इसका कारण यह था कि भारत ने उस बहुमूल्य धातु पर अपनी मुद्रा को आधारित नहीं किया था। जो वह सरलता से प्राप्त कर सकता था। 1835 के अधिनियम को भारत ने नितांत चांदी के आधार पर रख दिया परन्तु दुर्भाग्यवश 1850 के बाद ऐसा हुआ यद्यपि ब्रहुमूल्य धातुओं के कुल उत्पाद में वृद्धि हुई जबकि विश्व की आवश्यकताओं के अनुसार चांदी में वृद्धि नहीं हुई तथा उसका अधिकांश भाग चांदी पर आधारित था अतः भारत अपनी मुद्रा के कानून के फलस्वरूप मुद्रा के संकुचन के साथ फैलते व्यापार की अजीब सी स्थिति में फंसा रहा जैसा कि पृष्ठ 31 की तालिका IV में दिखाया गया है।

देखने में ऐसा लगता है कि मुद्रा की कठिनाई नहीं होनी चाहिए थी। चांदी का अधिक आयात था वही स्थिति इसके सिक्कों की भी थी। ऐसी स्थिति में कठिनाई क्यों हो गई? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। यदि चांदी के ढाले गए सिक्कों का परिचालन बनाए रखा गया होता तो संभव है कि यह कठिनाई की स्थिति पैदा न होती। भारत पहले ही से बहुमूल्य धातुओं के रखने के लिए बदनाम है। परन्तु इस प्रक्रिया की व्याख्या के लिए श्री कैसेल्स द्वारा दी गई चेतावनी को याद रखना होगा, जो इस प्रकार है:

"इसके चांदी के सिक्कों को विनिमय के माध्यम के रूप में वाणिज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं करनी थी अपितु चांदी के आभूषण आदि बनाने

तालिका IV*

व्यापार और मुद्रा

वर्ष	वाणिज्य वस्तु		खजाना केवल आयात		कुल सिक्के		आयात पर सिक्कों की कमी वृद्धि+ अथवा कमी–		वार्षिक उत्पादन	
	आयात पौंड	निर्यात पौंड	चांदी पौंड	सोना पौंड	चांदी पौंड	सोना पौंड	चांदी पौंड	सोना पौंड	सोना पौंड	चांदी पौड
1850-51	11,558,789	18,164,150	2,117,225	1,153,294	3,557,906	1,237,17	+1,440,681	-1,029,577	8,9	7,8
1851-52	12,240,490	19,879,406	2,865,357	1,267,357	5,170,014	62,553	+2,304,657	-1,205,060	13,5	8,0
1852-53	10,070,863	20,464,633	3,605,024	1,172,301	5,902,648	—	+2,297,624	-1,172,301	36,6	8,1
1853-54	11,122,659	19,295,139	2,305,744	1,061,443	5,888,217	145,679	+3,582,473	-915,764	31,1	8,1
1854-55	12,724,671	18,927,222	29,600	731,490	1,890,055	2,676	+1,860,455	-728,814	25,5	8,1
1855-56	13,943,494	23,038,259	8,194,375	2,506,245	7,322,871	167,863	+871,504	-2,338,382	27,0	8,1
1856-57	14,194,587	25,338,451	11,073,247	2,091,214	11,220,014	128,302	+146,767	-1,962,912	29,5	8,2
1857-58	15,277,629	27,456,036	12,218,948	2,783,073	12,655,308	43,783	+436,360	-2,739,290	26,7	8,1
1858-59	21,728,579	29,862871	7,728,342	4,426,453	6,641,548	132,273	+1,086,794	-4,294,180	24,9	8,1
1859-60	24,265,140	27,960,203	11,147,563	4,284,234	10,753,068	64,307	+394,495	-4,219,927	25,0	8,2

* थर्ड रिपोर्ट ऑफ दि रायल कमीशन ऑन डिप्रेसन ऑफ ट्रेड एण्ड इंडस्ट्री के अनुलग्नक–ख ''मुद्रा और मानक मूल्य के ज्ञापन'' सी 4797, 1886 पालग्रेव द्वारा दिए गए ज्ञापन में दिए गए आंकड़त्रों पर तैयार किए गए। चॉदी और सोने के आंकड़े चालू वर्ष के आर. बरले की पुस्तक "सिलवर क्यूश्चन एंड दि गोल्ड क्यूश्चन' से जोड़े गए है।'

वाले और सुनार के लिए उस धातु के पर्याप्त रूप से आपूर्ति करने की आवश्यकता थी। टकसाल को प्रगलन भट्टी के मुकाबले पर खड़ा कर दिया गया है। एक के द्वारा इतने अध्यवसाय व कौशल द्वारा बनाए गए सिक्के दूसरे न उन्हें जल्दी से गलाकर कड़े बनवा दिए।[1]

दिए गए आंकड़ों से यह विदित होगा कि सभी आयात की गई चांदी से सिक्के बनाए गए तथा उन्हें मुद्रा के प्रयोजनों के लिए उपयोग किया गया। लोगों के औद्योगिक और सामाजिक उपभोग के निमित्त चॉदी बहुत कम या न के बराबर रखी गई। ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट है कि सिक्के में ढाली गई चांदी का अधिकांश भाग मुद्रा से गैर–मुद्रा के प्रयोजनों के लिए निकाला गया। इस प्रकार इस मुद्रा के अभाव का गुप्त स्रोत स्पष्ट हो जाता है। उस समय के लोगों को यह बिल्कुल स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि मुद्रा से और मुद्रा के प्रयोजनों के लिए मुद्रा के अवशोषण की दर थी जो इसके लिए उत्तरदायी थी। उसी अधिकारी का कथन उद्धृत है :–

"अधिक आयात के बावजूद मुद्रा की माग अभी इतनी बढ़ गई..................... कि गभीर लज्जाजनक स्थिति में यह आश्वस्त किया तथा परिचालित माध्यम के अभाव के कारण व्यापार लगभग ठप हो गया। जैसे ही शीघ्रता से रुपये सिक्कों में ढाले गए वे सिक्के उतनी ही तेजी से अन्दरूनी हिस्सों में ले जाए गए और वहां से वे सिक्के परिचालन से लुप्त हो गए, या तो वे सिक्के भंडार के लिए उपयोग में आए अथवा गहने बनाने के लिए उनको गलाया गया"।[2]

एक मार्ग खुला हुआ था जिसके द्वारा चांदी का अतिरिक्त आयात किया जाता जो देश की मुद्रा तथा गैर–मुद्रा की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त हो सकता। परन्तु चांदी का आयात शायद पहले ही से अपने चरम बिन्दु पर था। कयोंकि जैसे कि मि0 सेसेल्स ने इस बारे में तर्क दिया था :–

"समस्त विश्व की चांदी का वार्षिक उत्पादन दस मिलियन स्टर्लिंग से अधिक नहीं हुआ। पिछले कुछ वर्षो से अकेले भारत ने ही प्रतिवर्ष समस्त विश्व में पैदा की गई धातु से अधिक धातु ली है और उसके अधिकांश भाग का उपयोग किया है। यह स्पष्ट है कि यह स्थिति अधिक समय तक भयंकर उलझन पैदा किए नहीं चल सकती है। या तो यूरोपीय बाजार हमें देने के लिए असमर्थ है या हमें देने में आनाकानी करेंगे अथवा अनिच्छुक हैं अथवा चांदी के मूल्य आसमान छूने

1. भारत के लिए स्वर्ण–मुद्रा संबंधी कार्यवृत्त, दिनाक 8 दिसंबर, 1863 जैसा कि रिपोर्ट ऑफ दि चैम्बर ऑफ कामर्स, 1863-64 अनुलग्नक–1, पृष्ठ 189
2. भारत के लिए स्वर्ण–मुद्रा के संबध में कार्यवृत, दिनांक 1 दिसंबर, 1863 रिपोर्ट, पृष्ठ 184 पर देखें

लगेंगे। ऐसी परिस्थितियों में इसका अनुमान लगाना कठिन कार्य नहीं है कि वर्तमान संकट बराबर चलता रहेगा और इस देश का वाणिज्य यदि स्थायी तौर पर नहीं होता तो कुछ समय के लिए परिचालित माध्यम के अभाव से पंगु होता जाएगा।"[1]

यदि ऋण–माध्यम होता तो मुद्रा का संकुचन इतनी तीव्रता से महसूस नहीं होता जितना कि हो गया था। परन्तु कोई भी नाममात्र के लिए भी धन ऋण के लिए उपलब्ध नहीं था। सरकार ने ब्याज वाले खजाने के नोट जारी किए जो देश के परिचालित माध्यम का भाग बन गए। परन्तु सरकार ने ब्याज दर पर खजाने से नोट जारी किए जो सरकार की परिचलन पद्धति का भाग बनी। किन्तु यह राशि बहुत[2] ही कम होने पर खजाने के नोटों ने "असफलता सिद्ध की जिसका पहला कारण उस शर्त से संबंधित था जिन्हें बारह महीनों के लिए राजस्व के भुगतान के लिए प्राप्त नहीं किया जाएगा। दूसरा कारण यह था कि उनका भुगतान अथवा प्राप्ति उसी स्थान पर होगी जहां से उन्हें जारी किया गया था। चूंकि इन नोटों का प्रयोग कलकत्ता, मद्रास और बंबई तक ही सीमित रखा गया, उनके परिचालन के प्रयोजनों का उपयोग तथा काम में लाने की स्थिति उन शहरों तक सीमित रखी गई.......... और अंत में क्योंकि उनकी राशि अत्यधिक थी और ब्याज पर उनके परिचालन की अवधि बहुत कम थी[3]"

बैंकिग पद्धति का इतना अधिक विकास नहीं हो पाया था कि वाणिज्य की मुद्रा संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। इसकी वृद्धि का मुख्य अवरोध की प्रवृत्ति रही। स्वयं में एक व्यापारिक संस्था के रूप में विनिमय का काम करने वाला अधिकरण (कोर्ट) बैंकिग संस्थाओं के विकास के विरुद्ध था क्योंकि उसे डर था कि कहीं वे उसके प्रतिद्वन्दी न बन जाएं। अधिकरण के सौदागर राजकुमारों की संस्था न रहने के बाद भी यह शत्रुता की पारंपरिक नीति बनी रही, बैंक व्यापार की वृद्धि के साथ आगे नहीं बढ़े। वास्तव में 1856 तक भारत में बैंकों

---

1 रिपोर्ट, देखें पृष्ठ 189

2. भारतीय खजाना नोटों की राशि जो बकाया थी:–

30 अप्रैल, 1850 को पौंड 804, 988	
30 अप्रैल, 1851 को 802, 036	
30 अप्रैल, 1852 को 770, 301	ईस्ट इंडिया रेवेन्यूज आदि पार्लियामेण्ट्री पेपर 201, VIII, 1858 से संबंधित विवरणिका की तालिका संख्या II से उद्धृत किया गया।
30 अप्रैल, 1853 को 850, 432	
30 अप्रैल, 1854 को 850, 627	
30 अप्रैल, 1855 को 889, 875	
30 अप्रैल, 1856 को 967, 711	

3. *हाऊ टू मीट दि फाइनेंशियल डिफीकल्टीज ऑफ इंडिया* लेखक, ए.सी.बी, लंदन, 1859, पृष्ठ 131 कई प्रकार से यह सबसे उल्लेखनीय है जिसने भारतीय मुद्रा और बैंकिग में बाद के कई सुधारों का सुझाव दिया।

तालिका V

भारत में बैंक*

बैंक का नाम	स्थापना का वर्ष	मुख्यालय	शाखाएं और ऐजेंसियां	पूंजी		परिचालन में नोट	तिजोरी के प्रकार	कमीशन मिलने वाले बिल
				अभिदत्त	दत्त			
बैंक ऑफ बंगाल	1809	कलकत्ता	—	1,070,000	1,070,000	1,714,771	851,964	125,251
बैंक ऑफ मद्रास	1843	मद्रास	--	300,000	300,000	123,719	139,960	59,871
बैंक ऑफ बम्बई	1840	बम्बई	—	522,000	522,000	571,089	240,073	195,836
ओरियण्टल बैंक	1851	—	आगरा, मद्रास, लाहौर	1,215,000	1,215,000	199,279	1,146,529	2,918,399
आगरा और यू.पी.	1833	कलकत्ता	कैन्टन और बबई, शिमला, मंसूरी और आगरा	700,000	700,000	—	74,362	—
					—	325,000		
एन.डब्लू. बैंक	1844	कलकत्ता	ऐजेन्सियां दिल्ली और कानपुर मे –	220,560	220,000	—	—	—
				250,000				
लंदन एण्ड ईस्टर्न बैंक	1854	—	कलकत्ता, कैंटन और शंघाई में ऐजेंट	1,000,000	456,000	—	—	—
कामर्शियल बैंक	1854	बंबई	लंदन, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में एजेंट	—	180,000	—		
दिल्ली बैंक	1844	दिल्ली		—	63,850	—	—	—
शिमला बैंक	1844			30,000	—	—	—	—
ढाका बैंक	1846	बम्बई	लंदन, कलकत्ता,	500,000	328,826	777,156	77,239	109,547
मर्केनटाइल बैंक			कोलम्बो कैण्डी					
इंडिया, चायना एण्ड अस्ट्रेलियन बैंक	—	—	कैन्टन और शंघाई					

* आर. एम. मार्टिन दल इंडियन अम्पायर खंड 1, पृष्ठ 565

टिप्पणी–मूल टिप्पणी मे तारीखें दिखाई नहीं गई हैं, परंतु आंतरिक साक्ष्य में विदित होता है कि यह लगभग 1856 है।

की संख्या बहुत कम थी और उसके प्रचालक भी कम थे जैसा कि (तालिका V) में दिखाया गया है।

चांदी की अपर्याप्तता और ऋण मुद्रा के अभाव ने व्यापार के लिए ऐसी उलझन पैदा कर दी कि करेंसी एक्ट, 1835 की प्रवृत्ति में परिवर्तन उभर उठा तथा लोगों ने एक बार फिर पूछना प्रारंभ कर दिया कि यद्यपि द्विधातुवाद से एकल धातुवाद में परिवर्तन किया जाना श्रेयस्कर था तथापि चांदी के एकल धातुवाद की अपेक्षा सोने के एकल धातुवाद को वरीयता देना अधिक अच्छा था। जैसे ही अधिकाधिक सोने का आयात किया गया और उसके सिक्के बनाए गए वैसे ही भारतीय मुद्रा के तत्कालीन पद्धति में वैध प्रतिष्ठा देने की मांग बढ़ती गई।[1] सभी सोने की मुद्रा के सिद्धान्त पर सहमत हो गए जो कुछ भी अंतर था, वह उसके अनुकूल के तरीके तक सीमित रहा। द्विधातु के आधार पर सोने के जारी किए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि सरकार ने "आशाहीन प्रयास" करना मना कर दिया जिसके अनुसार सोने और चांदी के मूल्य को निर्धारित करने के लिए उनके मूल्य की स्वीकृति के लिए बाध्य किया जाना था।[2] सरकार जिन परियोजनाओं पर विचार करने को तत्पर थी[3] वे इस प्रकार थे (1) "सोवेरिन" अथवा किसी अन्य प्रकार के सोने के सिक्के को जारी करना तथा दिनप्रति दिन बाजार के भाव के अनुसार उसका परिचालन जैसा कि चांदी के संबंध में मापा गया था (2) एक नया सोने का सिक्का जारी करना जिस पर रुपयों की दी गई संख्या का वास्तविक मूल्य और एक सीमित अवधि के लिए उसे विधिमान्य चलार्थ मानना; जब उसे फिर से समायोजित किया जा सके और फिर से मूल्यांकन किया जा सके तथा नई दर पर उसी अवधि के लिए विधिमान्य चलार्थ बनाया जा सके (3) अंग्रेजी सोवेरिन को इस रुपए के विधिमान्य चलार्थ के रूप में प्रारंभ करना परन्तु 20 रुपये की राशि अथवा दो सोवेरिन के बराबर विधिमान्य चलार्थ तक सीमित रहना, अथवा (4) चांदी के मानक के स्थान पर सोने के मानक को स्थापित किया जाना।

इन परियोजनाओं में से पहली तीन परियोजनाएं मुद्रा संबंधी कार्यसाधकों के रूप में स्पष्टतया असुरक्षित थीं। मुद्रा के विभिन्न भागों के बीच मूल्य का स्थापित करना सुनियोजित मुद्रा संबंधी पद्धति की आवश्यक अपेक्षा है। प्रत्येक भोले–भाले

1. अप्रैल, 1859 में कलकत्ता के देशी महाजन और सौदागरों द्वारा यह मामला पहली बार चर्चा का विषय बना और इस संबंध में बंगाल चैम्बर ऑफ कामर्स के अध्यक्ष को पत्र लिखा गया। दोनों इस बात पर सहमत हो गए कि भारत में सोने की मुद्रा की आवश्यकता है, देखिए–भारत में सोने की मुद्रा के प्रारंभ करने से संबंधित लेख, (पेपर्स रिलेटिंग टू दि इन्ट्रोडक्शन ऑफ ए गोल्ड करेंसी इन इंडिया), कलकत्ता, 1866, पृष्ठ 1-3
2. वही पृ. 6
3. देखिए कार्यवृत्त लेखक–*राइट ऑनरेवल जेम्स विल्सन*, तारीख 25 दिसम्बर, 1859, वही पृष्ठ 23

की कीमत स्पष्ट होनी चाहिए, ताकि जिसको इसकी जानकारी की समझ न हो वह भी इसका मूल्य समझ सके। जब ऐसा सिक्का अपना मूल्य नहीं बता पाता तब वह केवल वस्तु बन जाता है और उसके मूल्य में उसी प्रकार का उतार–चढ़ाव होता है जैसा कि बाजार भावों में है। इस कसौटी ने पहली दो परियोजनाओं को निरस्त कर दिया। सिक्के को मुद्रा के रूप में चलाए जाने पर – जिसके मूल्य के लिए कोई उत्तरदायी न हो जैसी कि पहली परियोजना के अन्तर्गत स्थिति बन सकती थी– मूल्य आज कुछ है तो कल कुछ है। परिकलन व घटती–बढ़ती का हिसाब में जो कष्ट होता उसके अलावा यह एक लज्जाजनक ऐसा विषय बन जाता, यह कहना पड़ेगा कि सरकार ने इसे न अपना कर बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। दूसरी परियोजना में ऐसी कोई बचाव की युक्ति नहीं कि पहली परियोजना की अपेक्षा इसको अपनाने की संस्तुति की जाती। यदि इसे स्वीकार किया जाता तो परिणाम यह होता कि उस अवधि में जब दर निर्धारित की गई, सोने को परिचालन में किया जाता मानों इसका बाजार–मूल्य अपेक्षाकृत कम था और वर्ष के अंत में यदि यह पता होता कि दर में संशोधन किया जाएगा और सिक्के का मूल्य सोने का मूल्य गिर जाने की समान स्थिति में कम हो जाएगा तो अधिक दर के सोने के सिक्के से बचने के लिए सामान्य संघर्ष और दूसरे के कंधों पर आवश्यक हानि के डालने से निश्चय ही बाद में घटित होता। तीसरा एक प्रकार से विचित्र प्रस्ताव था। यह संभव है कि कम मूल्य की धातु के पूर्ण मूल्य की अपेक्षा कम मूल्य के सिक्के ढाले जाएं ताकि छोटे–छोटे भुगतान किए जा सकें और उनकी वैधता को सीमित किया जा सके। परन्तु यह उच्च मूल्य की धातु के लिए संभव नहीं है, इसका उद्देश्य है कि बड़े लेन–देन को सुविधा उपलब्ध कराई जाए। इस योजना के प्रति आपत्तियों को कठिनाई से छिपाया जा सका। जब तक सोने के मूल्य में कमी रहेगी तब तक इसका परिचालन बिल्कुल नहीं होगा। परन्तु बाजार के अनुपात में परिवर्तन होने के कारण इसका अधिक मूल्य हो गया तो रुपये का परिचालन नहीं हुआ तथा दुकानदारों और व्यापारियों को ऐसा सिक्का मिला होता जो बड़े लेन–देन के चुकाने के लिए उपयोगी न होता।

इन दोषों से मुक्त केवल एक परियोजना थी जिसके अनुसार सोने के मानक को स्वीकार करना था और चांदी को सहायक मुद्रा माना जाना था। सरकार इस मांग के विरुद्ध जो सबसे शक्तिशाली तर्क दे सकती थी वह यह था कि "ऐसे देश में जहां सभी दायित्वों को चांदी में भुगतान के लिए सीमित कर दिया गया था, ऐसा कानून बनाना जिसके अनुसार बलपूर्वक किसी अन्य माध्यम से भुगतान किया जाना होता तो इससे साधारण रूप से ऋणी के लाभ के लिए ऋणदाता को धोखे में डालना होगा।[1] फिर भी यह तर्क कितना ही ठोस क्यों न हो, भारतीय

1. वही, पृष्ठ 26

मुद्रा के विस्तार करने के आधार पर रखने की बढ़ती हुई मांग के पूरा करने में निराशाजनक रूप से अपर्याप्त था। वस्तुतः यह नहीं कहा जा सकता कि सरकार वास्तव में स्वर्ण मुद्रा के विरोध में गंभीर थी। अपनी स्थिति को शक्तिशाली बनाने के लिए सरकार ने सोने के विरूद्ध अपने तर्कों के ठोस होने पर विश्वास नहीं किया अपितु उसकी इस खोज पर विश्वास किया गया कि मौजूदा स्वर्ण मुद्रा के स्थान पर उसके हाथ में दूसरा विकल्प मौजूद है। यदि केवल वर्तमान मुद्रा में पूरक की आवश्यकता थी तो सरकार द्वारा प्रस्तावित उपचार अपराजेय था। सोना खर्चीला और असुविधाजनक था। कागजीमुद्रा के साथ चांदी की मुद्रा मितव्ययता पूर्ण, सुविधाजनक तथा विस्तारपूर्ण थी। वास्तव में सरकारी विकल्प के पक्ष में इतने अधिक लाभ थे कि चांदी के मानक के लिए प्रथम प्रयास से सोने के मानक की स्थापना ही नहीं हुई अपितु उपलब्ध चांदी के मानक के पूरक के रूप में सरकारी कागजी मुद्रा को प्रारंभ किया गया।

चाहे कुछ भी क्यों न हो, लोगों की इच्छा सोने के मानक के लिए इतनी प्रबल थी कि उसकी पूर्ण रूप से अनदेखी नहीं की जा सकती थी। यद्यपि इसकी मांग वैकल्पिक साधनों द्वारा पूरी मानी गई थी। कागजी मुद्रा जैसा कि प्रारंभ में श्री विलसन द्वारा विचार किया गया था, स्वर्ण विरोध पूर्णतया घोर निंदक था परन्तु उनके उत्तराधिकारी श्री लैंग उनसे असहमत थे और उन्होनें भारतीय मुद्रा के सोने का बहिष्कार बर्बतापूर्ण कहा। इसलिए उन्होंने मूल विधेयक में दो महत्वपूर्ण उपबंध प्रस्तुत किए, जब इसके कार्यान्वयन का भार उन पर पड़ा क्योंकि श्री विलसन का आकस्मिक निधन हो गया था। एक कार्य यह था कि 5 रुपये की सबसे कम मूल्य की कागजी मुद्रा को 20 रुपये की कागजी मुद्रा में बढ़ाना था। दूसरा कार्य था–

"गवर्नर–इन काउंसिल को इस बात का अधिकार देना कि वे लिखित आदेश समय–समय पर कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के गजट में प्रकाशित करेंगे कि कागजी मुद्रा जो सिक्के और सर्राफे द्वारा प्रतिनिधत्व करने वाले प्रचलन की कुल राशि के चौथाई भाग से अधिक मूल्य के न हों उन्हे............सोने के सिक्के के लिए विनिमय में जारी किया जाए .... अथवा ऐसे आदेश द्वारा निर्धारित की जाने वाली दरों पर संगठित सर्राफा...."

अधिनियम जिसमें बाद में विधेयक भी समा गया दूसरा उपबंध पूर्णतया स्वीकार कर लिया और प्रथम उपबंध को इस संशोधन के साथ स्वीकार किया कि जारी की जाने वाली कागजी मुद्रा में सबसे कम मूल्य वर्ग की कागजी मुद्रा 10 रुपए की होनी चाहिए। यद्यपि इसका सामान्य प्रयोजन स्पष्ट है, दूसरे उपबंध का सामान्य उपबंध सरकारी कागजातों के देखने से बिल्कुल स्पष्ट नहीं हो पाता। कागजी मुद्रा विधेयक पर चयन समिति ने ऐसा कहा प्रतीत होता है कि उपबंध अहानिकारक था यदि वह अच्छा न था। इसने सोचा–

"कि विशेष अवसरों पर तथा विशेष लेन–देन के मामलों में सौदागर समुदाय के लिए यह जानना अधिक लाभदायक होगा कि सोने को निर्धारित दर पर मुद्रा के रूप में उपलब्ध किया जा सकता है। दूसरी ओर यदि निर्धारित दर पर सोने ने परिचालन में प्रवेश नहीं किया तो इससे यह सिद्ध होगा कि सुरक्षित ओर परिवर्तित परंतु इसमें संदेह नहीं है कि श्री लैंग ने इसे स्वर्ण मानक में परिवर्तित करने के लिए सरल उपाय के रूप में देखा। उन्होने 7 मई, 1862 के मुद्रा तथा बैंकिंग संबंधी कार्यवृत्त में लिखाः–

"इस उपबंध का उद्देश्य यही था कि सोने के भावी उपयोग के संबंध में सावधानीपूर्वक और अस्थायी तौर पर प्रयोगों के लिए द्वार खुले रखे जाएं। सोने का आयात पहले ही से विद्यमान है और यह बढ़ रहा है तथा स्थानीय जनता इस धातु की बहुत प्रशंसा करती है जिसके कारण सामान्य तौर पर यह अधिमूल्य पर है......... इस प्रकार एक समय के बाद यदि सोने का उपभोग आम हो जाता है और इसका मूल्य और स्थिर हो जाता है तब कुछ अन्य कदम उठाए जा सकते हैं। और ऐसा लगता है कि उस समय के राज्य सचिव का यही विचार रहा होगा क्योंकि उन्होंने सोने की तुलना में कागजी मुद्रा जारी किए जाने के पक्ष में सिफारिश के बल को समझा कि भारत में स्वर्ण–मुद्रा का प्रारंभ किये जाने से प्रभावकारी योगदान होगा।"[1]

परन्तु चाहे सौदागर समुदाय के लिए राहत के रूप में विचार किया गया हो अथवा स्वर्ण–मुद्रा के प्रारंभ किए जाने के लिए कोई मार्ग प्रशस्त करना हो, इस उपबंध को कार्यान्वित नहीं किया गया। राज्य सचिव ने इसके संबंध में की गई किसी भी कार्यवाई पर आपत्ति की।[2] इसी बीच कागजी मुद्रा रामबाण सिद्ध नहीं हुई जैसा कि प्रण किया था। जहां तक यह पहुंच पायी वह अर्थव्यस्था प्रभावित हुई, वह नगण्य था।

तालिका VI

कागजी मुद्रा का विस्तार और अर्थव्यवस्था

महाप्रान्त	सर्राफा	सिक्का	सरकारी प्रतिभूतियां	परिचालित नोटों का मूल्य
31 अक्टूबर, 1863 को कलकत्ता	--	18,455,922	11,044,078	29,500,000
31 अक्तूबर 1863 को मद्रास	--	7,300,000	--	7,300,000
4 जनवरी, 1864 को बंबई	117,000,000	19,000,000	--	23,600,000
जोड़	**177,000,000**	**37,655,922**	**11,044,078**	**60,400,000**

1. 16 सितबर, 1862 के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट डिस्पैच संख्या 158 पैरा 59
2. देखिए उनकी डिस्पैच का पैरा 64, सुमरा

जैसा कि श्री कैसल्स[1] ने बताया कि तीन वर्ष बाद कागजी मुद्रा कुल धातु–मुद्रा का लगभग 6 प्रतिशत तक बनाई गए जो उस समय श्री विलसन द्वारा पौंड स्टर्लिंग में 100,000]000 का अनुमान लगाया गया था और उन्होंने दस लाख स्टर्लिंग या सारे का 1% तक की देश की पुनरसेत्पादक पूंजी के निर्मुक्त करने के प्राथमिक उद्देश्य की वास्तव में पूर्ति की। अमरीकी कपास के स्थान पर भारत की कपास की मांग लिवरपूल में बढ़ गई, इस कपास का निर्यात गृह युद्ध के दौरान बन्द हो गया था इस प्रकार विदेशी व्यापार का काफी अनुपात हो गया। चूंकि कागजी मुद्रा ने कोई राहत नहीं दी अतः सारा बोझ चांदी पर पड़ा। फिर भी चांदी का उत्पाद उतनी तीव्रता से नहीं हो रहा था। जितना पहले हुआ था और भारत में उसकी खपत मद्धिम नहीं हुई थी। अतः मुद्रा–माध्यम की अपर्याप्तता काफी महसूस हुई जैसी कि अपर्याप्तता पहले महसूस की गई थी चाहे कागजी मुद्रा ही प्रारंभ क्यों न की गई हो। सोने का अधिक मात्रा में आयात ही नहीं किया गया परन्तु उसका मुद्रा संबंधी प्रयोजनों के लिए उपयोग किया गया यद्यपि यह विधिमान चलार्थ नहीं थी। यह तथ्य बम्बई चैम्बर ऑफ कामर्स[2] द्वारा भारत सरकार के सामने लाया गया। इस बारे में निवेदन किया गया कि भारत में स्वर्ण–मुद्रा जारी की जाए। यह बात कही गई।

"स्वर्ण निर्मित मुद्रा बनाने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है परन्तु इस देश के लोग मौजूदा चांदी की मुद्रा के दोषों के अपरिष्कृत उपचार में लगे हैं,"

और

"सोने की छड़ों पर बम्बई के बैंकों की मुहर लगा दी गई है और इस प्रयोजन के लिए उन्हें देश के अनेक भागों में परिचालित किया जा रहा है।"

इससे एक आन्दोलन उत्पन्न हुआ जिससे सरकार से यह अपेक्षा की कि पेपर करैंसी एक के उपबंध को कार्यान्वित किया जाए और इस आन्दोलन ने ऐसा स्वरूप धारण कर लिया जिसने सरकार के हाथ बांध कर रख दिये। इस अवसर पर इस परिवर्तन को प्रभावकारी करने के लिए योजना के बारे में साहसपूर्वक विचार किया गया। सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने इस उपबंध के कमजोर पक्षों को अच्छी तरह समझ लिया और इस हेतु सरकार को कार्य करने के लिए कहा गया। उन्होंने तर्क दिया कि कागजी मुद्रा देश के परिचालित सिक्कों में ही देय थी और जो भारत में चांदी का रुपया था तथा उस सुरक्षित सोने के भंडार के भाग को रखना था जो नोटों के भुगतान के लिए वैध नहीं माना जा सका और इससे राजनीतिक

1. देखिए 1 जनवरी, 1864 के बंबई सरकार को लिखा उनका पत्र, इन्ट्रोडक्शन ऑफ गोल्ड इन इंडिया। भारत में सोने का प्रादुर्भाव से संबंधित लेख, पृष्ठ 51–69
2. रिपोर्ट ऑफ दि बाम्बे चैम्बर ऑफ कॉमर्स, 1863–64, एपीपी 1, पृष्ठ 206

तालिका VII*
व्यापार और मुद्रा

वर्ष	वाणिज्य वस्तु		खजाना		कुल सिक्के		वृद्धि + अथवा कमी–		का वार्षिक उत्पादन	
	आयात पौंड	निर्यात पौंड	चांदी पौंड	सोना पौंड	चांदी पौंड	सोना पौंड	चांदी पौंड	सोना पौंड	सोना	चांदी
1860-61	23,493,716	32,970,605	5,328,009	4,232,569	5,297,150	65,038	-30,859	-4,167,531	23,9	8,2
1861-62	22,320,432	36,317,042	9,086,456	5,184,425	7,470,030	58,667	-1,616,426	-5,125,758	22,8	8,5
1862-63	22,632,384	47,859,645	12,550,155	6,848,156	9,355,405	130,666	-3,194,750	- 6,717,490	21,6	9,0
1863-64	27,145,590	65,625,449	12,796,717	8,898,306	11,556,720	54,354	-1,239,997	-8,843,952	21,4	9,8
1864-65	28,150,923	68,027,016	10,078,798	9,839,964	10,911,322	95,672	+832,524	-9,744,292	22,6	10,3
1865-66	29,599,228	65,491,123	18,668,673	-5,724,476	14,639,353	17,665	-4,029,320	-5,706,811	24,1	10,4
1866-67	29,038,715	41,859,994	6,963,073	3,842,328	6,183,113	27,725	-779,960	-3,814,603	24,2	10,1
1867-68	35,705,783	50,874,056	5,593,961	4,609,466	4,385,080	21,534	-1,208,881	-4,587,932	22,8	10,8
1868-69	35,990,142	53,062,165	8,601,022	5,159,352	4,269,305	25,156	-4,331,717	-5,134,196	22,0	10,0
1869-70	32,927,520	52,471,376	7,320,337	5,592,016	7,510,480	78,510	+190,143	-5,513,506	21,2	9,5

* तालिका–IV के मामले में प्रयोग में लाए गए स्रोत के अनुसार।

अविश्वास अथवा वाणिज्यिक संत्रास के समय उनकी परिवर्तनीयता को गंभीर खतरा था।[1]

अतः उन्होंने आन्दोलन की सीमा के परे साहसिक कार्य किया और यह घोषित किया कि सोने को बजाय पीछे के दरवाजे से मुद्रा के अन्दर प्रवेश कराने के इससे अधिक श्रेयस्कर यह होगा कि सोने को भारत में मूल्य का मानक बनाया जाना चाहिए। वे श्री विल्सन के उस विचार से सहमत नहीं थे कि यदि स्वर्ण के मानक के स्थान पर चांदी का मानक स्वीकार कर लिया जाए तो इससे "ऋणदाता का विश्वास भंग हो जाएगा।" परन्तु वे इस तथ्य से भी अपने इरादे में पीछे नहीं हटे कि चांदी की मुद्रा को सहायक स्थिति में जाने के पूर्व भारत में सोने की मुद्रा के प्रारंभ से कुछ समय के लिए दोहरा स्तर स्थापित हो जाएगा क्योंकि उन्होंने यह तर्क दिया कि "सभी देशों को दोहरे स्तर की परिवर्तनशील अवस्था में से अवश्य गुजरना चाहिए। इससे पूर्व कि वे एकाकी स्तर पर आएं। तदनुसार उन्होंने यह सुझाव दिया कि (1) ब्रिटिश अथवा आस्ट्रेलिया के मानक के सोवरन और आधा सोवरन को भारत में 10 रुपये का एक विधिमान्य चलार्थ मानना चाहिए। (2) सरकारी कागजों की मुद्रा विनिमय के लिए थी तो रुपया से या सोवरन 10 रुपया प्रति सोवरन की दर से होनी चाहिए किन्तु वे सोने चांदी के विनिमय के लिए नहीं होने चाहिए।

उनके सुझावों को भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया तथा उन्हें राज्य सचिव[2] की स्वीकृति के लिए भेज दिया गया। परन्तु राज्य सचिव एकल धातु पद्धति से न हटने के लिए अधीर–अशान्त थे उन्होंने बड़ी अशिष्टता से इस समग्र परियोजना को छोड़ दिया। उनका उत्तर तर्क[3] का विकृत रूप है तथा भयानक रूप से छिछला है। वे इन सुझावों को स्वीकार करने के लिए अनिच्छुक थे क्योंकि वे इस बात से संतुष्ट थे कि एक सोवरन की मूल्य 10 रुपये रखने से सोवरन की दर को कम करना बहुत बड़ी बात थी जिससे उसने परिचालन की अनुमति नहीं दी जा सकती। यही वह स्थिति थी जिसमें वह ठोस आधार पर खड़ा था। भारत

1. देखिए 20, जून, 1864 को उनका कार्यवृत भारत में सोना (गोल्ड इन इंडिया) पर लेख आदि, पृष्ठ 147: यहां तक कि वे कागजी मुद्रा सुरक्षित रिजर्व में चांदी के सर्राफे को बनाए रखने के लिए विरोधी थे क्योंकि इससे मुद्रा विभाग पर यह दायित्व था कि चांदी के सिक्के ढाले जाएं जिसमें समय लगता था क्योंकि उस समय भारत की टकसालों की सीमित क्षमता पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए था जबकि जारी किए गए कागजी मुद्रा की मांग के अनुसार सिक्कों में देय थे। कागजी मुद्रा विभाग में इसकी अधिक मांग थी जबकि सिक्के की दृष्टि से पूर्ति कम थी।
2. देखिए– भारत सरकार (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया) का डिस्पैच संख्या 89, शिमला, दिनांक 14 जुलाई, 1864
3. सेक्रेटरी ऑफ स्टेट से फाइनेंशियल डिस्पैच, संख्या 224, दिनांक 26 सितंबर, 1864

की टकसाल में सोवरन को बनाने की लागत का अनुमान[1] उस समय 10–4–8 रुपये था, जबकि इंग्लैंड से कलकत्ता को उसके निर्यात का अनुमान 10–9–10 रुपये था और आस्ट्रेलिया से उसके आयात अनुमान 10–2–9 रुपये था। चाहे कोई भी उचित दर क्यों न हो, सोवरन 10 रुपये प्रति सोवरन की दर से परिचालित नहीं हो सकता था। यह खेद का विषय था कि सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने उच्च अनुपात का सुझाव नहीं दिया[2] ताकि सोवरन के परिचालन को आश्वस्त मामला बनाया जा सकता। परन्तु राज्य सचिव फिर भी इस सुझाव के रहे उतने ही विरोधी रहते यहां तक कि यदि राज्य सचिव के लिए प्रतिकूल अनुपात पर आधारित सुझाव व्यर्थ था। परन्तु यदि यह अनुकूल अनुपात पर आधारित होता, यह कुछ कम अहितकर नहीं था क्योंकि इसने उस संभावना का पूर्वाभास दिया जिसके बारे में वे इस दोहरे मानक की सबसे अधिक त्रुटिपूर्ण पद्धति समझते थे चाहे यह कितनी ही अस्थायी क्यों न हो। मात्र द्विधातु पद्धति की सम्भावित वापसी राज्य सचिव को डराने के लिए यथेष्ट थी। जिसके कारण इस सारी क्योंकि उन्होंने इस बात को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था कि, यह सार्वजनिक लाभ के लिए हितकर होगा कि दोहरे मानक की अवधि में से होकर जाया जाए जिससे मुद्रा के आधार को चांदी से सोने में परिवर्तन किया जाए। राज्य सचिव केवल यही एक रिआयत देने को तत्पर थे उन्होंने इस बात की अनुमति ली कि ''सोने के सिक्के को सरकार द्वारा निर्धारित दर और सार्वजनिक रूप से की गई घोषणा द्वारा लोक खजानों में प्राप्त किया जा सकता है बिना इसे भारत में वैध चलार्थ बनाए। यह स्मरणीय है यह उस मूर्खतापूर्ण कानून की पुनरावृति थी जिसे 1852 में छोड़ दिया गया था क्योंकि उससे सरकार को लज्जित होना पड़ा था। ऐसे सिक्के को प्राप्त करने के प्रस्ताव जिसकी कीमत आप अदा न कर सकते हों यह एक मुसीबत मोल लेना था और परियोजना के अंतर्निहित सुविचारित खतरे की रोकथाम करने की दृष्टि से अधिक परिपक्व सुझाव प्रस्तावित किया गया था।

परन्तु मुद्रा का अभाव इतना अधिक था कि भारत सरकार अपने विचार पर हठपूर्वक चिपके रहने के बजाए राज्य सचिव के सुझाव को मानने को राजी हो

1. देखिए– माननीय क्राउड ब्राउन से माननीय सर सी.ई. ट्रेबेलियन को पत्र कलकत्ता दिनांक 28 मई, 1864 देखिए सोने के संबध में लेख आदि, पृष्ठ 265

2. उन्होंने 10:1 के अनुपात को क्यों स्वीकार किया दूसरा कारण था कि भारत में उस समय परिचालित बाजार भाव का अनुपात था। उनका तर्क यह था कि "सोवरिन को भारत में परिचालन के लिए दरबद्ध किया जाना चाहिए परन्तु इसका संदर्भ इंग्लिश–सोवरिन से न दिया जाए और उसका संदर्भ चांदी की अनुमानित भारत के मूल्य पर किया जाए।" शायद वे सोवरिन की अधिक दर बनाने के इच्छुक नहीं थे क्योंकि उनको डर यह था कि "वर्तमान भारतीय मुद्रा में शीघ्र ही आमूल परिवर्तन हो जाएगा और ऋणदाताओं को अपने देय की तुलना में बहुत कम प्राप्त होगा।" देखिए– भारत में स्वर्ण पर आलेख आदि। 23 नवम्बर, 1864 का उनका कार्यवृत।

गई और नवंबर 1864 में सरकारी अधिसूचना जारी की जिसमें यह घोषणा की कि "इंग्लैंड अथवा आस्ट्रेलिया की अभिकृत शाही टकसाल में ढाले गए वर्तमान भार के सोवरन और आधे सोवरन को जब तक कि अन्य सूचना न हो माना जायेगा सभी भारत स्थित अंग्रेजी खजाने तथा इसके अधीनस्थ खजानों में सरकार को देय राशि के भुगतान में 10 व 5 के क्रमशः बराबरी पर दिया जाएगा। और यह कि सोवरन और आधा सोवरन जब कभी सरकारी खजाने में उपलब्ध होंगे तो सरकार के दावों के भुगतान के लिए समान दरों पर उन्हें किसी भी इच्छुक व्यक्ति को दिया जाएगा।" सोवरन की वास्तविक समानता 10 रुपये से कुछ अधिक मूल्य की थी। इसलिए अधिसूचना पर कोई कार्यवाही न हो सकी। दूसरी ओर मुद्रा की स्थिति पूर्ववत अधिक विकट रही और भारत सरकार ने 1866 में बंगाल चैम्बर ऑफ कामर्स के कहने पर सोने के परिचालन को प्रभावकारी बनाने के लिए कदम उठाए। इस बार चैम्बर ने जांच आयोग के गठन पर जोर दिंया जिसका विषय था "भारत की मुद्रा पद्धति में सोने के सिक्के जारी करने की उपयुक्तता" परन्तु भारत सरकार ने यह कहा[2] कि सोने की अपेक्षा कागजी–मुद्रा जारी की गई है जिससे यह आशा है कि बहुमूल्य धातुओं में से किसी भी धातु की अपेक्षा यह अधिक सुविधाजनक और मान्य परिचालित माध्यम सिद्ध होगी।" और इसके फलस्वरूप "यह देखा जाना चाहिए कि कागजी–मुद्रा देश के लोगों की आदतों के अनुसार मांग और उपयुक्तता की दृष्टि से परिचालित माध्यम सिद्ध नहीं हुई है और सिद्ध नहीं होने की संभावना भी है जब तक कि कागजी मुद्रा के निरस्त करने अथवा इसके अलावा स्वर्ण मुद्रा के चलन का प्रयास किया जाए।" अतः एक आयोग का गठन किया गया ताकि 1861 के एक्ट 19, के अंतर्गत स्थापित वर्तमान मुद्रा प्रबंधों के कार्य–व्यापार" की जांच की जा सके और यह रिपोर्ट दी जाए कि "उपयुक्ता पर आधारित भारत में सोने की विधिमान चलार्थ के जारी किए जाने के क्या लाभ हैं। और इसके साथ ही साथ चांदी की मुद्रा का भी आंकलन किया जाए।" आयोग ने विस्तृत जांच करने के बाद यह निष्कर्ष[3] निकाला कि कई कारणों के फलस्वरूप कागजी मुद्रा देश में परिचालित माध्यम के रूप में स्थापित होने से असफल हो गई परन्तु लोगों के लेन–देन के लिए सोने की मुद्रा का अधिक अच्छा स्थान बन गया। अन्त में आयोग ने सरकार से अनुरोध किया कि भारत में मुद्रा संबंधी प्रबंधों के लिए सोने को विधिमान्य चलार्थ माना जाए।" अब सरकार की बारी थी कि वह इस सिफारिश को कार्यान्वित करे। परन्तु यह अजीब सी बात है कि

1. देखिए भारत में स्वर्ण–मुद्रा के सबंध में सर मैन्स फील्ड द्वारा कार्यवृन्त के साथ अनुलग्नक 'क', सी रिर्टन 79 का एच, 1865.
2. 3 फरवरी, 1866 के वित्तीय विभाग का प्रस्ताव जिसे उसी तारीख को विज्ञप्ति संख्या 592 के अंतर्गत फोर्ट विलियम गजट में प्रकाशित कराया गया।
3. कमीशन की रिपोर्ट के लिए देखिए सी रिर्टन 148, 1868 का एच

सरकार आयोग की सिफारिशों को अपनाने की ओर नहीं बढ़ी जबकि यह आयोग स्वयं सरकार द्वारा गठित किया गया था। सोने को विधिमान्य चलार्थ बनाने की बजाए जैसा कि आयोग ने सलाह दी थी, सरकार ने केवल एक ही कार्य किया वह यह कि 28 अक्तूबर 1868 को एक अन्य अधिसूचना जारी की जिसमें केवल सोवरन की दर को 10–8 रुपए में परिवर्तित कर दिया गया और इस एक तरफा कानून के दुष्परिणाम को बचाने के लिए अन्य कुछ भी नहीं किया गया। सौभाग्यवश सरकार के लिए सौभाग्यशाली रहा इस दर को ठीक करने पर भी यह देश में सोने का परिचालन बढ़ाने में असमर्थ रहा। उस समय तक मुद्रा संबंधी कठिनाईयां कम हो गई थी और चूंकि सरकार पर कोई नया दबाव नहीं डाला गया अतः इससे अंत में यह भारत में स्वर्ण मुद्रा जारी करने के लिए सरकार के दो असफल प्रयास सिद्ध हुए।

कुछ समय के लिए इस समस्या का निराकरण घटनाओं के स्वाभाविक क्रम से हुआ परन्तु बाद की घटनाओं जैसा दिखाया कि स्वर्ण मानक में परिवर्तन भारत के लिए अधिक श्रेयस्कर होता है[1] और यूरोप के हितों के लिए इसका स्वागत किया जाता[2] जो उस समय सोने की अधिकता के कारण ऊंचे मूल्यों से संकट ग्रस्त था। इस खास मौके पर भारत सरकार सचमुच में एक चौराहे पर खड़ी थी और उस विपत्ति को दूर कर सकती थी जो भारत और उसके लोगों पर आई यदि सरकार ने परिवर्तन की हवा का साथ दिया होता और चांदी के मानक बदले में स्वर्ण मानक कर दिया होता जैसा कि वह आसानी से कर सकती थी यह कुछ वे जो कि भारतीय मामलों में अधिकार समर्थ और उन्होंने अपना पूरा अधिकार परिवर्तन के विरुद्ध लगाया यह कोई बेईमानी की बात नहीं थी जिसके लिए उनकी भर्त्सना की जाय।[3] परन्तु इससे मनुष्य के अनर्थकारी कारनामों का एक और उदाहरण मिलता है जिसमें अक्सर आदमी सोचने लगता है कि उसकी स्थिति बहुत अधिक सुरक्षित है जबकि वह अत्यन्त खतरनाक होती है। वे मुद्रा संबंधी स्थिति के बारे में इतना अधिक आरक्षित महसूस करते थे कि 1870 में जब टकसाल के कानून में संशोधन किया गया और उसे समेकित किया गया, वे इस बात से संतुष्ट थे जैसे कि कुछ भी नहीं हुआ या न कुछ होने वाला है कि 1835

1. यह कहना सही है कि प्रोफेसर जे. ई. केयरनीज भारत में स्वर्ण मानक के जारी करने के विरुद्ध थे परन्तु बाद में उन्होने अपनी आपत्तियों को हटा लिया। देखिए *पॉलीटिकल इकोनामी* (लंदन, 1873, पृ. 88-90) में उनके निबंध।

2. देखिए जे. आर. मैक गुलॉक–*डिकशनरी ऑफ कॉमर्स*, संस्करण 1869, पृ० 1131

3. श्री एच. बी. रसल का कहना है कि उन्होंने चांदी के मानक को इसलिए रखा कि वे अपने भेजी गई रकम पर इसके द्वारा लाभ उठाते रहे। देखिए उनके इन्टरनेशलन मॉनेटरी कार्फ्रेंसिस, 1898, पृ० 32

के चांदी के मानक को शुद्ध तथा निष्कलंक रहने दिया जाए और सोने के मिश्रण से उसे दूषित नहीं होने दिया गया।[1]

खेद का विषय है कि जिन लोगों ने उस समय कहा था[2] कि उनसे भारतीय मुद्रा के प्रश्न को केवल "न्यायिक" दृष्टि से विचार के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा गया, उन्हें इस बारे में बहुत ही कम ज्ञान था।

---

1. मूल टकसाल और सिक्का ढालने के संबंध में विधेयक *(मिंट एंड क्वानेज बिल)* में ऐसे वाक्य खंड सम्मिलित किए गए हैं जिनमें 1868 की विज्ञप्ति निहित है और जिसमें इस बात पर बल दिया गया है कि सरकार को अपने लोक खजानों में सोवरन प्राप्त करना चाहिए। देखिए गजट ऑफ इंडिया, भाग V, दिनांक 23 जुलाई, 1870। परन्तु ये अंतर दिखाए गए थे कि वे बाद में चयन समिति द्वारा निकाल दिए गए। इसके कारण यह मामला कार्यकारी के विवेक पर छोड़ दिया गया।
2. देखिए 6 सितम्बर, 1870 को माननीय श्री स्टीफन का भाषण, जिसमें क्वानेज एंड मिंट बिल का परिचय दिया गया है, देखिए सुप्रीम लैजिसलेटिव काउंसिल प्रोसीडिंगस (सक्षेप में एस एल सी पी) खंड ए पृ० 398.

सही राष्ट्रवाद है, जाति-भावना का परित्याग, और जाति-भावना गहन सांप्रदायिकता का ही रूप है।

– भीमराव अम्बेडकर

अध्याय दो

रजत मानक और इसकी सममूल्यता का विस्थापन

यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार मुद्रा के क्रमिक विकास की प्रक्रिया रजत (चांदी) मानक की स्थापना की पराकाष्ठा पर पहुंची और जिस प्रकार स्वर्ण मुद्रा के लिए जो आंदोलन था उसका अंत कागजी मुद्रा के अनुपूरक के साथ रजत मानक में हुआ। इस प्रकार की मिश्रित व्यवस्था की कार्यशैली की जांच से पूर्व, यह उपयुक्त होगा कि संक्षिप्त में इसकी संरचना की प्रकृति का सर्वेक्षण कर लिया जाय।

इस मुद्रा के धातु संबंधी भाग का नियमन सन् 1870 को 23 वे अधिनियम के अंतर्गत किया गया था। इसके अंतर्गत प्राधिकृत और विधिसम्मत सिक्कों का विवरण आठवीं तालिका में दर्शाया गया है।

इस अधिनियम में टकसालों द्वारा जारी किए गए सिक्कों की संख्या अथवा उनकी विधिमान्य मुद्रा के अधिकारों (शक्तियों) के बारे में कोई भी नवीनता नहीं दिखाई गई है। सिक्कों के मामले में पूर्व अधिनियमों के बिलकुल ठीक वैसा ही यह अधिनियम रहा,[1] इसके बिधिक उपबंधों को इस प्रकार बनाया गया कि देश के मुद्रा कानून को वह एक आदर्श कानून बना दे। जैसा कि इससे पूर्व कभी नहीं किया गया था। इसने जिन पूर्व अधिनियमों को निरस्त कर दिया वे टकसाल

---

1. इसे आगे दिए गए विवरण से समझा जांए–

(क) सोने के सिक्के– (i), (ii), और (iii), एक्ट XVII, 1835 की धारा VII द्वारा प्रधिकृत किए गए थे। समेकित अधिनियम, 1870 द्वारा केवल (IV) को बढ़ाया गया।

(ख) चादी के सिक्के (i), (ii), और (iii), एक्ट XVII 1835 की धारा I द्वारा प्रधिकृत किए गए इस अधिनियम ने चांदी का सिक्का जारी करने के लिए प्रधिकृत किया और इस सिक्के को "दोहरा रुपया" कहा गया परन्तु इसे 1862 के अधिनियम (XIII) की धारा II द्वारा हटा दिया गया।

(ग) तांबे के सिक्के (i), (ii) और (iv), सर्वप्रथम 1835 के अधिनियम XXI की धारा 1 द्वारा प्रधिकृत किया गया और बाद में 1844 के अधिनियम XXII द्वारा समग्र भारत के लिए उसे व्यापक बनाया गया। सिक्का संख्या (iii) 1854 के अधिनियम XI की धारा II द्वारा परिचालित किया गया।

"उपचारात्मक" अथवा "सहनशीलता" के सिद्धांतों में बहुत मान्यता देते थे इसका विषय प्रमुख रूप से केवल टकसाल की तकनीकी का माना गया है। ऐसा ही है, परन्तु ऐसा नहीं कि इसमें मुद्रा संबंधी विशिष्टता निहित न हो जब बहुमूल्य पदार्थ भार द्वारा परिचालित थे तब टकसाल की सहनशीलता का प्रश्न संभवतः नहीं उठ सकता था क्योंकि यह प्रत्येक व्यक्ति यह तोलकर उसका तोल मालूम कर सकता था और उसकी कीमत भी आंक सकता था परन्तु सिक्कों के आविष्कार के बाद, जब मुद्रा एक किंवदती के रूप में आई प्रत्येक व्यक्ति ने यह विश्वास किया है कि सिक्कों का वास्तविक मूल्य वही था जो सिक्कों पर प्रमाणित किया गया था। फिर भी सिक्के का वास्तविक मूल्य सदैव प्रमाणित मूल्य से पूर्ण मेल नहीं खा सकता। इस प्रकार के अन्तर का होना अवश्यंभावी है और सिक्के ढालने की कला में निपुणता के होते हुए भी इस अन्तर को टालना कठिन है। यह महत्वपूर्ण बात है कि वास्तविक टकसाल के मानक से इसका कितना विचलन हुआ है। अतः सभी देशों के टकसाल संबंधी कानूनों में ऐसे उपबंध होते हैं जो यह घोषित करते हैं कि सिक्कों को उनके प्रमाणित मूल्य पर विधिमान चलार्थ नहीं माना जाएगा यदि उनमें निश्चित सीमा से परे उनके वैध मानक में कोई भूल हो जाती है। वास्तव में सिक्कों को उनकी सह्य सीमा को निर्धारित किए बिना विधिमान्यचलार्थ की मान्यता देना धोखा–धड़ी की खुली छूट देना है। जहां तक अधिनियम ने उन सिक्कों की सह्य सीमा निर्धारित की सिक्कों को टकसाल से जारी करने की उसने अनुमति दी और अपने में एक हितकारी कदम था। फिर भी यह खेद की बात है कि इस अधिनियम में ऐसी कोई प्रक्रिया का उल्लेख नहीं किया गया जिससे इस बात की पुष्टि की जाए कि सिक्का ढालने का कार्य विधि सम्मत था।[1] अधिनियम द्वारा दूसरा महत्वपूर्ण सुधार था, स्वतंत्र रूप से ढालने के सिद्धान्त को स्वीकार करना। इस सिद्धान्त को इतनी मान्यता नहीं दी गई जितनी कि वह इसका अधिकारी था। यह ठोस मुद्रा का आधार सिद्धान्त है। जिसमें समुदाय के लेन–देन के लिए आवश्यक मुद्रा की मात्रा की गणना के मुख्य प्रश्न का सीधा सम्बन्ध है। इस मात्रा को व्यवस्थापित करने के दो खुले रास्ते कहे जा सकते हैं। एक रास्ता तो यह है कि टकसाल को बन्द कर दिया जाए और सरकार को

---

1. यह प्रक्रिया इंग्लैंड में उपलब्ध कराई गई है और इसे *"ट्राइल ऑफ द पाइक्स"* के नाम से पुकारा जाता है। इसकी स्थापना तथा इसके कार्यों के लिए देखिए–1866 के सी रिटर्न 203 का एच. ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में भारतीय सिक्कों की शुद्धता का मानक सदैव ही *कोर्ट ऑफ डायरेक्टर* का सबसे गहन चिन्ता का विषय रहा। भारतीय टकसाल के सिक्के नियमित रूप से इंग्लैंड भेजे गए जहां उनकी जाच विशेष रूप से *"ट्रायल ऑफ दि पाइक्स"* से की गई और उसकी रिपोर्ट भारत की टकसाल के मालिकों को मार्गदर्शन के लिए भेजी जाती रही। देखिए 1849 की सी. रिपोर्ट का एच. 1 कम्पनी के समापन के समय से ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है कि टकसाल के मालिकों को दोषी करार दिया जाए।

तालिका VIII

टकसाल द्वारा जारी किए गए सिक्कों के मूल्य वर्ग	कुल भार ट्राय ग्रेन	भार में प्रति विधान	शुद्धता ट्राय ग्रेन	शुद्धता में प्रति विधान	वैध सिक्के की शक्ति
I सोने के सिक्के (क)					
(i) मोहर	180	2/1000	165	2/1000	
(ii) मोहर का तिहाई भाग	60	"	65	"	बिल्कुल भी वैध सिक्का नहीं
(iii) मोहर का दो तिहाई भाग	120	"	110	"	
(iv) दोहरी मोहर	360	"	330	"	
II चांदी के सिक्के (ख)					
(i) रुपया	180	5/1000	165	2/1000	असीमित वैध सिक्का
(ii) आधा रुपया (अठन्नी)	90	"	82.5	"	
(iii) चौथाई रुपया (चवन्नी)	45	7/1000	41.25	3/1000	केवल रुपये के अंशों के लिए
(iv) दो आने (रुपये का आठवा भाग)	22.5	10/1000	20.625	"	वैध सिक्का
III तांबे के सिक्के (ग)					
(i) पैसा	100	1/40	—	—	रुपये के 1/64 वें भाग के लिए वैध सिक्का
(ii) अधन्ना	200	"	—	—	रुपये के 1/32 वें भाग के लिए वैध सिक्का
(iii) धेला	50	"	—	—	रुपये के 1/128 वें भाग के लिए वैध सिक्का
(iv) पाई	33.3	"	—	—	रुपये के 1/192 वें भाग के लिए वैध सिक्का

अपने विवेक पर छोड़ दिया जाए ताकि वह आवश्यकता के अनुसार मुद्रा का परिचालन कर सके। दूसरा रास्ता है कि टकसाल को खुला रहने दिया जाए और लोगों की स्वेच्छा पर छोड़ दिया जाए कि अपनी आवश्यकतानुसार मुद्रा की राशि निर्धारित कर सकें। बन्द टकसालों के बारे में आवश्यक विवेक के कार्यान्वयन के लिए मार्गदर्शन के असफल न होने वाले परीक्षणों के अभाव में खुली टकसाल का सिद्धान्त में दोनों योजनाओं से श्रेष्ट माना गया है। जब प्रत्येक व्यक्ति सर्राफे के लिए सिक्का प्राप्त कर सकता है और सिक्के को सर्राफे के लिए ढाल सकता है जैसा कि खुली टकसालों के अंतर्गत होगा तो मात्रा स्वतः व्यवस्थित हो जाएगी। यदि वाणिज्य की बढ़ती हुई मांगों के लिए परिचालित माध्यम की अधिक आवयकता होती है तो समुदाय के हित में होगा कि इस प्रयोजन के लिए अपनी पूंजी की अधिक मात्रा परिवर्तित रहे। दूसरी ओर यदि व्यापार की स्थिति ऐसी हो कि इसके लिए कम मुद्रा की आवश्यकता हो तो सिक्के का एक भाग वापस ले लिया जाए और मुद्रा के प्रयोजनों के अलावा अन्य प्रयोजनों के लिए वस्तु के रूप में लागू किया जाए। चूंकि 1870 के अधिनियम में स्पष्ट रूप से खुली टकसाल के सिद्धांत को स्वीकार किया, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है कि टकसालें उस तारीख से पूर्व बंद कर दी गई थी। सच बात तो यह है कि उन्हें सोने और चांदी दोनों के स्वतंत्र रूप से सिक्के ढालने के लिए खुली छूट थी। यद्यपि चांदी के सिक्के का ही विधिमान्य चलार्थ माना गया था परन्तु भले ही यह आश्चर्यजनक बात लगे पूर्व अधिनियमों में से किसी भी अधिनियम में कोई भी ऐसा शब्द नहीं था जो टकसाल मालिक को यह दायित्व दे कि उसे जो भी धातु दी जाए वह उन सभी के सिक्के तैयार करे। यह एक ऐसी शर्त है जो खुली टकसाल पद्धति का सार है। इस सम्बन्ध मे अधिनियम के उपबन्ध सुस्पष्ट हैं। इसके लिए आवश्यकता थीः–

"धारा 19: उस समय लागू किए गए टकसाल नियमों के अधीन टकसाल का मालिक टकसाल में लाए गए सभी सोने और चांदी, सर्राफा तथा सिक्के लेगा।"

"किन्तु शर्त यह है कि इस प्रकार का सर्राफा और सिक्का ढालने के लिए उपयुक्त हो"

शर्त यह भी है कि किसी व्यक्ति द्वारा एक ही समय में लाई गई मात्रा सोने के मामले में भी 50 तोले से कम नहीं होनी चाहिए और चांदी के मामले में एक हजार तोले से कम नहीं होनी चाहिए।

"धारा 20: टकसाल के नियमों के अनुसार एक रुपया प्रतिशत की दर से सभी स्वर्ण सर्राफा के उत्पाद तथा उन सभी सोने के सिक्कों पर जो सिक्के ढालने के लिए लाए जाएंगे सिक्का कर के रूप लगाया जाएगा।"

"धारा 21: टकसाल में लाई सभी चांदी सर्राफा अथवा सिक्का ऊपर बताए गए टकसाल नियमों के अनुसार सिक्का बनाने के लिए मालिक को किए गए वापसी से ऐसे उत्पाद पर 2 प्रतिशत की दर से शुल्क लिया जाएगा।"

"धारा 22: सोने के सर्राफा और सिक्के पर ¼ पति हजार और चांदी के सर्राफा तथा सिक्के पर 1 प्रति हजार का प्रभार सर्राफा या सिक्के की ढलाई अथवा कटाई पर लगाया जाएगा ताकि वे टकसाल में उपयुक्त रूप से लिए जा सकें।"

"धारा 23: टकसाल में सिक्का ढालने के लिए लाया गया सभी सोना और चांदी सर्राफा तथा सिक्का और जो इस अधिनियम द्वारा निर्धारित मानक–शुद्धता की दृष्टि से कम हो अथवा जो भुरभुरेपन या अन्य किसी कारणवश सिक्का बनाने के लिए अनुपयुक्त हो और यदि इसे शुद्ध कर लिया जाता है तो इसे ऐसी दशा में इस पर ऊपर बताए गए शुल्क और प्रभार के अतिरिक्त, गवर्नर जनरल इन कांसिल द्वारा शुद्ध करने के लिए हानि और व्यय की निर्धारित राशि भी देनी होगी।"

"धारा 24 टकसाल का मास्टर सिक्के ढालने हेतु सोना या चांदी का बुलियन या सिक्के टकसाल में प्राप्त करने पर उसके स्वामी को एक रसीद देगा जिसके अनुसार सिक्के का निबल वह कसौटी मास्टर से इस आशय का प्रमाण पत्र पाने का अधिकारी होगा जिससे वह सामान्य खजाने में देय निवल उत्पादन कर सकेगा।"

"धारा 25 सभी सोना वुलियन और सिक्के के जिसके संबंध में कसौटी मास्टर ने प्रमाण पत्र दे दिया हो उसका भुगतान यथासंभव सोने के सिक्कों में किया जाएगा जिन्हें इस अधिनियम अथवा 1835 के अधिनियम संख्या XVII के अधीन ढाला गया हो और स्वामी को देय कोई भी शेष (यदि कोई हो) चांदी या चांदी और तांबे के सिक्कों में ब्रिटिश भारत में किया जाएगा।"

यह ध्यान देने योग्य बात है कि कागजी मुद्रा के प्रचलन के मामले में सरकार स्वतंत्रता के सिद्धांत पर आगे नहीं बढ़ी जो उस समय में देश प्रचलित थी। लोगों में आमतौर पर इस बात की गलतफहमी है कि सरकारी कागजी मुद्रा के प्रचलन के पूर्व नोटों को निकालने का अधिकार तीनों महाप्रान्तों के बैंकों तक ही सीमित था। सच बात तो यह है कि उस समय भारत में एक प्रथा मौजूद थी जिसे मुक्त बैंकिग पद्धति कहा जाता है जिसके अनुसार प्रत्येक बैंक को यह स्वतंत्रता थी कि वह अपने नोट जारी करे। यह सत्य है कि महाप्रान्तों के बैंकों के नोटों को अन्य बैंकों के नोटों की तुलना में थोड़ी अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी जैसे वे सरकार द्वारा राजस्व के भुगतान में भी कुछ सीमा तक स्वीकार किया जा सकता था।[1] इस

1. देखिए एफ.सी. हेरीसन, इकनामिक जर्नल, 1891, खंड ए पृष्ठ 726

विशेष सुविधा के महाप्रान्तो के बैंकों को अपने वाणिज्य संबंधी कारोबार में विधायकी नियंत्रण की सख्त देख–रेख के आगे झुकना पड़ता था[1] इससे उन बैंकों को छूट दे दी गयी थी जिनके मामलों को यह विशेष सुविधा प्राप्त नहीं थी परन्तु यह सुविधा इतनी पर्याप्त नहीं थी कि अन्य बैंक नोट निकालने के मामले में जिसके लिए कानून ने उन्हें छूट दी थी। फिर भी इस मामले की स्वतंत्रता किसी बैंक ने बहुत बड़े पैमाने पर उपयोग नहीं की। यहां तक कि महाप्रान्तों के बैंकों ने भी ऐसा नहीं किया[2] और 1861 में[3] सभी से यह अधिकार ले लिया गया। जब समस्त

1. इस प्रकार के नियंत्रण का कारण था तत्कालीन सरकार व महाप्रान्तों के बैंकों के बीच विचित्र संबंधों का लगातार बना रहना थे। 1862 से पूर्व इनके दिवालियापन की सुरक्षा के लिए "महाप्रान्तों के बैंक शासन पत्र में ऐसे व्यापार को सीमित रखने के लिए कहा जिनमें वे अभी तक लगे हुए थे। संक्षेप में मुख्य अवरोध द्वारा बैंकों को इस बात के लिए मना कर दिया गया कि वे विदेशी विनिमय व्यापार के लिए बैंकों का संचालन करें और इसमें उन्हें उधार लेने अथवा भारत से बाहर देय जमा राशियों को प्राप्त करें तथा छह महीने से अधिक अवधि के लिए उधार दे देने अथवा गिरवी रखें अथवा अचल सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए अथवा दो स्वतंत्र नामों से कम नाम के वचन पत्र हों अथवा भाव हों जब तक कि माल अथवा उस माल पर अधिकार पत्र बैंक में जमानत के तौर पर जमा न हों। सरकार के बैंकों में शेयर रखें और सरकार के निदेशालय का कुछ हिस्सा भी बनाया। 1862 में जब नोट जारी करने का अधिकार वापस ले लिया गया तो बैंकों के व्यवसाय पर कानूनी अवरोधों में अधिक शिथिलता लाई गई यद्यपि नियंत्रण का सरकारी अधिकार अपरिवर्तित बना रहा। परन्तु कुछ मामलों में बैंकों में अपनी स्वतंत्रता का दुरूपयोग किया अतः 1876 में प्रैसीडैंसी बैंक अधिनियम द्वारा प्रारंभिक अवधि के पुराने अवरोधों को फिर से लागू कर दिया गया। फिर भी सरकार ने प्रबंध में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करना छोड़ दिया, सरकारी निदेशकों की नियुक्ति बंद कर दी गई और बैंकों में अपने शेयर निपटा दिए। इन प्रतिबंधों में से कुछ प्रतिबंध 1920 के एक्ट XLVII में सम्मिलित किए गए जिसके फलस्वरूप महाप्रान्तों के 3 बैंकों को समेकित करके इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया बना दिया गया। महाप्रान्तों के बैंकों के अलावा अन्य बैंक विधायी नियंत्रण से नितांत मुक्त किए गए। स्थिति चाहे कुछ भी क्यों न हो प्रतिबध यह रहा कि इंडियन कम्पनी एक्ट के उपबंधों के अनुगामी बनाए गए। देखिए इस संबंध में सर हैनरी मेन द्वारा कार्यवृत्त संख्या 47 और उसके साथ संलग्न डब्लू स्टोक द्वारा दी गई टिप्पणी। इन बैंकों की नियंत्रण भारत में बैंक संबंधी विधायकी की महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक समस्या है।

2. फिर भी इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि 1860 में तीन महाप्रान्तों बैंकों के नोटों का परिचालन उनके चालू लेखों की तुलना में अधिक था जैसा कि आगे दिया है:

बैंक का नाम	चालु लेखे	परिचालन में नोट
बैंक ऑफ बंगाल	पौंड 1,2,54,875	पौंड 1,2,83,946
बैंक ऑफ बाम्बे	4,38,459	765234
बैंक ऑफ मद्रास	1,61,959	1,92,791

(बैंकर्स, मेगजीन, अप्रैल, 1893 पृष्ठ 547)

3. बैंक इशू बनाम सरकारी इशू के संबंध में विवाद का सारांश, देखिए 1859-60 के लिए रिपोर्ट ऑफ द बाम्बे चैम्बर ऑफ कामर्स की रिपोर्ट, अनुलग्नक L, पृष्ठ 284-318

भारत के लिए राष्ट्रीय प्रचलन स्थापित किया गया और जिसका प्रबंध कागजी मुद्रा विभाग नामक सरकारी विभाग को दिया गया। परन्तु यदि निजी हित में कागजी मुद्रा के निर्धारण में वही भूमिका अदा करने के लिए अनुमति नहीं दी गई थी जैसी कि धातु मुद्रा के संबंध में अनुमति दी गई थी और कागजी मुद्रा के नियमन के संबंध में सरकारी विभाग के लिए कोई भी विवेकाधिकार नहीं छोड़ा गया। कागजी मुद्रा विभाग को कागजी मुद्रा के संबंध में कोई विवेकाधिकार नहीं था जैसा कि टकसाल मास्टर को धातु मुद्रा के मामले में अधिकार था।

विभाग का कर्तव्य कानून[1] द्वारा नोटों की राशि के लिए विनिमय तक ही सीमित था: (1) भारत सरकार का चालू चांदी–सिक्का, (2) सिक्का ढालने के लिए उपयुक्त मानक चांदी के प्रति एक हजार तोले से 979 की दर पर मानक के अनुसार संगठित विदेशी चांदी–सिक्का अथवा मानक चांदी–वुलियन में, (3) भारत सरकार के अन्य नोटों में जो उसी सर्किल में जारी की गई अन्य राशियों को मांग पर धारक को देय है, और (4) भारत सरकार का सोने का सिक्का अथवा विदेशी सोना सिक्का अथवा बुलियन के लिए ऐसे ही अनुपात पर संगठित और गवर्नर जनरल द्वारा निर्धारित नियमों और प्रतिबंधों के अनुसार देय होगा किंतु शर्त यह है कि सोने के नाम पर जारी किए गए नोट सिक्का और सर्राफा द्वारा प्रतिनिधित्व करने वाले इशू की कुल राशि के ¼ भाग से अधिक न होगा। इस समस्त राशि की आवश्यकता कानून द्वारा निर्धारित राशि के सिवाए जारी किए गए नोटों के भुगतान के लिए रिजर्व रखी जानी थी। यह राशि सरकारी प्रतिभुतियों में निवेश की जानी थी और इस पर अर्जित ब्याज की राशि ही सरकार के लिए लाभ थी। इस प्रकार निवेश की गई राशि की सीमा का प्रबंध "उस सबसे कम राशि से किया जाना था जिसका अनुमान सभी संगत अनुभव के अनुसार किया गया था जिसके फलस्वरूप कागजी मुद्रा के गिर जाने की आशा थी।[2] इस आधार पर अनुमान लगाते हुए निवेश के भाग की सीमा 1861[3] में 4 करोड़ ! और 1871[4] में 6 करोड[5] तथा 1890

1. सैक्शन–IV एक्ट XIX, 1861

2. देखिए कागजी मुद्रा विधेयक (पेपर करेंसी बिल) 25 मार्च 1970 के संबंध में सर रिचार्ड टैम्पल का प्रारम्भिक भाषण, सुप्रीम लैडिस्लेटिव कांऊसिल प्रोसिडिंग्स, खण्ड IX पृ. 151-52

3. एक्ट XIX, सेक्शन X

4. एक्ट III, सेक्शन 16

5. एक्ट XV, सेक्शन 1

में 8 करोड़[1] निर्धारित की गई परन्तु निवेश के भाग में बढ़ती हुई वृद्धि कुछ भी क्यों न हो, फिर भी इस पर आधारित न्यासी इशू इतना अधिक नहीं था ताकि भारतीय कागजी मुद्रा कानून (इंडियन पेपर करेंसी ला) के आवश्यक नियम को रद्द किया जाए। इसका उद्देश्य यह था कि कागजी मुद्रा की मात्रा को इतना नियमित किया जाए कि वह सदैव एक ही तरीके में संकुचन और प्रवर्धन द्वारा अपने मूल्य को सुरक्षित रखे जैसा कि धातु के सिक्के को इसी सीमा तक सुरक्षित रखा जाता है।

इस प्रकार का मिश्रित मुद्रा का संगठन था जो उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों के महान परिवर्तन के पूर्व भारत में विद्यमान था। यद्यपि यह मिश्रित प्रकार का था, कागजी हिस्सा कुल मुद्रा का तुलनात्मक दृष्टि से एक लघु अंश था। कागजी मुद्रा अधिक अनुपात में क्यों नहीं फैली इसका मुख्य कारण कागजी मुद्रा के संगठन में ही खोजे जा सकते हैं।[2] एक कारण यह था कि नोटों का सबसे कम मूल्य का नोंट भी इतने बड़े मूल्य का था कि वह धातु की मुद्रा का स्थान नहीं पा सकता था। 1861 के कानून के अनुसार 10 रुपये के 10 छोटे नोट के अंश से लेकर ऊपर के 20, 50, 100, 500, और 1000 रुपए के नोट तक परिचालित थे। ऐसे देश में जहां पर औसत लेन-देन एक रुपये से अधिक मूल्य का नहीं हो पाता है और न्यूनतम एक आना या इससे भी कम मूल्य का होता है। इस बात की आशा करना असंभव है कि कागजी मुद्रा लोगों के लेन-देन के रूप में कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता। यहां तक कि प्रथम बार वर्ष 1871[3] में स्वीकृत 5 रुपये के नोट भी लोगों के आर्थिक जीवन में प्रवेश नहीं कर सका। कागजी मुद्रा की वृद्धि में अन्य बाधा नोटों को नकदी में बदलने की थी। भारत में कागजी मुद्रा की अनुपयुक्तता की घटनाओं में से एक घटना इस तथ्य में निहित थी कि

1. आगे दी गई तालिका में तीन अलग-अलग अवधियों में कागजी मुद्रा रिजर्व (पेपर करैंसी रिजर्व) के वितरण को दिखाया गया है: कुल परिचालन की तुलना में

अवधि	नोट परिचालन	रिजर्व का संयोजन			रिजर्व के प्रत्येक भाग का प्रतिशत			
		चांदी	सोना	प्रति-भूतियां	योग	चांदी	सोना	प्रति-भूतियां
1862-1871	7.63	4.80	0.03	2.80	7.63	63		37
1872-1881	11.82	5.98	-	5.84	11.82	51	-	49
1882-1891	15.74	9.64	-	6.10	15.74	61	-	39

2. भारत में कागजी मुद्रा के संगठन का स्पष्ट और सारांश में स्केच, देखिए – यू0एस0 डायरेक्टर ऑफ मिंट, वाशिंगटन, 1894, पृष्ठ 231-33 की रिपोर्ट में भारत सरकार की टिप्पणी

3. एक्ट III की धारा 3

उन्हें एक वृत्र में सर्वत्र विधिमान्य चलार्थ बनाया गया था परन्तु उन्हें केवल निर्गम कार्यालय में ही नकदी में बदला जा सकता था। भारत में कागजी मुद्रा के इस प्रकार के विचित्र संगठन के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी बात यह थी कि देश में आंतरिक विनिमय[1] का परिचालन था। इसने एक गंभीर समस्या उत्पन्न की जिसका सरकार को समाधान करना था। यदि नोटों को इस प्रकार बनाया जाता कि व्यापक रूप से भुनाया जा सके तो यह आशंका थी कि सौदागर नोटों को मुद्रा के रूप में प्रयोग न करके विभिन्न केंद्रों में प्रेषण के रूप में उनका उपयोग करेंगे ताकि आंतरिक विनिमय को बचाया जा सके और सरकार इस बात के लिए बाध्य होती कि निधियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजे चाहे नकदी भुगतान को रोकना पड़ जाए। इतने सुदूर केंद्रों के बीच में ऐसे बड़े पैमाने पर संसाधन क्रियाओं को हाथ में लेने के लिए अधिक तीव्र परिवहन की सुविधाएं नहीं थी और स्पष्टतया यह कार्य संभव[2] नहीं था और इसलिए सरकार ने यह निर्णय लिया जिन नोटों को जारी किया है उनके भुनाने की सुविधाए कम कर दी जायं। कागजी मुद्रा के प्रयोजनों के लिए सरकार ने देश को निर्गम के लिए कई वृत्तों में विभाजित कर दिया और प्रत्येक मुद्रा वृत्त को आगे उप वृत्त में विभाजित किया गया[3] और जारी किए गए नोटों पर उस सर्किल अथवा उपसर्किल का नाम अंकित किया गया जहां से वे नोट जारी किए गए थे।

---

1. यह बताया जा सकता है कि यद्यपि महाप्रान्तों के बैंकों ने नोटों के जारी करने का काम बंद कर दिया था फिर भी 1861 के एक्ट XXIV के अंतर्गत सरकार के साथ किए गए समझौते के अधीन सरकार द्वारा बैंक नियुक्त किए गए थे" ताकि वे भारत सरकार के प्रौमीसरी नोटों के भुगतान और विनिमय, प्रचालन के एजेंटो के बनाने, उनका परिवेक्षण और प्रबंध तथा प्रचालन की एजेंसी के व्यापार को चलाने के लिए बैंक की एजेंसी के द्वारा बकाया और परिचालन के सरकारी मुद्रा के नोटों के दैनिक औसत धन पर 3/4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की पारिश्रमिक दिया जाए।" यह संघर्ष जो भारत सरकार और सेक्रेटरी आफ स्टेट के बीच उठा क्योंकि यह विश्वास किया गया था कि बैंकों के इस प्रकार के काम में लाने के औचित्य के संबंध में नोटों के प्रसार और इसे लोकप्रिय बनाने में सहायता मिलेगी। इस कार्य के लिए भारत सरकार समर्थक रही जबकि सैक्रेट्री आफ स्टेट ने इस समझौते को पसंद नहीं किया क्योंकि उन्हें ऐसा लगा कि प्रचालन व्यापार और बैंकिग के व्यापार के बीच पूर्ण अलगाव के सिद्धांत के साथ समझौता किया गया है फिर भी इन दोनों मे से किसी ने भी इस तथ्य को आत्मसात नहीं किया कि आतरिक विनिमय के परिचालन के कारण अलग–अलग केंद्रों में प्रेषण पर लाभ इतना अधिक था कि बैंकों को स्वीकृत कमीशन उनके स्वतंत्र रूप से भुनाने के लिए अपर्याप्त प्रोत्साहन था। आतरिक विनिमय इतना अधिक था और बैंक नोटों को लोकप्रिय बनाने के लिए अनिच्छुक थे कि अन्ततोगत्वा सरकार ने उन्हें 2 जनवरी, 1866 से कागजी मुद्रा के लिए अपना एजेण्ट रखने से उन्हें भार मुक्त कर दिया। देखिए– हाउस ऑफ कामन्स रिटर्न, 1862 की ईस्ट इंडियन (पेपर मनी) 215
2. देखिए पेपर करैंसी बिल तारीख 16, फरवरी, 1861 के बारे में माननीय श्री लैंग का भाषण, एस.एल.सी.पी., खंड VII, पृष्ठ 73-74
3. प्रत्येक सब सर्किल में इशू की अनेक एजेन्सियां थी, परन्तु ये एजेन्सियां नकदी में बदलने वाले केन्द्र नहीं थे परन्तु जारी करने वाले केन्द्र ही थे।

निर्गम के वृत्त के भीतर समाविष्ट राज्य क्षेत्र में स्थित निर्गम की एजेन्सी से जारी किए गए नोट किसी अन्य मुद्रा वृत्त के राज्य क्षेत्र में विधिमान्य चलार्थ नहीं थे और उन्हें अपने वृत्त से बाहर भुनाया नहीं जा सकता था। इतना ही नहीं मुख्य वृत्त के अधीन उपवृत्तों से जारी किए गए नोट किसी अन्य राज्य क्षेत्र में विधिमान्य चलार्थ नहीं थे। परन्तु वे अपने निर्गम कार्यालय में ही भुनाने योग्य थे अथवा अपने मुख्य वृत्त के निर्गम कार्यालय में भुनाने योग्य थे। इस प्रकार के उपवृत्त के नोट दो स्थानों पर ही भुनाये जा सकते थे[1] परन्तु मुख्य सर्किल के निर्गम कार्यालय के नोट उसके अधीन समग्र राज्य क्षेत्र में विधिमान्य चलार्थ माने गए थे, वे किसी अन्य स्थान के अलावा अपने ही काउन्टर पर भुनाये जा सकते थे और अपने वृत्तों में से किसी पर भी नहीं भुनाए जा सकते थे। इस प्रकार व्यापक रूप से भुनाने के अभाव ने लज्जाजनक संभावना से तो सरकार को बचाया परन्तु यह उन नोटों की लोकप्रियता में इतने भारी अवरोध सिद्ध हुए कि इसके बारे में संदेह किया जा सकता है कि क्या कागजी मुद्रा ने जितनी प्रगति की है उससे भी अधिक प्रगति की जा सकती थी चाहे नोटों के सबसे कम मूल्य वर्ग उसके वास्तविक मूल्य से अपेक्षाकृत कम मूल्य का होता।

फिर भी इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि भारतीय विधानमंडल का ऐसा कोई इरादा नहीं था कि भारतीय मुद्रा को इतना मितव्ययी[2] बनाया जाए जैसी कि कार्यकारी सरकार ने इच्छा व्यक्त की थी। कागजी मुद्रा के मूल रचयिता द्वारा विधानमंडल से निसंदेह यह अनुरोध किया गया था कि भारत को नवीन पीरू देश जैसा बना दिया जाए जहां बहुत कम लागत में अधिक से अधिक मुद्रा तैयार की जाती थी[3] परन्तु विधानमंडल में ऐसी नीति के अपनाने में सहायता करने के मामले पर बुद्धिमत्तापूर्व चुप्पी साधी चूंकि नोट भुनाने के केंद्र बहुत कम थे और प्रत्येक केंद्र में इतना विशाल क्षेत्र सम्मिलित किया गया था जो उस वृत्त में भुनाने के एक केंद्र से दूसरा केंद्र लगभग 700 मील दूर था इसलिए उसने इस प्रकार

1. वृत्त पद्धति की असुविधाओं और नोटों के भुनाने की सुविधा के लिए सरकार द्वारा सुविचारित अलग-अलग कानूनों के लिए देखिये 1868-69 के लिए *बम्बई चैम्बर ऑफ कामर्स* की रिपोर्ट, अनुलग्नक, पृ0 309-16

2. देखिए 22 सितम्बर, 1860 को माननीय श्री इरकानसे का पूरा भाषण, एस.एल.सी.पी.खंड, पृष्ठ 1143A, नीचे दिया हुआ

3. देखिए, भारत में कागजी मुद्रा (पेपर करेंसी) के जन्मदाता श्री विल्सन का भाषण, दिनांक 3 मार्च, 1860 जिसमें उन्होंने कहा है, "साराश मे परिचालन के प्रयोजन हेतु नितांत यांत्रिक ढंग से इतना सिक्का तैयार किया जाए कि उसके स्थान पर परिवर्तनीय कागजी मुद्रा की आपूर्ति की जा सके और यह वास्तव में समान ही होगी मानों एकाएक मैडन के केंद्र में एक समृद्ध चांदी की खान की खोज की गई हो जिससे बहुत कम या बिना लागत के चादी निकाली जाए। सुप्रीम लैजिसलेटिव कौंसिल प्रोसीडिंग्स खंड VI, पृ0 250

यह छोटे मूल्यों के नोटों का प्रचलन की आज्ञा देना भयानक आशँका की दृष्टि से देखा जिसे गरीब लोग न तो इनकार कर सकते थे और न ही उन्हें भुना सकते थे।[1] इसके अतिरिक्त नोटों के भुनाने के अभाव में इतनी अधिक कठिनाई थी। विधानमंडल को यह आशंका थी कि वे भारतीय किसानों के हाथों में भगोड़ा खजाने सिद्ध होंगे। उन्हें वर्षा और दीमकों से सुरक्षित रखने में असमर्थ होने के कारण उन्हें उन नोटों से छुटकारा पाने के लिए जिन्हें उसने मजबूरी में लिया था[2] भारी वृद्धि की राशि अदा करनी पड़ सकती थी। कागजी मुद्रा विधेयक पेपर करेंसी बिल के उन धाराओं के प्रति मितव्ययता के आधार पर इस प्रयोजन के लिए बनाए गए थे कि धातु मुद्रा को खदेड़ दिया गया जिससे सरकार के पास इस बात का विकल्प रहे कि विधिमान्य चलार्थ नोटों, किन्तु जो उच्च मूल्य के हों व कम मूल्य के नोट किन्तु विधिमान्य चलार्थ शक्ति न रखते हों इन दोनों में एक ही का चयन कर सकती थी। चूंकि सरकार ने नोटों की विधिमान्य चलार्थ का चयन किया अतः विधानमंडल ने अपनी ओर से यह जोर दिया कि उच्च मूल्य वर्ग के नोट होने चाहिए।[3] सर्वप्रथम विधानमंडल ने कम से कम मूल्य वर्ग के रूप में 20 रु. के नोटों को जारी करने पर बल दिया। परन्तु बाद में वह इस मूल्य वर्ग को घटाकर दस रुपए के नोटों पर सहमत हो गई और यह सबसे कम सीमा थी जिसे 1861 में सहन कर लिया गया था। इसके दस वर्ष बाद तक विधानमंडल ने 5 रुपए के नोटों के जारी किए जाने की अनुमति नहीं दी और यह अनुमति तभी दी गई जब सरकार ने उनके भुनाने के लिए अतिरिक्त वैध सुविधाएं देने का वचन दिया।[4] कुल मिलाकर भारतीय विधान मंडल की यह इच्छा रही कि भारतीय मुद्रा को अधिक मितव्ययी बनने के बजाय सुरक्षित बनाई जाए और निसंदेह यही स्थिति बनी रही।

इस प्रकार से निर्मित मुद्रा–पद्धति किस प्रकार कार्य करने लगी? श्रेष्ठ मुद्रा–पद्धति की मुख्य आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता उसके मूल्य का स्थायित्व है परन्तु यदि हम इस दृष्टिकोण से भारतीय मुद्रा की जांच करें तो हमें लगेगा कि इसके मूल्य में इतना उतार–चढ़ाव विद्यमान था कि इस निष्कर्ष से अलग हटना कठिन है कि यह पद्धति एक असफलता थी।

---

1. देखिए, माननीय श्री फोवर्स के भाषण, दिनाक 13 जुलाई, 1861, एस. एल. सी. पी. 1154
2. देखिए माननीय श्री फोखीज का भाषण दिनाक 13 जुलाई, 1861, सुप्रीम लैजिसलेटिव कांसिल प्रोसीडिंग्स, खंड VI पृ0 768
3. उन्हें कार्यान्वित करने के लिए अपनाई गई ऐसी अतिरिक्त सुविधाएं और कानून, देखिए कागजी मुद्रा विधेयक दिनांक 13 जनवरी, 1871 को माननीय, सर रिचर्ड टैम्पिल का रोचक भाषण, एस एल.सी.पी.खंड ए, पृ0 22-25
4. नारद, माननीय श्री इस्कोन का भाषण, दिनाक 22 सितम्बर 1880, एस. एल. सी. पी. खंड VI पृष्ठ 1151

आंतरिक वाणिज्य के लिए मुद्रा की पर्याप्तता के साक्ष्य के रूप में बट्टे की दर पर विचार किया जाए तो श्री वैन डैन बर्ग जैसे उच्च वित्तीय प्रधिकारी का मत था कि भारतीय मुद्रा बाजार में अप्रत्याशित विकृति और एकाएक संक्रमण विश्व के किसी भाग में किसी अन्य मुद्रा–बाजार के इतिहास में समता नहीं रखते थे।[1] भारत मुख्य रूप से ऐसा देश है जहां मौसम की तरह मुद्रा में उतार चढ़ाव आते रहते हैं[2]। ग्रीष्म ऋतु का मध्यकाल स्वाभाविक रूप से कम कार्यकलाप का समय होता है जबकि शरद ऋतु में सामाजिक और आर्थिक जीवन के सभी कार्यकलापों में शक्ति का पुनः संचार होता है। केवल उत्पाद ही मौसमों से प्रभावित नहीं होता। उपभोग की दृष्टि से जिसने बनाया, वह ऐसी परिस्थिति थी कि बटटे की दर

1. दि मनी मार्किट एंड पेपर करेंसी ऑफ ब्रिटिश इंडिया बटांविया, 1884 पृष्ठ 3
2. इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि निष्क्रिय और व्यस्त मौसम देश के समग्र धरातल पर एक समान रूप से विभाजित नहीं किए जाते। मोटे तौर पर यह विभाजित इस प्रकार है:

महीना	पूर्वी भारत		पश्चिमी भारत	उत्तरी भारत		दक्षिण भारत
	रंगून	कलकत्ता	बम्बई और कराची	कान्नपुर	लाहौर	मद्रास
व्यस्त	3 महीने	4 महीने	6 महीने	6 महीने	9 महीने	6 महीने
निष्क्रिय	9 महीने	8 महीने	6 महीने	6 महीने	3 महीने	3 महीने
जनवरी	व्यस्त	निष्क्रिय	व्यस्त	निष्क्रिय	व्यस्त	निष्क्रिय
फरवरी	—	—	—	व्यस्त	—	व्यस्त
मार्च	—	—	—	—	—	—
अप्रैल	—	—	—	—	—	—
मई	—	—	निष्क्रिय	निष्क्रिय	—	—
जून	—	—	—	—	निष्क्रिय	—
जुलाई	—	—	—	—	निष्क्रिय	—
अगस्त	—	व्यस्त	—	—	—	निष्क्रिय
सितम्बर	—	—	—	व्यंस्त	—	—
अक्तूबर	—	—	—	—	व्यस्त	—
नवम्बर	—	—	व्यस्त	—	—	—
दिसम्बर	—	निष्क्रिय	—	निष्क्रिय	—	—
व्यस्त	जनवरी से मार्च	अगस्त से नवम्बर	नवम्बर से अप्रैल	फरवरी से अप्रैल	अप्रैल से जून	फरवरी से जुलाई
निष्क्रिय	अप्रैल से दिसम्बर	दिसम्बर से जुलाई	मई से अक्तूबर	मई से अगस्त	जुलाई से सितम्बर	अप्रैल से दिसम्बर
व्यस्त	—	—	—	सितम्बर से नवम्बर	अक्तूबर से मार्च	—
निष्क्रिय	—	—	—	दिसम्बर से जनवरी	—	—

में मौसम गत उतार–चढ़ाव काफी असामान्य रहे।[1]

ऐसे चमत्कारिक मार्किट अर्थधारणा के लिए देश की मुद्रा आपूर्ति में अनियमितता उत्तरदायी बनाने का प्रयास किया जाता है। मुद्रा को समान मूल्य पर रखे जाने के लिए इसकी मांग में विभिन्नता के अनुसार इस की आपूर्ति को नियंत्रित किया जाना चाहिए। इस बात को महसूस करना अच्छा है कि मुद्रा की मांग कभी भी स्थिर नहीं होती। परन्तु इससे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा जब तक इस बात को महसूस न किया जाए कि मुद्रा की मांग में परिवर्तन प्रति वर्ष जनसंख्या व्यापार आदि की वृद्धि के कारण होती है मुख्यतया एक वर्ष की अवधि में मौसमी प्रभावों के कारण मुद्रा की मांग में जो उतार चढ़ाव आता है उससे वह भिन्न वर्ग की होती है किसी भी सुनियमित मुद्रा में यह आवश्यक है कि मुद्रा की मांग के परिवर्तनों में इन दो वर्गों अंतर को पहचाना जाय। एक वर्ग जिसकी आवश्यकता है स्थिरता और विस्तार दूसरा जिसकी आवश्यकता लचीलापन। तुलनात्मक दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि यह विश्वसनीयता से भी अधिक है कि धातु मुद्रा विशेष रूप से इसलिए अपनाई गई ताकि वह इसमें स्थिरता और स्थायीत्व का तत्व निहित कर सके जैसे कि कागजी मुद्रा लचीलापन प्रदान करती है। सचमुच में इन दोनों के अलग–अलग कार्य कलाप इतने सटीक लगते हैं कि इस बात पर जोर दिया गया है।[2] एक आदर्श पद्धति में मुद्रा के ये दोनों स्वरूप मुद्रा को बोझ स्वरूप अथवा खतरनाक बनाए बिना अपने कार्यों में परस्पर परिवर्तन नहीं कर सकते। इस दृष्टिकोण के परिपक्वता का सबूत. यह कहा जा सकता है कि अगर उन थोड़े से लेन–देन को जो वस्तुओं के आदान–प्रदान से होता है, उसको अलग कर दिया जाए तो किसी भी वाणिज्य प्रधान देश का क्रय का माध्यम मुद्रा और ऋण के मिश्रित रूप में निहित है।

भारतीय मुद्रा देखने में मुद्रा और ऋण का मिश्रित रूप है। इस प्रकार यह अनुमान

---

1. बैंक ऑफ बंगाल के बट्टे की दर तीस दिन और बाद के समय तक जारी निजी कागजी मुद्रा (पेपर करैंसी) बदलानी रही–

   1876 में 16 बार, न्यूनतम 6½ प्रतिशत और अधिकतम 13½ प्रतिशत
   1877 में 21 बार, न्यूनतम 7½ प्रतिशत और अधिकतम 14½ प्रतिशत
   1878 में 10 बार, न्यूनतम 5½ प्रतिशत और अधिकतम 11½ प्रतिशत
   1879 में 15 बार, न्यूनतम 6½ प्रतिशत और अधिकतम 11½ प्रतिशत
   1880 में 8 बार, न्यूनतम 5½ प्रतिशत और अधिकतम 9½ प्रतिशत
   1881 में 9 बार, न्यूनतम 5½ प्रतिशत और अधिकतम 10½ प्रतिशत
   1882 में 9 बार, न्यूनतम 6½ प्रतिशत और अधिकतम 10½ प्रतिशत
   1883 में 14 बार, न्यूनतम 7½ प्रतिशत और अधिकतम 10½ प्रतिशत

   (वॉन डेन बर्ग से उद्धृत)

2. देखिए – प्रोफेसर आर.जी. फाकनेर–ए डिस्कशन आफ दी इन्ट्रोगेटोरिज आफ दी मानेटरी कमीशन आफ दी इन्डियाना पोलिए कन्वेन्शन, 1898, राजनैतिक अर्थव्यवस्था और लोक कानून में पेन्सेलेवानिया के प्रकाशन, संख्या–13, पृ. 25-26

किया जा सकता है कि इसमें विस्तार तथा लचीलेपन की व्यवस्था है। परन्तु जब हम इसका विश्लेषण करते हैं, हम यह पाते हैं कि इसमें लचीलेपन के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई है। मौसमगत मांगों के साथ इसके विस्तार और संकुचन के लिए ऋण की अनुमति से कहीं दूर कागजी मुद्रा अधिनियम ने इशू की मात्रा पर कठोर सीमा रखी चाहे मांग की मात्रा में कुछ भी परिवर्तन क्यों न हों। इसके बाद यहां भारतीय मुद्रा बाजार में प्रचलित बट्टे की दरों में ऐंठन के कारणों में से एक कारण का पता लगता है। जैसा कि श्री वैन डेन बर्ग ने इंगित किया :—

> "भारतीय विधायक द्वारा स्थापित कागजी मुद्रा अपने उद्देश्य की पूर्णतया पुर्ति करता है जहां तक व्यापार में सोना अथवा चांदी के सिक्के के बजाए विनिमय के सरल उपायों की आवश्यकता होती है परन्तु न्यासी मुद्रा के निर्गम और विनिमय के वर्तमान माध्यम में परिवर्तित उनके बिल अथवा अन्य वस्तुएं रखने के लिए जनता की मांगों के बीच कोई संबंध मौजूद नहीं है.......... और मुद्रा बाजार में अप्रत्याशित ऐंठन और अचानक संक्रमण का एक मात्र कारण है। अतः उस व्यापार के लिए नितांत हानिप्रद है जिसके लिए ब्रिटिश भारतीय व्यापार बराबर अनाश्रित छोड़ देता है।[1]

फिर भी, यह आपत्ति की जा सकती है कि इस प्रकार का विचार केवल सतही है। भारतीय कागजी मुद्रा अधिनियम (इंडियन पेपर करैंसी एक्ट) सभी आवश्यक रूचि अवयवों की दृष्टि से 1844 के इंगलिश बैंक एक्ट की बिल्कुल नकल है। इंगलिश बैंक एक्ट के समान ही इसने भी न्यासी नोटों के निर्गम की सुनिश्चित सीमा निर्धारित की। इसके समान इसने भी निर्गम व्यापार को बैंकिग व्यापार से अलग रखा[2] और यदि इसने भारत के बैंकों को केवल बट्टे के बैंक ही बना दिया तो इसका कारण है कि इसने उस बैंक चार्टर एक्ट की नकल की जिसने बैंक ऑफ इंग्लैंड को सम्मिलित करते हुए इंग्लैंड के बैंकों को निर्गम बैंक होने से वंचित किया। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि अंग्रेजी मुद्रा बाजार "ऐंठन और अचानक संक्रमण द्वारा प्रभवित हुआ है जैसी कि भारतीय मुद्रा बाजार की स्थिति रही है" दूसरी ओर जेवान्स[3]

1. सामने का उद्धरणा 7
2. भारतीय कागजी मुद्रा अधिनियम (दि इंडियन पेपर करैंसी एक्ट) ने इंग्लिश बैंक चार्टर एक्ट की तुलना में अलगाव के सिद्धान्त को अपनाया। उसने न केवल बैंकिग विभाग के तत्वाधान में संचालित निर्गम विभाग को वंचित किया अपितु दोनों को एक ही छत के नीचे रहने की भी अनुमति न दी। इस प्रकार की आदर्श प्रथकता के बारे में बैंक चार्टर एक्ट पर बहस के दौरान सर चार्ल्स वुड ने अपने विचार व्यक्त किए। देखिए हैंसार्ड पार्लियामेंट्री डिबेटुस, खण्ड LXXIV पृष्ठ 1363। यद्यपि वे उस समय निराश हो गए थे, वे अपने आदर्श को चरितार्थ करने में असफल नहीं रहे जब वे भारत के राज्य सचिव बने। देखिए उनका निबंध "मुद्रा बाजार में बार–बार शासनकालीन दबाव और बैंक ऑफ इंग्लैंड का कार्य (फ्रीक्वेंट ऑटोमनल प्रेशर इन द मनी मार्केट एण्ड दी एक्शन ऑफ दि बैंक ऑफ इग्लैंड)," मुद्रा और वित्त में छानबीन (इन्वेस्टीगेशन्स इन करैंसी एण्ड फाइनेंस) (संपादक–फाक्सवेल), 1884 पृष्ठ 179 जेवॉन्स द्वारा इटेलिक्स। फिर भी मूल पाठ में अनायास अशुद्ध छप गया है जो उद्धरण के अंत में इस प्रकार पढ़ा जाए— "जैसे कि उन्हें प्रतिबंधित पद्धति के अन्तर्गत होना था।"

की सुविचारित राय थी कि "बैंक ऑफ इंग्लैंड और बैंक सामान्यता अपनी अग्रिम राशियों को घटाने अथवा बढ़ाने की समान पद्धति तक एक स्तर रखते हैं" अर्थात 1884 के एक्ट के अधीन जैसी कि उन्होंने (एन यू एन) सीमित पद्धति में बनाए रखा, "क्योंकि जैसा कि उन्होंने अन्यत्र प्रतिपादित किया कि यदि न्यासी निर्गम की सीमा स्वेच्छाचारी होती और यदि लोग अधिक धन चाहते हैं" तो उनके लिए यह खुली छूट है कि वे इसके स्थान पर धातु–मुद्रा का उपयोग करें। यह सीमा मुद्रा पर ही आरोपित नहीं है अपितु उसके प्रतिनिधित्व करने वाले भाग पर भी लागू होती हैं।[1] इसका क्या कारण है कि भारतीय कागजी मुद्रा अधिनियम (इंडियन पेपर करैंसी एक्ट) में ऐसे अवगुण उत्पन्न हुए जबकि इसके इंगलिश प्रतिरूप में ऐसे अवगुण नहीं थे? मुख्यरूप से ऐसे कानून के अधीन मुद्रा बाजार में इस प्रकार के ऐंठन की आवश्यकता नहीं है। नोटों के निर्गम के परिसीमन द्वारा इस अधिनियम ने कोई भी विकल्प नहीं छोड़ा सिवाय मौसमगत मांग के लिए धातु–मुद्रा का उपयोग। यह सत्य होगा यदि नोट ही केवल ऐसा स्वरूप होता जिनमें उधार का उपयोग किया गया है। वास्तव में ऐसा नहीं है। ऋण का एक स्वरूप यह हो सकता है कि भुगतान का वचन माना जाए, यह ऋण बैंक द्वारा जारी किया गया और भुगतान के लिए बैंक पर इसका स्वरूप आदेश बन सका तथा इसमें उन लोगों की सामाजिक अर्थव्यवस्था में कोई अन्तर नहीं बना जिन्होंने इसका उपयोग किया था। इसके फलस्वरूप यदि अधिनियम के उपबंधों के अधीन बैंक भुगतान के वचन देने से प्रतिबंधित हो जाते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि इसके लिए एक मात्र खुला मार्ग रह गया कि वे "धातु–मुद्रा का उपयोग" करने लगें क्योंकि वे समान रूप से इस बात के लिए स्वतंत्र हैं कि वे भुगतान के उतने ही आदेशों का पालन करें जितने वे चाहें। वास्तव में अधिनियम की सफलता अथवा असफलता इस बात पर निर्भर है कि इन दोनों विकल्पों में से कौन सा विकल्प बैंक अपनाएं। यह स्पष्ट है कि जो अधिनियम के आदेशों का पालन करेंगे तथा धातु मुद्रा में काम करेंगे, उन्हें "ऐंठन स्वीकार करने होंगे और जो ऋण के अन्य स्वरूपों के उपयोग द्वारा अधिनियम का परिगमन करेंगे, वे उनसे बच जाएंगे। मुख्य कारण है कि जहां इस अधिनियम ने इंग्लैंड में इतना अच्छा काम किया वहां भारत में बुरी तरह असफल रह गया। इसका कारण है कि जहां अंग्रेजी बैंकों ने आदेशों चेक पद्धति को नोटों के स्थान पर ऋण को अपना लिया वहां पर दुर्भाग्य से भारतीय बैंक ऐसा करने में असफल हुए। उनको असफल होने से कोई रोक नहीं सकता था। चैक पद्धति में यह मान लिया जाता है कि जनता पढ़ी–लिखी है और बैंक पद्धति लोगों की देशी भाषा में अपना काम–काज चलाती है। भारत में इन दोनों में से एक भी स्थिति नहीं है यहां की आबादी अधिकांश अनपढ़ों की है और यदि ऐसा नहीं भी होती तब भी चैक पद्धति को नहीं अपना सकती थी क्योंकि भारतीय बैंकों

1. मनी एण्ड दि मेकेनिज्म ऑफ एक्सचेंज, केगिन पॉल, लंदन, 1890, पृष्ठ 225

ने सिवाय अंग्रेजी के किसी अन्य भाषा के माध्यम से अपना काम करने से इन्कार कर दिया करते, इसके अलावा चैक पद्धति की वृद्धि इस बात को मानकर चलती है कि वहां बैंको का विशाल जाल फैला हुआ है और यह एक ऐसी शर्त है जो भारत में पूरी कदापि नहीं हो सकती। बैंक की सुविधा के अभाव में चैक इस्तेमाल के लिए सबसे बुरा औजार है। यदि यह चैक निश्चित सीमा–अवधि में प्रस्तुत नहीं किया जाता तो यह चैक बेकार और मूल्यहीन हो जाता है तथा इसलिए धन–संग्रह के रूप में नोट की अपेक्षा अधिक घटिया हो जाता है। इस प्रकार की परिस्थितियों में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि भारत में चैक पर्याप्त रूप से बड़े पैमाने पर व्यवहार में नहीं आए ताकि वे नोटों के अलचीलेपन में सुधार कर सकें।

परन्तु यदि भारतीय बैंक नोटों की अपेक्षा ऋण के उपयोग को इसी स्वरूप मे काम में लाने में सफल हो जाते तो वे उस सीमा तक मुद्रा–बाजार को सहज नहीं बना पाते जैसा कि अंग्रेजी बैंक ऐसा करने में सफल हुए हैं। बैंकिग का एक कार्य यह है कि बैंक का दायित्व है कि मांगने पर नकद राशि दी जाए। यदि बैंकों में जमा राशि नकदी में जमा की जाती है तो इस दायित्व के निभाने में कोई खतरा नहीं है। वास्तव में बैंकों में अधिकांश जमा ऐसी हुंडियों के द्वारा होती है जिनका नकदी में भुगतान करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं इसलिए बैंकर के लिए सबसे प्रथम बात जो बैंकर को देखनी होती है वह है नकदी जमाओं व उसके ऋण जमा का अनुपात। अब यह अनुपात विपरीत रूप से प्रभावित हो सकता है चाहे उसके ऋण जमा में वृद्धि हो अथवा नकदी जमा में कमी हो। इन दोनों अवस्थाओं में से किसी भी अवस्था में उसकी नकदी के भुगतान की क्षमता उसके कुल दायित्वों के अनुपात में कुल नकदी को कम करने से अंशतः कमजोर बना देती है। ऋण के अनुचित विस्तार के विरुद्ध बैंकर प्रभावकारी ढंग से अपनी रक्षा कर सकता है। परन्तु चैक पद्धति का विकास कुछ भी क्यों न हुआ हो फिर भी यह सदैव डर की संभावना बनी रहती है कि किसी न किसी समय कुछ राशि निकाल ली जायेगी। इसलिए एक बैंकर को कुछ न्यूनतम धन अपने हाथ में सुरक्षित रखना चाहिए। कितना धन अलग से सुरक्षित रखा जाए या कितना नकदी निकाली जाने की सम्भावनाओं पर आधारित है। बात यह है कि जिस सीमा तक धन अलग से सुरक्षित रखा जाता है उस सीमा तक बैंक की शक्ति ऋण देने में कम हो जाती है। यदि बैंक के रिजर्व पहले ही न्यनूतम हैं तो बैंक को बट्टा देना बंद कर देना चाहिए अथवा अपने खजाने से आहरित नकदी की पुनः प्राप्ति द्वारा अपनी स्थिति मजबूत करनी चाहिए। अब यह स्पष्ट है कि यदि आहरित राशि उस चालू व्यापार के लिए रखी जा सकती है जो बैंकों को प्राप्त हो सकता है तो वे शीघ्र ही फिर अपनी स्थिति को मजबूत कर सकते हैं और न्यूनतम रिजर्व के खतरे से भली–भांति अपने को अलग कर सकते हैं परन्तु उन्हें मुद्रा बाजार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। इस दृष्टिकोण से भारतीय बैंकों की क्या स्थिति रही? चैक–पद्धति के अभाव के कारण नकदी के बैंकों से निकालने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं और इसके फलस्वरूप अधिक राशि के रिजर्व की आवश्यकता होती है। इस प्रकार

रिजर्व के रूप में अधिकांश निधि रुक जाने के कारण और बट्टे के लिए उनके संसाधन बहुत कम रहते हैं। परन्तु उनकी स्थिति ऋणदाता के रूप में और भी अधिक कमजोर हो गई क्योंकि बैंक से निकाली गई नकदी तीव्र गति से उनको वापिस नहीं मिली। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय बैंक अपने रोकड़ व उधार खाते के बीच उचित अनुपात रखने के लिए काफी सीमा तक अपने बट्टे कम करने पर बाध्य हो गए जबकि यह स्थिति अंग्रेजी बैंकों की नहीं थी। इस संबंध में बैंकिग की शाखा का अभाव एक महत्वपूर्ण अभीष्ट वस्तु रही परन्तु यदि बैंक की साखा भी होती तो भी बैंक से निकाली राशि वापिस नही आ सकती थी क्योंकि इसे व्यापार की चालू धाराओं में नहीं छोड़ा गया था। इसे सरकारी खजानों में बंद कर दिया गया था जिनकी कार्यविधि देश के बैंकिंग लेन–देन प्रक्रिया से स्वतंत्र थी। यद्यपि मूल रूप से सरकार द्वारा स्वतंत्र रूप से खजाना चलाने में किसी प्रकार की गलती नहीं थी और यदि इसकी क्रिया विधि व्यापार समुदाय की क्रिया निधि के साथ अन्तिम चरण में सामंजस्य स्थापित कर लेती तो इसमें किसी प्रकार की हानि होने की आवश्यकता नहीं पड़ती परन्तु भारतीय खजाने की कार्यशैली व्यापार की आवश्यकताओं के प्रतिकूल रही इसने उस समय निधिं को बंद कर लिया जबकि उसे इसको मुक्त करना चाहिए था और निधि को उस समय मुक्त कर दिया जब उसे इस निधि को बंद करना था। भारतीय मुद्रा को बाजार कें एंठन का कारण ऋण माध्यम का लचीलेपन का अभाव था तथा स्वतंत्र खजाना प्रणाली, जहां तक वे देश के अन्दर मुद्रा आपूर्ति को प्रभावित करने के प्रमुख घटक हैं (देखिए चार्ट I) बट्टे की दर के ऐसे ऐंठन के बुरे दुष्प्रभावों को शायद ही बढ़–चढ़ कर बताया जा सकता है।[1] उधार ली गई पूंजी की किसी भी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यापारी को विश्वास करना चाहिए चाहे वह पूरे वर्ण की न होकर कुछ ही मौसमों में क्यों न हो, लाभ की सीमा यकायक वृद्धि से मिट सकती है अथवा कम व्यापार या अधिक व्यापार के बट्टे की दर में यकायक कमी हो जाने के कारण बढ़ सकती है। इस प्रकार के उतार–चढ़ाव व्यापार के खतरे बढ़ा देते हैं, व्यापार के व्यय को अधिक कर देते हैं तथा उपभोक्ता के लिए अधिक लागत हो जाती है। वे मूल्यों उतार चढ़ाव लाते है। सट्टेबाजी को प्रोत्साहित करते हैं तथा संत्रास उत्पन्न करते हैं। यदि इस प्रकार की बात है कि भारत में व्यापार समुदाय पर पड़ी इन मुसीबतों का निराकरण करने की दिशा में कोई गम्भीर कदम नहीं उठाए गए। कागजी मुद्रा में सुधार अथवा स्वतंत्र खजाना पद्धति के उन्मूलन से इस स्थिति में सुधार आ सकता था यद्यपि दोनों में ही सुधार अधिक अच्छा था। जन साधारण इस बात का इच्छुक नहीं था कि कागजी मुद्रा[2] में परिवर्तन किया जाए परन्तु स्वतंत्र खजाने के उन्मूलन के लिए चिन्तित था।

1 अमरीकी अनुभव के लिए देखिए–ई0डब्लू केमेटोर, "सीजनल वेरिएशन्स इन दि न्यूयार्क मनी मार्केट," दि अमेरिकन इकोनॉमिक रिव्यू, मार्च 1911

2. देखिए इंडिया इन 1880 लेखक सर रिचार्ड टेम्पल, पृष्ठ 469; सर चार्ल्स वुड: एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ इंडियन अफेयर्स, पृष्ठ 89 - देखिए – दि इंडियन स्टेट्समैन, 15 जनवरी (1884)

CHART I

DISCOUNT RATES IN INDIA

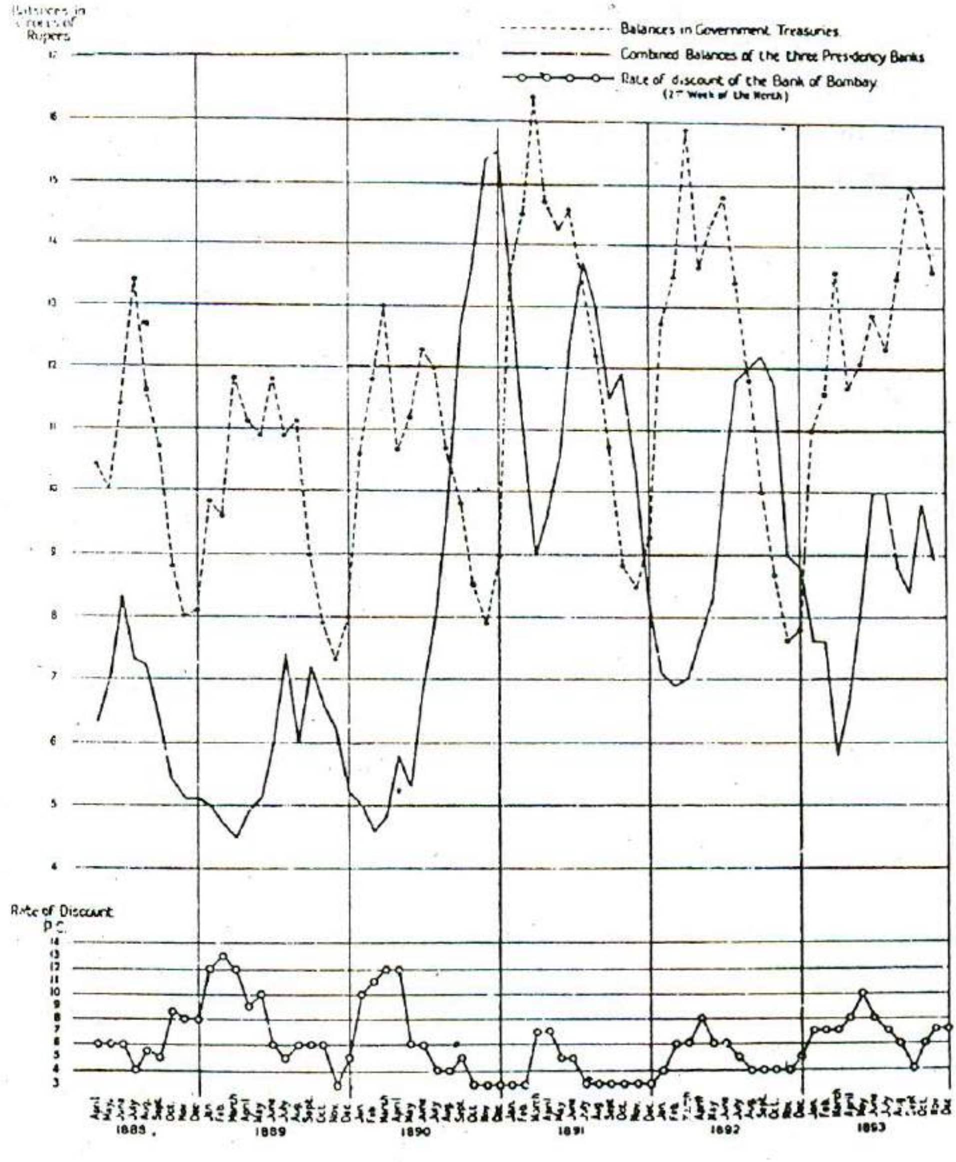

दूसरी ओर सरकार ने स्वतंत्र खजाना पद्धति को समाप्त करने से मना कर दिया[1] और व्यापारी समुदाय को ऐसे कुछ अनिश्चित तर्क पर सहायता करने के नैतिक दायित्व से इंकार करते हुए कहा गया है कि मुद्रा के बंद करने से पूंजी को बन्द[2] नहीं किया गया है।

यह कहना भी संभव नहीं कि नीति की व्याख्या करने के लिए नहीं कहा गया कि कागजी मुद्रा अधिनियम को कहां तक संशोधित किया जा सकता है ताकि इस स्थिति में राहत मिले। फिर भी इसके पूर्व कि इस विवादास्पद समस्या के संतोषजनक महत्व के रूप में मुद्रा पद्धति में वह लचीलापन दिया जाता जिसकी उसको आवश्यकता है, एक अन्य विशाल अवगुण उत्पन्न हो गया जिसने धातु मुद्रा के प्रतिरूप को इस हद तक प्रभावित किया कि वह मूल्य की सशक्त स्थिरता और स्थायित्व को नष्ट करने में सक्षम हो। जो इसे वरदान के रूप में देना आश्चर्य है। यह अवगुण इतना अधिक हो गया और इसके प्रभाव इतने व्यापक रहे कि अन्य सभी बातों को छोड़कर सबका ध्यान इसी पर केन्द्रित हो गया।

देश के आन्तरिक लेन–देन में अलग–अलग यूनिटों के बीच मूल्य – निर्धारण में अपनी मुद्रा का जो महत्व है, वही आन्तरिक लेन–देन में विनिमय की समता का मूल्य है। किन्हीं दो देशों के बीच विनिमय की समता से एक–दूसरे के लिए अपनी–अपनी मुद्राओं की तुलनात्मक विनिमय मूल्यों की अभिव्यक्ति होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दो देशों के बीच विनिमय की समता स्थायी होगी यदि वे उसी धातु को काम में लाएं जो मानक मुद्रा के रूप में उपयोग में आती है ताकि सर्राफे के रूप में निर्मित योग्य तथा मुक्त भाव से परिवर्तनशील हो क्योंकि उस दिशा में आम माध्यम के रूप में मूल्य

---

1. फिर भी इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि 1862 और 1876 की मध्यावधि में प्रसीडेंसी बैंकों के मुख्यालयों तथा शाखा कार्यालयों सहित कुछ केंद्रों में स्वतंत्र खजाना पद्धति स्थगित रखी गई। नोट जारी करने के अधिकार से हानि के फलस्वरूप प्रेसीडेंसी बैंकों को एक्ट XXIV, 1861 के अनुसार किए गए समझौतों के अंतर्गत सरकार द्वारा कुछ रियायत दी गई। रियायतों में एक रियायत थी सरकारी शेषों का बैंकों द्वारा उपयोग 1862 के प्रथम समझौते ने सरकारी शेषों के संबंध में आगे दिए गए विशेष सुविधाएं बैंकों को दिए: (1) सभी मुद्राओं और शेषों के लिए समझौते के होते हुए भी बैंक ऑफ बंगाल के संबंध में 75 लाख, बैंक ऑफ बाम्बे के बारे में 40 लाख और बैंक ऑफ मद्रास के लिए 15 लाख तक की सीमा को बैंकिंग प्रयोजनों के लिए बिना किसी रोकटोक से उपयोग किया गया। (2) जब कभी मांग की गई हो तब उत्पाद के लिए एक अलग सुरक्षित कमरे में इन राशियों से अधिक राशि के निपटारे का विकल्प अथवा उन्हें सरकारी कागज मुद्रा में निवेश करने अथवा अन्य प्रधिकृत प्रतिभूतियों के रूप में निवेश की शक्ति इस शर्त पर आधारित होगी कि बैंक सभी समय में उस समय के अतिरिक्त रोकड़ शेष के लिए सरकार के प्रति उत्तरदायी होंगे। (3) सरकार के ऐसे अंतर की राशि पर ब्याज का अधिकार होगा जो वास्तविक शेष और बैंक ऑफ बंगाल के संबंध में 50 लाख, बैंक ऑफ बंबई के बारे में 30 लाख और बैंक ऑफ मद्रास के लिए 10 लाख रुपये का अंतर होगा" जब कभी इन न्यूनतम राशि से इन बैंकों के शेष कम हो जाते हैं। (4) बैंकों को अपनी शाखाओं में सरकारी शेषों के उपयोग करने के लिए समान शर्तों अनुमति मुख्यालय के समझौतों के अनुसार प्रत्येक मामले में उपयुक्त सीमाएं निर्धारित होंगी। इन समझौतों के किए जाने के एक वर्ष बाद बैंक ऑफ बंगाल के साथ कठिनाई उत्पन्न हुई जिसने निधियों को इस सीमा तक बंद कर दिया कि वह उन सार्वजनिक शेषों पर सरकारी मांगों को पूरा करने में असमर्थ रहा। इसलिए 1863 में समझौतों के संशोधन के बारे में विचारों का आदान–प्रदान प्रारंभ किया गया और 2 जनवरी 1866 को संशोधित समझौते कार्यान्वित किए

का साधन बने और जिसके मूल्य में कोई अंतर न आए। यदि दो देशों के बीच अपने वाहनांतरण की लागत अथवा सोना–चांदी की किस्मों में वाणिज्य की स्वतंत्रता हो। दूसरी ओर दो देशों के बीच कोई भी निर्धारित विनिमय की समता नहीं हो सकती जिनमें अपने मूल्य के मुद्रा–मानकों के रूप में अलग–अलग धातुएं हों। उस स्थिति में उनके विनिमय का प्रबंध सोने और चांदी के संबंधित मूल्यों द्वारा किया जाता है और उन्हें अपने मूल्य के संबंध में परिवर्तनों द्वारा आवश्यक रूप से घटते–बढ़ते रहना चाहिए। उनके बीच उतार–चढ़ाव के विनिमय की सीमा इतनी विस्तृत अथवा संकुचित होगी कि दोनों धातुओं के संबंधित मूल्यों में उतार–चढ़ाव की सीमा हो सकती है। इसलिए जब दो देश यथा इंग्लैंड और भारत उनके धातु–मानकों के अंतर द्वारा अलग–अलग किए जाते हैं तो सैद्धांतिक रूप से ऐसी कोई संभावना नहीं लगती कि उनके बीच विनिमय की स्थायी समता की कोई संभावना हो सके। परन्तु वास्तव में स्थिति चाहे कुछ भी क्यों न हो इन दोनों देशों के धातु–मानकों का अंतर कुछ भी क्यों न रहा हो, इंग्लैंड और भारत में विनिमय

गए। उन्होंने सार्वजनिक शेषों के लिए आगे दिए गए उपबंध बनाए: (1) सरकार द्वारा यह वचन दिया गया कि बैंकों को अपने मुख्यालयों में बैंक ऑफ बंगाल में 70 लाख, बैंक ऑफ बंबई में 40 लाख और बैंक ऑफ मद्रास में 25 लाख तक "औसत रोकड़ शेष" रखा जाएगा जिसकी सुविधा से पूर्ति की जा सकती है। (2) बैंकों को यह अनुमति दी गई कि वे बैंकिग प्रयोजनों के लिए उनके पास जमा कुल शेषों का उपयोग करें। (3) सरकार से ब्याज का अधिकार जब बैंक ऑफ बंगाल, बैंक ऑफ बंबई तथा बैंक ऑफ मद्रास के मुख्यालयों से सरकारी शेष क्रमशः 45 लाख, 25 लााख और 20 लाख की न्यूनतम राशि से कम हो जाए। (4) कुछ समय के लिए बैंकिग प्रयोजनों के लिए शाखाओं के सभी शेषों के उपयोग की अनुमति दी गई किन्तु शर्त यह थी कि प्रत्येक शाखा को सर्वथा सरकारी शेषों की सीमा तक सरकार के ड्राफ्टों को पूरा करने के लिए तैयार होना चाहिए।

संशोधित समझौते 1 मार्च, 1874 तक लागू रहे। 1874 में प्रैसीडैंसी बैंकों के चार्टरों के संशोधन का प्रश्न विचाराधीन था और सरकार का यह उद्देश्य था कि बैंकों का यह अधिकार जारी रखा जाए ताकि वे समग्र सरकारी शेषों का उपयोग कर सकें। ठीक इसी समय 1874 में बैंक ऑफ बंबई के साथ कठिनाईयां उत्पन्न हो गई और सरकार अपने शेषों को प्राप्त न कर सकी। इससे सरकारी शेषों को बैंक के शेषों के साथ मिलाने की निति पर फिर से विचार करना प्रारंभ हुआ और बैंकों के अधिपत्य में इन्हें सौंप दिया गया। कुछ लंबे विचार विमर्श के बाद भारत सरकार स्वतंत्र ट्रेजरी पद्धति की ओर फिर से मुखरित हुई जिसमें उन प्रैसीडैंसियों के मुख्यालयों पर रिजर्व खजाने स्थापित किए गए जहां प्रैसीडेंसी बैंकों द्वारा धारित पिछले सरकारी शेष रखे गए। इस घटना के लिए इतिहास देखा जाए। देखिए– 1864 के हाउस ऑफ कामन्स रिटर्न 109 और 505, जे.पी. ब्रन्येते एन एकाउंट ऑफ द प्रेसीडैंसी बैंक्स, अध्याय VII

2. फिर भी चार्ट से ऐसा लगता है कि 1873 से पूर्व रुपया स्टलिंग विनिमय बिल्कुल भी स्थायी न था। परन्तु इन दोनों के बीच उतार–चढ़ाव के लिए बिल्कुल ही अलग कारक बताए जाते हैं। इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय भारतीय मुद्रा को स्टर्लिंग मे परिवर्तित करने के लिए विनिमय की दरें कई प्रकार की थीं। इसके अलावा विनिमय किए सिक्कों के आतरिक मूल्य के साथ उनका इतना कम संबंध था कि सरकारी तौर पर दी गई वास्तविक दरें वास्तविक बाजार की दरों से अलग थी। इस रोचक विषय को समझने के लिए देखिए 1931 32 के सैशनल पेपर्स 735 II, का एच. विनिमय की उन दरों के संबंध में पत्र व्यवहार आदि जिन पर भारत की मुद्राएं स्टर्लिंग में परिवर्तित की जाती हैं। इस बारे में अनुलग्नक संख्या 20 देखा जाए, टकर एच. सेंट जार्ज रिमकिस ऑन द प्लान्स ऑफ फाइनेन्स, 1821 और उसी लेखक द्वारा पैसिम एंड मैमोरियल्स ऑफ इंडियन गवर्नमैंट पृ0 382-85

की दर शायद ही[1] एक रुपये के लिए 1 शिलिंग 10½ पैंस की साधारण दर से कभी[2] अलग हुई हो। 1873 तक दर इतनी अधिक स्थिर थी कि कुछ ही लोग इस तथ्य से सचेत थे कि दोनों देशों में अपने अलग–अलग मुद्रा मानक थे फिर इस सामान्य समतुल्यता से रुपये–स्टर्लिंग विनिमय में यकायक अस्थिरता आ गई और इससे जो विस्थापन उत्पन्न हुआ, वह अतिविशाल और अव्यवस्थित था (चार्ट II) की किसी को भी यह पता नहीं लगा कि इसका अंत कहां होगा।

रुपये स्टर्लिंग विनिमय वास्तव में सोने–चांदी विनिमय का ही प्रतिबिम्ब था। इसलिए जब यह कहा जाता है कि 1873 से पूर्व रुपया स्टर्लिंग 1 शिलिंग 10½ पैंस तक ही

1 6 मई, 1875 के प्रेषण–पत्र में स्वतंत्र खजाना–पद्धति की स्थापना की स्वीकृति की गई। अतः राज्य सचिव द्वारा चेतावनी इस प्रकार दी गई थी, समुदाय की बचतों के प्रतिनिधित्व करने वाली पूंजी से कहीं अलग सरकार द्वारा पूर्ति की गई पूंजी एक ऐसा संसाधन है जिसके कार्य–निष्पादन पर कोई विश्वास नहीं किया जा सकता और इसलिए व्यापारियों को भयानक वचनबद्धता की ओर अग्रसर करता है। इससे कुछ समय के लिए राहत मिलती है और ऐसी समृद्धि जागृत होती है कि वह किसी घटना पर निर्भर है। एक राजनैतिक आवश्यकता यकायक आकस्मिक संसाधनों और उस वाणिज्य का दोहन करती है जो उस पर विश्वास करते थे और वे स्वयं में रिजर्व खजानों की स्थापनाओं से परे बधक होते हैं जिनकी पूर्ति अपने ही संसाधनों से की जाती है। रिजर्व खजानों की स्थापना की ओर अग्रसर 1876 के समझौतों के अधीन सरकार पूर्ववत् इस बात पर सहमत हुई कि वह बैंकों को ब्याज की भुगतान उस समय करेगी जब बैंकों के अपने शेष किसी न्यूनतम सीमा से कम रह जाएं। सरकार ने अधिकतम राशि के संबंध में किसी प्रकार का कोई औपचारिक करार नहीं किया और बैंकों को यह समझने के लिए कहा "कि सरकार साधारणतया आगे दी गई राशियों से अधिक राशि अस्थायी रूप से अलग बैंकों के मुख्यालयों के लिए नहीं छोड़ेगी बैंक ऑफ बंगाल सौ लाख, बैंक ऑफ मद्रास तीस लाख और बैंक ऑफ बम्बई पचास लाख। परन्तु यह शर्त करार में शामिल नहीं की जाएगी जो सरकार पर ऐसा कोई दायित्व आरोपित नहीं करेगा कि बैंकों के साथ कोई भी शेष छोड़े जाएं...... सरकार ऐसा कोई करार नहीं करेगी कि बैंकों को सभी सार्वजनिक शेष का एकमात्र अधिपत्य बैंकों को दिया जाए जहां सरकार बैंकों पर भरोसा करती है। ऐसे शेषों की राशि का प्रश्न जो सरकार इस प्रकार के समाधान के सामान्य दौर बैंकों के साथ रखे, ऐसी राशि की प्रश्न ही ऐसा मार्ग है जो बैंकों को सहायता करने के लिए है ताकि समसामयिक मांगों की पूर्ति की जा सके और यह बात रिजर्व खजानों में रखे हुए अपने शेषों के लिए प्रैसीडैंसी बैंकों को ऋण देने के लिए थी। 1900 के बाद बैंक दर पर सीमित राशि के ऐसे ऋणों को तैयार करने के लिए सहमति हुई। 1913 तक केवल 6 ऋण दिए गए। इससे यह प्रतीत होता है कि ऋण देने की शर्तें दूभर थीं। 1913 के चैम्बर लेन कमीशन ने स्वतंत्र खजाना–पद्धति के उन्मूलन की तुलना में ऋणों की सिफारिश की। फिर भी युद्ध ने घटनाओं का चक्र चलाने में शीघ्रता की। इससे प्रैसीडैंसी बैंकों और सरकार के बीच सहयोग की आवश्यकता सिद्ध हुई तथा वृहद् और शक्तिशाली बैंकिंग संस्था की आवश्यकता पर जोर दिया गया। इसके साथ ही प्रैसीडैंसी बैंकों का इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया (एक्ट XLVII, 1920) के साथ विलय द्वारा यह सफलता प्राप्त की गई जिसके प्रारंभ होने के साथ ही स्वतंत्र खजाना पद्धति फिर से उन्मूलन की प्रक्रिया के अंतर्गत आ गई। 1876 के बाद स्वतंत्र खजाने की घटनाओं के इतिहास के लिए देखिए इन्टैरिम रिपोर्ट ऑफ दि चैम्बरलैन कमीशन के अनुलग्नक, खंड I, 1913 के सी.डी. 7070, संख्या I और II

2 यह सामान्य ही है यदि सोने और चांदी के बीच सामान्य अनुपात 15½:1 माना जाए जो लगभग 70 वर्ष तक बना रहा।

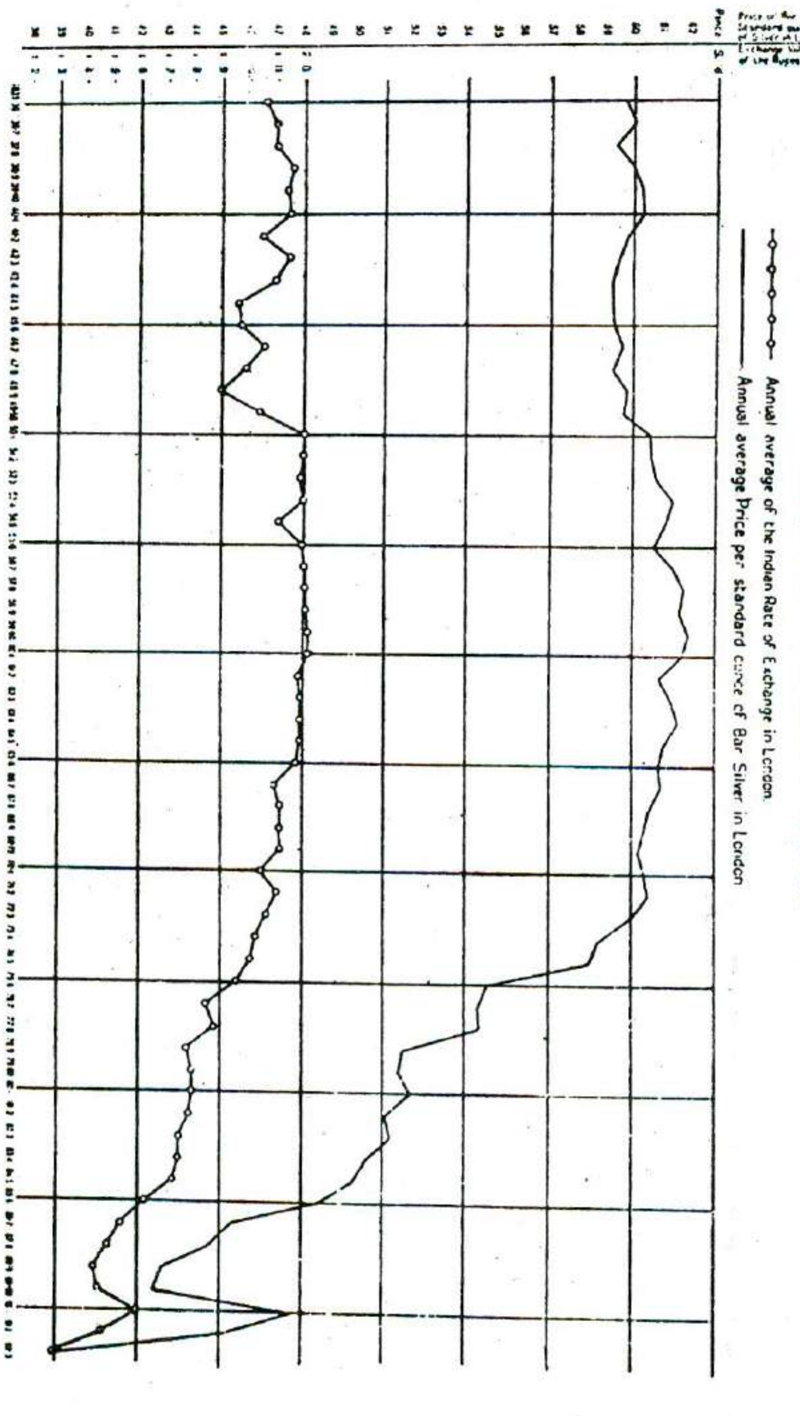

CHART II

FALL OF THE RUPEE-STERLING EXCHANGE

स्थायी था तो इसका केवल यही अर्थ था कि 1873 से पूर्व सोने–चांदी का विनिमय का अनुपात 1:15½ था और 1873 के बाद रुपये–स्टर्लिंग के अनुपात में अव्यवस्था आ गयी जिसका अर्थ यह था कि सोने–चांदी के विनिमय ने अपने पुराने बंधनों को खो दिया। इसलिए प्रश्न उठता है कि 1873 के बाद सोने और चांदी के बीच विनिमय के अनुपात में इतनी उथल–पुथल क्यों हुई जितनी उस वर्ष से पूर्व नहीं थी? उस समय ऐसा विचित्र कार्य लगा कि उसकी पर्याप्त व्याख्या के लिए दो पहलुओं की अपील की गई। उनमें से एक पहलु विश्व के प्रमुख देशों द्वारा मानक मुद्रा माध्यम के रूप में चांदी का विमुद्रीकरण था। चांदी के विमुद्रीकरण के पक्ष में यह आंदोलन भार, माप और सिक्कों की एकरूपता के लिए भोलेभाले विद्रोह का परिणाम था। जहाँ तक विद्रोह का उद्देश्य ऐसी एकरूपता के स्थापित करने से था, यह प्रत्येक प्रकार से उपयोगी था परन्तु इससे यह उदाहरण मिलता है कि उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होते हुए यदा–कदा अपने पीछे बुराइयों की परम्परा भी छूट जाती है। 1851 में लंदन में एक विशाल प्रदर्शनी के आयोजन के अवसर पर विभिन्न प्रदर्शित वस्तुओं की तुलना करने में बहुत बड़ी कठिनाई उत्पन्न हुई इसका मुख्य कारण था विभिन्न देशों द्वारा लाए गए तोल, माप और सिक्कों के अंतर के कारण प्रदर्शित वस्तुओं को उस प्रदर्शनी में एकत्रित अलग–अलग राज्यों के प्रतिनिधियों ने स्पष्ट रूप से देखा।[1] भार, माप और सिक्कों की अंतर्राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर इस प्रदर्शनी में एकत्रित विभिन्न वैज्ञानिक सम्मेलनों द्वारा चर्चा की गई और यद्यपि इसका कोई ठोस परिणाम न निकल पाया फिर भी इस प्रश्न को कार्य–सूची से अलग नहीं किया गया। दो वर्ष बाद आयोजित ब्रूसेल्स इंटरनेशनल इस्टैटिस्टिकल कांग्रेस (ब्रूसेल्स स्थित अंतर्राष्ट्रीय सांख्यिकीय कांग्रेस) में यह प्रश्न फिर से उठाया गया। इस सम्बन्ध में जनमत आगे बढ़ चुका था कि पेरिस में आयोजित अगली सांख्यिकीय कांग्रेस ने एक घोषणा जारी की जो 1859 में आयोजित वियाना स्थित सांख्यिकीय कांग्रेस द्वारा पुष्ट की गई और इसमें इस बात की आवश्यकता पर अधिक बल दिया गया कि अलग–अलग देशों के भार, माप और सिक्कों की वांछित एकरूपता लाई जाए।[2] इंगलैंड की उस कार्रवाई से प्रोत्साहित होकर जिसमें उसने 1862 में भार और माप को मीट्रिक पद्धति में ऐच्छिक बना दिया था, बर्लिन की 1863 की अंतर्राष्ट्रीय सांख्यिकीय कांग्रेस ने विभिन्न सरकारों को आमंत्रित करने का निश्चय किया कि वे अपने प्राधिकृत विशेष कांग्रेस प्रतिनिधियों को इसमें भेजें ताकि वे इस बात पर विचार करें और रिपोर्ट भेजे कि सोने और चांदी के सिक्कों में तुलनात्मक भार क्या होना चाहिए और ऐसे विवरण तैयार करें जिनके द्वारा अलग–अलग देशों में मुद्रा पद्धतियां नियत की जाएं और जिनके

1. रिपोर्ट ऑफ दि रायल कमीशन आन इंटरनेशनल कायनेज, 1868 पृष्ठ V
2. देखिए रसल एच. बी. इन्टरनेशनल मानेटरी कॉन्फरेंसिस 1898 पृष्ठ 18–25

आधार पर दशमलव प्रणाली के अनुसार एकाकी युनिट का उपविभाजन किया जा सके।[1] इस कांग्रेस के महत्व की अनदेखी नहीं की जा सकती है। इसने हटकर एक नई दिशा दी। इससे पूर्व कांग्रेस के अधिवेशनों में भार और माप की एकरूपता के बारे में अधिकांशतया विचार–विमर्श किया जाता था परन्तु इस कांग्रेस में वह पहलू सिक्कों की एकरूपता के अधीन ही नहीं वरन अलग–अलग कर दिया।[2] यद्यपि यह प्रस्ताव भिन्न प्रकार का था फिर भी इसके गम्भीर परिणामों को झेलना नहीं पड़ता यदि सिक्कों की एकता के प्रश्न तक ही सीमित रखा जाता। लेकिन एक ऐसी परिस्थिति आई जिसने मुद्रा के प्रश्न को भी अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया। जब समान सिक्कों का विद्रोह आगे बढ़ा तो फ्रांस की सरकार ने स्वाभाविक रूप से यह इच्छ व्यक्त की कि उनके सिक्कों की पद्धति को एकरूपता के हित में यूनियन से बाहर अन्य देशों में भी आदर्श के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि उनकी सिक्का–पद्धति पहले ही लेटिन यूनियन द्वारा समेकित क्षेत्र में लागू हो चुकी थी। इस उद्देश्य की दृष्टि से फ्रांसिसी सरकार ने उस समय की ब्रिटिश सरकार से इस बारे में निवेदन किया परन्तु इसके उत्तर में यह कहा गया कि ब्रिटिश सरकार इस प्रस्ताव पर तब तक विचार नहीं कर सकेगी जब तक कि फ्रांस एकल सोने के मानक को स्वीकार न कर ले।[3] इस प्रस्ताव पर हतप्रभ होने के स्थान पर उस समय फ्रांस सरकार इंग्लैंड की सद्भावना प्राप्त करने के लिए इतनी अधिक आतुर थी कि उसने पूर्ण आत्म तुष्टि से ब्रिटिश की उस पूर्वापेक्षा को स्वीकार करने में जरा भी हिचकिचाहट महसूस नहीं की और वास्तव में उसने निर्धारित मार्ग से हट कर 1867 में जब पेरिस में सम्मेलन आयोजित किया गया तो उसने वास्तव में सभा में यह प्रयत्न किया[4] कि ऐसा प्रस्ताव पारित किया जाए जिसका संबंध "समरूप अंतर्राष्ट्रीय सिक्का के लिए यह आवश्यक था कि केवल सोने को ही विश्व की प्रमुख मुद्रा होना चाहिए।" सिक्के की समरूपता के प्रश्न को इतना अधिक महत्व दिया गया कि जिन लोगों ने प्रस्ताव पारित किया था, उन लोगों ने वह ध्यान नहीं दिया कि उन्हें इसकी उपलब्धि के लिए कितना त्याग देना पड़ेगा। शायद यह कहना अधिक ठीक होगा कि उन्हें यह पता नहीं था कि वे अपने निर्णय से विश्व की मुद्रा पद्धति को प्रभावित कर रहे हैं। उन सभी ने यह विचार किया कि वे सिक्के की समरूपता को प्रोन्नत कर रहे थे और उससे अधिक नहीं[5] परन्तु इस निर्णय की मजबूरी के कारण कुछ भी क्यों न हों, परिणाम हानिकारक था क्योंकि विभिन्न एकत्रित देशों द्वारा प्रस्ताव को कार्यान्वित किया जाना था तो सिक्के की समरूपता

1. रसल द्वारा उद्धृत सामने का उद्धरण पृष्ठ 25
2. रसल उद्धरण।
3. देखिए–प्रोफेसर फॉक्सवैल का साक्ष्य, प्रश्न 23, 976 रायल कमीशन आन एग्रीकल्चरल डिप्रेशन इन इंग्लैंड, 1892
4. इसके लिए देखिए–रसल, सामने का पृष्ठ 46
5. हॉलैंड के प्रतिनिधि डॉक्टरमीज के संबंध में माननीय विकला बनाया जाना चाहिए जिन्होंने इस प्रस्ताव से होने वाली हानि की ओर ध्यान आकर्षित किया।

के बारे में सम्मेलन का वास्तविक अंत पूर्णतया ओझल हो गया और प्रस्तावित क्रियान्वयन अन्ततः वास्तविक रूप से समाप्त हो गए। जैसे ही यह कार्य अग्रसर हुआ, वैसे ही चांदी के विमुद्रीकरण के कार्य में तीव्र गति आती गई । इस क्षेत्र में जर्मनी का प्रथम स्थान था। 1870 के युद्ध में फ्रांस को परास्त करने के बाद उस देश ने युनाइटेड एम्पायर ऑफ जर्मनी के लिए सोने की मुद्रा को अपनाने की जल्दबाजी कर अपनी अव्यवस्थित मुद्रा[1] के सुधार में युद्ध की क्षतिपूर्ति का उपयोग किया। 4 दिसंबर, 1871 के कानून ने मुद्रा की यूनिट के रूप में मार्क के साथ इस परिवर्तन को प्राधिकृत किया। इस अधिनियम द्वारा चांदी का विमुद्रीकरण किया गया, परन्तु मौजूदा चांदी के सिक्के विधिमान्य चलार्थ बने रहे यद्यपि उनके मापी सिक्के ढालने पर रोक लग गई और इसके साथ ही साथ 15 से ½ से 1 तक अनुपात में सोने के नये सिक्कों के ढालने पर भी रोक लगा दी गई। चांदी के सिक्कों की पूर्ण विधिमान्य चलार्थ स्वरूप 9 जून, 1873 के कानून द्वारा उनसे छीन ली गई। जिसके फलस्वरूप उनकी स्थिति सहायक मुद्रा[2] तक कर दी गई। शीघ्र ही इस नीति को जर्मन संस्कृति के प्रभावित देशों ने भी अपना लिया।[3] 1872 में नार्वे, स्वीडन और डेनमार्क ने स्केंडेनेवियाई मुद्रा संघ बनाया जो लेटिन मुद्रा संघ के सदृश्य था। इसके द्वारा उन्होंने चांदी के विमुद्रीकरण पर सहमति की जैसा कि जर्मनी द्वारा सहमति की गई थी। इस समझौते में सोने के मानक की स्थापना की गई और वर्तमान चांदी मुद्रा को सहायक प्रतिष्ठा के रूप में ढाल दिया गया तथा 1873 में स्वीडन और डेनमार्क और 1875 में नार्वे द्वारा इसकी अभिपुष्टि की गई। हालैंड ने भी इसी मार्ग की अनुसरण किया। 1872 तक इसका विशुद्ध चांदी मानक था। उस वर्ष हालैंड ने स्वतंत्र रूप से सिक्का ढालने के लिए अपनी टकसाल बंद कर दी यद्यपि पुरानी चांदी की मुद्रा किसी भी राशि तक विधिमान्य चलार्थ बनी रहीं। 1875 में हालैंड ने एक कदम आगे बढाया और अपनी टकसालों में स्वतंत्र रूप से स्वर्ण मुद्रा ढालने का काम किया। हालैंड की नीति जर्मनवादी देशों से कहीं अलग थी। उस नीति के अनुसार हालैंड ने चांदी के स्वतंत्र रूप से सिक्के ढालने का काम आस्थगित कर दिया जबकि जर्मनवादी देशों ने इसका विमुद्रीकरण कर दिया। यहां तक कि लेटिन संघ चांदी के विरुद्ध इस ज्वार का सामना करने के लिए असमर्थ था। चांदी के इस अपवर्जन के फलस्वरूप लेटिन संघ में अतिरिक्त सदस्यों के साथ संघ के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई, जिन्होंने स्वाभाविक

1. 1870 से पूर्व जर्मन मुद्रा के एकीकरण के लिए इस आन्दोलन के लिए देखिए एच.पी.विलीस– "दि वियाना मोनेटरीट्रीटी ऑफ 1857" दि जर्नल ऑफ पालिटिकल इकोनॉमी, खण्ड IV, पृष्ठ 187, और नीचे दिया हुआ।
2. कानून के पाठ के लिए देखिए प्रोफेसर जे.एल. लॉघलिन द्वारा लिखित पुस्तक – "हिस्ट्री ऑफ बायमेटेलिज्म" का अनुलग्नक, न्यूयार्क, 1886
3. देखिए रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑन दि डेप्रिसियेशन ऑफ सिल्वर, 1876ए पृ. XXIX

रूप से चाहा कि देश के अन्दर अवमूल्यन वाली चांदी के बाढ़ की तरह आने के विरुद्ध कुछ बचाव के तरीके अपनाए जाएं। यह आशंका निर्मूल नहीं थी क्योंकि 1873 में बेल्जियम की टकसाल में सिक्का ढालने की चांदी 1871 में ढाली गई चांदी की अपेक्षा तीन गुना अधिक थी। वेल्जियम ने अपनी लाज बचाने के लिए 8 दिसम्बर, 1873 के कानून द्वारा अपने चांदी के 5 फ्रेंक सिक्कों को स्वतंत्र रूप से ढालने का कार्य स्थगित कर दिया। बेल्जियम के इस कार्य द्वारा संघ के अन्य सदस्यों को भी इस प्रकार के उपाय स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। जनवरी, 1874 में पेरिस में संघ के प्रतिनिधियों की बैठक हुई और 1865 में की गई मूल संधि को सहायक संधि के रूप में माना गया तथा अलग–अलग व्यक्तियों से चांदी के उन पांच फ्रेंक सिक्कों की सवंदित राशि तक सीमांकन करके स्वतंत्र रूप से सिक्का ढालने का अधिकार हटाने का पक्का निश्चय किया गया जो वर्ष 1874 के दौरान संघ के प्रत्येक देश द्वारा सिक्के ढाले जाने थे।[1]

1874 के लिए जो अलग–अलग कोटे निर्धारित किए गए थे उनमें 1875 में कुछ वृद्धि की गई परन्तु 1876 में उनमें कमी की गई[2] परन्तु वास्तविक सिक्का ढालने का कार्य इन छोटे–छोटे लक्ष्य तक भी नहीं पहुंच पाया। चांदी की स्थिति से संघ इतना विचलित हुआ कि 1877 में इटली के अपवाद के साथ[3] चांदी के पांच फ्रेंक सिक्कों का ढालना पूर्णतया स्थगित कर दिया गया। फिर भी यह कार्य 5 नवम्बर, 1878 की संधि का प्रारंभिक कार्य ही था। इसके द्वारा लेटिन संघ ने आगे की कार्रवाई होने तक चांदी के स्वतंत्र रूप से सिक्के ढालने के लिए अपनी टकसालों को बंद करने पर सहमति प्रकट की। यद्यपि प्रथम बार अनिश्चित काल के लिए इसको बंद किया गया[4] किन्तु अन्ततः सदा के लिए बंद हो गया। लेटिन संघ के ऐहतियाती उपायों के साथ रूस ने 1876 में चांदी के स्वतंत्र रूप से सिक्के ढालने का कार्य स्थगित कर दिया। किंतु अपवाद यह

---

1. लाघलिन सामने का उद्धरण, पृष्ठ 155
2. संघ के अनेक सदस्यों के लिए सम्मेलनों में निर्धारित कोटे इस प्रकार थे:

मिलियन फ्रेंको में–

फ्रान्स	1874	1875	1876
बेल्जियम	60	75	54
इटली	12	50	36
स्विटरजरलैंड	40	15	10
ग्रीस	8	10	7
	<u>120</u>	<u>150</u>	<u>110</u>

1874 में इटली को अतिरिक्त 20 मिलियन फ्रांक का कोटा निर्धारित किया गया, वही पृष्ठ 155
3. उसे 10 मिलियन फ्रेंक के सिक्के ढालने की अनुमति दी गई।
4. वही पृष्ठ 158

था कि यह कार्य उस राशि तक किया जाना था जिसकी आवश्यकता चीन के साथ उसे अपने व्यापार के प्रयोजनों के लिए थी।[1] और 22 नवम्बर 1878 की इम्पीरियल डिग्री ने यह निवेश किया कि 5 रुबल और 15 कॉपिक से ऊपर सभी सीमा शुल्क सोने[2] में भुगतान किए जाने चाहिए। इसी प्रकार आस्ट्रिया ने भी 1879[3] में स्वतंत्र रूप से सिक्का ढालने का काम स्थगित कर दिया।

अँध महासागर के दूसरी ओर संयुक्त राज्य अमेरिका में एक अन्य महत्वपूर्ण घटना घटी। 1870 में सरकार ने टकसाल के कानून को समेकित करने का इरादा किया जो 1837 से संशोधित नहीं किए गए थे और उन्हें व्यापक कानून में समेकित नहीं किया गया था। 1853 के कानून के अनुसार चांदी डॉलर ही केवल ऐसा सिक्का था जिसे अमरीका की टकसालों में स्वतंत्र रूप से ढाला गया था। परन्तु 1873 के समेकित टकसाल कानून के अनुसार चांदी में डॉलर तकसाल से जारी किए जाने वाले सिक्कों की सूची से निकाल दिया गया और इससे वास्तव में अमरीका में चांदी के स्वतंत्र रूप से सिक्का ढालने का कार्य स्थगित हो गया।[4] इससे पूर्व चांदी के जो डॉलर ढाले गए थे, वे विधिमान्य चलार्थ के रूप में परिचालित होते गए परन्तु जून, 1874 के कानून द्वारा यह अधिकार छीन लिया गया जिसमें यह घोषित किया गया कि "अमरीका में चांदी के सिक्के भुगतान में पांच डालरों से अनधिक राशि के नाम मात्र के मूल्य के लिए जांएगे।"

सोने और चांदी के तुलनात्मक मूल्यों के विस्थापन के कारणों में सोने की तुलना में चांदी के उत्पादन में अधिक वृद्धि होना भी सम्भावित कारण प्रतीत होता।

---

1. रिपोर्ट ऑफ द डायरेक्टर्स ऑफ दि मिंट (टकसाल के निदेशकों की रिपोर्ट), वाशिंगटन, 1893, पृष्ठ 23
2. देखिए—पी. विलीस, "मोनेटरी रिवर्स इन एशिया (रूस में मुद्रा संबंधी सुधार)" जर्नल ऑफ पालिटिक्ल इकॉनॉमी, खण्ड V पृष्ठ 291
3. देखिए – एफ वीसर, "रिजम्पशन ऑफ स्पेसी पेमेंट इन आस्ट्रिम–हंगरी" इन जर्नल ऑफ पालिटिकल इकॉनामी, खंड–एक, पृष्ठ 380-7
4. यह कदम विचित्र विवाद का विषय था। सोने के पक्षधर लोगों ने यह तर्क दिया कि इसे समझ–बूझकर अंगीकार किया गया था। जबकि पक्षधर लोगों ने इसे एक चोरी छिपे कार्य धूर्ततापूर्ण सोचने व धूर्तता पूर्ण षडयंत्र का मिक्षण बताया। प्रोफेसर लाफलिन ने इस अधिनियम से घ्झिरे रहस्य को भलीभांति स्पष्ट किया। उन्होंने 1853 के विधान पर कांग्रेस में की गई बहस के संदर्भ में यह बताया कि कांग्रेस को यह पता था कि सोने और चांदी के बीच अनुपात के परिवर्तन को इन्कार कर वे देश को सोने के मानक पर रख रहे थे। उनके विचार से 1873 के अधिनियम पर व्यर्थ में बहुत अधिक विचार विनिमय हुआ है जिसमें केवल 1853 के,अधिनियम के परिणामों के कानूनी पक्ष पर ध्यान दिया। देखिए – उनका लिखित ग्रंथ–हिस्ट्री आफ वाइमैटलिज्म (द्विधातुवाद का इतिहास) पृ. 80 और 93-95

तालिका IX

सोने और चांदी का सापेक्ष उत्पादन (औंस)

अवधि	कुल	उत्पादन	वार्षिक	औसत उत्पादन	औसत वार्षिक उत्पादन के लिए तालिका संख्या	
	सोना	चांदी	सोना	चांदी	सोना	चांदी
1493-1600	24,266,820	734,125,960	224,693	6,797,463	100	100
1601-1700	29,330,445	1,197,073,100	293,304	11,970,731	130.5	176.1
1701-1800	61,088,215	1,833,672,035	610,882	18,336,720	271.8	269.7
1801-1840	20,488,552	80,115,5495	512,217	20,028,887	227.9	293.1
1841-1870	143,186,224	9,31,091,326	4,772,876	31,038,378	2,124.1	456.6
1871-1890	106,950,802	1,715,039,955	5,347,545	85,751,998	2,375.4	1261:5

आधुनिक समय में बहुमूल्य धातुओं के उत्पादन का इतिहास वर्ष 1493 से प्रारंभ होता है जब अमरीका महाद्वीप की खोज की गई थी। 1493 से 1893 अर्थात् कुल चार सौ वर्ष के उत्पादन के परिणामों के पुनरावलोकन से हमें यह पता चलता है कि प्रथम 100 वर्ष में सोने और चांदी का उत्पादन प्रगमन की समान दर पर बढ़ा है। सोने और चांदी के उत्पादन के आधुनिक इतिहास में प्रथम शताब्दी (1493-1600) के बीच प्रत्येक धातु के वार्षिक औसत के उत्पादन का अनुमान 100 मान लिया जाए तो यह विदित होगा कि आगामी शताब्दी (1601-1700) में सोने के उत्पादन के लिए सूचकांक 130 तक बढ़ा और चाँदी के संबंध में यह संख्या बढ़कर 176 हुई। इस प्रगमन की दर आगामी शताब्दी (1700-1800) में भी बनी रही। इस अवधि में सोने और चाँदी दोनों की संख्या लगभग 270 तक रही और बिना किसी बाधा के यह संख्या 1840 तक बनी रही जबकि संबंधित सूचकांक सोने के लिए 228 और चाँदी के लिए 293 रहे। इस स्थिति से आगे तक दोनों धातुओं के संबंधित उत्पादन में पूर्ण क्रांति आई। आगामी 30 वर्ष (1841-70) की अवधि में सोने का उत्पादन अप्रत्याशित उच्च स्थिति पर पहुँच गया जबकि अपेक्षाकृत ढंग से चाँदी का स्तर पीछे रहा। चाँदी–उत्पादन का सूचकांक केवल 450 तक आगे रहा परन्तु सोने का सूचकांक 2,124 तक बढ़ गया। इस क्रान्ति के बाद प्रति–क्रांति घटित हुई जिसके परिणामस्वरूप 1870 के अंत में स्थिति भलीभांति बदल गई। सोने के उत्पादन में यकायक बाधा आ गई और यद्यपि 1840-70 के बीच इसमें अधिक वृद्धि हुई, यह 1870-93 के बीच स्थिर बनी रही। दूसरी ओर चाँदी का उत्पादन 1841-70 के बीच स्थिर था, वह 1870-93 के बीच तिगुना हो गया। अतः बाद की अवधि में उसका औसत वार्षिक उत्पादन का सूचकांक 1,260 रहा।

सोने के मुकाबले चांदी की कीमत में कमी व अस्त-व्यस्तता आने के कारणों में उत्पन्न विवाद से एक कारण बिल्कुल स्पष्ट था। एक पक्ष का तर्क था कि चांदी का आस्थगन अथवा विमुद्रीकरण न किया जाता तो इसके मूल्य में कभी गिरावट न आती। इस स्थिति को दूसरे पक्ष ने जोरदार चुनौती दी। उसका विश्वास था कि चाँदी के अवमूल्यन का मुख्य कारण इसकी अधिक मात्रा में आपूर्ति तथा तुलनात्मक रूप से चाँदी की अधिक आपूर्ति का तर्क चांदी के स्वर्ण-मूल्य में गिरावट के लिए यथेष्ट कारण है। देखने में ऐसा लगता है कि इस व्याख्या में एक साधारण प्रस्ताव की सम्भावना है। यह राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्रारंभिक सिद्धांतों में से एक सिद्धान्त है कि किसी वस्तु का मूल्य उसकी आपूर्ति के अनुपात में विपरीत गति से भिन्न होता है और यदि चाँदी की सप्लाई में अत्यधिक वृद्धि हो जाती तो क्या सोने के मूल्य की तुलना में चाँदी का मूल्य स्वाभाविक रूप से गिर जाता? आगे दिए गए कुछ ऐसे युक्तिसंगत तथ्य हैं जो इस तर्क का आधार बनाते हैं (देखिए तालिका X)

इस प्रकार प्रस्तुत किए गए तथ्यों से दो निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम निष्कर्ष यह है कि चांदी के तुलनात्मक उत्पादन में अनुमानित अधिक वृद्धि ऐसी अभिधारणा है जिसका वास्तव में कोई आधार नहीं था। इसके विपरीत तुलनात्मक उत्पादन के आँकड़ों पर सिंहावलोकन से ऐसा अजीब तथ्य प्रकट होता है कि अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही चाँदी में वृद्धि के बजाय आनुपातिक रूप से उसमें कमी आई है। उन्नीसवीं शताब्दी की प्रथम चौथाई अवधि को छोड़कर तालिका में दिखाई गई दो शताब्दियों में चाँदी का उत्पादन सोने की तुलना में कम हुआ है।[1] वास्तव में चाँदी का अनुपात इतना कभी भी कम न था जैसा कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम अर्ध भाग में रहा और यहां तक कि 1873 के बाद जैसे उसकी वृद्धि होना शुरू हुई, यह उस परिमाण का आधा भाग भी नहीं पहुँचा जो अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में हो गया था। इन तथ्यों ने दूसरे निष्कर्ष का दावा किया, इसका संबंध सोने के हिसाब से चाँदी का मूल्य सोने की तुलना में उसकी सप्लाई के अनुरूप आगे नहीं सरका। सिद्धान्त के अनुसार चाँदी का मूल्य ऊँचा होना चाहिए था क्योंकि तुलनात्मक दृष्टि से उत्पादन का स्वरूप घट रहा था। दूसरी ओर तुलनात्मक मूल्य और तुलनात्मक उत्पादन के आँकड़ों की बारीकी से जाँच से, जैसा कि आगे की तालिका में दिया गया है, बताया गया है कि बजाय इसके कि उनके बीच नजदीकी संबंध हों उसके विपरीत दिशा इंगित की (देखिए-चार्ट III)। आपूर्ति और मूल्य के विपरीत

1. इस परिप्रेक्ष्य में यह आश्चर्यजनक बात है कि प्रोफेसर डब्लू. लेक्सिस जैसे प्रमुख्ख अर्थ शास्त्री द्विधातुवादी नहीं बन पाये। जिसका कारण यह था कि सोने के साथ स्थायी रूप से अधिक अनुपात की स्थापना के विरुद्ध संघर्षरत चाँदी की अधिक वृद्धि रही। देखिए – उनका निबंध "दि प्रजेंट मानेटरी सिच्येशन (वर्तमान मुद्रा की स्थिति)" इकोनॉमिक स्टडीज ऑफ दि अमेरिकन इकोनॉमिक एसोसियेशन (अमरीकी आर्थिक संघ का आर्थिक अध्ययन), 1986, खंड I, संख्या 4, पृष्ठ 2737-77 मूल्य के हिसाब से चाँदी के उत्पादन को मापने की आदत निस्संदेह इस नितांत आधारहीन विचार के लिए अधिकांशतया उत्तरदायी है।

तालिका X

सोना और चांदी*

तुलनात्मक उत्पादन और तुलनात्मक मूल्य

अवधि	उत्पादन का अनुपात (चांदी की तुलना में सोने का भार द्वारा जैसा कि 1 ग्रेन के अनुपात में)	चॉंदी की तुलना में सोने का अनुपात जैसा कि 1 ग्रेन अनुपात में	उत्पादन के अनुपात में सूचांक	मूल्य के अनुपात में सूचांक	तुलनात्मक उत्पादन और तुलनात्मक मूल्य के बीच सहसंबंध	
					चांदी का तुलनात्मक उत्पादन कभी—कभी अधिकता+	चांदी का तुलनात्मक उत्पादन कभी—कभी अधिकता+
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1681-1700	31.8	14.95	1000	1000	...	...
1701-1702	27.7	15.21	87	101.7	-13	-1.7
1721-1740	22.6	15.10	71	101	-29	-1.0
1761-17-80	31.5	14.40	67	98.3	-33	+1.7
1781-1800	49.4	15.08	155.6	100.8	+55.6	-.8
1801-1810	50.3	15.67	158.0	104.8	+58.0	-4.8
1811-1820	47.2	15.68	148.0	104.9	+48.0	-4.9
1821-1830	32.4	15.82	101.9	105.8	+1.9	-5.8
1830-1840	29.4	15.77	92.4	105.4	-7.6	-5.4
1841-1850	14.2	15.81	44.6	105.8	-55.4	-5.8
1851-1855	4.4	15.45	13.8	103.3	-86.2	-3.3
1856-1860	4.5	15.28	14.0	102.2	-86.0	-2.2
1861-1865	5.9	15.42	18.55	103.1	-81.5	-3.1
1866-1870	6.9	15.52	21.7	103.8	-78.3	-3.8
1871-1875	11.3	16.10	35.5	107.6	-64.5	-7.6
1876-1880	13.2	17.79	41.5	119.0	-58.5	-19.0
1881-1886	17.3	18.81	54.4	125.8	-45.6	-25.8
1886-1890	19.9	20.96	62.6	140.3	-37.4	-40.3
1891-1895	20.0	26.75	62.9	178.9	-37.1	-78.9

*फ्रेंच टकसाल के एम.डी. फेविले के आँकड़ों पर आधारित तालिका, जैसा कि श्री एफ.बी. फोर्ब्स द्वारा "दि बाइमेटालिस्ट" जुलाई, 1897 पृष्ठ 125–28 में दिया गया है।

CHART III

RELATIVE VALUES AND RELATIVE PRODUCTION OF GOLD AND SILVER

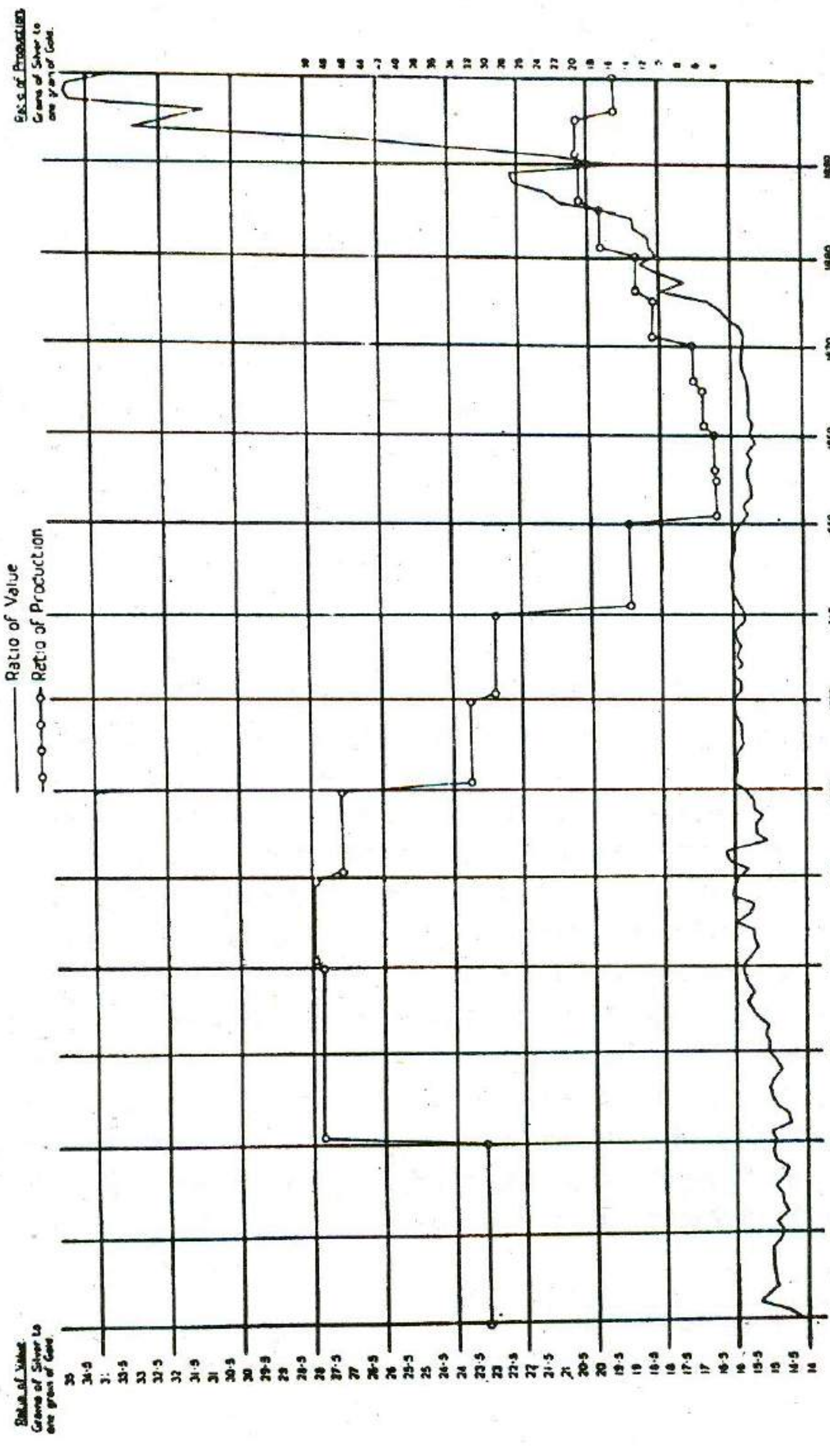

अनुपात के बजाए इससे यह प्रतीत हुआ कि जैसे ही इसकी आपूर्ति में कमी आई वैसे ही इसके मूल्य में गिरावट आई। इतिहास के ऐसे तथ्य होते हुए यह विचार किया गया कि उन्होंने उनको कोई सहायता नहीं दी जिन्होंने चाँदी के मूल्यापकर्ष के लिए पर्याप्त व्याख्या के रूप में विमुद्रीकरण की अपेक्षा अधिक आपूर्ति पर अपना मामला आधारित किया।

इन छोटी–छोटी बातों को छोड़कर 1873[1] के पूर्व और बाद के बीस वर्षों की विचित्र घटना क्रम के कारण यह मामला काफी छो्टा रह गया था। यह कहा गया कि 1848 से प्रारंभ किए गए और वर्ष 1870 के अन्त तक अवधि को 1870 के बाद की अवधि से तुलना की जाए तो ऐसा आकर्षित करने वाला तथ्य उभरता है यद्यपि वे दोनों धातुओं के तुलनात्मक मूल्यों के संदर्भ में एक दूसरे के विपरीत रहे हों कि दोनों अवधियां अपनी तुलनात्मक आपूर्ति में परिवर्तनों के संदर्भ में समान रही हों। तुलनात्मक उत्पादन की दृष्टि से 1870 और 1883 के बीच की अवधि चाँदी की प्रचुरता से भरपूर है। 1848 और 1870 के बीच की अवधि दो बहुमूल्य धातुओं की तुलनात्मक आपूर्ति के परिवर्तनों के संबंध में ऊपर बताई गई अवधि के ठीक समानान्तर है। केवल इस मामले में सोना ही था जो अपनी मात्रा में बढ़ गया। अब यदि ऐसी अधिक आपूर्ति है जिसने दूसरी अवधि (1870-93) में दोनों धातुओं के मूल्य–संबंधों को शासित किया है तो इसे प्रथम अवधि (1848-70) में उनके मूल्य–संबंधों के बारे में सही होना चाहिए। तब तक प्रथम अवधि में दोनों धातुओं के तुलनात्मक मूल्यों और दूसरी अवधि में मूल्यों में कोई उलझन रही? इस बात पर बल दिया गया कि पहली अवधि में दोनों धातुओं के उत्पादन के अनुपातों में दूसरी अवधि के उत्पादन के अनुपात से कहीं अधिक उलझन रही। वास्तव में यदि तुलनात्मक रूप से कहा जाए तो दूसरी अवधि में कुछ भी उलझन नहीं रही जिसके बारे में कुछ कहा जा सकता। फिर भी प्रथम अवधि के दौरान तुलनात्मक मूल्य 1 : 5½ के अनुपात में काफी स्थिर रहा जबकि दूसरी अवधि में यह अनुपात 16.10 तथा 26.75 के बीच के उतार–चढ़ाव में बना रहा। जिन लोगों ने यह तर्क दिया था कि 1873 के बाद चाँदी के मूल्य में गिरावट आई क्योंकि इसकी अधिक आपूर्ति की गई थी वे इस समस्या से घिर गए कि यदि ऐसा था तो सोने के मूल्य में गिरावट क्यों नहीं आई जबकि 1873 से पूर्व सोने की आपूर्ति प्रचुर मात्रा में थी। इसलिए सारा विवाद इस प्रश्न पर केन्द्रित रहा कि इन दो परिस्थितियों में यह अन्तर किस प्रकार बना रहा? यदि प्रथम अवधि में सोने के उत्पादन में भीषण वृद्धि ने चाँदी के मूल्य को 2 प्रतिशत से अधिक नहीं होने दिया तो ऐसा क्यों हुआ कि दूसरी अवधि में चांदी के तुलनात्मक उत्पादन में

1. देखिए–एच. एस. फॉक्सवैल, "बायमेटलिज्म इट्स मीनिंग एंड एम्स (द्विधातुवाद : इसका अर्थ और उद्देश्य)" – दि (ऑक्सफोर्ड) इकनॉमिक रिव्यू (1893) खंड–III पृष्ठ 302

अपेक्षाकृत नाममात्र की वृद्धि ने सोने के मूल्य में इतनी अधिक वृद्धि कर दी? ऐसे एक मामले में नियंत्रक प्रभाव क्या था जो दूसरे मामले में अनुपस्थित रहा? जिन लोगों की यह धारणा थी कि चाँदी का विमुद्रीकरण ही एक ऐसा कारण था जो उसके अवमूल्यन के लिए उत्तरदायी था। उनका तर्क था प्रत्येक दशा में समान होते हुए भी दोनों अवधियों में एक महत्त्वपूर्ण बात पर अंतर था। उन दोनों में इस तथ्य के आधार पर भिन्नता थी कि पूर्व स्थिति में यह आम प्रथा थी कि देश की मानक मुद्रा की परिभाषा सोने की एक निश्चित मात्रा अथवा चाँदी की एक निश्चित मात्रा द्वारा की जाती थी। 1803 से पूर्व दोनों धातुओं को अलग–अलग देशों में अलग–अलग ढंग से आंका जाता था[1] परन्तु उस समय से 1 : 15½ की दर अधिक समान हो गई जिसका परिणाम यह हुआ कि इस अवधि में मुद्रा संबंधी मानक या तो सोने का एक ग्रेन अथवा चाँदी का 15½ ग्रेन रहा।

दूसरी ओर, दूसरी अवधि के दौरान उस "अथवा" चाँदी के विमुद्रीकरण और स्थगन आदेशों द्वारा समाप्त किए गए प्रथम अंतराल की विशेषता थी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रथम अवधि को द्विधातुवाद के परिचालन से लंक्षित किया गया जिसके अन्तर्गत दोनों धातुओं को किसी निश्चित अनुपात पर अंततः परिवर्तनीय रूप से उपयोग किया जा सकता था। दूसरी अवधि में उनका इस प्रकार उपयोग नहीं हो सका जिसका कारण यह तथ्य है कि अंतः परिवर्तन के लिए निश्चित अनुपात रद्द कर दिया गया। अब निश्चित अनुपात के अस्तित्व अथवा अस्तित्वहीनता के बारे में ऐसा सशक्त प्रभाव कहा जा सकता है कि क्या इससे कुल अंतर का पता लग सकता है जिसने इन दो अवधियों को इतने विशेष अंतर से लक्षित किया है? यही वह कारण था जिसने कुल अंतर को लक्षित किया और यह मत द्विधातुविदों का रहा। यह कहा गया कि प्रथम अवधि में जो मुद्रा पद्धति प्रचलित थी, उसके कारण उस अवधि में सोना और चाँदी स्थानापन्न बन गए तथा वे "दो अलग–अलग शक्तियों की एक वस्तु" माने गए। इस प्रकार वर्णित आपूर्ति की शर्तों का उनके विनिमय के अनुपात पर कोई प्रभाव नहीं हुआ जो किसी स्थानापन्न के बिना किसी वस्तु के संबंध में ऐसी स्थिति में होता। ऐसी उन वस्तुओं के बारे में, जो स्थानापन्न हों, एक का तुलनात्मक अभाव दूसरे की शर्तों के संबंध में अपेक्षाकृत अधिक मूल्य नहीं दे सकता, जैसा कि उनके विनिमय के अनुपात में परिभाषित है क्योंकि स्थानापन्न की स्वतंत्रता के कारण दूसरी वस्तु की प्रचुरता से अभाव की पूर्ति की जा सकती है। दूसरी ओर एक वस्तु की तुलनात्मक प्रचुरता विनिमय के अनुपात से कम दूसरी वस्तु के मूल्य का अपकर्ष नहीं कर सकती क्योंकि उसकी अधिकता दूसरी वस्तु के अभाव के फलस्वरूप निर्मित रिक्तता को अवशोषित कर सकती है। जब तक वे प्रतिस्थापन के नियत अनुपात के साथ स्थानापन्न बने रहते हैं तब तक माँग अथवा आपूर्ति से उत्पन्न कोई भी स्थिति

1. इन अनुपातों के लिए देखिए–एच.एच. गिब्स द्वारा लिखित पुस्तक ए. कोलोक्यू ऑन करेंसी के अनुलग्नक, तालिका ख

इस अनुपात को अशांत नहीं कर सकती। दोनों ही एक वस्तु हों और वाणिज्य की आवश्यकताओं से परे किसी भी पद्धति में माँग अथवा आपूर्ति में चाहे कुछ भी परिवर्तन क्यों न हों, वे स्वयं मूल्य के स्तर में ठीक उसी प्रकार प्रकट करते हैं जैसे उनमें से एक मुद्रा माध्यम ही था, परन्तु उनके विनिमय का अनुपात प्रत्येक दशा में अविकल सुरक्षित किया जाएगा।

इसके समर्थन में जेवान्स के कथन को उद्धृत किया गया जिन्होंने कहा था[1] :—

"जब कभी अलग–अलग वस्तुएं इस प्रकार समान प्रयोजनों के लिए लागू होती हैं तब उनकी मांग और विनिमय की शर्तें स्वतंत्र नहीं होतीं। उनके विनिमय का परस्पर अनुपात अधिक भिन्न नहीं हो सकता क्योंकि उनकी उपयोगिताओं के अनुपात द्वारा उसे समीप से परिभाषित किया जाएगा। गोमांस और भेड़ के मांस में बहुत कम अन्तर होता है और लोग उन्हें लगभग बिना किसी अंतर से खाते हैं परन्तु भेड़ के मांस का थोक मूल्य गोमांस की तुलना में औसतन 9:8 से अधिक होता है और इसलिए हमें यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि लोग सामान्यतया इस अनुपात में गोमांस को भेड़ के मांस की अपेक्षा अधिक आदर देते हैं अन्यथा वे महँगा मांस नहीं खरीदेंगे——— जब तक कि उपयोगिता का समीकरण सत्य हो तब तक भेड़ के मांस और गोमांस के बीच के विनिमय का अनुपात 8:9 से अलग न होगा। यदि गोमांस की सप्लाई कम हो जाती है तो लोग इसके लिए ऊँची कीमत अदा नहीं करेंगे परंतु भेड़ का अधिक मांस खाएंगे, और यदि भेड़ के मांस की सप्लाई कम हो जाती है तो लोग अधिक गोमांस खाएंगे ——— वास्तव में हमें गोमांस और भेड़ के मांस को दो अलग–अलग शक्तियों की एक वस्तु मानना चाहिए जैसे 18 कैरेट सोना और 20 कैरेट सोना शायद ही दो माने जाते हैं परंतु उन्हें एक ही वस्तु समझा जाता है जिनमें एक के 20 अंश दूसरे के 18 अंशों के बराबर होते हैं।

"इसी सिद्धांत के अनुसार हमें केयरनैस के विचारों के समान सोने और चाँदी के विनिमय के अनुपात के स्थायित्व की व्याख्या करनी चाहिए जो 18वीं शताब्दी से प्रारंभ होकर हाल ही के वर्षों तक 15:1 से कभी भी विचलित नहीं हुआ। अनुपात की यह स्थिरता नितांत रूप से उत्पादन की राशि अथवा लागत पर निर्भर नहीं हुई और इसे आस्ट्रेलियाई तथा कैलीफोर्नियाई सोने की खोजों के बहुत कम प्रभाव द्वारा सिद्ध किया जाता है जिसने कभी भी चाँदी के सोने की कीमत को लगभग $4^2/_3$% से अधिक नहीं बढ़ाया और 1½% के स्थायी प्रभाव से अधिक प्रतिशत बढ़ाने में असफल हुआ। यह तुलनात्मक मूल्यों की स्थिरता अंशतः इस तथ्य के कारण हो सकती है कि सोने और चाँदी को सही अर्थ में एक जैसे प्रयोजनों के लिए काम में लाया जा सकता है परन्तु सोने की अधिक चमक कई अवसरों पर अच्छी मानी जाती है जब तक कि सोना चाँदी

1. थियोरी ऑफ पालिटिकल इकानॉमी चौथा संस्करण, 1911, पृष्ठ 134-136

से लगभग 15 या 15½ गुना मंहगा हो फिर भी शायद इस तथ्य की व्याख्या 15½:1 के स्थायी अनुपात में पायी जाती है जिसके अनुसार उन धातुओं का विनिमय फ्रांस और अन्य कुछ महाद्वीपीय देशों की मुद्रा में किया जा सकता है। वर्ष के फ्रैंच मुद्रा कानून XI ने एक कृत्रिम[1] समीकरण की स्थापना की–

"सोने की उपयोगिता = 15½ x चाँदी की उपयोगिता और शायद ऐसा किसी बिना

1. यही वह द्विधातु पद्धति की कृत्रिमता है जो दुर्भाग्यवश कुछ लोगों के मस्तिष्क को धुंधला करती हैं तथा अन्य लोगों के मन् को पूर्वाग्रह से ग्रस्त करती हैं। कुछ व्यक्ति यह नहीं समझ पाते कि मुद्रा के रूप में उपयोग की गई दो वस्तुओं के मूल्य निर्धारण किन्हीं अन्य दो वस्तुओं के मूल्य निर्धारण से इतना अलग होना चाहिए जो कानून द्वारा निर्धारित अनुपात द्वारा शासित किया जाए। अन्य व्यक्ति उलझन में पड़ जाते हैं कि यदि सोना और चाँदी का स्थानापन्न जोड़ा है तो क्या उन्हें विधि सम्मत अनुपात की आवश्यकता होनी चाहिए जबकि स्थानापन्न के अन्य जोड़े विधि सम्मत अनुपात के बिना अपनी उपयोगिता के अनुपात के आधार पर केवल परिचालित होते हैं। प्रोफेसर फिशर ने इन कठिनाइयों की व्याख्या इस प्रकार की है :

"——— मुद्रा के दो स्वरूप वस्तुओं बेतरतीब जोड़े में स्थानापन्न होने से अलग–अलग होते हैं। दो प्रमुख स्थापना उपभोक्ता द्वारा एकाकी वस्तु माने जाते हैं। इस प्रकार दो वस्तुओं को एकत्र करने से मांग की दशाओं की संख्या कम हो जाती है परन्तु समस्या में किसी भी अनिश्चितता को प्रारंभ नहीं करती क्योंकि लुप्त दशाएं शीघ्र ही प्रतिस्थापन के नियत अनुपात द्वारा शीघ्र ही आपूर्ति की जानी हैं। इस प्रकार यदि गन्ने की दस पौंड शक्कर चुकंदर की ग्यारह पौंड शक्कर के समान एक जैसे प्रयोजन की पूर्ति कर देती है तो उनके प्रतिस्थापन का नियत अनुपात 10:11 का होगा ——— ऐसे मामलों में यह नियत अनुपात आम आवश्यकता को पूरा करने के लिए दो वस्तुओं की तुलनात्मक क्षमताओं पर आधारित है और उनके मूल्यों पर नितांत पूर्ववर्ती है ——— प्रतिस्थापन अनुपात प्रकृति द्वारा निर्धारित किया जाता है और इसके एवज में मूल्य का अनुपात निर्धारित किया जाता है। "फिर भी मुद्रा के एकाकी मामले में प्रतिस्थायी का कोई नियत अनुपात नहीं है ——— हम तुलनात्मक मिठास की शक्ति, तुलनात्मक पोषण की शक्ति, माँगों की पूर्ति करने के लिए अन्य क्षमता, धातुओं की आंतरिक क्षमता तथा उनके मूल्यों की स्वतंत्रता को व्यवहार में नहीं लाते। इसके बजाए हम तुलनात्मक क्रय शक्ति को व्यवहार में लाते हैं। हम धातु में ही उपयोगिता को नहीं देखते परन्तु उन वस्तुओं में उपयोगिता को देखते हैं जो धातु से खरीदी जाएंगी। हम उनकी संबंधित वांछनीयताओं अथवा उपयोगिताओं को शक्कर को सौंप देते हैं ——— इससे पूर्व कि हम उनकी कीमतों का पता करें। परन्तु हमें सोने और चाँदी के तुलनात्मक परिचालक मूल्य का पता करना चाहिए ताकि हम यह जान सकें कि किस अनुपात में हम उनकी कीमत स्थापित करते हैं। हमारे लिए प्रतिस्थापन का अनुपात संयोगवश कीमत का अनुपात है। मुद्रा के दो रूपों का मामला विरल है। वे प्रतिस्थायी होते हैं परन्तु वे प्रतिस्थापन के साथ कोई प्राकृतिक अनुपात नहीं रखते अपितु उपभोक्ता के कार्य–निष्पादन पर आश्रित होते हैं।"

ऊपर बताए गए विचारों ——— उन व्यक्तियों द्वारा अनदेखी की जाती हैं जो इस बात की जांच करते हैं कि नियत वैध अनुपात पहले से ही निश्चित आपूर्ति और मांग की पद्धति पर पुनः आरोपित किया गया है और इससे वे यह सिद्ध करते हैं कि यह अनुपात पहले से ही असफल होना निश्चित है ——— अनुरूपता ——— अप्रामाणिक होती है ——— सोना और चाँदी ——— पूर्णतया अनुरूप नहीं होते यहाँ तक कि दो प्रतिस्थापन के साथ अनुरूपता स्थापित नहीं कर पाते क्योंकि मुद्रा के दो स्वरूपों के कारण प्रतिस्थापन के उपभोक्ताओं के प्राकृतिक अनुपात नहीं होते हैं इसलिए कृत्रिम अनुपात के लिए स्थान दिखाई देता है ——— "–परचेजिंग पावर ऑफ मनी (मुद्रा की क्रय शक्ति), 1911, पृ0 376-77."

कारण नहीं है कि वोलोवस्की और हाल के अन्य फ्रांसिसी अर्थशास्त्रियों ने सोना और चाँदी के संबंधों में गड़बड़ को दूर करने में महत्वपूर्ण प्रभाव का श्रेय प्रतिस्थापन के कानून को दिया है।" यह बात मान भी ली जाए कि 1873 से पूर्व यह अनुपात कि द्विधातु के कानून की क्षतिपूरक कार्रवाई के कारण सुरक्षित रखा गया तो क्या यह कहा जा सकता है कि इसे 1873 के बाद अनुरक्षित किया जाना था यदि कानून को आस्थगित नहीं किया जाता? समझौता न किए जाने वाली सकारात्मक स्थिति, जैसी कि द्विधातु के समर्थकों ने पैदा की, को बनाए रखना यह मानना है कि द्विधातुवाद सभी दशाओं में कार्य कर सकता है। सच बात तो यह है कि यद्यपि यह कुछ स्थितियों में काम कर सकता है। यह दूसरी, परिस्थितियों में काम नहीं कर सकता है। इन सभी दशाओं का अच्छा विवरण प्रोफेसर फिशर द्वारा किया गया है।[1] द्विधातुवाद के अन्तर्गत प्रश्न यह है कि क्या सोना और चाँदी के बुलियन के बीच बाजार का अनुपात वही होगा जो उन सोना और चाँदी के सिक्कों के बीच होता है जो स्वतंत्र रूप से सिक्कों में ढाले जाते हैं और जिनमें असीमित विधिमान्य चलार्थ शक्ति होती है। अब यह मान लिया जाए कि सोने के बुलियन की तुलना में चाँदी के बुलियन की आपूर्ति में वृद्धि की गई है तो स्पष्ट रूप से टकसाल और बाजार के अनुपात में भिन्नता होगी। क्या द्विधातु के कानून में क्षतिपूरक कार्रवाई संतुलन को पुनः प्रतिष्ठित कर सकती है? ऐसा करने में यह सफल भी हो सकती है अथवा असफल भी हो सकती है। यदि चाँदी के बुलियन की आपूर्ति में वृद्धि होती है और सोने के बुलियन में कमी होती है और ये दोनों इस प्रकार हों कि चाँदी की मुद्रा में ढालने से ज्योंही ये कमी आ जाए तथा सोने को मुद्रा से निकालने से सोने में वृद्धि आ जाए तो उन दोनों को बुलियन के समान पुराने स्तर पर लाया जा सकता है और इस प्रकार द्विधातुवाद

---

1. "एलीमैंट्री प्रिंसिपल्स ऑफ इकनॉमिक्स, 1912, पृ0 228-29। प्रोफेसर फिशर ने जो रेखाचित्र दिए हैं उनमें उनका कहना है कि यद्यपि वह यह अर्थ नहीं लगाते कि द्विधातुवाद की सफलता या असफलता इस प्रश्न पर आधारित है कि क्या दोनो धातुएं परिचालन के लिए अनुरक्षित की जाती हैं या नहीं की जाती । ऐसे रेखाचित्र के लिए जिसमें वे द्विधातुवाद की असफलता दिखाते है— आकृति 14 (ख) – उनकी फिल्म (एक) यह प्रदर्शित करती है कि सोने को परिचालन से पूर्णतया अलग कर दिया गया है, जबकि रेखाचित्र में उन्होंने द्विधातुवाद की सफलता प्रदर्शित की है— आकृति 15 (ख) उनकी फिल्म (एफ) यह प्रदर्शित करती है कि सोने को केवल आंशिक रूप से परिचालन से बाहर किया गया है। परन्तु ऐसा कोई कारण नहीं लगता ताकि यह मान लिया जाए कि कोई तीसरी संभावना नहीं हो सकती, अर्थात, कि जब आकृति 14 (ख) के अनुसार फिल्म की स्थिति एक होती है—यह एक ऐसी संभावना है जिसमें द्विधातुवाद की सफलता निहित है यद्यपि दोनों धातुओं में से एक धातु पूर्णतया परिचालन से बाहर हो जाती है। द्विधातुवाद की सफलता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दोनों धातुओं को परिचालन में रहना चाहिए। इसकी सफलता इस बात पर आधारित है कि क्या दोनो सिक्कों के बीच वैध रूप से स्थापित दोनों सर्राफों के तुलनात्मक मूल्यों को फिर से लाने में क्षतिपूरक कार्रवाई की जाए अथवा न की जाए। यदि इसे उसकी उपलब्धि में सफलता मिलती है तो अनुपात सुरक्षित रखा जाएगा चाहे क्षतिपूरक कार्रवाई किसी एक धातु को पूर्णतया परिचालन से बाहर कर दे।

में सफलता होगी, अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि दोनों बुलियनों का बाजार अनुपात टकसाल के अनुपात के समान हो जाएगा। परन्तु यदि चाँदी के बुलियन की आपूर्ति में वृद्धि और सोने में कमी ऐसी हो कि चाँदी के बुलियन को मुद्रा में ढालने से चाँदी के बुलियन का स्तर पुराने स्तर पर आ जाता है परन्तु सोने के बुलियन को मुद्रा से बाहर करने पर सोने के बुलियन का स्तर पुराने स्तर पर आने में पर्याप्त नहीं होता अथवा मुद्रा से सोने का अलग करना सोने के बुलियन के स्तर को पुराने स्तर तक पहुँचा देता है परन्तु चाँदी को सिक्के में ढालने से चाँदी–बुलियन के स्तर को पुराने स्तर तक नहीं पहुँच पाता तो द्विधातुवाद को असफल होना चाहिए, अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि दोनों बुलियनों का बाजार अनुपात इन दोनों सिक्कों के मध्य विधिसम्मत स्थापित टकसाल अनुपात से अलग रहेगा।

इन दोनों संभावनाओं में से किस संभावना के अंतर्गत 1873 के बाद ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुई जिनका ह्रास हुआ? यह ऐसा प्रश्न है जिसके बारे में कोई भी निश्चित रूप से नहीं कह सकता। यहाँ तक कि जैवॉन्स भी बाद की अवधि में इसकी सफलता के बारे में अधिक आशावादी नहीं थे जिन्होंने पूर्व–अवधि में द्विधातु के कानून की सफलता को स्वीकार किया था।[1]

"द्विधातुवाद का प्रश्न ऐसा है जो कोई संक्षिप्त और सरल उत्तर को स्वीकार नहीं करता। मुख्यतया यह एक ऐसी समस्या है जिसका हल नहीं ढूंढा जा सकता। इसमें कई परिवर्तनीय संख्याएं और कई स्थायी संख्याएं निहित होती हैं। दूसरी स्थिति में या तो ये शुद्ध रूप से जानी नहीं जाती अथवा कई मामलों में बिल्कुल ही अज्ञात होती हैं -----" स्थिति चाहे कुछ भी क्यों न हो यह निश्चित है कि द्विधातु पद्धति के अंतर्गत टकसाल–अनुपात और बाजार–अनुपात के मध्य भिन्नता अवश्य कम होनी चाहिए अपेक्षाकृत जहाँ द्विधातु पद्धति नहीं होती। जब कभी टकसाल–अनुपात से बाजार–अनुपात भिन्न होता है तो द्विधातु कानून के अंतर्गत क्षतिपूरक कार्रवाई–संतुलन को पुनर्जीवित करती है और यदि यह पुनर्जीवित करने में जहाँ कहीं भी असफल होती है यह इन दोनों अनुपातों के बीच की खाई को भरने में सफल हो जाती है। इस प्रकार की स्थिति में यह तर्क देना ठीक है कि यदि 1873 के बाद चाँदी का विमुद्रीकरण न किया गया होता तो सोने और चाँदी के बीच अनुपात शायद सुरक्षित कर लिया गया होता क्योंकि यह स्थिति पूर्व–अवधि के मुद्रा–संबंधी अशांत वातावरण में विद्यमान थी। किसी भी स्थिति में यह निश्चित है कि इन दोनों धातुओं के बीच बाजार का अनुपात उस सीमा तक टकसाल–अनुपात से अलग नहीं हो सका जैसाकि वास्तव में था।"[2]

अतः 18 वें दशक में मुद्रा संबंधी कानून की दुःखद व्याख्या है कि यदि इसने वास्तव में

1. इनवैस्टीगेशन आदि (संपादित फॉक्सवैल) पृ0 317.
2. फिशर परचेजिंग पावर ऑफ मनी, 1911 पृष्ठ 134–35

किसी उद्देश्य के लिए इसके सृजन में सहायता नहीं की तो यह समस्या पहले जैसी ही अज्ञात थी और इसने निश्चय ही स्थिति को अधिक बिगाड़ने में सहायता की। 1870 से पूर्व सभी देशों में आम मुद्रा नहीं थी। भारत और पश्चिम यूरोप के कुछ ऐसे देश थे जिनका नितांत आधार चाँदी था और इंग्लैंड तथा पुर्तगाल जैसे अन्य देशों में विशेष रूप से सोना ही आधार था। फिर भी इनमें से कोई भी परस्पर लेन–देन में आम मानक–मूल्य का अभाव महसूस नहीं कर पाए। जब तक फ्रांस और लैटिन संघ में नियत अनुपात पद्धति विद्यमान थी तो वास्तव में यह समस्या बनी रही क्योंकि इस समस्या के अंतर्गत दोनों धातुएं एक होकर काम करती रहीं और इस प्रकार एक आम मानक तैयार हुआ यद्यपि सभी देशों ने एक जैसी धातु का उपयोग अपनी मानक मुद्रा के रूप में नहीं किया अतः ऐसे अधिकांश देशों के लिए यह तुलनात्मक उपेक्षा का मामला था जिन्होंने किस धातु को उस एक देश के समान उस समय तक उपयोग किया जिसने किसी भी निश्चित परिभाषित अनुपात से उपयोग किया था। इस नियत अनुपात के समाप्त करने से इस मामले में अधिक चिंता उत्पन्न हो गई जबकिं यह मामला तुलनात्मक उपेक्षा का था। प्रत्येक देश जिसने आम मुद्रा के बिना आम अंतर्राष्ट्रीय मानक के लाभ का आनंद उठाया, उसे ऐसे संघर्ष का सामना करना पड़ा जिसमें आम मानक के प्राप्त करने के लिए अपनी मुद्रा के त्याग अथवा अपनी मुद्रा से बंधे रहने और आम मानक के लाभ न उठाने के मध्य विकल्प था। आम मानक की आवश्यकताएं अंततोगत्वा इसकी असफलता की ओर उन्मुख हुई और यह स्थिति इस प्रकार थी कि जैसी कि उसे होना चाहिए था। परंतु लोगों को अधिक हानि और कुछ भारी बोझ के दबने से पूर्व यह तथ्य नहीं था कि उसके अभाव का वस्तुतः उनके लिए क्या अर्थ हुआ।

अध्याय-3

रजत मानक तथा इसकी अस्थिरता के दोष

विनिमय साम्य के भेद के आर्थिक परिणाम अत्यंत व्यापक स्वरूप वाले थे। इसने व्यापारिक विश्व को ठीक-ठीक दो निश्चित समूहों में विभक्त कर दिया था। एक अपनी मानक मुद्रा के रूप में सोने का प्रयोग करने वाला समूह तथा दूसरा चांदी का प्रयोग करने वाला समूह था। जिस समय सोने की एक निश्चित मात्रा चांदी की निश्चित मात्रा के बराबर होती थी जैसा कि सन् 1873 के पहले था, उस समय अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन व सौदों के लिए इस बात का कोई अधिक महत्व नहीं था कि कोई देश स्वर्णमान वाला है या रजतमान वाला, अर्थात उसकी मुद्रा सोने की है या चांदी की है और न उस समय इस बात से कोई अंतर पड़ता था कि इन दोनों मुद्राओं में से उसके दायित्वों की पूर्ति व अदायगी किस मुद्रा में होती है। परन्तु जब निश्चित सममूल्य की गड़बड़ के कारण यह निर्धारण करना संभव नहीं रहा कि प्रतिवर्ष तथा यहां तक कि प्रत्येक महीने में चांदी की अमुक मात्रा, सोने की अमुक मात्रा के बराबर है अर्थात् दोनों की मात्रा के मूल्यों में प्रतिवर्ष यहां तक कि प्रतिमास परिवर्तन होने लगा, तो मूल्य की इस यथार्थता, धन संबंधी विनिमय की आत्मा ही ने जुए की अनिश्चितता को उत्पन्न किया। इसमें संदेह नहीं, कि सभी देश जटिलताओं व समस्याओं के इस भंवर में एक समान रूप में उसी सीमा तक नहीं फंसे थे फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भाग लेने वाले किसी भी देश के लिए इसमें फंसने से बचना असंभव था। यह बात भारत के सम्बन्ध में सच थी क्योंकि इसकी स्थिति किसी अन्य देश जैसी नहीं थी। भारत एक रजतमान वाला देश था जो स्वर्णमान वाले एक देश के साथ घनिष्ठ रूप से बंधा हुआ था जिससे इसका आर्थिक तथा वित्तीय जीवन उन अंध शक्तियों की दया पर निर्भर रहता था जो स्वर्ण तथा रजत (चांदी) के तुलनात्मक मूल्यों पर कार्य करती थी। ये शक्तियां रुपए तथा पौंड के विनिमय को नियंत्रित करती थीं।

इस गिरावट से उन देशों का व्यय भार बढ़ गया जिन्हें स्वर्ण में भुगतान करना पड़ता था। ऐसे देशों में भुगतान का सबसे अधिक भार भारत सरकार के ऊपर था। अपनी राजनीतिक संरचना की अपेक्षाओं के कारण उस सरकार के लिए यह आवश्यक था कि वह कुछ भुगतान इंग्लैंड में करे। ऐसे भुगतानों में निम्नलिखित शामिल थे :– (1) ऋण

पर तथा प्रत्याभूत रेलवे कम्पनियों के स्टॉक पर ब्याज; (2) भारत में तैनात यूरोपीय सेना के रखरखाव के कारण होने वाला व्यय (3) पेंशन तथा निष्प्रभावी भत्ते जो इंग्लैंड में देय होते थे। (4) गृह प्रशासन का खर्च [1] (5) भारत में प्रयोग तथा उपयोग के लिए इंग्लैण्ड में खरीदा गया माल। चूंकि इंग्लैण्ड स्वर्णमान वाला देश था अतः उक्त भुगतान सोने में ही किए जाने आवश्यक थे। परन्तु भारत सरकार के जिस राजस्व में से इन भुगतानों को किया जाता था वह राजस्व चांदी में प्राप्त होता था जो कि देश की एक मात्र विधिमान्य मुद्रा थी। यह बात स्पष्ट है कि यद्यपि स्वर्ण भुगतान एक निश्चित मात्रा में होते थे, परन्तु चांदी के स्वर्ण मूल्य में गिरावट होने के साथ ही उनके भार में सममूल्य पर वृद्धि होना अवश्यंभावी था। परन्तु स्वर्ण भुगतानों की मात्रा निर्धारित नहीं थी। वे निरन्तर वृद्धि की दिशा में अग्रसर होते रहे जिससे कि रुपए के रूप में मूल्य में, वृद्धि, उनकी मात्रा में वृद्धि के कारण तथा माध्यम अर्थात् स्वर्ण का मूल्यांकन जिसमें वे देय होते थे, के संकुचन के कारण भी होती थी। इस दोहरी उगाही ने भारत के राजस्व को कितना अधिक घटाया, इसका युक्ति युक्त प्रमाण तालिका 11 में दिए गए आंकड़ों से मिलता है।

सरकार की वित्त व्यवस्था पर ऐसे बढते हुए भार का कितना प्रभाव पडता था, उसकी कल्पना भली-भांति की जा सकती है। सरकार की स्थिति लगातार बढ़ते हुए भार से अर्थ संकट के कारण पहले उलझनपूर्ण हुई और बाद में बिल्कुल निराशाजनक हो गई। उसने सरकार की वित्त व्यवस्था में ऊंचे कर लगाने एवं कठोर बचत की नीति लागू की। वर्ष 1872-73 से भारतीय बजट के स्रोत वाले पक्ष का विश्लेषण करने पर हमें पता चलता है कि कोई भी ऐसा वर्ष नहीं था जिसके समाप्त होने से पहले देश के वर्तमान करों व चुंगी में वृद्धि न की गई हो। वर्ष 1872-73 में "प्रान्तीय उपकर की उगाही आरंभ हुई। वित्तीय वर्ष 1875-76 में स्पिरिट पर उत्पादन कर में एक रुपया प्रति गैलन की दर से वृद्धि हुई। वर्ष 1877-78 में मालवा अफीम पर पास डियूटी (शुल्क) प्रति पेटी (चैस्ट) 600 रुपये से बढ़ाकर 650 रुपये कर दी गई। वर्ष 1878-79 में लाइसेंस कर तथा स्थानीय दरों में वृद्धि की गई और अगले वर्ष मालवा अफीम शुल्क में पचास रूपये प्रति पेटी वृद्धि हुई। इन करों व महसूलों की सहायता से सरकार को आशा थी कि इनसे उसकी वित्तीय स्थिति को पर्याप्त सहारा मिल जाएगा व उसमें सुधार हो जाएगा। 1882 के अंत तक, उसने आर्थिक दृष्टि से बिल्कुल सुरक्षित महसूस किया, यहां तक कि उसने कुछ करों को वापस कर दिया इसके लिए उसने उत्तर पश्चिम प्रान्तों में पटवारी उपकर तथा सीमा शुल्कों को कम कर दिया। परन्तु विनिमय में तेज गति से होने वाली गिरावट ने यह दर्शा दिया कि आगे और कराधान का सहारा लेना आवश्यक हो गया है जिससे पाउण्ड के भुगतान के मूल्य में हुई वृद्धि का सामना किया जा सके और उसे पूरा किया जा सके। इसलिए वर्तमान भार में 1886 में आय कर, 5 प्रतिशत शुल्क आयातित तथा अज्वलनशील

1 1920 के सुधार अधिनियम (रिफार्म एक्ट) के समय से इस वर्ष जो मांग "राजनैतिक" थी उसे ब्रिटिश प्राक्कलन में रख दिया गया है।

तालिका-11

स्वर्ण भुगतानों की रुपये मूल्य में वृद्धि[1]

वित्तीय वर्ष	वर्ष के लिए विनिमय की औसत दर		वर्ष के शुद्ध पाउंड भुगतान की व्यवस्था करने के लिए आवश्यक कुल अधिक रुपया जो उससे अधिक है जिसकी 1874-75 कें पाउंड में भुगतान को पूरा करने के लिए आवश्यकता है	निम्न के कारण इस आधिक्य की राशि	
				1874-75 की तुलना में विनिमय दर में गिरावट	1874-75 की तुलना में स्वर्ण भुगतान में वृद्धि
	सिक्के		रुपया	रुपया	रुपया
	शिलिंग	पैंस			
1875-76	1	9.626	86,97,980	41,13,723	45,84,257
1876-77	1	8.508	3,15,06,824	1,44,68,234	1,70,38,590
1877-78	1	8.791	1,30,05,481	1,14,58,670	1,15,46,811
1878-79	1	7.794	1,85,23,170	1,04,16,718	81,06,452
1879-80	1	7.961	39,23,570	1,65,37,394	−1,26,13,824
1880-81	1	7.956	3,12,11,981	1,92,82,582	1,19,29,399
1881-82	1	7.895	3,18,19,685	1,98,76,786	−1,19,42,899
1882-83	1	7.525	62,50,518	1,86,35,246	2,48,85,764
1883-84	1	7.536	3,44,16,685	2,33,46,040	1,10,70,645
1884-85	1	7.308	1,96,25,981	2,48,03,423	51,77,442
1885-86	1	6.254	1,82,11,346	2,54,95,337	−4,37,06,683
1886-87	1	5.441	4,69,16,788	4,46,68,299	22,48,489
1887-88	1	4.898	4,63,13,161	4,96,60,537	−33,47,376
1888-89	1	4.379	9,00,38,166	6,59,71,998	2,40,66,168
1889-90	1	4.566	7,75,96,889	6,06,98,370	1,68,98,519
1890-91	1	6.090	9,06,11,857	4,65,48,302	4,40,63,555
1891-92	1	4.733	10,44,44,529	6,54,52,999	3,89,91,530

पैट्रोलियम पर भी और शामिल कर दिया गया। नमक कर भारत में दो रुपये से अढ़ाई रुपये तथा बर्मा में 3 आने से बढ़ाकर एक रुपया प्रति मन कर दिया गया। उत्तर पश्चिम प्रान्तों में जो पटवारी उपकर 1882 में निरस्त कर दिया गया था उसे 1888 में पुनः लगा दिया गया। आयातित स्पिरिट पर शुल्क की दरों को तथा स्पिरिट पर उत्पादन शुल्क को 1890 में केवल बढ़ाया ही नहीं गया, बल्कि इन्हें बाद में, प्रत्येक प्रान्त में लागू कर दिया गया। 1893 में माल्टा शराब पर उत्पादन शुल्क लगा दिया गया और दूसरा उत्पादन

1. 1843 की भारतीय मुद्रा समिति के पृष्ठ 270 पर परिशिष्ट 2 में दिए गए आंकड़ों से संकलित।

शुल्क नमकदार मछली पर छह आना प्रति मन की दर से लगा दिया गया। 1882-83 से उगाहे गए शुल्कों तथा करों से निम्नलिखित धनराशि प्राप्त हुई थी[1]:—

स्रोत	1882-83 रुपये	1892-93 रुपये
नमक	5,67,50,000	8,14,90,000
उत्पादन शुल्क	3,47,50,000	4,97,90,000
सीमा शुल्क	1,08,90,000	1,41,80,000
निर्धारित कर	48,40,000	1,63,60,000

यह सब अतिरिक्त भार स्वर्ण भुगतान के मूल्यों में हुई वृद्धि के अनुसार रुपये में भुगतान करने के कारण हुआ था और "यदि विनिमय दर में गिरावट आती तो इस भार को बढ़ाना आवश्यक न होता।"[2] स्रोतों में इस वृद्धि के साथ-साथ भारत सरकार ने प्रशासन पर होने वाले खर्च में भी मितव्ययता को लागू किया। अपने इतिहास में पहली बार सरकार ने बाहर से आए अंग्रेजों के स्थान पर देश के मूल निवासियों की अपेक्षाकृत सस्ती एजेंसियों को लगाने के विकल्प की ओर ध्यान दिया। 1870 से पहले इस रूप में मितव्ययता को लागू करने का क्षेत्र बहुत सीमित था। 1853 के सिविल सर्विस रिफार्म (नागरिक सेवा सुधार, 1853)[3] द्वारा उन पदों पर भारतवासियों की नियुक्ति का मार्ग खुल गया जो 1793[4] के अधिनियम के अनुसार पारम्परिक सिविल सर्विस के सदस्यों के लिए आरक्षित थे। परन्तु इस सुधार से प्रशासन के खर्च में कोई किफायत होने में सहायता नहीं मिली, क्योंकि भारतीय सदस्य भी सिविल सेवा के अंग्रेज सदस्यों के समान ही वेतन के उच्च वेतनमान लेते थे। जब 1870 का अधिनियम (33 विक.सी.3) पारित हुआ और उससे परंपरागत सिविल सेवा के लिए आरक्षित स्थानों पर गैरपरंपरागत भारतीयों के नामांकन द्वारा निम्न वेतनमानों पर नियुक्ति की अनुमति मिल गई तो भारत सरकार के समक्ष किफायत का वास्तविक मार्ग प्रशस्त हो गया। दबावग्रस्त भारत सरकार ने इस अधिनियम द्वारा प्रस्तुत किफायत की संभावनाओं का लाभ उठाया। सरकार के खर्च में कमी करने में सरकार की इतनी अधिक प्रबल रूचि थी और किफायत करने की इतनी अधिक आवश्यकता थी कि कुशल प्रशासन के लिए मांग में वृद्धि होते हुए भी, वह पारंपरिक सिविलियनों की अपेक्षाकृत अधिक खर्चीली व्यवस्था के स्थान पर गैर—पारंपरिक सिविलियनों की कम

1. भारतीय मुद्रा समिति की रिपोर्ट, 1893, परिशिष्ट II, पृष्ठ 263
2. जे.ई.ओ. कोनोर, भारतीय मुद्रा समिति की रिपोर्ट, 1898 परिशिष्ट दो, पृष्ठ 182.
3. लोक सेवा आयोग की रिपोर्ट—सी. 5327-1887
4. अधिनियम का यह प्रावधान, 1861 के अधिनियम द्वारा पुनः लागू किया गया है

खर्चीली/व्यवस्था को प्रतिस्थापित करने की ओर अग्रसर हुई। जिस पैमाने पर यह प्रतिस्थापन किया गया, वह किसी भी रूप में कम नहीं था, क्योंकि हम देखते हैं कि 1874 से 1889 के बीच इंग्लैंड में भर्ती किए गए पारम्परिक सेवा वाले व्यक्तियों की संख्या में 22 प्रतिशत से अधिक की कमी हुई और इसमें आगे लगभग 12 प्रतिशत की और कमी होने की आशा थी। यह कमी साधारणतया पारम्परिक सिविलियनों के लिए आरक्षित पदों पर गैर–पारम्परिक सिविलियनों की नियुक्ति के कारण आई[1] प्रशासन में एक महंगी व्यवस्था के स्थान पर एक सस्ती व्यवस्था को प्रतिस्थापित करने के अलावा सरकार ने विभागीय फिजूल खर्ची की वृद्धि में कटौती को लागू करके राहत प्राप्त करने का भी प्रयास किया। उसने नित्य बढ़ती हुई विभागीय फिजूलखर्ची[2] वाली मदों पर कैंची चलाई। राजस्व को बढ़ाने व खर्चों में कटौती करने के बहादुरीपूर्ण प्रयास के बावजूद भी गिरते विनिमय की अवधि के दौरान सरकार की वित्तीय स्थिति कभी भी समृद्धिशाली नहीं हुई, जैसा कि तालिका XII में दर्शाया गया है।

इससे भी अधिक खेदजनक बात वित्तीय कठिनाइयों के कारण सार्वजनिक निर्माण के उपयोगी कार्यों के लिए धन जुटाने में सरकार के असमर्थ होने की थी। भारत की जनता का कल्याण देश में उपलब्ध स्रोतों से सर्वोत्तम लाभ उठाने पर निर्भर करता है; परन्तु लोगों के अन्दर जोखिम उठाने व उद्यम करने की बहुत ही कम भावना व हिम्मत है। अतएव, इस कार्य का भार भारत सरकार के कंधों पर आ गया है। यह कार्य देश को सतत आर्थिक जीवन की दो मुख्य आवश्यकताओं अर्थात परिवहन प्रणाली तथा सिंचाई के नेटवर्क को प्रदान करना है। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए सरकार ने "असाधारण सार्वजनिक निर्माण कार्यों" को विकसित करने की नीति की शुरूआत की थी। इन कार्यों के लिए वित्तीय व्यवस्था पूंजी उधार लेकर की गई थी। ऐसे उधार व कर्ज के लिए जैसी कि आशा थी, भारत ने कोई बाजार प्रदान नहीं किया, क्योंकि यहां के लोग इतने गरीब हैं और उनकी बचत इतनी कम है कि वे अपेक्षित पूंजी व्यय का थोडा सा हिस्सा भी नहीं दे सकते। अतः निर्धन लोगों की सभी सरकारों की भांति, भारत सरकार को उन धनी देशों की ओर दौड़ना पड़ा जिनके पास उधार देने के लिए फालतू पूंजी थी। दुर्भाग्यवश, ये सभी देश स्वर्ण मान वाले थे। जब तक यह कहना संभव रहा कि स्वर्ण की अमुक मात्रा, चांदी की अमुक मात्रा के बराबर है तब तक इंग्लैंड का निवेशक इस बात के प्रति उदासीन रहा कि भारत सरकार की प्रतिभूतियां रुपया प्रतिभूतियां थीं या पाउण्ड प्रतिभूतियां थीं। परन्तु चांदी के स्वर्ण मूल्य में गिरावट के कारण रुपया प्रतिभूति के स्वर्ण मूल्य में भी गिरावट आई। अतः एक समय जिसे सुरक्षित निवेश माना जाता था वह अब सुरक्षित

1. मि. जोकिन्स का साक्ष्य, प्र. 12 "ईस्ट इंडिया (सिविल सर्वेंटस) पर प्रवर समिति 1890 का सी 327 एच.
2. कलकत्ता सिविल वित्त समिति की रिपोर्ट, 1886 सिविल वित्त आयुक्त, 1887 की भी रिपोर्ट, जिसने समिति के भंग होने के बाद रिपोर्ट को तैयार किया।

नहीं रहा। इस स्थिति ने सरकार को, उसके असाधारण सार्वजनिक निर्माण के कार्यों के लिए वित्त व्यवस्था के मामले में कठिनाई में डाल दिया। तालिका XIII में दिए गए आंकड़े अध्ययन करने योग्य हैं।

अंग्रेज निवेशक रुपया प्रतिभूतियों में निवेश नहीं करते थे। भारतीय रुपया प्रतिभूतियों के लिए महत्वपूर्ण ग्राहक हाथ से निकल गया था। भारतीय मुद्रा बाजार की प्रतिक्रिया अपर्याप्त थी। पाउंड प्रतिभूतियों को जारी करना उसका केवल एकमात्र विकल्प था, जिससे सरकार भारत में पूंजी को आकर्षित करने के लिए एक बड़े तथा अधिक सतत खजाने को काम में लाने के योग्य हो सकती थी। परंतु चूंकि इससे स्वर्ण भुगतान के भार में वृद्धि होना अवश्यंभावी था, अतः सरकार की सबसे प्रबल रूचि, लंदन मुद्रा बाजार के आश्रय को कम करने में थी। परन्तु चूंकि यह अपरिहार्य हो गया था, अतः इसे कुछ नियंत्रित[1] व सीमित रखा गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि असाधारण सार्वजनिक निर्माण के प्रसार में प्रगति देश की आवश्यकताओं के अनुरूप अपेक्षित गति से नहीं हुई। विनिमय में गिरावट के परिणामस्वरूप, वित्तीय अव्यवस्था के प्रभाव भारत सरकार तक ही सीमित नहीं रहे थे। उनको उन नगर पालिकाओं तथा स्थानीय निकायों द्वारा भी तत्काल महसूस किया गया जो वित्तीय सहायता के लिए सरकार के ऊपर निर्भर थी। जब तक नकद रोकड़ से सरकार के खजाने परिपूर्ण रहे, तब तक उनका "सबसे लाभदायक तरीका" उस राशि के एक भाग को इन स्थानीय संस्थाओं को उधार देकर, उसका सदुपयोग करना था। क्योंकि उनका शुभारंभ तभी लार्डरिपन के शासनकाल की स्थानीय स्वशासन नीति के अंतर्गत हुआ था और उनको उस समय केवल एक प्रयोग के रूप में देखा जाता था, अतः उनकी कराधान तथा उधार लेने की शक्ति कठोर रूप में सीमित थी। इसके फलस्वरूप अस्थायी पेशगियों के द्वारा केन्द्र सरकार से यह वित्तीय सहायता उनके लिए असीम उपयोगिता का साधन थी। तथापि, जब विनिमय द्वारा लगातार हानि के कारण केन्द्रीय सरकार की नकद रोकड़ में कमी होने लगी तो इन सुविधाओं में सख्ती से कटौती की गई[2] जिससे इन संस्थाओं के स्थायित्व को ही उसी समय खतरा हो गया जब उनको अपने विकास के लिए व फूलने-फलने के लिए और अपने आधार को मजबूत करने के लिए सब प्रकार की सहायता की आवश्यकता थी।

1. ह्रासमान विनिमय की अवधि के दौरान, भारत के ऋण की स्थिति निम्न प्रकार थी:—

	पाउंड में ऋण	ऋण रुपये में
1873-74 के अंत में	41,117,617	66,41,72,900
1898-99 के अंत में	124,268,605	1,12,65,04,340

भारतीय मुद्रा समिति (1898) परिशिष्ट.II पृष्ठ-179

2. वित्तीय विवरण, 1876-77 पृष्ठ 94

तालिका-XII
भारत सरकार का राजस्व तथा व्यय

वर्ष	विनमय की औसत दर	भारत में			इंग्लैंड में		अंतिम परिणाम
		शुद्ध राजस्व	विनिमय के अलावा शुद्ध व्यय	फालतू राजस्व	शुद्ध राजस्व विनिमय पौंड स्टर्लिंग में	विनिमय	फालतू (+) या घाटा (—)
	शिलिंग	रुपया	रुपया	रुपया	पाउंड	रुपया	रुपया
1874-75	22.156	39,564216	25,897,098	13,667,118	12,562,101	1,045,239	59,778
1875-76	21.626	40,053,419	24,541,923	15,511,496	12,544,813	1,377,428	1,589,225
1876-77	20.508	38,253,366	25,355,285	12,898,081	13,229,646	2,252,611	— 2,584,176
1877-78	20.791	39,275,489	27,658,021	11,617,468	13,756,478	2,123,030	— 4,262,040
1878-79	19.794	44,415,139	25,778,928	18,636,211	13,610,211	2,891,902	2,134,098
1879-80	19.961	45,258,197	29,384,030	15,874,167	14,223,891	2,878,169	— 1,227,893
1880-81	19.956	44,691,119	34,880,434	9,810,085	11,177,231	2,264,848	— 3,031,394
1881-82	19.895	45,471,887	27,717,249	17,754,638	11,737,688	2,421,499	3,595,451
1882-83	19.525	42,526,173	25,500,437	17,025,736	13,299,976	3,050,923	674,837
1883-84	19.536	43,591,273	23,566,381	20,024,892	14,770,257	3,375,158	1,879,477
1884-85	19.308	41,585,347	24,763,779	16,821,568	13,844,028	3,363,986	—386,446
1885-86	18.254	42,635,953	27,352,132	15,283,821	13,755,659	4,329,888	— 2,801,726
1886-87	17.441	44,804,774	25,124,335	19,680,439	14,172,298	5,329,714	178,427
1887-88	16.898	45,424,150	25,968,025	19,456,125	15,128,018	6,356,939	— 2,028,832
1888-89	16.379	46,558,354	25,051,147	21,507,207	14,652,590	6,817,599	37,018
1889-90	65.566	50,005,810	26,367,855	23,637,955	14,513,155	6,512,767	2,612,033
1890-91	18.090	49,403,819	25,579,727	23,824,092	15,176,866	4,959,055	3,688,171
1891-92	16.733	50,023,142	27,013,618	23,009,524	15,716,780	6,825,909	467,535

सैक्रेटरी आफ स्टेट को सम्बोधित करते हुए, भारत सरकार ने 2 फरवरी, 1886 की एक विज्ञप्ति में कहा[1]:—

"10. हमें इस बात को दोहराने में कोई झिझक नहीं है कि पूर्ववर्ती पैराग्राफों में बताए गए तथ्य, भारतीय हित की दृष्टि से असहनीय हैं, और जिन दोषों/बुराइयों को हमने गिनाया है, उनकी सूची समाप्त नहीं हुई है। चाँदी के भविष्य के सम्बन्ध में अनिश्चितता भारत में पूंजी निवेश को हतोत्साहित करती है और हमें चांदी को अत्यधिक मूल्य पर लेने के अलावा उसे उधार लेना असंभव प्रतीत होता है।

"इसके विपरीत, सीमान्त तथा अकाल रेलवे का निर्माण करने का हमारा प्रस्ताव है और तटवर्ती तथा सीमान्त रक्षा की हमने योजना बनाई है इनकी अनिवार्य आवश्यकता है और इन्हें अनिश्चित रूप से स्थगित नहीं रखा जा सकता।

"अतएव, हम या तो अपने पाउंड सम्बन्धी दायित्वों को बढ़ाने के लिए बाध्य हैं जिसके लिए अनेक आपत्तियां उठाई जा रही हैं या रेलवे के बिना काम चलाने के लिए बाध्य हैं। रेलवे की आवश्यकता देश के वाणिज्यिक विकास के लिए तथा आक्रमण और अकाल के प्रभावों से इसकी रक्षा करने के लिए है।

* * * * * *

"11. स्थानीय निकायों को, भारत में उधार लेने में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उन कठिनाइयों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। बम्बई तथा कलकत्ता की नगर पालिकाओं को सफाई में सुधार लाने के लिए बहुत धन की आवश्यकता है, परन्तु चांदी के ऋण के लिए उन्हें जिस ऊंची दर पर ब्याज का भुगतान करना चाहिए उसका भार उनको खर्चीले निर्माण कार्य शुरू करने से रोकता है और हमें आपको यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि सरकार के लिए हाल ही में, यह आवश्यक हो गया है कि वह कलकत्ता तथा बम्बई में गोदी (नौकागार) के निर्माण के लिए अपेक्षित धन उधार देने का कार्य हाथ में ले और कलकत्ता के पत्तन (बन्दरगाह) आयुक्त ने जब सितम्बर 1885 में भारत सरकार द्वारा प्रत्याभूत 75 लाख रूपये के ऋण एकत्र करने का प्रयास किया तो निविदाओं की कुल राशि केवल 40,200 रुपये हुई और इस तुच्छ राशि के किसी भी भाग को सममूल्य पर नहीं दिया गया............।"

निजी खाते पर पूँजी के आयात व आदान में इसी प्रकार के कारणों से बाधा पड़ी जो देश के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुई। इसके लिए सब ओर से आग्रह किया गया और यहां तक कि रॉयल कमीशन[2] ने भी यह सिफारिश की कि अकालों की पुनरावृत्ति से भारत में बार-बार थोड़े-थोड़े अंतराल पर विनाशलीला होती है। उससे बचने का एक

1. देखिए 1886 का उद्धरण- 4868 पृष्ठ 8
2. अकाल आयोग (फैमिन कमीशन) की 1880 की रिपोर्ट, भाग-2 सी 1880 की 2735, **पृष्ठ 175-76**

मार्ग व तरीका भारत में विविध प्रकार के उद्योग लगाना है। किसी स्थायी लाभ को प्रदान करने के लिए ऐसा विविधता वाला औद्योगिक जीवन केवल मात्र पूंजीवादी आधार पर ही टिक सकता था। परन्तु वह देश में देश की आवश्यकताओं के लिए पूंजी व धन के इतने बड़े मुक्त प्रवाह पर निर्भर था जो सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपेक्षित था। उस समय जैसी स्थिति थी, उसमें अंग्रेज निवेशक जो पूंजी का सबसे बड़ा प्रबंधक था, भारत में पूंजी के निवेश को एक जोखिम भरा कार्य समझता था। उसे यह भय था कि यदि एक बार पूंजी का फैलाव रजत (चांदी) मान वाले देश में हो जाए तो चांदी के मूल्य में गिरावट से, उसकी वसूली, जब स्वर्ण में ली जाएगी तो वह केवल अनिश्चित ही नहीं हो जाएगी बल्कि स्वर्ण के रूप में उसके निवेश के पूंजी मूल्य में भी कमी हो जाएगी। स्वर्ण स्वभावतः वह इकाई थी जिसमें उसने अपनी तमाम वापसियों तथा लागत व व्यय को मापा था। पूंजी के मुक्त अंतर्प्रवाह पर यह रोक निस्संदेह एक बहुत ही गंभीर बुराई थी जो विनिमय के अंकित मूल्य की दरार व बिगाड़ के कारण उत्पन्न हो रही थी।

स्वर्ण में भुगतान करने के दायित्व के कारण, विनिमय की गिरावट से हानि उठाने वाले लोगों का एक दूसरा समूह, भारत में सिविल सेवा के यूरोपीय सदस्यों का समूह था। जिस सरकार से उनका सम्बन्ध था, उस सरकार की भांति ही वे अपना वेतन चाँदी में लेते थे, परन्तु उन्हें अपने परिवारों को, जो प्रायः पीछे इंग्लैंड में ही छोड़ दिए गए थे धन स्वर्ण में भेजना पड़ता था। 1873 से पहले, तब उनके सामने ऐसी परिस्थिति नहीं थी परन्तु जैसे ही रुपये के मूल्य में गिरावट आने लगी तो परिस्थितियां पूर्णतया बदल गयी थीं। चांदी के मूल्य में प्रत्येक गिरावट के साथ उनको स्वर्ण की उतनी राशि व मात्रा प्राप्त करने के लिए अपने निश्चित वेतन में से अपेक्षाकृत अधिक रूपयों का भुगतान करना पड़ता था। इसमें संदेह नहीं कि उनके धन में प्रेषण के मामले में उनको कुछ राहत दी जाती थी। सिविल सेवकों को, सरकार के प्रति त्याग पर, अपनी रकम उस विनिमय दर पर भेजने की अनुमति दे दी जाती थी, जिसे "विनिमय की सरकारी दर कहते थे।[1] यह सच है कि बाजार दर तथा सरकार दर में कोई बहुत अधिक अंतर नहीं

1. जैसा कि ईस्ट इंडिया (सिविल सर्वेंट्स) पर प्रवर समिति के समक्ष श्री वाटरफील्ड द्वारा स्पष्टीकरण दिया गया, एच सी रेटन, 1890 का 327 प्र. 1905-1917, इसे पहली बार 1824 में संस्थापित किया गया था और इसका हिसाब निम्न प्रकार से लगाया जाता था। इंडिया आफिस में प्रत्येक वर्ष दिसंबर में एक रुपया भारत में भेजने के खर्च का हिसाब लगाया जाता था, यह हिसाब लंदन में चांदी के बाजार मूल्य पर आधारित होता था और भारत से एक रुपया लाने के खर्च का हिसाब (गणना) लंदन पर बिलों के कलकत्ता में मूल्य के आधार पर की जाती थी। दोनों के बीच औसत निकाला जाता था और उसे इंडिया आफिस और ब्रिटिश खजाने के बीच, आने वाले सरकारी वर्ष के लिए समयोजक दर के रूप में लिया जाता था। यह एक सरकार द्वारा दूसरी सरकार के एजेंट के रूप में लिए गए भुगतानों या ऐसे सौदों के संबंध में किया जाता था। यद्यपि यह कभी–कभी विनिमय की बाजार दर से अधिक और कभी–कभी कम होता था पर इसे प्रत्येक के लिए नए सिरे से निर्धारित किया जाता था और इसकी एक ठीक औसत दर लगाई जाती थी।

तालिका-XIII

भारत सरकार की रुपया तथा पाउंड प्रतिभूतियों के मूल्य की गति (संचलन)

वर्ष	विनिमय दर		4 प्रतिशत रुपये के कागज का मूल्य				भारत में स्टॉक और पाउंड का मूल्य					
			कलकत्ता में		लंदन में		4 प्रतिशत		3½ प्रतिशत		3 प्रतिशत	
	उच्चतम	निम्नतम	उच्चतम	निम्नतम	उच्चतम	निम्नतम	उच्चतम	निम्नतम	उच्चतम	निम्नतम	उच्चतम	निम्नतम
	शिलिंग	शिलिंग										
1873	22 7/8	21 5/8	105	101 7/8	97	94 1/2	106 1/2	101 1/4				
1874	23 1/8	21 3/4	104 1/2	99 1/2	98	94 1/2	103 3/4	101				
1875	22 3/16	21 1/4	102 7/8	101 3/4	94	91	106 1/4	103 1/4				
1876	22 1/8	18 1/2	101 7/8	98 3/4	89 3/4	78	105 7/8	101 7/8				
1877	22 1/4	20 9/16	98 7/8	93 1/4	88 1/2	81	104 5/8	102 1/4				
1878	21	18 3/4	96 7/8	93 1/2	82 1/2	75 3/8	104 5/8	99				
1879	20 5/8	18 5/8	94 7/8	91 1/4	80	77 1/4	105 3/8	100 7/8				
1880	20 1/8	19 3/4	100	92 15/16	81 3/8	77 3/4	105 5/8	102 1/8				
1881	20 1/16	19 1/2	104 5/8	100	86	81 1/2	106 3/8	103 7/8	103 7/8	100 3/4		
1882	20 3/16	19 1/16	102 1/16	95 5/8	85	81	105 1/8	102 7/8	101 7/8	99 3/4		
1883	19 9/16	19 3/16	101 1/8	97 9/16	82	79 3/4	104 5/8	102 7/16	103 1/8	101 3/8		
1884	19 3/4	18 15/16	100 5/8	95 5/16	81 3/4	78 1/4	104 3/8	101 5/8	107 1/8	101 3/8	96 1/4	91 3/4
1885	19 1/16	17 31/32	98 7/16	92 1/4	77 1/2	73 1/4	103 1/16	98 3/4	102 3/4	97 1/2	91 1/2	85 3/4
1886	18	16 1/8	97 3/4	97 3/16	73	66 1/4	103 1/2	101 1/4	102 3/4	99 3/4	90 1/8	86 5/8
1887	18 1/16	15 5/8	99 3/16	95 5/16	71 11/16	67 7/8	102 3/4	100 1/2	103 1/4	100 1/4	92 3/4	95 3/8
1888	17 1/8	16	100 3/16	97 3/4	69 3/8	66 1/4	102 7/8	100 1/2	107 1/4	104 5/8	98	95
1889	61 15/16	16	100 3/8	97 1/16	69 1/8	66 3/8			109 1/2	106 7/8	101 1/8	99
1890	20 24/32	16 7/8	103 7/8	96 13/16	87 1/4	68 3/4			108 1/2	105 1/4	100 3/4	95 1/4
1891	18 1/4	16 5/8	107 13/16	104 1/16	80 3/4	74 1/4			109 1/2	105	99	94
1892	16 11/16	14 5/8	103 15/16	103 11/16	74 1/2	62			109 1/2	106 1/8	98 1/2	94 7/8

था। फिर भी, सिविल सर्वेन्टस के लिए यह बात काफी महत्वपूर्ण थी कि उन्हें, सरकार की लागत पर 1862-90[1] के वर्षों में औसतन अढ़ाई प्रतिशत का लाभ प्राप्त हुआ। सेना के कर्मचारियों को इसी प्रकार की राहत अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में प्राप्त हुई, परन्तु उनको राहत मिलने का तरीका अलग था। उनके वेतन का भुगतान यद्यपि रूपये में देय होता था पर उसका निर्धारण पौंड में होता था। यह सच है कि जो रॉयल वारंट उनके वेतन को निर्धारित करता था, वह उस उद्देश्य के लिए पौंड तथा रुपये के बीच विनिमय दर को भी निर्धारित करता था। परन्तु हमेशा यह होता था कि वारंट द्वारा निर्धारित विनिमय दर, बाजार दर से अधिक होती थी। अतः सेना के कर्मचारियों को इस अन्तर की क्षतिपूर्ति भारतीय राजकोष के खाते से कर दी जाती थी।[2] यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यह राहत उनके लिए कोई राहत नहीं थी। यद्यपि विनिमय की सरकारी दर या वारंट दर, विनिमय की बाजार दरों से बेहतर थी, परन्तु फिर भी वे दरें इस विनिमय दर से बहुत कम थीं जिस दर पर वे 1873 से पहले अपने धन को प्रेषित किया करते थे। सरकार के ऊपर भार की तरह ही उनके ऊपर भी भार चांदी की गिरावट के साथ-साथ बढ़ गया और जैसे ही उनके ऊपर भार में वृद्धि हुई, उनका व्यवहार भी भयग्रस्त हो गया। अनेक लोग अभ्यावेदक हो गए थे। उन्होंने अपने अभ्यावेदनों में सरकार से माँग की कि विनिमय में उसको जो हानि होती है सरकार उसकी क्षतिपूर्ति पर्याप्त मात्रा में करे।[3] उन्होंने सरकार को यह चेतावनी दी[4] कि

"जिन अनभिज्ञ व अनजान लोगों का विचार यह है कि वर्तमान वेतनों को कम करने से भारत को लाभ होगा ऐसा प्रतीत होता है वे यह नहीं समझ रहे हैं कि ऐसा कदम उठाने से घटाए गए वेतन पर काम कराना असंभव हो जाएगा और आवश्यकता को पूरा करने के लिए धन प्राप्त करने के अन्य तरीकों का सहारा लेना पड़ेगा।"

इसमें संदेह नहीं, कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारंभ के दिनों में ऐसी ही स्थिति थी जब सिविल सर्वेन्टस ऊपर की आमदनी मोटी होती चली गई क्योंकि उनका वेतन कम होता था[5] और उनकी लूट खसोट को रोकने के लिए उनके वेतन में इतनी अधिक वृद्धि

1. वही– प्र. 1925-26
2. एफ एस.1887-88 पृष्ठ 39-40 यह खर्च निम्न प्रकार से था :–

1847-75	6,40,000 रु.
1884-85	18,43,000
1885-86	4,00,000
1886-87	5,15,000

3. भारतीय मुद्रा समिति, 1893 की रिपोर्ट का परिशिष्ट 1ए पृष्ठ 185-90 तथा पृष्ठ 202, फॉर *"मैमोरियल्स ऑफ दि यूरोपियन सिविल सर्वेन्टस"*
4. कर्नल हयूगस हैलट, एम.पी., दि. *डिप्रिसिएशन ऑफ दि रूपी* (रुपये का अवमूल्यन) : इट्स इफैक्ट *ऑन दि एंग्लो इंडियन आफिशियल–दि रांग एंड दि रिमेडी, लंदन,* 1887, पृ. 14A
5. प्रारंभ के यूरोपीय सिविल कर्मचारियों के लोभी व लूटने वाले व्यवहार तथा उनके कम वेतन के बीच संबंध को क्लाइव ने हाउस ऑफ कामन्स में ईस्ट इंडिया जूडिकेचर बिल पर वादविवाद के दौरान 30 मार्च, 1772 को स्पष्ट किया था। हंसार्ड खंड 17, पृष्ठ 334-39.

कर दी गई थी कि उस समय वह एक असाधारण स्तर की वृद्धि प्रतीत हुई। लूट खसोट के पहले ऐसे उदाहरणों को चेतावनियों के रूप में प्रस्तुत किया गया जो भलीभांति यह दर्शाता था कि, विनिमय से हानि के कारण सिविल सर्वेन्टस में बहुत असंतोष था।

इस गिरावट का देश के व्यापार तथा उद्योग पर बिल्कुल अलग प्रभाव पड़ा था। सरकार के कारबार या इंग्लैंड जैसे स्वर्णमान वाले देश के व्यापार तथा उद्योग की तुलना में यहां का व्यापार व उद्योग समृद्ध अवस्था में था। जिन दिनों चांदी गिर रही थी, उस समस्त अवधि के दौरान तुलनात्मक दृष्टि से इंग्लैंड में जनसंख्या का अनुपात जो विभिन्न उद्योगों तथा व्यापारों व व्यवसायों में लगा था, उसमें भी उत्तरोत्तर गिरावट आ रही थी। वस्त्र निर्माण तथा लोहे और कोयले के व्यापार, महत्वपूर्ण व्यापारों जैसे बरमिंघम तथा शेफील्ड के लोहे के सामान का निर्माण, ग्रीनोक, लिवरपूल एवं लन्दन में चीनी परिष्करण, मिट्टी के बर्तनों, शीशे, चमड़े, कागज के निर्माण तथा अनेक छोटे उद्योगों में मन्दी आ गई थी।[1] इंग्लैंड की कृषि में मन्दी आ गई थी कि 1892 में आयुक्त (कमिश्नर) देश में ऐसा कोई भाग नहीं बता सके, जिसके संबंध में यह कहा जा सके कि उसमें (मन्दी का प्रभाव) नहीं है।" और यद्यपि, कृषि की दृष्टि से मौसम 1882 से कुल मिला कर संतोषजनक था, पर फिर भी यह मन्दी थी।[2] परन्तु भारतीय व्यापार तथा उद्योग में इसके बिल्कुल प्रतिकूल बात थी। देश के विदेश व्यापार में अमरीकी सिविल युद्ध के दौरान

तालिका XIV

आयात तथा निर्यात (माल तथा खजाना दोनों)*

वर्ष	निर्यात रुपये	आयात रुपये	वर्ष	निर्यात रुपये	आयात रुपये
1870-71	57,556,951	39,913,942	1881-82	83,068,198	60,436,155
1871-72	64,685,376	43,665,663	1882-83	84,527,182	65,548,868
1872-73	56,548,842	36,431,210	1883-84	89,186,397	68,157,311
1873-74	56,910,081	39,612,362	1884-85	85,225,922	69,591,269
1874-75	57,984,549	44,363,160	1885-86	84,989,502	71,133,666
1875-76	60,291,731	44,192,378	1886-87	90,190,633	72,830,670
1876-77	65,043,789	48,876,751	1887-88	92,148,279	78,830,468
1877-78	67,433,324	58,819,644	1888-89	98,833,879	83,285,427
1878-79	64,919,741	44,857,343	1889-90	105,366,720	86,656,990
1879-80	69,247,511	52,821,398	1890-91	102,350,526	93,909,856
1880-81	76,021,043	62,104,984	1891-92	111,460,278	84,155,045

* 1898 की भारतीय मुद्रा स्फीति की रिपोर्ट के परिशिष्ट 2 (सं. 1 व 2) से

1. रॉयल कमीशन की *डिप्रेशन ऑफ ट्रेड एंड इन्डस्ट्री* पर अंतिम रिपोर्ट में डनरोयन, फेरर, तथा ल्युबोक द्वारा रिपोर्ट, पैरा 54 सी–4893
2. "इंग्लैंड में कृषि मंदी" पर रॉयल कमीशन की अंतिम रिपोर्ट–1897 की सी 8540, पैरा-28

उछाल आया था उसमें 1870 के बाद और अधिक उछाल व वृद्धि दिखाई दी और विनिमय की गिरावट वाली अवधि के दौरान उसमें विकास व वृद्धि तीव्र गति से जारी रही। बीस वर्ष की छोटी सी अवधि के दौरान देश के कुल आयात तथा निर्यात की मात्रा दुगुनी हो गई, जैसा कि तालिका XIV में दर्शाया गया है : (पिछले पृष्ठ पर देखें)

तालिका-XV

इंगलैंड तथा भारत में औद्योगिक व्यवसाय का स्वरूप *

	खजाने के अतिरिक्त भारतीय निर्यात का वितरण					खजाने के अतिरिक्त इंग्लैंड के निर्यात का वितरण				
वर्ष	निर्मित वस्तुएं	कच्चा माल	खाद्य वस्तुएं	अवर्गीकृत वस्तुएं	योग	निर्मित वस्तुएं	कच्चा माल	खाद्य वस्तुएं	अवर्गीकृत वस्तुएं	योग
1857	11	34	22	23	100	90.9	4	4.9	.2	100
1858	6	35	26	33	100	91.4	3.4	5.1	.1	100
1859	6.5	40	15.5	38	100	91.5	3.8	4.6	.1	100
1860	5.7	43.6	17.7	33	100	91.9	3.6	4.4	.3	100
1861	5.8	46.5	15.3	32.4	100	90.4	4.8	4.8	—	100
1862	5	52	16	27	100	90.3	4	4.8	.9	100
1863	3.7	58.7	10.6	27	100	91.0	4	4	1.0	100
1864	4	69.2	9.3	17.5	100	92.5	3.7	3.7	.1	100
1865	3.5	68	12	16.6	100	92.1	3.6	3.6	.7	100
1866	4.2	67.2	10.3	18.3	100	92	3.7	3.7	.4	100
1867	4	58	11	27	100	92.2	3.8	3.7	.3	100
1868	4	58.5	11.5	26	100	92	4.4	3.4	.2	100
1869	4.8	60.5	14	20.7	100	92	4.2	3.1	.7	100
1870	4.4	63.6	9	23	100	91	4	4	1.0	100
1871	3.7	65.3	11	20	100	90	4.4	4.9	.7	100
1872	3.3	61.4	13.5	21.8	100	91.2	5.4	3.5	.9	100

* भारत के लिए आंकड़े स्टेटिस्टिकल ऐब्सट्रैक्ट फॉर इंडिया, सैकंड नम्बर (1857-1866) टेबल नम्बर 34, एंड दि एटम नम्बर (1864-1873), टेबल नम्बर 24 इंग्लैंड के लिए आंकडे रायल कमिशन में व्यापार और उद्योग में मंदी संबंधी प्रथम प्रतिवेदन, 1885 के परिशिष्ट–सी (स्टेटमेंट–6) से लिए गए हैं। इस उतार-चढ़ाव से कि "निर्मित" "आंशिक रूप से निर्मित" के आंकडे मूल विवरण में "निर्मित" के अंतर्गत वर्गीकृत किए गए हैं। भारतीय किस्तों के अंतर्गत "अवर्गीकृत वस्तुएं" अधिकांश रूप में आभूषणों के बारे में हैं।

भारत के व्यापार में केवल वृद्धि ही नहीं हो रही थी, बल्कि उसी समय उसके उद्योगों के स्वरूप में भी साथ ही साथ काफी परिवर्तन भी हो रहा था। 1870 से पहले भारत तथा इंग्लैंड एक तरह से कहा जाए तो गैर स्पर्द्धा वाले समूह थे। नौ–संचालन (नेविगेशन) नियमों की संरक्षणवादी नीति के कारण तथा उत्पादन के क्षेत्र में मनुष्य के स्थान पर मशीनरी के प्रतिस्थापन के कारण भी भारत पूर्णतया कृषि प्रधान तथा कच्चे माल का उत्पादन करने वाला देश हो गया था। जबकि इंग्लैंड ने अपने आपको एक ऐसे देश के रूप में परिवर्तित कर दिया था जिसने अपना ऊर्जा तथा अपने स्रोतों को उस कच्चे माल को जिसे विदेश से आयात किया जाता था फिर परिष्कृत माल के रूप में परिवर्तित किया जाता था। दो देशों के औद्योगिक व्यवसाय में कितनी स्पष्ट विषमता थी उसे उनके अलग-अलग निर्यात के विश्लेषण द्वारा तालिका XV में स्पष्ट दर्शाया गया है।

1870 के बाद, उनके औद्योगिक व्यवसाय के वितरण में भारी परिवर्तन हुआ और भारत एक बार फिर एक निर्माता देश की भूमिका अदा करने लगा। 1870 के बाद के 20 वर्षों के भारत के आयात तथा निर्यात के संबंधित आंकड़ों का विश्लेषण करने से हमें यह पता चलता है कि निर्माण की दिशा में प्रगति उस अवधि की सबसे महत्वपूर्ण व सार्थक विशेषता थी। देखें (तालिका XVI)

तालिका-XVI

भारत के औद्योगिक व्यवसाय में परिवर्तन *

वर्ष	आयात		निर्यात	
	निर्मित माल	कच्चा माल	निर्मित माल	कच्चा माल
	रुपया	रुपया	रुपया	रुपया
1879	25,98,65,827	13,75,55,837	5,27,80,340	59,67,27,991
1892	36,22,31,872	26,38,18,431	16,42,47,566	85,52,09,499
वृद्धि का प्रतिशत	39	91	211	43
वार्षिक योग	2.8	6.5	15	3

* भारतीय अर्थशास्त्र पर रानाडे के निबन्ध से उद्धृत–पृष्ठ 104

औद्योगिक विकास में यह परिवर्तन दो मुख्य उत्पादनों/निर्माणों की वृद्धि से स्पष्ट होता था। उनमें से एक कपास का उत्पादन था। कपास/रूई का उद्योग भारत के प्राचीनतम उद्योगों में से एक था। परन्तु 1750 और 1850 के बीच 100 वर्ष के दौरान, इसमें इतनी गिरावट आई कि यह पूर्ण जीर्णता की स्थिति में पहुंच गया था। उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक में इस उद्योग को पूंजीवादी आधार पर पुनर्जीवित करने

का प्रयास किया गया। फलतः इसमें शीघ्र ही तेज प्रगति के लक्षण दिखाई दिए। इसकी प्रगति की कहानी को संक्षेप में तालिका XVII में लिखित रूप में, स्पष्ट समझाया जा रहा है :—

तालिका-XVII

भारतीय कपास में व्यापार तथा उद्योग का विकास

	व्यापार की वृद्धि (प्रत्येक पांच वर्ष में औसत वार्षिक मात्रा)				
	1870-71 से 1874-75 तक	1875-76 से 1879-80 तक	1880-81 से 1884-85 तक	1885-86 से 1889-90 तक	1890-91 से 1894-95 तफ
कच्ची रूई का आयात गांठे हजार में	23	52	51	74	89
कच्ची रूई का निर्यात गांठे हजार में	5,236	3,988	5,477	5,330	4,660
रूई तथा धागे का आयात	33,55	33.35	44.34	49.09	44.79
	उद्योग की वृद्धि (प्रति पांच वर्ष के अंत में)				
मिलों की संख्या	48	58	81	114	143
तकुओं की संख्या--000- का लोप किया गया है	1,000	1,471	2,037	2,935	3,712
करघों की संख्या -000- का लोप किया गया-है।	10	13	16	22	34
काम में लगे व्यक्तियों की संख्या	..	39,537	61,836	99,224	...

एक दूसरा उद्योग जूट था जिसके निर्माण व उत्पादन का विस्तार भारत में व्यापक रूप में हुआ। भारत के रूई उद्योग के विपरीत, जूट उद्योग का उद्‌भव रूई उद्योग की तुलना में नया था। रूई/कपास उद्योग के विकास से इस उद्योग का विकास व वृद्धि अलग थी। इसकी वृद्धि यूरोपीय धन, यूरोपीय प्रबंधन तथा यूरोपीय कौशल द्वारा प्रोत्साहित हुई थी। इस उद्योग की जड़ें शीघ्र ही रूई/कपास उद्योग के समान ही गहरी पहुंच गईं और यह कार्य रूई उद्योग से यदि अधिक बेहतर नहीं तो उसके बराबर समृद्ध अवश्य हो गया था। इसका इतिहास एक निरंतर प्रगति का इतिहास था अर्थात् इसमें निरंतर प्रगति होती चली गई, जैसा कि तालिका XVIII से पता चलेगा। (अगले पृष्ठ पर देखें)

तालिका. XVIII

जूट उद्योग तथा व्यापार का विकास

विकास वृद्धि	प्रति पांच वर्ष का वार्षिक औसत				
	1870-71 से 1874-75	1875-76 से 1879-80	1880-81 से 1884-85	1885-86 से 1889-90	1890-91 से 1894-95
निर्यात					
कच्चा, मिलियन गांठे	5.72	5.58	7.81	9.31	10.54
बोरी, मिलियन	6.44	35.96	60.32	79.98	120.74
कपड़ा, मिलियन गज		4.71	6.44	19.79	54.20
उद्योग का विकास					
संख्या :					
मिलों की		21	21	24	26
करघे, 000 का लोप (हजार में)		5.5	5.5	7	8.3
तकुए–000 का लोप		88	88	138.4	172.4
रोजगार में लगे व्यक्ति–हजार में		38.8	38.8	52.7	64.3

उत्पादनों/निर्माण की दिशा में वृद्धि की इस प्रवृत्ति का अप्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय कृषि पर पड़े बिना नहीं रहा। भारतीय कृषि भी इनके उत्पादन के अप्रत्यक्ष प्रभाव से अछूती नहीं रही। यह कहा जा सकता है कि 1870 से पहले भारतीय किसान का दृष्टिकोण वाणिज्यिक नहीं था। वह अपनी खेती लाभ के लिए उतनी नहीं करता था जितनी अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं में आत्मनिर्भरता के लिए करता था। अर्थात् उतनी ही खेती करता था जिससे उसकी अपनी आवश्यकता पूरी हो सके। 1870 के बाद कृषि का रूझान एक व्यापार की ओर हो गया और फसलों का निर्धारण किसान की घरेलू आवश्यकताओं के अनुरूप होने के बजाए, उत्तरोत्तर बाजार की कीमतों पर होने लगा। इसे तालिका XIX में स्पष्ट दर्शाया गया है। (अगले पृष्ठ पर देखें)

इस समय प्रचलित आर्थिक स्थितियों में ऐसी विषमता दो देशों में विद्यमान थी। रजत (चांदी) मान वाले देश की प्रवृत्ति दृढ़ता से प्रगति करने की ओर तथा स्वर्णमान वाले देश की प्रवृत्ति गतिरोध व ठहराव की ओर होने की हो गई थी। इस विलक्षण घटना ने अनेक पर्यवेक्षकों को चिंता में डाल दिया। यह कहा जाता है कि अंग्रेजी निर्माताओं का अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में डटे रहने में असमर्थ होना इसका मुख्य कारण था। यूरोप के प्रतिद्वन्द्वियों

के साथ प्रतिस्पर्धा करने में उनकी असमर्थता का कारण, यूरोपीय देशों में रक्षात्मक शुल्कों तथा आर्थिक सहायता का प्रचलन था जो यूरोपीय देशों की औद्योगिक तथा व्यापारिक संहिता का एक आवश्यक अंग था। भारत में उस समय इस प्रकार की कोई व्यवस्था विद्यमान नहीं थी। यहां पर व्यापार बहुत अधिक मुक्त था और उद्योग बहुत अधिक असंरक्षित था। फिर भी, लंकाशायर के रूई बुनकरों/कताई करने वालों, डुंडी के जूट निर्माताओं तथा अंग्रेज गेहूं उत्पादकों ने यह शिकायत की कि वे भारत में अपने प्रतिद्वंद्वियों के साथ प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकते।

तालिका-XIX

भारत के कृषि उपज के निर्यात की वृद्धि

	1868-69	1873-74	1877-78	1882-83	1887-88	1891-92
गेहूं	100	637.41	2,313.47	5,152.36	4,914.37	11,001.44
अफीम	100	118.38	123.83	122.47	120.20	116.82
बीज	100	111.26	305.87	239.97	403.60	480.99
चावल	100	131.66	119.84	203.28	185.55	220.36
नील	100	116.91	121.57	142.17	140.76	126.33
चाय	100	169.35	293.17	507.25	775.09	1,075.75
काफी	100	86.04	69.98	85.31	64.59	74.11

इसका कारण, विनिमय में गिरावट को माना जाता था।[1] इस विचार से कुछ लोग इतने अधिक प्रभावित थे कि वे सुदूर पूर्व में भारतीय व्यापार के प्रसार का श्रेय भी इसी कारण को देते थे। पहले यह दोषारोपण किया जाता था कि स्वर्ण तथा रजत के बीच विनिमय के अंकित मूल्य की गड़बड़ ने स्वर्ण का प्रयोग करने वाले देशों तथा चांदी का प्रयोग करने वाले देशों के बीच एक प्रकार से इतनी पृथकता उत्पन्न कर दी थी कि उन्होंने एक दूसरे का बहिष्कार कर दिया था। एक ही धातु को मान/मूल्य के रूप में प्रयोग करने वाले दो देशों के बीच सौदे के संबंध में, यह कहा जाता था कि एक दूसरे रूप में परिवर्ती दो धातुओं के प्रयोग से उत्पन्न अनिश्चितता को समाप्त कर दिया गया था। ऐसे दो देशों के बीच व्यापार, भिन्न-भिन्न मूल्यों/मानों का प्रयोग करने वाले दो देशों के बीच व्यापार की तुलना में कम जोखिम पर तथा कम असुविधा के साथ किया जा सकता था। भिन्न-भिन्न मानों का प्रयोग करने वाले देशों के मामले में चूंकि अनिश्चितता प्रत्येक सौदे में होती थी और उसे उस प्रक्रिया के खर्चे में जोड़ दिया जाता था जिसके

1. स्वर्ण तथा रजत पर रॉयल कमीशन की अंतिम रिपोर्ट भाग-1, पैरा 99-101 बहस के सारांश के लिए।

द्वारा व्यापार को दूसरी दिशा में मोड़ दिया जाना चाहिए था जहां तक एक सामान्य व एक समान मान के उपस्थित होने के कारण जिस स्थिति में व्यापार करना पड़ता था, वह स्थिति अनिश्चितताओं से उन्मुक्त थी; उसे तत्काल स्वीकार कर लिया गया था। परन्तु यह दावा किया जाता था कि ऐसा कोई कारण नहीं था कि व्यापार के पृथक्करण के एक भाग के रूप में भारतीय निर्माता के लिए संभव था कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूर्वी बाजार से अपने अंग्रेज प्रतिद्वन्द्वी को बाहर निकाल देता। (देखिए तालिका XX)।

तालिका XX

कपड़े के सामान का पूर्वी बाजारों में निर्यात

वर्ष	धागे, पौंड, 000 का लोप किया गया अर्थात हजार में		कट–पीस, गज, 000 का लोप किया गया अर्थात हजार में	
	भारत से	ब्रिटेन से	भारत से	ब्रिटेन से
1877	7,927	33,086	15,544	394,489
1878	15,600	36,467	17,545	382,330
1879	21,332	38,951	22,517	523,921
1880	25,682	46,426	25,800	509,099
1881	26,901	47,479	30,424	587,177
1882	30,786	34,370	29,911	454,948
1883	45,378	33,499	41,534	415,956
1884	49,877	38,856	55,565	439,937
1885	65,897	33,061	47,909	562,339
1886	78,242	26,924	51,578	490,451
1887	91,804	35,354	53,406	618,146
1888	113,451	44,643	69,486	652,404
1889	128,907	35,720	70,265	557,004
1890	141,950	37,869	59,496	633,606
1891	169,253	27,971	67,666	595,258

व्यापार की ऐसी गड़बड़ पर जिन कारणों का प्रभाव पड़ा, उन पर गरमागरम वाद–विवाद व बहस होने लगी।[1] विवाद का विषय यह था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जिस प्रकार के परिवर्तन हो रहे थे क्या उनका कारण उस समय मुद्रा सम्बन्धी अव्यवस्था व गड़बड़ थी। जो लोग इस विचार के समर्थक थे और इस कारण को स्वीकार करते थे, वे अपनी स्थिति को यह तर्क देकर स्पष्ट करते थे कि विनिमय में गिरावट व ह्रास ने भारतीय उत्पादक को तो आनुतोषिक इनाम दिया और अंग्रेज उत्पादक को दंड दिया। अर्थात

1. स्वर्ण तथा रजत पर शाही आयोग (1886) के समक्ष प्रो. मार्शल तथा निकल्सन द्वारा साक्षी तथा ज्ञापन देखिए। प्रो. लेक्सिस भी इकॉनॉमिक जनरल, खंड-5, 1895 से, *"दि एंजिओ ऑन गोल्ड एंड इंटरनेशनल ट्रेड।"*

ह्रास मान विनिमय की स्थिति से भारतीय उत्पादक को लाभ हुआ और अंग्रेज उत्पादक को हानि/इस आनुतोषिक के संबंध में यह कहा जाता था कि वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में स्थापित व जमे हुए प्रतियोगियों की स्थिति को बदलने के लिए जिम्मेदार था। इस अनुतोष/इनाम का अस्तित्व एक साधारण सी गणना पर आधारित था। यह कहा जाता था कि यदि चांदी के स्वर्ण मूल्य में गिरावट आती थी तो भारतीय निर्यातक को अपने उत्पाद के लिए अधिक रुपये मिलते थे और इसलिए उसकी स्थिति बेहतर थी। जबकि उसी तथ्य के कारण अंग्रेज उत्पादक को अपेक्षाकृत कम स्वर्ण मुद्राएं (सावरिन) मिलती थी इसलिए उसकी स्थिति खराब थी। सहज रूप में यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि ह्रासमान विनिमय ने भारतीय निर्यातकों को आनुतोषिक प्रदान किया और अंग्रेज निर्यातकों पर जुर्माना थोप दिया था। इस तर्क में गणित के एक सूत्र की अंतिम अवस्था निहित थी। वास्तव में, इसके रचयिताओं द्वारा यह सूत्र इतना स्वयं सिद्ध माना जाता था कि उससे उस समय के व्यापार तथा औद्योगिक स्थिति पर इसके आचरण व प्रभाव के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण अनुमान निष्कर्ष निकाले गए थे। ऐसा ही एक निष्कर्ष यह था कि इसने चांदी का प्रयोग करने वाले देशों से निर्यात को प्रोत्साहित किया और आयात को रोका।

भारतीय व्यापार का वितरण

प्रत्येक पांच वर्ष के लिए वार्षिक औसत, (दस लाख मिलियन) रूपयों में—

देश	1875-76 से 1879-80 तक			1880-81 से 1884-85 तक		
	आयात	निर्यात	कुल योग	आयात	निर्यात	कुल योग
ब्रिटेन (यूके)	323.68	278.15	601.83	434.45	344.22	778.67
चीन	14.05	132.27	146.32	19.23	134.94	154.17
जापान	.02	.33	.35	.19	2.09	2.28
श्रीलंका	5.74	22.97	28.71	5.35	16.37	21.72
जलडमरू मध्य के अधिवास	10.83	26.11	26.94	15.88	33.65	49.53

प्रत्येक पांच वर्ष के लिए वार्षिक औसत, (दस लाख मिलियन) रुपयों में—

देश	1885-86 से 1889-90 तक			1890-91 से 1894-95 तक		
	आयात	निर्यात	कुल योग	आयात	निर्यात	कुल योग
ब्रिटेन (यूके)	510.47	360.59	871.06	526.24	338.40	864.64
चीन	21.64	134.54	156.18	28.69	133.30	161.90
जापान	.25	7.27	7.52	1.51	14.44	15.95
श्रीलंका	5.86	20.56	26.42	6.42	31.18	37.60
जलडमरू मध्य के अधिवास	20.09	42.54	62.63	23.32	52.56	75.88

* इस अवधि के दौरान भारतीय व्यापार का विवरण

दूसरा निष्कर्ष यह था कि विनिमय में गिरावट ने कुछ अन्य लोगों की तुलना में अंग्रेज उत्पादकों को चांदी का प्रयोग करने वाले देशों में उनके प्रतिद्वन्द्वियों से प्रतिस्पर्द्धा के लिए खुला छोड़ दिया था। क्या ऐसे निष्कर्षों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि वे विनिमय की गिरावट से प्राप्त किए गए थे? यदि हम विनिमय के ह्रास संबंधी नीरस कथन के पीछे जाएं, व इस कथन का अनुसरण करें और यह जानकारी प्राप्त करें कि चांदी के स्वर्णमूल्य का निर्धारण कौन सी वस्तु करती थी तो उपर्युक्त निष्कर्ष बिल्कुल तर्कसंगत प्रतीत नहीं होते है। यह कि सोने तथा चांदी के बीच अनुपात, स्वर्णमूल्य तथा रजत (चांदी) मूल्य के बीच अनुपात का केवल प्रतिलोभी होता था, इसे एक निश्चित व शंकारहित प्रस्ताव व तर्क–वाक्य के रूप में मानना चाहिए। इसलिए यदि चांदी का स्वर्ण मूल्य गिर रहा था तो इंग्लैंड में मूल्य की गिरावट एक अधिक सामान्य घटना का प्रतिरूप थी। अंग्रेजी मूल्यों को सोने में मापा जाता था और भारतीय मूल्यों में वृद्धि को चांदी में मापा जाता था। ह्रासमान विनिमय की घटना की ऐसी व्याख्या से इस बात को समझना कठिन है कि यह निर्यात की वृद्धि करने में और आयात को कम करने में किस प्रकार सहायता कर सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उन सापेक्ष सुविधाओं द्वारा नियंत्रित होता है जो एक देश के पास दूसरे देश की तुलना में अधिक होती है और जिन शर्तों पर वह व्यापार चलता है, उन शर्तो को उसमें शामिल वस्तुओं के तुलनात्मक मूल्य द्वारा विनियमित किया जाता है। अतएव, यह बात स्पष्ट है कि इन वस्तुओं के तुलनात्मक मूल्य में परिवर्तनो के परिणाम के अलावा व्यापार के वास्तविक अर्थों में देशों के बीच परिवर्तन नहीं हो सकता। स्वर्ण के मूल्यों में चौतरफा गिरावट और उसके साथ चांदी के मूल्यों में चौतरफा वृद्धि होने से, मुद्रा संबंधी गड़गड़ में कोई चीज ऐसी नहीं थी जिसके विषय में यह कहा जा सकता कि उसने भारत को किसी वस्तु के निर्यात में वृद्धि करने के योग्य बनाया। केवल इस बात को छोड़कर कि भारत ने ऐसा अपने निर्यात को घटाकर या किसी और वस्तु के आयात को बढ़ाकर किया। ह्रासमान विनिमय के प्रश्न के उसी प्रकार के विचार से यह परिणाम निकलता है कि धन/मुद्रा की ऐसी गड़बड़, एक व्यापार को दूसरे की अपेक्षा दबा नहीं सकी व उसके कारण एक व्यापार दूसरे व्यापार की अपेक्षा कम नहीं हो सका। यदि ह्रासमान या आरोही (बढ़ता हुआ) विनिमय सामान्य मूल्यों के स्तर का केवल एक अभिव्यक्ति मात्र था, तो समस्त वस्तुओं के उत्पादक इससे समान रूप में प्रभावित हुए थे। इसका कोई कारण नहीं कि विनिमय की दर में गिरावट से छुरी कांटे (कटलरी) के व्यापार की अपेक्षा रूई का व्यापार या गेहूँ का व्यापार अधिक प्रभावित नहीं हो।

केवल यही नहीं कि सामान्य या किन्हीं विशेष वस्तुओं के संबध में वर्तमान व्यापार संबंधों को अव्यवस्थित करने या नष्ट करने के लिए विनिमय की गड़बड़ की कोई बात नहीं थी, बल्कि इसमें भारतीय उत्पादकों को लाभ पहुचाने वाली तथा अंग्रेज उत्पादकों

को हानि पहुँचाने वाली भी कोई बात नहीं थी। इस तथ्य को समझकर कि विनिमय दो मूल्य स्तरों का अनुपात था, यह बात समझ में नहीं आती कि अंग्रेज उत्पादक जिसको स्वर्ण मुद्राएं (सॉवरिन) तो कम मिलती थी, किन्तु उसकी क्रय शक्ति बहुत अधिक थी, और भारतीय की स्थिति भारतीय उत्पादक की तुलना में दयनीय थी जबकि भारतीय उत्पादक को रुपये तो अधिक मिलते थे किन्तु उसकी क्रय शक्ति कम थी। फिर भी प्रो. मार्शल का साम्यानुमान बहुत उपयुक्त था। यह मान लेना कि विनिमय की गिरावट के फलस्वरूप अंग्रेज उत्पादक को हानि होती थी और भारतीय उत्पादक को लाभ होता था, इस बात को मानने के समान था कि एक व्यक्ति एक जलयान की केबिन में हो और केबिन की ऊंचाई दस फीट हो, और यदि वह जलयान एक द्रोणिका (गर्त) में बारह फीट नीचे डूब जाए तो उस व्यक्ति का सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। इसमें भ्रम यह है कि उस व्यक्ति को जलयान से अलग कर दिया जाए, जबकि वास्तव में, जलयान तथा यात्री दोनों ही एक समय में समान शक्ति से प्रभावित होने के कारण दोनों में समान गति उत्पन्न की। उसी तरीके से, वही शक्ति भारतीय उत्पादक तथा अंग्रेज उत्पादक पर एक साथ क्रिया करती थी। क्योंकि विनिमय में परिवर्तन, दो देशों के सामान्य मूल्य स्तर में अधिक व्यापक परिवर्तन का ही एक अंग था। इस प्रकार से, अंग्रेज तथा भारतीय उत्पादक की स्थिति अच्छी या बुरी एक समान रूप में थी और इसमें केवल यह अंतर था कि अंग्रेज उत्पादक अपने से संबंधित व्यापार व लेनदेन में कम पटलों (काउंटरों) का प्रयोग करते थे और भारतीय उत्पादक बहुत सारे पटलों (काउंटरों) का प्रयोग करते थे।

यह बात स्पष्ट है कि भारतीय उत्पादक के लिए आनुतोषिक (इनाम) तथा अंग्रेज उत्पादक के लिए जुर्माने (आर्थिक दंड) की स्थिति केवल तभी उत्पन्न हो सकती थी यदि इंग्लैंड में, स्वर्ण के रूप में चांदी की गिरावट, भारत में वस्तुओं (जिन्सों) के रूप में चांदी की गिरावट की अपेक्षा अधिक होती। ऐसा होने पर भारतीय उत्पादक, इंग्लैंड में चांदी के लिए अपने माल का विनिमय करके एक स्पष्ट लाभ कमा लेता और इस प्रकार एक ऐसा माध्यम प्राप्त कर लेता जिसका भारत में माल/वस्तुओं तथा सेवाओं पर अपेक्षाकृत और अधिक नियंत्रण होता। परन्तु वास्तव में, ऐसी कल्पना व मान्यता का कोई औचित्य नहीं हो सकता था। ऐसा कोई कारण नहीं था, कि चांदी का स्वर्ण मूल्य, सामान्य रूप में माल (जिन्सों) के स्वर्ण मूल्य से भिन्न दर पर गिरता या चांदी के मूल्यों में इंग्लैंड में तथा भारत में, बहुत भारी अन्तर होता। आंकड़े यह दर्शाते हैं कि ऐसी पूर्व कल्पना निराधार नहीं थी। (देखिए, तालिका XXI)

1. अध्याय 1 में चांदी के आयात संबंधी आंकड़े हैं। तथापि यह देखा जाएगा कि 1872-1893 के बीच की अवधि में भारत में चांदी के आयात ने चांदी के स्वर्णमूल्य का कितनी निकटता से अनुसरण किया।

तालिका XXI

भारत तथा इंग्लैंड के बीच मूल्यों वेतनों तथा चांदी का संचरण*

भारत में चांदी का निबल आयात		चांदी के स्वर्ण मूल्य के लिए सूचांक सं.	वर्ष	भारत में जिन्सों/वस्तुओं के रजत मूल्य के लिए सूचांक सं.	भारत में वेतन के लिए सूचांक सं.	इंग्लैड में जिन्सों/वस्तुओं के स्वर्णमूल्य के लिए सूचांक सं.	इंग्लैड में वेतन/मजदूरी की सूचांक सं.
वर्ष	राशि रुपए						
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
1871-72	6,587,296	99.7	1871	100	—	100	100
1872-73	739,244	99.2	1872	105	—	109	105.8
1873-74	2,530,824	97.4	1873	107	100	111	112
1874-75	4,674,791	95.8	1874	116	101	102	113
1875-76	1,640,445	93.3	1875	103	97	96	111.6
1876-77	7,286,188	86.4	1876	107	98	95	110
1877-78	14,732,194	90.2	1877	138	97	94	109.8
1878-79	4,057,377	86.4	1878	148	99	87	107
1879-80	7,976,063	84.2	1879	135	100	83	105.8
1880-81	3,923,612	85.9	1880	117	99	88	106.5
1881-82	5,381,410	85.0	1881	106	99	85	106.5
1882-83	7,541,427	84.9	1882	105	100	84	106.5
1883-84	6,433,886	83.1	1883	106	102	82	108
1884-85	7,319,581	83.3	1884	114	101	76	109
1885-86	11,627,028	79.9	1885	113	106	72	108
1886-87	7,191,743	74.6	1886	110	105	69	107
1887-88	9,319,421	73.3	1887	111	114	68	108
1888-89	9,327,529	70.4	1888	119	112	70	109.8
1889-90	11,002,078	70.2	1889	125	112	72	113
1890-91	14,211,408	78.4	1890	125	113	72	118
1891-92	9,165,684	74.3	1891	128	118	72	118
1892-93	12,893,499	65.5	1892	141	110	68	117.4
1893-94	13,759,273	58.5	1893	138	119	68	117.4

* कालम (2) की 1898 की आई सी सी की तालिका सं. 2, परिशिष्ट 2 से लिया गया है। कालम नं. (3) (5) (6) तथा (7) जरनल ऑफ दि स्टेटिस्टिकल सोसायटी, मार्च 1897 के अंक में "भारत में चांदी मूल्य, (सिल्वर प्राइसिज इन इंडिया) नामक एटकिंसन के लेख से लिए गए हैं। कॉलम (8) डब्लू.टी.लेटन द्वारा दिए गए आंकड़ों पर आधारित हैं। ये आंकड़े उन्होंने अपनी कृति "इन्ट्रोडेक्शन टू दि स्टडी ऑफ प्राइसिस (1912) की तालिका कालम 1, पृष्ठ 150 में दिए हैं, 1871 में 100 के आधार पर पुनर्मान।

यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि यदि चांदी में गिरावट जिन्सों/वस्तुओं की अपेक्षा अधिक तेजी से हो रही थी और भारत में चांदी की कीमत इंग्लैंड में चांदी की कीमत की तुलना में कम थी तो हमें इस बात का प्रमाण मिलना चाहिए था कि उस समय चांदी का इंग्लैंड से भारत में असामान्य रूप से प्रवाह हो रहा था, पर वास्तविकता क्या थी? वास्तविकता केवल यही नहीं थी कि उस समय भारत में चांदी का कोई असाधारण अन्तर्वाह नहीं हुआ बल्कि 1871-93 के दौरान चांदी का भारत में जो आयात हुआ था वह उस अवधि से पूर्व के बीस वर्षों की तुलना में बहुत कम हुआ था।[1] यह बात इस तथ्य से पूर्णतया स्पष्ट हुई कि भारत में चांदी का मूल्य उतना ही था जितना भारत से बाहर था और इसके फलस्वरूप भारतीय उत्पादक को अपने व्यापार पर आनुतोषिक (इनाम) मिलने का बहुत ही कम अवसर था।

यद्यपि, इसे प्रश्न का पूर्व दृष्टिकोण कहा जा सकता है पर भारतीय उत्पादक को यह निश्चय व विश्वास था कि उसकी समृद्धि उस आनुतोषिक (इनाम) के कारण थी जो उसे मिलता था। चूंकि उसकी स्थिति ऐसी थी, अतः उसके लिए भारतीय मुद्रा में किसी प्रकार के सुधार का विरोध करना स्वाभाविक था। क्योंकि जिस पतनोन्मुख व ह्रासमान विनिमय को सरकार अभिशाप मानती थी, उसे भारतीय उत्पादक वरदान समझता था। परन्तु भारतीय उत्पादक का दृष्टिकोण चाहे जितना युक्तियुक्त था पर उसके प्रति अधिक सहानुभूति महसूस न होती यदि उसके साथ सामान्य रूप में माना जाने वाला यह विचार जुड़ा होता कि आनुतोषिक इनाम निर्यात व्यापार से उत्पन्न हुआ, जिससे यह इस लोकप्रिय धर्म सिद्धांत (विश्वास का एकसूत्र) बन गया कि विनिमय की गिरावट समूचे राष्ट्र के लिए लाभ का साधन है। अब क्या यह बात सच थी कि आनुतोषिक/इनाम की उत्पत्ति निर्यात व्यापार से हुई थी? यदि ऐसा होता तो विनिमय की प्रत्येक गिरावट पर आनुतोषिक मिलना चाहिए था। परन्तु मान लिया, कि चांदी का अवमूल्यन (मूल्य ह्रास यदि भारत में, यूरोप में उसके अवमूल्यन होने से पहले हो जाता, तो इस प्रकार विनिमय में जो गिरावट आई थी क्या उससे भारतीय निर्यातक को आनुतोषिक/इनाम या लाभ मिल सकता था? जैसा कि ऊपर कहा गया है, भारतीय निर्यातक को आनुतोषिक/इनाम या लाभ प्राप्त होने का अवसर केवल तभी मिल सकता था, यदि वह अपने उत्पादन के बदले में मिलने वाली चांदी से भारत में और अधिक माल या सेवाएं खरीद सकता। यदि इसे सरल भाषा में कहा जाए तो उसके उत्पादन की कीमत तथा उसके परिव्यय की कीमत के बीच जो अंतर था वह उसका आनुतोषिक था। इस बात को ध्यान में रखकर हम विश्वासपूर्वक यह कह सकते हैं कि पहले, भारत में चांदी का अवमूल्यन होने के मामले में, भारतीय विनिमय में ऐसी गिरावट के कारण उसको अपने व्यापार पर आनुतोषिक मिलने के बजाए जुर्माना मिलता। ऐसी स्थिति में, भारत के निर्यातकों को यह पता था कि यद्यपि भारतीय विनिमय अर्थात चांदी के स्वर्ण मूल्य में गिरावट आ गई थी, तो भी

1. देखिए इन्फ्रा, अध्याय-4

इंग्लैंड में स्वर्ण मूल्यों का भारत में रजत मूल्यों के साथ जो अनुपात था, उसमें अपेक्षाकृत अधिक गिरावट आ गई थी अर्थात् उसे अपने उत्पादन की जो कीमत मिलती थी वह उसके द्वारा किए गए परिव्यय (खर्च) से कम होती थी। यह बात बिल्कुल प्रमाणित नहीं है कि चांदी का मूल्य भारत में गिरने से पहले यूरोप में गिर गया था।[1] परन्तु यदि चाहे ऐसा हुआ भी हो तो भी विनिमय की गिरावट से दंड (जुर्माने) की संभावना से यह सिद्ध होता है कि यदि कोई आनुतोषिक था तो वह निर्यात व्यापार पर अपने में आनुतोषिक नहीं था बल्कि देश के अंदर मूल्यों के सामान्य स्तर तथा विशेष माल तथा सेवाओं के मूल्यों के बीच असामंजस्य का परिणाम था और चाहे देश का कोई निर्यात व्यापार न भी होता तो भी वह असामंजस्य विद्यमान रहता।

इस प्रकार, आनुतोषिक का मिलना मुद्रा के सामान्य अवमूल्यन का केवल एक संयोगमात्र था। उसके अस्तित्व को इसलिए महसूस किया गया क्योंकि भारत में समस्त वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमत में उसके समान वृद्धि नहीं हुई। यह बात सभी जानते हैं कि किसी एक समय में कुछ वस्तुओं के मूल्य में तो वृद्धि होगी जबकि सामान्य मूल्यों के स्तर में गिरावट आएगी। इसके विपरीत जब सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि हो रही हो तो कुछ वस्तुओं के मूल्य में गिरावट आ रही होगी। परन्तु ऐसी विपरीत चाल कभी कभार ही होती है अधिकतर ऐसा होता है कि यद्यपि कुछ वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य उसी एक दिशा में चलते हैं, परन्तु वे सामान्य मूल्य स्तर के उतार चढ़ाव की गति के साथ–साथ नहीं चलते। यह बात प्रसिद्ध है कि जब सामान्य मूल्यों में गिरावट आती है तो प्रत्येक नियोक्ता के कुल परिव्यय में सबसे बड़ी मदों, वेतन तथा अन्य निश्चित आय में उसी अनुपात में गिरावट नहीं आती। और जब सामान्य मूल्यों में वृद्धि होती है तो उन सामान्य मूल्यों में वृद्धि उसी तेज गति से नहीं होती बल्कि उनमें कम वृद्धि होती है वे इस दृष्टि से पीछे रहते हैं। ऐसा भारत जैसे रजतमान वाले देश में तथा इंग्लैंड जैसे स्वर्णमान वाले देश में 1873-1893 की अवधि के दौरान हो रहा था। (चार्ट-4 देखिए)। इंग्लैंड में मूल्यों में गिरावट आ गई थी, परन्तु वेतन में उस हद तक गिरावट नहीं आई थी। भारत में मूल्यों में वृद्धि हो गई थी, परन्तु वेतन में उस हद तक वृद्धि नहीं हुई थी। अंग्रेज निर्माता को अर्थ दण्ड देना पड़ रहा था, यद्यपि वह उसके भारतीय प्रतिद्वन्द्वी के किसी काम के कारण नहीं था बल्कि इस कारण था कि उसके कर्मचारियों का वेतन तो वही रहा जबकि उसके उत्पादनों के मूल्य में कमी हो गई थी। भारतीय उत्पादक को यदि कोई लाभ मिला तो वह लाभ इसी कारण नहीं मिला था कि उसकी पूर्ति करने वाला अंग्रेज प्रतिद्वन्द्वी था बल्कि इस कारण मिला था कि उसको अधिक वेतन नहीं देना पड़ा था, हालांकि उसके उत्पादनों के मूल्य में वृद्धि हो गई थी।

अतएव, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ह्रासमान विनिमय से स्थापित व्यापार संबंधों में कोई गड़बड़ नहीं हो सकती थी या उससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में शामिल वस्तुएं विस्थापित

CHART IV

PRICES AND WAGES IN INDIA AND ENGLAND, 1873–93

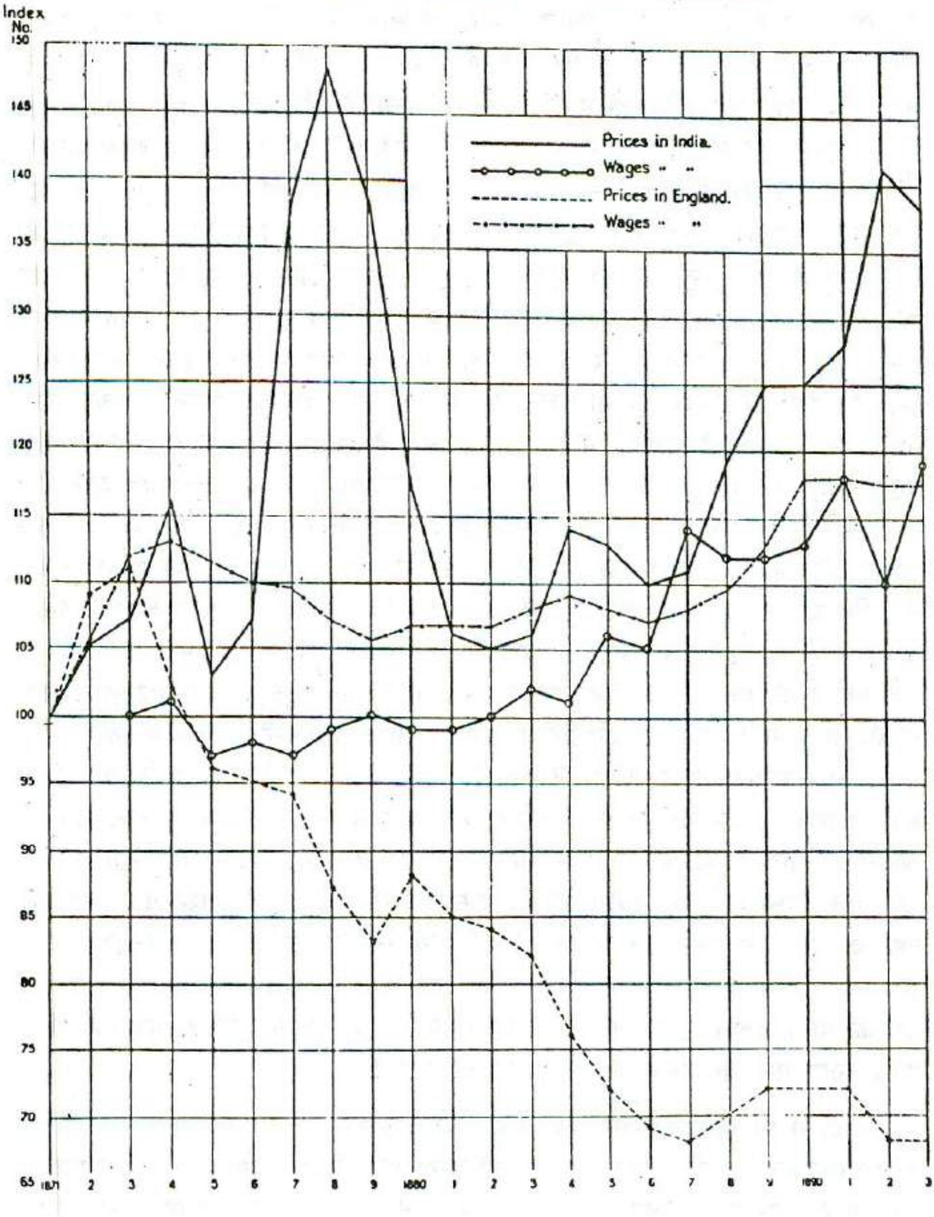

नहीं हो सकी थी। इसके लिए सबसे अधिक श्रेय आर्थिक प्रोत्साहन में इसके प्रभाव को दिया जा सकता है। परन्तु जहां तक उसके एक प्रेरक शक्ति को प्रदान करने, या प्रोत्साहन देने का संबंध है, उसने ऐसा सम्पत्ति का धन के सामाजिक वितरण में परिवर्तन लाकर किया। इंग्लैंड के मामले में जहां पर मूल्यों में गिरावट आ रही थी, नियोक्ता को ही हानि उठानी पड़ रही थी। भारत के मामले में, चूंकि मूल्यों में वृद्धि हो रही थी इसलिए यहां पर मजदूरी प्राप्त करने वाले लोगों को हानि उठानी पड़ रही थी। दोनों ही मामलों में समाज के एक अंग के लिए अन्याय किया जा रहा था। इसलिए मुद्रा के सुधार के लिए एक सरल मामला बनाया गया। इंग्लैंड में मुद्रा सुधार की आवश्यकता को मान्यता दी गई परन्तु भारत में बहुत से लोग इसके विरुद्ध थे। कुछ लोगों की दृष्टि में रजत मान के स्थायित्व का शक्तिशाली प्रभाव पड़ा क्योंकि वे भारतीय मूल्यों में 1873 के स्तर से ऊपर वृद्धि का प्रमाण जुटाने में असफल हो गए थे। दूसरों के लिए ह्रासमान विनिमय का लाभ इतना बड़ा वरदान था जिसे विनिमय को स्थिर करके आसानी से नहीं दिया जा सकता था। दोनों विचारों की असत्यता स्पष्ट है। भारत में मूल्यों में वृद्धि हुई और वह भी बहुत अधिक हुई थी। उससे कदाचित आनुतोषिक हुआ था परन्तु वह वेतनभोगी पर दंड था। इस प्रकार देखने पर भारतीय मुद्रा के सुधार के लिए आवश्यकता उसकी अपेक्षा और अधिक तात्कालिक थी जितनी अंग्रेजी मुद्रा के विषय में बताई जा सकती थी। विशुद्ध मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बढते हुए मूल्यों तथा गिरते मूल्यों के बीच शायद चयन करने की काफी संभावना है। सम्पत्ति के वितरण पर उनके प्रभाव की दृष्टि से उस मानक के पक्ष में बहुत थोड़ा कहा जा सकता है जो उसके मूल्य में परिवर्तन करता है और जो सम्पत्ति को अपेक्षाकृत निर्धन व्यक्ति से अपेक्षाकृत धनी के हाथों में स्थानांतरित करने का साधन बनता है। स्क्रोप ने कहा है, "मूल्य में स्थायित्व के बिना धन एक धोखा है।" वास्तव में, प्रभावित हितों की मात्रा को ध्यान में रखते हुए, अवमूल्यित धन को अपेक्षाकृत और भी बड़ा धोखा मानना चाहिए। उसके ऐसा होने पर भारतीय व्यापार तथा उद्योग की सम्पन्नता, एक स्वस्थ मुद्रा का प्रमाण होने के बजाए इस तथ्य के कारण बनी रही कि मुद्रा उस समय एक बीमार मुद्रा थी। विनिमय के गिरावट के फलस्वरूप, जहां तक उसके लाभ का प्रश्न है उससे निश्चित आय वाले भारतीय लोगों के एक बहुत बड़े वर्ग को हानि उठानी पड़ी। उन लोगों को सरकार तथा उसके यूरोपीय अधिकारियों के साथ रजत मान के अस्थायित्व से हानि उठानी पड़ी।

चांदी में गिरावट से इतना कुछ हुआ। परन्तु इसके कारण जो वित्तीय कठिनाइयां तथा सामाजिक अन्याय उत्पन्न हुआ, उससे उसके द्वारा उत्पन्न दुष्प्रभावों का पूर्ण विवरण नहीं मिला। गिरावट की अपेक्षा और अधिक घबराने वाली बात थी गिरावट के साथ-साथ उतार-चढ़ाव। (चार्ट V देखिए अगले पृष्ठ पर)

उतार-चढ़ाव ने भारत सरकार की उलझन को बहुत बढ़ा दिया जो रुपये के

1. फाइनेंशियल स्टेटमेंट, 1883-84 पृष्ठ 26

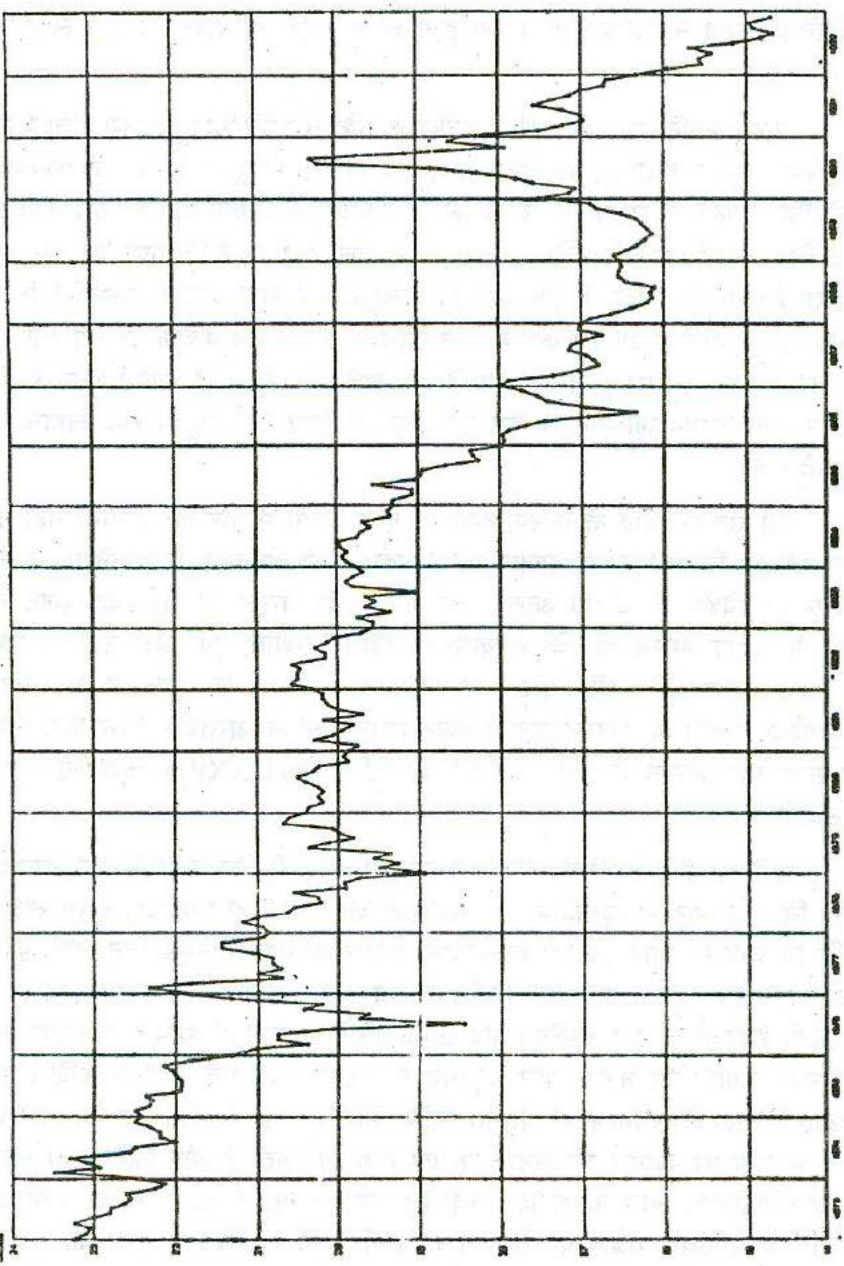

CHART V

MONTHLY FLUCTUATIONS OF THE RUPEE-STERLING EXCHANGE

विनिमय मूल्य में गिरावट के कारण हुआ था माननीय श्री बेरिंग (बाद में लार्ड क्रोयर[1] का मत है,

"यह वास्तविकता नहीं है कि तुलनात्मक दृष्टि से रुपये का मूल्य कम होता है जिसके कारण असुविधा होती है। यह संभव होगा, यद्यपि किसी भी मूल्य के रुपये के साथ भारतीय वित्तीय प्रणाली का समयोजन करना अत्यंत कष्टप्रद हो सकता था। सरकार तथा व्यापार के लिए समान रूप से असुविधा उत्पन्न करने वाली बात यह है कि रुपये का मूल्य अस्थिर होता है। भारतीय मुद्रा में, इस बात को बिल्कुल सही-सही बताना असंभव है कि भारत सरकार के वार्षिक दायित्व क्या हैं। इन दायित्वों का हिसाब प्रत्येक वर्ष नए सिरे से उन परिवर्तनों के अनुसार लगाना पड़ता है जो स्वर्ण तथा रजत के सापेक्ष मूल्य में होते हैं, और ऐसा हिसाब जो कम से कम एक साल के लिए भी लागू हो सके लगाना अत्यंत कठिन है।"

ऐसे उतार-चढाव के कारण बजट में ऐसी किसी भी दर की कल्पना नहीं की जा सकती थी जिसकी सच्ची बाजार दर में बदलने की संभावना होती। जैसा मामला था, एक वर्ष विशेष के दौरान औसत रूप में जो दर वसूल की गई, वह बजट दर से इतनी अधिक अलग थी, कि सरकार की वित्तीय स्थिति, एक वित्त मंत्री के शब्दों में "पक्की जुआबाजी" थी। पाउंड के भुगतान के रुपये के मूल्य में अचानक तथा व्यवस्था न होने के कारण सालाना बजट कितना अधिक अस्तव्यस्त कर दिया गया था, इसका पता लगाने में पृष्ठ 111 पर दी गई तालिका XXII से कुछ सहायता मिल सकती है।

विनिमय के अस्थायित्व के परिणामस्वरूप सरकारी वित्त में ऐसी अनिश्चितताएं थी तो निजी व्यापार भी न्यूनाधिक एक सट्टेबाजी का मामला हो गया था। इसमें संदेह नहीं, कि विनिमय में उतार–चढ़ाव, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की एक सामान्य घटना होती है। परन्तु यदि उनसे व्यापार तथा उद्योग में कोई विच्छेद उत्पन्न न करना हो तो ऐसे उतार–चढाव की निश्चित सीमा होनी चाहिए। यदि सीमाएं निश्चित होगी तो व्यापार का काफी निश्चित हिसाब लगाया जा सकेगा और विनिमय में अटकलबाजी एक स्थापित अंकित मूल्य से ज्ञात भिन्नता की सीमाओं के अंतर्गत सीमित होंगी। इसके विपरीत जहां पर सीमाएं ज्ञात न हो, वहां पर व्यापार की समस्त हिसाब व्यर्थ हो जाता है और विनिमय में सट्टेबाजी, वैध व्यापार का स्थान ग्रहण कर लेती है। अब यह बात स्पष्ट है कि दो देशों के बीच विनिमय में उतार-चढाव की हद सीमित होगी, यदि दो देशों में मूल्य का वही समान मानक हो। जहां पर मूल्य का कोई ऐसा एक समान मानक नहीं होता, यद्यपि सीमाएं विद्यमान होती हैं, परन्तु वे इतनी अधिक अनिश्चित होती हैं कि उनका अधिक व्यावहारिक उपयोग नहीं हो सकता। विनिमय के निश्चित अंकित मूल्य की दरार ने चूंकि स्वर्ण तथा रजत मान वाले देशों के बीच एक समान मानक को नष्ट कर दिया था, अतः उसने ऐसे

तालिका XXII

स्वर्ण भुगतान के रुपये के मूल्य में उतार–चढाव तथा विनिमय के उतार-चढाव*

वित्तीय वर्ष	विनिमय की अनुमानित दर जिस पर वर्ष का बजट बनाया गया था		वर्ष के दौरान औसत के आधार पर वास्तव में वसूल किए गए विनिमय की दर		विनिमय की अनुमानित तथा वसूल की गई दरों के बीच परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पाउंड के भुगतान के रुपये मूल्य में परिवर्तन	
					वृद्धि	ह्रस
					रुपये	रुपये
	s.	d.	s.	d.	Rs.	Rs.
1874-75	1	10.375	1	10.156	15,91,764	—
1875-76	1	9.875	1	9.626	19,57,917	—
1876-77	1	8.5	1	8.508	—	76,736
1877-78	1	9.23	1	8.791	38,43,050	—
1878-79	1	8.4	1	7.794	56,87,129	—
1879-80	1	7	1	7.961	—	84,40,737
1880-81	1	8	1	7.956	4,24,722	—
1881-82	1	8	1	7.895	10,17,482	—
1882-83	1	8	1	7.525	37,46,890	—
1883-84	1	7.5	1	7.536	—	3,62,902
1884-85	1	7.5	1	7.308	18,97,307	—
1885-86	1	7	1	6.254	56,82,638	—
1886-87	1	6	1	5.441	65,17,721	—
1887-88	1	5.5	1	4.898	71,90,097	—
1888-89	1	4.9	1	4.379	77,98,400	—
1889-90	1	4.38	1	4.566	—	27,31,892
1890-91	1	4.552	1	6.09	—	2,35,51,744
1891-92	1	5.25	1	4.733	80,09,366	—

* स्वर्ण तथा रजत आयोग की अंतिम रिपोर्ट के पृष्ठ 40 में दिए गए आंकड़ों तथा इंडियन करंसी कमेटी, 1893 की रिपोर्ट के परिशिष्ट 2, पृष्ठ 270 में दिए गए आंकड़ों से संकलित

देशों के बीच विनिमय के उतार-चढ़ाव संबंधी सीमाओं को हटा दिया था। मानक उपायों के मूल्य में ऐसी विभिन्नताओं के परिणामस्वरूप व्यापार में हडबडी तथा हिचकिचाहट'' द्वारा वृद्धि हुई और सट्टेबाजी तेजी से सक्रिय हो गई।[1]

व्यापार की प्रगति स्थिरता व स्थायित्व पर निर्भर होती है यह एक सच बात है जो बहुत कम लोगों के समझ में आती है जब तक कि इसके तथ्य नकार न दिए हों। जब सरकार स्थिर हो, साख सुरक्षित हो और शर्तें एक समान हों तो स्वस्थ उद्यम के लिए इसके महत्व को समझना कठिन होता है और फिर भी, अस्थिरता की बाधा इतनी बड़ी होती है कि अनिश्चितता से घिरे क्षेत्रों में सर्वत्र व्यापारियों का मार्गदर्शन स्थिरता को उत्पन्न करने वाली अनेक प्रकार की युक्तियों द्वारा किया जाता है। सर्वत्र व्यापार के बैरोमीटर उत्पन्न हो गए हैं, जो व्यापारियों को आसन्न परिवर्तनों के संबंध में पूर्व चेतावनी देते हैं और इस प्रकार उनको अपने कार्य में समय पर परिवर्तन करके उन परिवर्तनों के विरुद्ध तैयारी करने के योग्य बना देते हैं। समूचे बीमा व्यापार का उद्देश्य आर्थिक जीवन को स्थिरता प्रदान करना है। जिस आवश्यकता ने उन मानक मापों को बनाए रखने के लिए नियमित रूप से स्थापित सरकारों को बाध्य किया, वह आवश्यकता उसी उद्देश्य से प्रेरित थी। इन मानक मापों द्वारा, वस्तुओं की मात्रा का पता लगाया जा सकता है और उनमें व्यापार को निश्चित रूप से नियमित किया जा सकता है जिस अत्यंत सावधानी वाली सूक्ष्मता के द्वारा प्रत्येक सभ्य देश अपनी मानक मापों को परिभाषित करता है और एक विशाल मशीनरी का अनुरक्षण वह उसे विचलन से बचाने के लिए करता है। ये दोनों उस बड़े महत्व के केवल प्रमाण मात्र हैं जो महत्व के आर्थिक समाज अभिव्यक्ति को यथार्थता प्रदान के मामले को देता रहता है और अपने सदस्यों द्वारा अपनी निजी या निगमित क्षमता में की गई संविदाओं को पूरा करने के आश्वासन देता रहता है।

चूंकि एक समुदाय की मानक माप समुदाय के अपने लिए महत्वपूर्ण होती है। मूल्य की उसकी माप उन सबमें सबसे महत्वपूर्ण है।[2] भार की माप, विस्तार या मात्रा केवल विशेष लेनदेन में होती है। यदि पाउंड, बुशेल या गज को बदल दिया जाएगा तो दोष तुलनात्मक रूप से सीमित रह जाएंगे। परन्तु मूल्य की माप सर्व व्यापक होती है।

पील ने यह घोषणा की[3], "सार्वजनिक या निजी कोई संविदा नहीं है।" राष्ट्रीय या व्यक्तिगत स्तर पर ऐसा कोई वादा नहीं है जिस पर इसका प्रभाव नहीं पडता है। वाणिज्य के उद्यम, व्यापार के लाभ, समाज के समस्त घरेलू सम्बंधों में की गई व्यवस्था, श्रमिकों की मजदूरी, अधिकतम तथा न्यूनतम राशि के आर्थिक सौदे, राष्ट्रीय ऋण का भुगतान,

1. साक्ष्य-इंडियन करेंसी कमेटी, 1898 पृ. 6, 290, 9, 808-10
2. हेरिस, एन ऐसे *अपोन मनी एंड कोयन्स* (जे.आर. मैककुलोक द्वारा अपने *काल्यूम आफ स्केयर्स ट्रक्टस ऑन मनी*, पार्ट-I, अध्याय 2, भाग 21 भाग 11, अध्याय 11, पैरा 11, 13 तथा 20 में पुनर्मुद्रित।
3. उसका बैंक चार्टर एक्ट पर हाउस आफ कामन्स में वादविवाद के दौरान, दिनांक 6 मई 1844 को दिया गया भाषण। हंसार्ड खंड 34, पृष्ठ 720

राष्ट्रीय व्यय के लिए प्रावधान, सबसे छोटे मूल्यवर्ग के सिक्कों का नियंत्रण जो जीवन की आवश्यकताओं पर होता है, ये सब मूल्य की माप में परिवर्तन द्वारा प्रभावित होते हैं। "ऐसा इस कारण होता है क्योंकि प्रत्येक संविदा, यद्यपि वह अंततः माल की संविदा होती है, मूलतः मूल्य की संविदा होती है। अतएव भार की माप क्षमता या परिमाण में स्थिरता बनाए रखना पर्याप्त नहीं है। माल की संविदा, अनुबद्ध मापदंड के लिए सही रह सकती है, परन्तु फिर भी मूल्यों के मापदंड में परिवर्तन के कारण मूल्यों में संविदा के रूप में मूल्य के मापदंड में स्थिरता को बनाए रखने की आवश्यकता एक व्यवस्थित समाज की प्रत्येक सरकार के कंधों पर आ पडती है। परन्तु जैसे-जैसे समाज स्थिति से संविदा की ओर अग्रसर होता है इसका महत्त्व निर्विवाद रूप में बढ जाता है तो समाज के संविदात्मक आधार का संरक्षण, मूल्य के एक अपरिवर्तनीय मापदंड के संरक्षण के समान हो जाता है।

यह पता चला कि मूल्य के एक सामान्य मापदंड को किसी एक या दूसरे रूंप में पुनः संस्थापित करने के काम को और अधिक लम्बे समय तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता था क्योंकि मूल्य के मापदंड को नष्ट करने में सत्तर के दशक के विभ्रांत विधायकों ने सहायता की। जैसा कि पहले वर्णन किया गया है इस कानून के बनने के बाद के परिणाम इतने भीषण थे कि स्थिति को बिना ठीक किए कठोर थे उनके फलस्वरूप ऐसी परिस्थिति के बिना काम चल नहीं सकता था। पुनर्निर्माण के प्रयासों को काफी हानि पहुंचने से पहले ही आरभ कर दिया जाना चाहिए था। यह बात केवल यह दर्शाती है कि व्यापार के बंधन से जुडा विश्व यदि हो सका तो, इस बात पर जोर देगा कि उसकी मुद्रा प्रणांली एक समान मापक पर आधारित होनी चाहिए।

वे धन्य हैं जो अनुभव करते हैं कि जिन लोगों में हमारा जन्म हुआ है, उनका उद्धार करना हमारा कर्तव्य है। धन्य हैं वे, जो गुलामी का खात्मा करने के लिए सब-कुछ न्यौछावर करते हैं, और धन्य हैं वे, जो सुख और दुख, मान और सम्मान, कष्ट और कठिनाईयों, आंधी और तूफान की परवाह किए बिना तब तक संघर्ष करते रहेंगे, जब तक कि अस्पृश्यों को उनके मानवीय जन्मसिद्ध अधिकार न मिल जाएं।

— भीमराव अम्बेडकर

अध्याय 4
स्वर्ण मानक की ओर

स्थिर आर्थिक स्थिति की स्थापना स्वाभाविक रूप में मूल्य के एक सामान्य मानक के पुनरुद्धार पर बहुत निर्भर थी। उसका उद्देश्य सीधा-सादा था, किन्तु उसकी उपलब्धि किसी प्रकार भी एक आसान बात नहीं थी। उसे व्यवहार में लाने के लिए सबसे पहले दो मार्ग खुले प्रतीत होते थे। एक तरीका एक सामान्य धातु को मुद्रा के रूप में अपनाना था और चूंकि विश्व के सभी मुख्य देशों ने स्वर्ण–मान को अपना लिया था अतः इसका अर्थ यह था कि रजत–मान वाले देशों को अपने मानक को स्वर्ण के पक्ष में त्याग देना चाहिए। दूसरा मार्ग स्वर्ण तथा रजत मान वाले देशों को अपनी मुद्रा रखने देना तथा उनके बीच विनिमय का एक निश्चित अनुपात स्थापित करने देना था जिससे दो धातुओं के मूल्य का एक समान मानक बन जाए।

भारतीय मुद्रा के सुधार के लिए आन्दोलन का इतिहास, इन दो आन्दोलनों का इतिहास है। स्वर्ण–मान की शुरूआत के लिए किया गया आन्दोलन पहला आन्दोलन था जिसने पहले पैर जमाए। 1868 की अधिसूचना की असफलता के संबंध में यह कहा जा सकता है कि वह एक नीति की असफलता थी, परन्तु भारत में स्वर्ण मुद्रा के लिए आन्दोलन को जो छठे दशक में आरंभ हुआ था वह देश के बाहर पूर्ण रूप में नहीं किया गया था। इस आन्दोलन में अब भी जान थी, यह बात इस तथ्य से दिखाई देती है कि इसे सर आर. टैम्पल ने चार वर्ष बाद 15 मई 1872 को एक ज्ञापन[1] में उस समय पुनरुज्जीवित किया गया जब वह भारत का वित्त मंत्री बना। जिस महत्वपूर्ण विषय में उसका अपने पूर्ववर्ती वित्त मंत्रियों से मतभेद था, वह यह था कि उसके पूर्ववर्ती वित्त मंत्री सावरेन को भारत में स्वर्ण मुद्रा की प्रमुख यूनिट बनाना चाहते थे जबकि वह भारतीय स्वर्ण मुद्रा "मोहर" को वह स्थान प्रदान करना चाहता था। उसके पूर्ववर्ती मंत्रियों ने वैसा क्यों नहीं किया, यह बात थोडी आश्चर्यजनक है जबकि सॉवरेन का सही रूप में मूल्य निर्धारण करने की समस्या थी और इस समस्या से वे बहुत घबरा गए थे। जब इस बात को याद किया जाता है कि भारतीय टकसाल पिछले बहुत लम्बे समय से "मोहर" जारी कर रही थी जिसका सही–सही मूल्य निर्धारण करना संभव था और उसे साथ ही भारत में स्वर्ण

1. रिपोर्ट आफ द इंडियन करेंसी कमेटी-1898 के परिशिष्ट 1, सं. 12 में मुद्रित।

मुद्रा की प्रमुख यूनिट बनाया जा सकता था। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, इस बात का केवल एक ही कारण हो सकता है कि वे एक तीर से दो शिकार करना चाहते थे। भारत में स्वर्ण मुद्रा का समर्थन करने के अलावा, सॉवरेन को अपनाने का हिसाब भी उस समय प्रचलित सिक्कों की अन्तर्राष्ट्रीय एकरूपता के आन्दोलन को बढावा देने के लिए लगाया गया था। इस दृष्टि से "मोहर" की उपयोगिता, सॉवरेन की उपयोगिता की तुलना में निम्न थी। परन्तु जब रिचार्ड टैम्पिल घटना स्थल पर आए तो अंतर्राष्ट्रीय रूप में अपनाऐ जाने वाले कुछ सार्वभौम सिक्कों की संभावना तेजी से लुप्त होती प्रतीत हुई। हर स्थिति में, अंतर्राष्ट्रीय सिक्कों पर ब्रिटिश आयोग जिसके अध्यक्ष लार्ड हैलिफैक्स थे की रिपोर्ट में ब्रिटिश सॉवरेन के मान में किसी भी प्रकार के परिवर्तन न करने की घोषणा कर दी गई थी। ऐसी व्यापक समस्या के लिए किसी भी विचार से अबाधित, सर आर. टैम्पिल ने मुक्तरूप से सॉवरेन के स्थान पर "मोहर" को मुद्रा की यूनिट के रूप में अपनाने की सिफारिश की।[1]

उसने लिखा, "हमारे पास सोने के टुकडे हैं, जो क्रमशः पंद्रह, दस तथा पांच रुपये मूल्य के हैं और हम यह विश्वास करते हैं कि जहां तक स्वर्ण तथा रजत के सापेक्ष मूल्य का सम्बन्ध है, ये इन कई रकमों को बिल्कुल सही–सही प्रस्तुत करते हैं ....कि........ "हमें स्वर्ण के सिक्कों को अप्रतिबंधित राशि के लिए, वैध मुद्रा घोषित करने का प्रथम अवसर प्राप्त करना चाहिए कि सोने के टुकडों का रुपये के साथ निर्धारित सम्बन्ध जारी रहना चाहिए, कि एक समय के लिए रुपये को एक असीमित राशि के लिए वैध मुद्रा बने रहने की अनुमति देना आवश्यक हो सकता है, इसमें अस्थायी रूप में दोहरे मानक की कठिनाई होगी, कि दोहरे मानक का संक्रातिकाल यथासंभव कम से कम होना चाहिए। चांदी को घटाकर एक प्रतीक सिक्का बना दिया जाए और उसे केवल एक कम राशि तक की वैध मुद्रा बना दिया जाए कि सोना अंततः एक वैध मानक होना चाहिए।"

उसने 10 रुपये का 120 ग्रेस मानक अर्थात् 110 ग्रेन शुद्ध सोने के लिए अनुपात प्रस्तावित किया[2] परन्तु वह सर चार्ल्स ट्रेवेलियान की उतावलेपन में भागीदार नहीं बना[3]। स्वर्णमुद्रा की परियोजना के संबंध में उसका इतना दृढ संकल्प था कि वह अनुपात को बदलकर स्वर्ण के अनुकूल बनाने के लिए तैयार था। अनुपात का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न

---

1. फिर भी, उसने कहा, "सॉवरेन को 10 रुपये तथा चार आने के लिए एक वैध मुद्रा बनाने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। किन्तु यदि सॉवरेन 10 रुपये का तथा उसके भाग का हो तो उसे चांदी में बदलने के लिए एक मुद्रा के रूप में प्रयोग करने में असुविधा होगी और यदि इस आपत्ति पर ज़ोर दिया जाता तो मैं सॉवरेन को वैध मुद्रा घोषित करने के लिए दबाव न डालता। परन्तु हमें किसी भी परिस्थिति में सॉवरेन को वर्तमान मूल्य निर्धारण पर अपने खजानों (कोषागारों) में प्राप्त रहना चाहिए।"
2. यह 15:1 का अनुपात था जो स्वर्ण का थोडा सा अवमूल्यन था।
3. सुनीर, अध्याय-1

था जिसे "भारत सरकार को इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह इसका निश्चय कर सके।" ये वे प्रश्न हैं जिनको ऐसे प्रत्येक राष्ट्र द्वारा किया गया है जिसने स्वर्ण मुद्रा को अपनाया है। इसमें संदेह नहीं कि यह एक कठिन तथा महत्वपूर्ण समस्या है, परन्तु यह ऐसी नहीं कि इसका समाधान न हो सके और इसका समाधान किया ही जाना चाहिए।"

स्वर्ण मुद्रा के लिए प्रथम प्रस्ताव की ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। चांदी के मूल्य में गिरावट शुरू होने से पहले ही इसे प्रकट कर दिया गया था और इसलिए यह चांदी के अनुवर्ती अवमूल्यन के उपाय की अपेक्षा विगत नीति की पराकाष्ठा अधिक थी। संभवतः उसमें प्रस्ताव की मुख्य शक्ति निहित थी। उस मुद्रा को ढोने की लागत को टालने के लिएं यह एक अच्छा समय था जो बाद में बहुत अधिक निवारक सिद्ध हुई और उसनें अन्य अनेक परियोजनाओं को रद्द किया। इसके अलावा, यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय जब ज्ञापन प्रस्तुत किया गया था तो सरकार को आसन्न संकट के संबंध में चेतावनी नहीं दी गई थी, क्योंकि चांदी के विमुद्रीकरण करने की लहर दो वर्ष पहले से ही, चल चुकी थी।[1] परन्तु कुछ कारणवश जो जनता को ज्ञात नहीं है, प्रस्ताव पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। स्वर्ण मुद्रा की शुरूआत करने के लिए दूसरी योजना भारत के योग्य टकसाल विशेषज्ञ (मिंट मास्टर) कर्नल जे.टी.स्मिथ की थी। उसकी योजना प्रकट रूप में ह्रासमान विनिमय का उपाय थी।[2] योजना को "सिल्वर एंड दि इंडियन एक्सचेंज" (रजत तथा भारतीय विनिमय)[3] पुस्तिका में प्रकाशित प्रथम निबंध में घोषित किया गया था। उसको उसी के शब्दों में निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता है :-

" 6. यद्यपि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारतीय विनिमय को उसकी सामान्य स्थिति में पुनर्स्थापित करने के उद्देश्य की पूर्ति की कठिनाई अब उसकी अपेक्षा बहुत अधिक है जितनी कुछ वर्ष पहले होती, इसका कारण वह गिरावट है जो पहले हो चुकी है फिर भी इस बात में विश्वास करने का पर्याप्त आधार दिखाई पड़ता है कि अब भी यदि निश्चित किए गए उपायों को अपना लिया जाए तो घरेलू (भारत में) भुगतान के लिए मुद्रा को उसके पूर्ववर्ती मूल्य पर पुर्नस्थापित करने में अधिक देर नहीं है और वह भी बिना किसी हानि या अव्यवस्था या गड़बड़ के। मुख्य कदम निजी खाते

---

1. जब यह प्रस्ताव किया गया था, उस समय लार्ड नार्थबुक भारत का वायसराय था। उसने आई. सी.सी. 1898, के समक्ष अपनी साक्षी में प्र. 8,447 में यह सुझाव दिया था कि इसको उस समय न अपनाने का कारण यह था कि "उस समय स्वर्ण का मूल्य बढ़ रहा था और उसे एकत्रित करना असंभव था।" इसमें संदेह नहीं कि यह प्रस्ताव प्रस्तुत होने के बहुत दिन बाद विचार के लिए सामने आया था, इस परिकल्पना के अलावा यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से असत्य है।
2. वह पहले, छठा दशक के दौरान भारत में सॉवरेन के साथ यूनिट के रूप में स्वर्णमान के प्रवेश/प्रारंभ के लिए आंदोलन में भाग ले चुका था। परन्तु वह अंतरराष्ट्रीय सिक्के में एकरूपता के लिए आंदोलन के समर्थक के रूप में था। भारत के लिए स्वर्णमुद्रा तथा ब्रिटिश सॉवरेन के प्रवेश/प्रारंभ के लिए माप/उपाय के प्रस्ताव पर उसकी अभ्युक्ति आदि लंदन 1868.
3. लंदन, एल्फिंगम विल्सन 1876

में चांदी के सिक्कों पर रोक लगानी होगी साथ ही साथ इसके लिए चांदी के सिक्कों के आयात को हतोत्साहित करने तथा कम से कम विदेश में निर्मित चांदी के सिक्कों के वितरण व प्रचलन को रोकने और सिक्कों के लिए स्वर्ण बुलियन प्राप्त करने के लिए टकसाल खोलने के उपाय करने होंगे।

" 7. इस बात को समझाने के लिए यह कैसे किया जाएगा, मुझे यह कहना है कि –

" 8....... भारतीय साम्राज्य के आंतरिक व्यापार में वृद्धि हुई है और उसमें वृद्धि हो रही है . . . .

" 9. कारण चाहे जो हो, इस शताब्दी के आरंभ से ही भारत के आंतरिक व्यापार को अपनी मुद्रा में निरंतर स्थायी तथा स्थिर वृद्धि की आवश्यकता रही, जिसका औसत पिछले अड़तीस वर्ष के दौरान, मूल्य में प्रतिवर्ष पचास लाख पाउंड स्टर्लिंग से अधिक था। इसके अतिरिक्त लाभ से यह पता चलता है कि उसी अवधि के दौरान, स्वर्ण बुलियन के निर्यात से आयात प्रति वर्ष औसतन पच्चीस लाख पाउंड अधिक होता था, यह पिछले बीस वर्ष के दौरान प्रतिवर्ष चालीस लाख से अधिक रहा।

"10. ऐसी स्थिति में इसका यह आवश्यक परिणाम होना प्रतीत होता है कि यदि रुपये की आपूर्ति को बंद कर दिया जाए तो वस्तुओं की तुलना में, शेष बची राशि के स्थानीय मूल्य में उस समय तक वृद्धि होनी चाहिए जब तक वे उस स्थिति को पुनः प्राप्त नहीं कर लेते जो स्थिति उनकी स्वर्ण के बराबर अर्थात 1870 से पहले पंद्रह वर्ष तक प्रति सॉवरेन दस रुपये की दर पर थी।

– " 11. इस स्थिति पर पहुंचने के बाद, व्यापारियों की इस बात में रूचि होगी कि वे सोने को सिक्कों की ढलाई के लिए भारतीय टकसालों में ले जाएंगे और वे वास्तव में ऐसा अधिमूल्य या बट्टे के कारण विनिमय में सुधार होने से पहले ही करेंगे। जो कि उन्हें पहले सोने के सिक्कों के बदले में प्राप्त होगा।

"12. इस साधन द्वारा सोना धीरे–धीरे भारत में लाया जाएगा और जैसा कि दर्शाया गया है कि वितरण होने वाले माध्यम में कम से कम पचास लाख पाउंड की प्रतिवर्ष वृद्धि आवश्यक होगी तथा (मुद्रा में) चांदी के और सिक्कों को स्वीकार नहीं किया जाएगा, तो वह धीरे–धीरे वहां संचित हो जाएगा।

"13. अतएव यह प्रस्ताव है कि उचित सूचना के बाद, निजी व्यक्तियों की ओर से चांदी के सिक्कों तथा चांदी बुलियन पर पेशगियों को स्थगित कर दिया जाना चाहिए, 1870 के अधिनियम 23 के उस भाग को अस्वीकार किया जा रहा है, जो उसे प्राप्त करना और उसके सिक्के बनाना सरकार के लिए अनिवार्य बनाता है, सरकार को जब भी उचित महसूस होगा तभी चांदी की मुद्रा की पुनः पूर्ति कर लेगी इसकी शक्ति उसके हाथ

में होगी। स्वर्ण बुलियन को सरकार द्वारा 38 रुपये, 14 आना प्रति मानक औंस की टकसाल दर पर प्राप्त किया जाना चाहिए और उसके अशरफी (सॉवरेन) तथा आधी अशरफी (अर्ध–सावरेन) में (38 रुपये 15 आने की) या उसी मूल्य के दस या पांच रुपये के सिक्के बनाए जाने चाहिए और उन्हें वैध मुद्रा घोषित कर दी जानी चाहिए, परन्तु वह अभियाचनीय न हो। चांदी का वर्तमान रुपया, पहले की भांति ही वैध मुद्रा के रूप में जारी रहेगा।[1]"

जिस समय स्मिथ योजना प्रस्तुत की गई थी, उस समय चांदी की गिरावट इतनी अधिक महसूस हुई थी कि योजना के पक्ष में अत्यधिक समर्थन प्राप्त हो रहा था। व्यापारी समुदाय का समर्थन बंगाल चैम्बर ऑफ कॉमर्स के 15 जुलाई, 1876 के प्रस्ताव में सम्मिलित किया गया, जिसमें यह आग्रह किया गया "कि सरकार द्वारा अपनाए जाने वाले किसी भी मूल उपाय की दृष्टि से यह आवश्यक है कि 1870 के अधिनियम 23 की धारा 16 ने भारत में टकसालों के लिए यह अनिवार्य कर दिया कि वह मुद्रा निर्माण के लिए प्रदत्त समस्त चांदी को प्राप्त करे और 1871 के अधिनियम 3 के अनुच्छेद (बी), धारा 11, ने भी मुद्रा विभाग के लिए यह अनिवार्य कर दिया कि उनके पास जो चांदी बुलियन भेजा जाए उसके बदले नोटों को जारी करना सरकार विवेक से अस्थायी रूप में स्थगित रखें और यह कि ऐसे आस्थगन के दौरान या आगामी सूचना तक, किसी भी विदेशी बंदरगाह से सिक्के में ढले रुपये का आयात करना वैध न बनाया जाए।" इसी प्रकार का विचार कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन द्वारा प्रस्तुत किया गया। इस समय तक विनिमय में गिरावट भी शुरू हो गई थी, जिसका प्रभाव भारत सरकार के वित्त पर इतना अधिक पड़ा कि सर विलियम म्यूर को 1876.77 के अपने वित्तीय विवरण में यह कहना पड़ा—

"चांदी के अचानक अवमूल्यन और उसके फलस्वरूप इंग्लैंड में प्रतिवर्ष लगभग 15 मिलियन पाउंड की अपेक्षित राशि को निर्धारित करने के कारण, भारत सरकार के खर्च की वृद्धि से निस्संदेह भविष्य के लिए गंभीर स्थिति प्रतीत होने लगी। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि किसी भी दृष्टि से विचार किया जाए, खतरा उससे भी अधिक गंभीर है जिससे अब तक भारत की आर्थिक स्थिति को भय रहा है। युद्ध, अकाल तथा सूखा के खर्चे के कारण राजकोष को प्रायः कहीं अधिक हानि हुई है, जिसका कि हमें वर्तमान वर्ष में भय है। परन्तु ऐसी आपदाएं निकल जाती हैं, हानि सीमित होती है और जब इसके लिए व्यवस्था कर दी जाती है तो अर्थव्यवस्था को फिर निश्चित तथा स्थिर आधार मिल जाता है। वर्तमान चिंता का कारण यह नहीं है। इसके तत्काल परिणाम काफी गम्भीर हैं . . . . परन्तु जो बात इसके लिए महत्वपूर्ण है वह यह है, कि इसका अन्त देखा नहीं

1. इसका हिसाब रुपया--पाउण्ड विनिमय 2 शि. स्वर्ण बनाने के लिए लगाया गया था। 1876 में रुपया पाउण्ड विनिमय औसत 15.9.645 था इससे सोने का थोडा सा अधिमूल्य हो जाता, जो निस्संदेह उसके सिक्के के बंद हो जाने के फलस्वरूप रुपये के मूल्यांकन के कारण जल्दी ही गायब हो जाता।

जा सकता, भविष्य अनिश्चितता के घेरे में है।[1]

ऐसी परिस्थिति में इससे अधिक स्वाभाविक कुछ नहीं हो सकता सिवाय सरकार से यह आशा करने के कि सरकार यदि दूसरों को नहीं तो कम से कम स्वयं को आसन्न संकट से बचाने के लिए कोई कार्रवाई करे। तत्काल कदम उठाने के बजाए सरकार किसी प्रकार की पहल या अगुआई करने में केवल असफल ही नहीं रही, बल्कि जब उस पर बंगाल चैम्बर ऑफ कॉमर्स द्वारा पूर्वोक्त प्रस्ताव पर कार्रवाई करने का जोर डाला गया तो उसने केवल आश्चर्यजनक रूप में एक उदासीन दर्शक की तरह अव्यवहारिक उम्मीदी दिखायी। इसमें संदेह नहीं कि बंगाल चैम्बर का प्रस्ताव दोष पूर्ण था, उसमें उसने यह सुझाव नहीं दिया कि सोने के सिक्के बनाने के लिए भारतीय टकसाल खोली जाए। भारत सरकार इस कमी को पकड़ कर चालाकी से बैठ गई। उसने चैम्बर के समक्ष यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि उसने स्वर्ण के मुक्त सिक्के ढलाई का प्रस्ताव किया होता तो "ऐसी सिफारिश पर वह आपत्ति न होती जो वास्तविक रूप में अपनाए गए प्रस्ताव के अपनाने के लिए अप्रत्यक्ष रूप में घातक प्रतीत होती है –– जैसे टकसालों को एक धातु के वैध मुद्रा में मुक्त सिक्के ढालने के लिए अस्थायी रूप में बंद करना और इसके साथ ही साथ किसी दूसरी धातु के वैध मुद्रा में मुक्त रूप से सिक्के ढालने के लिए टकसालों को न खोलना।"

फिर, क्या उसने उस समय, कर्नल स्मिथ के उस प्रस्ताव को अपनाया जिसमें ऐसी सिफारिश की गई थी? बिल्कुल नहीं। तो फिर उसने कोई ऐसा उपाय क्यों नहीं अपनाया जिसमें उसे कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती थी? इसका कारण यह था कि उसने मुद्रा संबंधी गड़बड़ के कारणों के विभिन्न निदानों का पता कर लिया था। सरकार को, "मूल्यवान धातु के संतुलन में गड़बड़" की व्याख्या करने की अनेक तथा विविध प्रकार की संभावनाएं दिखाई दी।[2] (1) सोने का मूल्य अपरिवर्तनीय था, चांदी के मूल्य में गिरावट आ गई थी। (2) चांदी के मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था, सोने के मूल्य में वृद्धि हो गई थी। (3) सोने के मूल्य में वृद्धि हो गई थी और चांदी के मूल्य में गिरावट आ गई थी। (4) दोनों धातुओं के मूल्य में वृद्धि हो गई थी, परन्तु सोने के मूल्य में चांदी के मूल्य की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई थी। (5) दोनों धातुओं के मूल्य में गिरावट आई थी, परन्तु चांदी के मूल्य में सोने के मूल्य की अपेक्षा अधिक गिरावट आई थी। ऐसी संभावनाओं के बीच जहां तर्क की अपेक्षा पांडित्य प्रदर्शन अधिक था वहां सरकार ने मुद्रा के सुधारकों को चेतावनी दी कि

"यदि गड़बड़ का पता सोने के मूल्य में वृद्धि के कारण चलता है तो निर्दिष्ट उपायों

1. पृष्ठ 93
2. चांदी के मूल्यह्रास के संबंध में दिनांक 22.9.1876 का भारत सरकार का संकल्प देखें 6, कामंस पेपर 1893 का 449
3. कामन्स पेपर 1893 का 449

का स्वरूप उससे स्पष्टरूप में अलग होगा जो चांदी[3] के मूल्य में गिरावट के मामले से उपयुक्त होता।"

इन संभावनाओं में से जो बात प्रमाणित होने वाली प्रतीत हुई वह यह थी कि "सोने के मूल्य में मार्च, 1872 से वृद्धि हुई थी"[1] और इसलिए यदि कोई सुधार करना था तो उसका उत्तरदायित्व स्वर्णमान वाले देशों पर होना चाहिए। उस समय भारत सरकार की जैसी स्थिति थी उसमें राहत लाने वाले किसी प्रकार के मुद्रा सुधार में जल्दी होने की अधिक बुराई के बिना उसे स्वयं ही हानि उठानी पड सकती है। मुद्रा के सुधार जैसे, महत्वपूर्ण मामले के सम्बन्ध में अपने निर्णय को नियमित करने के संकट की आवश्यकताओं की अनुमति का अर्थ यह नहीं है कि उसमें हठ की भावना थी। इसके विपरीत यह एक चेतावनी है। 13 अक्तूबर, 1876 की उस स्पष्ट विज्ञप्ति की प्रशंसा किए बिना कोई पाठक नहीं रह सकता जिसमें सैक्रेटरी ऑफ स्टेट को अपने इस निर्णय की सूचना दी गई थी कि वे प्रतीक्षा करें और देखें। परन्तु भारत सरकार के इसके मूल में निहित दृष्टिकोण के विषय में उसी प्रकार के सिफारिशी तरीके से प्रशंसा करना संभव नहीं था, क्या यह बात समझना संभव है कि सोने के मूल्य में तो वृद्धि हुई थी, परन्तु चांदी का मूल्य कम नहीं हुआ था। इस बात का निर्णय करने का काम तर्क शास्त्रियों पर छोड दिया जाए। परन्तु रजत मान वाले देश के लिए अपनी मुद्रा प्रणाली के सुधार को आरंभ करने से इस आधार पर इनकार कर देना कि सोने के ही मूल्य में वृद्धि हुई थी, वास्तव में एक सामरिक गलती थी। सैनिक मामलों में संभवतः एक ऐसी चीज होती है, जो एक स्थिति पर निर्भर करती है, परन्तु मुद्रा के मामलों में, ऐसी चीज नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि पहले मामले में शक्ति, दूसरे की कमजोरी में निहित होती है।परन्तु बाद वाले मामले में एक की कमजोरी सबकी कमजोरी हो जाती है। इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि सरकार ने, इस मामले में आवश्यक कार्रवाई करने के दायित्व की अवहेलना करके, उसी प्रकार की गलती की जैसी कि प्रो. निकल्सन[2] के शब्दों में "एक ऐसा व्यक्ति करता है जो यह मान बैठे कि उसका जलयान डूब नहीं सकता, क्योंकि उस कक्ष विशेष में जिसमें वह सोता है, कोई रिसाव नहीं है।"

निष्क्रियता की ऐसी प्रवृत्ति अनुचित व मूर्खतापूर्ण थी, इसे भारत सरकार को शीघ्र ही समझा दिया गया। दो वर्ष की अल्पावधि के दौरान ही उसने 1876 में जो स्थिति अपनाई थी, उस पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य होना पडा। 9 नवम्बर, 1878[3] की एक विज्ञप्ति में भारत सरकार ने यह कहा :–

"5. यह आशा की जाती थी कि इस प्रकार की कठिनाइयों से युक्त एक समस्या का इतना जल्दी निर्णय नहीं होना चाहिए और इसकी गंभीर समस्या के अंतिम समाधान

1. कामंस पेपर, 1893 का पैरा 16
2. मनी एंड मोनीटरी प्राब्लम्स, 1895 पृ. 90
3. 1886 का पी पी सी 4868 पृ. 18

के लिए प्रयास करने से पहले कुछ और समय गुजरने देना, कदाचित सबसे बुद्धिमत्ता–पूर्ण काम था क्योंकि निश्चय ही यही सबसे अच्छा स्वाभाविक तरीका था। सन् 1877 में चांदी के मूल्य में हुए सुधार से इस नीति के क्रियान्वयन का समर्थन हुआ और केवल यही वह समय था जब रुपये के मूल्य में नए ह्रास के कारण मूल्य गिरकर जुलाई, 1876 के मूल्य के बराबर ही रह गया। मुद्रा सम्बन्धी वर्तमान कानून के कारण हमें जो भारी जोखिम उठाना पड़ता है उसका व्यावहारिक प्रभाव हमारे गृह प्रेषणों पर पड़ता है जिससे हमें उधर ध्यान देने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

* * * * *

"21. चांदी के मूल्य के सम्बन्ध में जो अनिश्चितता अब कुछ वर्षों से विद्यमान रही है और उसके फलस्वरूप विनिमय में जो गड़बड़ हुई है,. . . . वह सरकार के लिए निरंतर कठिनाई का कारण रही है। ...... और इस बात में संदेह करना संभव नहीं है कि देश के व्यापारी सौंदों में भी इन गड़बड़ियों के कारण इसी प्रकार के परिणाम निकलते या कि भारत में व्यापार या अन्य कार्यों में विदेशी पूंजी निवेश के संबंध में उनके प्रभाव से बहुत भारी बाधा पड़ती।

"23. इस प्रकार इसे हम वर्तमान कठिनाइयों का सच्चा विवरण तथा वर्तमान मुद्रा कानून को बनाए रखने का संभावित जोखिम मानते हैं और हमारा विश्वास है कि उनमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं की गई है। इस बात की जांच पड़ताल करना हमारा काम है कि क्या कोई ऐसा व्यावहारिक उपाय किया जा सकता है जिस पर कोई गंभीर आपत्ति न हो या उसे अपनाने में इतने बड़े जोखिम न हों कि उसका निषेध करना पड़े। हम इस बात को पूर्णतया महसूस करते हैं कि भारत की मुद्रा के संबंध में कार्रवाई करते समय हमारे ऊपर बहुत बडी जिम्मेदारी होगी। परन्तु यह बात भी साफ है कि कुछ न करने की जिम्मेदारी भी किसी प्रकार कम बड़ी नहीं है। कानून को चाहे यथावत छोड़ा जाए या उसे बदला जाए, इसका परिणाम बराबर हमारी कार्रवाई के कारण ही होगा, और यदि हम चाहें तब भी इस गंभीर स्थिति का सामना करने से हम उसे टाल नहीं सकते।

"24. स्वर्णमान के अपनाने से विनिमय में स्थिरता लाने के लिए तथा सरकार की सीधी कार्रवाई द्वारा चांदी की मुद्रा के लिए सोने के प्रतिस्थापन को हमारे विचार से निष्कर्षतः भारत सरकार की विगत अक्तूबर की विज्ञप्ति द्वारा अव्यावहारिक बताया गया है। इसलिए इस योजना पर आगे किसी प्रकार ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। उस विज्ञप्ति के रुपये के भार में वृद्धि भी ध्यान में आई। यह वृद्धि समान रूप में ध्यान देने के योग्य नहीं है। क्योंकि वास्तव में यह भविष्य के लिए सुरक्षा प्रदान नहीं करेगी और किसी उद्देश्यपूर्ण आवश्यक बात को पूरा किए बिना अनिवार्य रूप से बहुत खर्चीली होगी। इसके लिए एक सरल तथा प्रथम प्रस्तावित सुझाव रहता है, चांदी के सिक्के ढलाई की सीमा का जिसे यद्यपि भारत सरकार द्वारा 1876 में अस्वीकृव कर दिया गया था,.....

अब और निकट से जांच पड़ताल करने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

25. इस सुझाव की मुख्य विशेषता यह है कि सिक्का ढलाई अधिनियम में कुछ परिवर्तन किया जाएगा जिससे जनता के सिक्का ढलाई के लिए चांदी बुलियन को टकसाल में ले जाने के मुक्त अधिकार को वापस लिया जा सके इसे या तो भविष्य में पूर्णतया स्थगित कर दिया जाए या कुछ समय के लिए प्रतिबंधित कर दिया जाए।

"26. यदि रुपये के विनिमय मूल्य में स्थिरता के प्रभाव को रखना है तो ऐसी किसी योजना का स्पष्टतः एक आवश्यक भाग यह है कि भविष्य में उस सिक्के को प्राप्त करने के अधिकार का स्वर्ण भुगतान द्वारा किसी तरीके से विनियमित किया जाएगा और यह कि पाउंड तथा रुपये की मुद्रा के बीच संबन्ध इस प्रकार स्थापित किया जाएगा कि जिन धातुओं के सिक्के बनाए जाते हैं उनके सापेक्ष नहीं रखा जाएगा।

"27. इसके विपरीत यह ऐसी योजना का आवश्यक भाग नहीं है कि मूल्य का कोई विशेष संबंध दो शिलिंग पर इस प्रकार .... निर्धारित किया जाए जो अपेक्षाकृत किसी कम या अधिक अनुपात पर निश्चित होना चाहिए। जो बात आवश्यक है, वह यह है कि यदि दर एक बार निर्धारित कर दी जाएगी तो उसमें भविष्य में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

* * * * *

"33. संभवतः सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि सोने के अत्यंत सीमित सिक्कों के साथ या स्वर्ण के सिक्कों को वैध मुद्रा के रूप में बिल्कुल रखे बिना क्या चांदी के सिक्के को हमारी मुद्रा में मुख्य घटक के रूप में बनाए रखना व्यवहार्य है या नहीं। भारत सरकार ने अपनी 1876 की विज्ञप्ति में ऐसी प्रणाली को बनाए रखने की संभावना के प्रतिकूल मत प्रकट किया..... इस बात पर पूरी तरह से पुनर्विचार करने के बाद हमारा दृष्टिकोण इसके विपरीत बनता है और हमारा विचार है कि ऐसी प्रणाली पूर्णतया व्यवहार्य होगी और इसके कारण कोई आर्थिक कठिनाई नहीं होगी। यह सच है कि ऐसा कोई देश नहीं है जिसमें वास्तव में ऐसी स्थिति विद्यमान हो। परन्तु उन देशों में उनमें से अनेक देश ऐसे हैं जिनमें एक अपरिवर्तनीय कागज, की मुद्रा विद्यमान है या विद्यमान रही है उनसे यह प्रमाण मिलता है कि किसी भी आंतरिक मूल्य से रहित मुद्रा की बड़ी भारी असंगति में एक धातु मुद्रा के काम को संतोषजनक रूप में करने की सामर्थ्य है और वह अपने स्थानीय विनिमय मूल्य को उस समय तक बनाए रखने में सक्षम होती है जब तक अत्यधिक निर्गम की केवल उसके विरुद्ध सुरक्षा की जाती है।

* * * * *

"37. (ऐसे) उदाहरण (जैसे ब्रिटिश शिलिंग तथा फ्रांस का पांच फ्रेंक के सिक्के) यह दर्शाते हैं कि न तो गुप्त सिक्का ढलाई, न आंतरिक मूल्य के अवमूल्यन से उत्पन्न

अविश्वास के कारण इस बात की संभावना है कि रुपये को अपने वर्तमान वजन पर, दो शिलिंग के नाममात्र के मूल्य पर एक स्वर्ण मान तथा एक आंशिक स्वर्ण सिक्के के साथ प्रचलन में बनाए रखने में कोई बड़ी कठिनाई होगी।

** ** ** **

46. इस प्रकार हम इस सामान्य निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारत की चांदी की वर्तमान मुद्रा को बनाए रखते समय स्वर्णमान को अपनाना व्यवहार्य होगा इससे समूचे समाज को न तो कोई हानि पहुंचेगी और न भविष्य में किसी प्रकार की कठिनाई का जोखिम होगा और उससे हम भविष्य में, अपने ऊपर आने वाले गंभीर वास्तविक खतरों से उस समय तक अपनी स्वयं की पूर्णतया रक्षा कर सकेंगे जब तक वर्तमान प्रणाली को बनाकर रखा जाएगा। फलतः, हम महारानी की सरकार से यह सिफारिश करना चाहते हैं कि ऐसे परिवर्तन को यथासंभव शीघ्र से शीघ्र अपना लिया जाए और हम उन उपायों को आवश्यक ब्यौरों सहित आगे समझाएंगे जिनके संबन्ध में हमारा यह परामर्श है कि उन्हें लागू करना चाहिए।

** ** ** **

"50. यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि हमारी कार्रवाई का उद्देश्य भारत पर स्वर्ण मुद्रा को थोपना या रजत मुद्रा को विस्थापित करना या हटाना नहीं है। बल्कि ऐसे परिणाम का निराकरण करना व टालना है या उस दिशा में जाने वाली प्रवृत्ति को वहां तक रोकना है जहां तक उसे स्वर्णमान के अपनाने के साथ निरंतर किया जा सकता है। इसके फलस्वरूप, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारत में स्वर्ण के सिक्कों के प्रवेश के लिए सुविधा प्रदान करते समय हमें अभी उन्हें सामान्य वैध मुद्रा के रूप में घोषित नहीं करना चाहिए और साथ ही साथ हमें चांदी के सिक्कों के निर्माण के लिए व्यवस्था करनी चाहिए उनकी मात्रा की कोई सीमा नहीं रखनी चाहिए, बल्कि ऐसा इन शर्तों पर हो कि उससे चांदी के प्रवेश को सोने के संबंध में कोई सुविधा नहीं मिलेगी।

"51. इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए हमारा निम्नलिखित प्रस्ताव है :– "हम सर्वप्रथम सरकार की किसी भी मांग के लिए भुगतान में ब्रिटिश या ब्रिटिश भारतीय स्वर्ण प्राप्त करने के लिए अधिकार प्राप्त करें। यह भुगतान सरकार द्वारा समय–समय पर निर्धारित दरों पर होना चाहिए और यह उस समय तक हो जब तक विनिमय पर्याप्त रूप में स्वयं व्यवस्थित न हो जाए और उससे हम इतने समर्थ न हो जाए कि रुपये के मूल्य को पाउंड स्टर्लिंग के संबंध में स्थायी रूप में दो शिलिंग पर स्थिर कर सकें। इसके साथ ही साथ, चांदी के सिक्के बनाने पर सामंती कर को ऐसी दर तक बढा दिया जाएगा जिससे, वास्तव में रुपये का मूल्य बुलियन का आयात करने वाले व्यक्तियों के लिए उपयुक्त सोने के सिक्कों की तुलना में रुपये को प्रदत्त मूल्य की राशि के बराबर हो जाए। अतएव हमें एक स्वचालन वाली प्रणाली अपनानी चाहिए जिसके अधीन चांदी को

सिक्का बनाने के लिए सोने की निर्धारित दर पर स्वीकार किया जाएगा। ऐसा करना देश की आवश्यकता के लिए अपेक्षित है। सोने के सिक्के को चलाना तथा प्रयोग निश्चित सीमित क्षेत्र प्रदान जहां तक उस सुविधाजनक तथा लाभदायक पाया जाएगा वहां तक उसका कुछ प्रतिबंधित सीमा तक प्रयोग किया जाएगा, चलाया जाएगा।"

ऐसी थी वह योजना जिसकी भारत सरकार द्वारा रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। इसने स्मिथ की योजना को क्यों अस्वीकार कर दिया था, यद्यपि स्मिथ की योजना सरल, मितव्ययी तथा सुरक्षित थी, फिर भी उसने उसे अस्वीकार क्यों कर दिया था, इसका कारण यह था कि इसमें विश्व के सोने के क्षीयमान व घटते स्टाक के संबंध में भारत की मांग पर विचार किया गया था। उस समय मौजूद परिस्थितियों में, यह एक बहुत बड़ा दोष था और उस समय की सत्ता ने पहले ही यह निश्चय कर लिया था कि भारत को 'स्वर्ण के लिए छीना झपटी' की स्थिति से बाहर पूरी तरह से रखा जाना चाहिए। इसलिए एक प्रभावी स्वर्णमान का प्रस्ताव रखना उसके लिए पराजय का स्वीकार करना था। स्वर्णमान का एक मामूली तथा तनुकृत संस्करण जैसा कि सरकार द्वारा प्रस्तावित किया गया था, कुल मिलाकर ऐसा था जिसे सफलता मिल सकती थी। परन्तु इस कमजोर प्रयास पर भी सेक्रेट्री ऑफ स्टेट तथा चांसलर ऑफ दि एक्सचेकर द्वारा संयुक्त रूप में नियुक्त समिति[1] द्वारा अच्छा व्यवहार नहीं किया। इस समिति की नियुक्ति इन प्रस्तावों की जांच करने और रिपोर्ट देने के लिए की गई थी। समिति के सब सदस्य इस बात पर एकमत थे "कि उन पर महारानी[2] की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए वे सिफारिश नहीं कर सकते" इन प्रस्तावों को क्यों अस्वीकार कर दिया गया, उसके कारणों का पता लगाने या जानने की हमें अनुमति नहीं है। यद्यपि इस समिति की रिपोर्ट को सार्वजनिक रूप से जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, परन्तु उसकी कार्यवाही को कभी प्रकट नहीं किया गया। वास्तव में अधिकारी ने उनका अवलोकन करने की अनुमति नहीं दी और उन्होंने उनका अवलोकन व अध्ययन करने के अनुरोध को कठोरता व दृढपूर्वक अस्वीकार कर दिया था। इस बात की कल्पना करना मुश्किल है कि उनको लगभग आधी शताब्दी के बीत जाने के बाद भी गोपनीय क्यों माना गया। तथापि, इस समिति के एक सदस्य सर राबर्ट गिफन ने, 1898[3] की भारतीय मुद्रा समिति के समक्ष साक्ष्य देते समय बहुत स्पष्ट कर दिया था, जिससे हमें अत्यंत संरक्षित इस प्रलेख की विषय वस्तु की जानकारी मिल सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि समिति ने प्रस्तावों के विरुद्ध इसलिए घोषणा की थी क्योंकि इस समिति ने यह सोचा कि ये प्रस्ताव भारतीय मुद्रा को एक "प्रबंध" मुद्रा बनाने के हैं। जिस समय समिति ने अपना मत प्रकट किया था तब प्रचलित पूर्वाग्रह, पूर्णतया ऐसी प्रणाली के विरुद्ध था। मुद्रा के जानकार प्रसिद्ध लेखकों को कृत्रिम

1. इस समिति में लुइस मैलेट, एडवर्ड स्टेन होप, टी एल सिकोम्बो आर ई. वैलबी, टी एच फरर, आर. गिफन तथा ए.जे.बालफोर थे।
2. समिति के प्रतिवेदन के लिए, कामन्स का शोधपत्र 1886 का पत्र (सी) 4868 पृ. 26 देखिए।
3. प्रश्न 10,025-50

रूप में विनियमित प्रणाली के विरोधी घोषित कर दिया गया।[1] स्वाभाविक रूप में उनकी आदर्श मुद्रा स्वचांलित मुद्रा थी। इस पूर्वाग्रह द्वारा भ्रमित होने के अतिरिक्त, समिति इस बात से आश्वस्त थी कि आर्थिक शक्तियों की स्वाभाविक कार्यप्रणाली से स्थिति स्वयं ही शीघ्र सुधर जाएगी। इसके लिए भारतीय मुद्रा का सुधार करना आवश्यक नहीं होगा। समिति के इस विश्वास का आधार स्वर्गीय वाल्टर बेगहोट[2] की यह मान्यता थी कि अव्यवस्था केवल अस्थायी ही हो सकती है। उसका तर्क यह था कि अवमूल्यन के कारण भारत से निर्यात को प्रोत्साहन मिलेगा और आयात हतोत्साहित होगा और इस प्रकार व्यापार में जो प्रतिकूल संतुलन उत्पन्न होगा वह भारत की ओर चांदी के प्रवाह को प्रेरित करेगा जिससे चांदी के मूल्य में वृद्धि का रूख होगा। उसका मत यह भी था कि चांदी के लिए बढ़ती मांग भारत के बाहर से भी होगी। उसने यह तर्क दिया कि कुछ देशों द्वारा चांदी के विशुद्धीकरण करने के कारण उत्पन्न मांग में गिरावट उसकी अपेक्षा अधिक होगी जिसकी क्षतिपूर्ति इस समय सिक्का के भुगतान के उनके आसन्न पुनर्ग्रहण के लिए, कागज की मुद्रा के आधार पर अन्य देशों द्वारा चांदी को अपनाकर की गई हो।

समिति द्वारा कृत्रिम मुद्रा प्रणाली की तुलना में प्राकृतिक मुद्रा प्रणाली को वरीयता दिए जाने के सम्बन्ध में चाहे जो कहा जाए पर इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता कि इस आशा में कि चांदी की वसूली हो जाएगी प्रस्ताव को अस्वीकार कर देना पूर्णतया धोखा था। जिन मूल पूर्वानुमानों पर समिति कार्रवाई करने के लिए प्रेरित हुई थी वे सही नहीं निकले। यह देखकर प्रत्येक व्यक्ति को आश्चर्य हुआ कि भारत ने अंग्रेजों के इस तर्क को अस्वीकार कर दिया। उस समय इस बात को जानना वास्तव में एक पहेली थी कि यदि यूरोप में चांदी में इतनी अधिक गिरावट आ गई थी तो यह भारत में भारी मात्रा में क्यों नहीं गई। अनेक लोगों ने सैक्रेटरी ऑफ स्टेट पर यह दोष लगाया कि उसने अपनी कौंसिल के बिलों[3] को बेच दिया। यह कहा गया था कि इन बिलों ने भेजी हुई रकम का इतना अधिक बेहतर वैकल्पिक तरीका प्रस्तुत किया था जो भारत में चांदी के भेजने को रोकता था और इसलिए इसके परिणाम स्वरूप इसके लिए मांग में कमी हुई। यह बात साफ है कि यहां दृष्टिकोण सही नहीं था।[4] यदि कौंसिल के बिलों को समाप्त

1. उस समय यह विचार इतना नवीन था कि सं.रा. अमरीका के मानीटरी कमीशन, 1876 को तब आश्चर्य हुआ जब कुछ साथियों ने यह कहा कि एक देश की मुद्रा प्रणाली में लेखे की मुख्य धात्विक यूनिट का विनियमन सरकारी एजेन्सी द्वारा किया जाना चाहिए। देखिए, 44 कांग्रेस द्वितीय अधिवेशन सीनेट प्रलेख, सं. 703 पृष्ठ 47–48

2. वादी के अवमूल्यन पर उसके कुछ लेख तथा उसके संबंधित कुछ विषयों पर कुछ लेख, लन्दन, 1877 पृ. 10, 55 तथा 80 चांदी के अवमूल्यन पर से प्रवर (सेलेबद्ध) समिति के समक्ष उसकी साक्षी थी लॉर्डस पेपर, 1876 का 178 प्र. 1, 361-1, 450

3. यह तर्क मुख्यरूप से चांदी के अवमूल्यन पर *डेप्रिशिएशन आफ सिल्वर* 1876 की प्रवर समिति की रिपोर्ट (पृ. 30-35) में प्रस्तुत किया गया था तथा स्वर्ण एवं रजत आयोग, 1886 के एक धातु–सदस्यों द्वारा भी अंतिम रिपोर्ट भाग 2 के पृ. 77-79 पर प्रस्तुत किया गया था।

4. स्वर्ण तथा रजत आयोग, 1988 के समक्ष प्रो. मार्शल का साक्ष्य प्र. 10 पृ. 16476

भी कर दिया जाता तो भी चांदी की मात्रा भारत में उससे अधिक न जाती जितनी पहुंच गई थी। कौंसिल के बिलों को साधारण व्यापार हुंडी ही माना जाना चाहिए जिन्हें सेवाओं तथा वस्तुओं के प्रति तैयार किया गया था। उनके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने व्यापार हुण्डियों में प्रदत्त तरीके से भिन्न किसी विशेष तरीके से बुलियन के सम्प्रेषण के साथ प्रतियोगिता की थी। कौंसिल की हुण्डियों का एकमात्र अभिप्राय जो प्रस्तुत विषय पर आधारित था इस तथ्य में निहित है कि जिस सीमा तक वे सौदे सामने आए उन्होंने भारत को अन्य वस्तुओं की खरीदारी करने से रोका। परन्तु ऐसा कुछ नहीं था जो उसको खरीदने की शेष शक्ति को रोक सके। वह शक्ति कौंसिल की हुंडियो के कारण दंड भोगने/दाम चुकाने के बाद, अन्य वस्तुओं की तुलना में चांदी की खरीद में प्रयुक्त होने से बची थी। इस क्रयशक्ति का उपयोग चांदी को खरीदने के लिए किया जाएगा क्योंकि यूरोप में उसका अवमूल्यन हो गया था, श्री ब्रेगहोट का यह पूर्वानुमान सिद्धांत रूप में एक गलत पूर्वानुमान था। इसका निर्णय करने वाली बात यह भी थी कि क्या भारत में इसके मूल्य में वृद्धि हुई या नहीं। केवल एक इस बात के कारण ही चांदी का भारत की ओर प्रवाह हो सकता था। परन्तु उस समय जो स्थिति थी, उसके संबंध में प्रो. पियरसन[1] का यह मत था कि जब चांदी का सामान्य अवमूल्यन सारे विश्व में ही प्रारंभ हो गया था तो उसे विश्व के उस भाग में जिसमें भारत है पहले से ही रोकने का प्रबंध किया गया। भारत में चांदी की पहले से ही भरमार थी। साधारण परिस्थितियों में भारत अपनी चांदी के बहुत बड़े हिस्से को वापिस यूरोप में भेज देता, परन्तु सामान्यतया अवमूल्यन ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। और अब दो विरोधी शक्तियां सामने आई।, एक शक्ति का झुकाव यूरोप से चांदी का निर्यात भारत को करने की ओर था और दूसरी का झुकाव भारत से चांदी का निर्यात यूरोप को करने की ओर था। यद्यपि इन दोनों में यूरोप से भारत को चांदी के निर्यात करने की ओर प्रवृत्त शक्ति अधिक प्रबल थी परन्तु भारत से यूरोप को चांदी का निर्यात करने की ओर प्रवृत्त शक्ति इतनी अधिक शक्तिशाली थी कि वह यूरोप से भारत को निर्यात होने वाली चांदी की कितनी भी भारी मात्रा को रोक सकती थी। यदि समिति ने अपने पूर्वानुमान के एक अंश में धोखा खाया ही था पर दूसरे में भी उसे निराशा ही हाथ लगी। चांदी के रूप में सिक्के का भुगतान पुनः आरंभ होने के बजाए जैसी कि बेगहोट को उन देशों के द्वारा उस समय कागज के आधार पर ऐसा करने की आशा थी, उन सभी ने चांदी का अवमूल्यन कर दिया। इससे उन सभी लोगों को भारी निराशा हुई जिन्होंने "प्रतीक्षा करो और देखो" की नीति का सहारा लिया था।

ऐसे पूर्वानुमानों को भारत तथा अन्य देशों द्वारा झूठा साबित करने के कारण यूरोप के अधिकांश देशों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और इन देशों का उस समय अस्त व्यस्त मुद्रा को किसी प्रकार की व्यवस्थित करने की दिशा में कोई अभिरुचि नहीं दिखाई। प्रतिष्ठित

1. स्वर्ण तथा रजत आयोग, 1886 के परिपत्र के बारे में उनका उत्तर द्वितीय रिपोर्ट परिशिष्ट-7 (I) पृष्ठ 254

विशेषज्ञो द्वारा उनको परामर्श दिया गया कि वे जल्दी न करें। जेवन्स ने कहा[1]—

"व्यावहारिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए हमें केवल थोड़े से धैर्य तथा सहज बुद्धि की आवश्यकता है। अगले कुछ वर्षों के अंदर भारत में अच्छी फसल होने की पूर्ण संभावना है—जिससे भारत हमारी सब फालतू चांदी को खरीदने में समर्थ हो जाएगा, जैसा कि वह प्लिनी के समय से कुछ अपवादों को छोडकर हमेशा करता रहा है। आगामी वर्षों में चांदी की किसी भी मात्रा से बिना किसी हानि के छुटकारा पाया जा सकता है यदि इसे धीरे—धीरे तथा सावधानीपूर्वक बेचा जाएगा।"

जब यह पता चला कि प्रतीक्षा की अवधि यदि अपेक्षाकृत अधिक लम्बी नहीं तो अधिक दुखदायी अवश्य होगी। क्योंकि उसकी अपेक्षा अधिक दुखद तथा लम्बी होगी जितनी कहावत वाले किसान की अवधि थी जिससे चश्में को सूखा रहने दिया जाए ताकि उसे मना करने पर भी वह अपने पैरों को गीला न होने दे। चांदी के अबमूल्यन को रोकने के लिए आवश्यक सुधार प्रारंभ करने के लिए यूरोप में एक आंदोलन शुरू हुआ।

यह आंदोलन भावात्मक ही नहीं था, बल्कि वास्तविक आन्दोलन था। इसने इन बुराइयों से शक्ति प्राप्त की थी जो विद्यमान मुद्रा स्थिति से उत्पन्न हुई थी। इनमें से अधिकांश देशों के मुद्रा की स्थिति बहुत खराब थी। सांकेतिक मुद्रा के रूप में चांदी के साथ एक प्रभावी स्वर्ण मुद्रा की योजना को उनकी प्रगति के बीच में ही रोक दिया गया था। जर्मनी ने जब चांदी का विमुद्रीकरण किया तो उसने अपने चांदी के थेलर को, सोने के साथ पुराने अनुपात में पूर्ण विधिमान्य मुद्रा के रूप में रोके रखा था। उसने ऐसा केवल इसलिए किया था ताकि उसे उनसे मुक्त होने के लिए उतना समय मिल जाए जितना उनको कम करके एक सच्ची सहायक स्थिति तक जाने के लिए आवश्यक था परन्तु उसके ऐसा कर सकने से पहले ही उसकी विमुद्रीकरण की नीति प्रारंभ हो चुकी थी जिसका प्रभाव चांदी के मूल्य पर पड़ा और उसकी निरंतर गिरावट ने जर्मनी को थेलर्स को उनके पुराने मूल्य पर विधिमान्य मुद्रा के रूप में बनाए रखने के लिए बाध्य कर दिया था। उस तथ्य के बावजूद भी कि उनके धातुक मूल्य में तेजी से गिरावट आ रही थी यथार्थ रूप में लैटिन देशों के संघ की अपनी मुद्रा प्रणाली से संबंधित की गई कार्रवाई का परिणाम भी वैसा ही था। उन्होंने चांदी के पांच फ्रैंक के सिक्के आगे बनाना बंद कर दिया था। परन्तु वे उनके सम्बंध में कुछ नहीं कर सके जिनका निर्माण पहले ही हो चुका था। वे केवल यह ही कर पाए कि उन्होंने टकसाल के अपने पुराने अंकित मूल्य पर वितरित करने व चलाने की अनुमति दे दी यद्यपि धात्वीय अंकित मूल्य में परिवर्तन, सोने तथा चांदी के बाजार मूल्य में परिवर्तन के साथ ही जारी रहा। संयुक्त राज्य अमरीका भी इसी प्रकार की बुराइयों में फंसा था। यद्यपि उन बुराइयों का जन्म आवश्यकता से नहीं बल्कि इच्छा से हुआ था अर्थात वे बुराइयां आवश्यकताजन्य नहीं बल्कि इच्छाजन्य थी। चांदी वाले लोगों के आंदोलन के संबंध में पराभूत होकर उसने 1878 में "ब्लैंड एलिसन अधिनियम" नामक

1. ओपी पृ0 354

एक कानून पारित किया। इस कानून के अनुसार सैक्रेट्री ऑफ दि ट्रेजरी (कोषागार सचिव) के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह प्रतिमास 2,000,000 डालर से 4,000,000 (चालीस लाख) डालर तक के मूल्य के चांदी बुलियन, मानक रजत डालर में खरीदे और उनके सिक्के बनाए जो पूर्णतया विधिमान्य मुद्रा हो और इनका उपयोग "जहां संविदा में अन्यथा स्पष्ट रूप में अनुबद्ध किया गया हो, इस स्थिति को छोड़कर"[1] अन्य सभी सार्वजनिक तथा निजी ऋणों के लिए किया जाए उनके लिए वह वैध मुद्रा हो। क्योंकि प्रत्येक गिरावट के साथ–साथ इन डालरों के धात्वीय मूल्य में भी गिरावट आती थी, जबकि उनका वैध मूल्य पहले की तरह ही रहता था। अतः वे थ्रेलर तथा फ्रेंक की तरह, अधिमूल्य वाले सिक्के हो गए थे। यह बात स्पष्ट है[2] कि जब किसी देश की मुद्रा का भंडार सब कार्यों के लिए समान रूप में अच्छा न हो तो उसकी स्थिति असंतोषजनक कहलाती है। यद्यपि ये सिक्के आंतरिक कार्यों के लिए तो अच्छे थे, परन्तु अंतर्राष्ट्रीय भुगतान के लिए व्यर्थ थे। उन्होंने समूची मुद्रा प्रणाली को अस्थिर तथा अत्यंत भारी बना दिया, इसके अलावा वे बैंकिंग निधि (रिजर्व) का कार्य करने व उद्देश्य की पूर्ति के योग्य नहीं बन सके। आधुनिक समय में बैंकिंग निधि (रिजर्व) का कार्य करना धात्वीय मुद्रा का प्रथम कार्य है। उनके कारण अवैध सिक्के ढलाई की संभावनाएं बहुत अधिक बढ गई। परन्तु उनका अस्तित्व-संकट का ऐसा स्रोत/साधन कैसे बना, उसका कारण यह था कि इन देशों के कुल धात्वीय मुद्रा का एक बड़ा भाग इस प्रकार का था। तालिका XXIII में आटोमर हॉफ्ट द्वारा दिए गए आंकडे पर्याप्त रूप में उन कठिनाइयों को प्रमाणित

तालिका XXIII

विभिन्न देशों में मुद्रा के भंडार (स्टॉक) का वितरण*

देश	1892 के प्रारम्भ में रूपये की मुद्रा का परिचालन				
	सोना	चांदी	अनावृत्त नोट	खण्डात्मक मुद्रा	बिलन धन
आस्ट्रेलिया=फलोरिन	65,000,000	197,000,00	601,000,000	40,000,000	14,000,000
इग्लैंड=पाउंड	118,000,000	--	10,000,000	26,000,000	1,900,000
फ्रांस=फ्रैंक	3,900,000,000	3,200,000,000	572,000,000	280,000,000	280,000,000
जर्मनी=एक (मार्क)	2,500,000,000	430,000,000	450,000,000	457,000,000	57,000,000
हालैंड=फ्लोरिन	64,000,000	135,000,000	98,000,000	7,600,000	1,800,000
इटली=लीरा	485,000,000	81,000,000	847,000,000	150,000,000	75,000,000
रूस=पाउंड	59,500,000		51,200,000	8,200,000	1,000,000
स्पेन=पेसटा	160,000,000	646,000,000	548,000,000	190,000,000	157,000,000
यूएसए=डालर	671,000,000	458,000,000	419,000,000	77,000,000	18,000,000

* ओटोमर हॉफ्ट द्वारा दिए गए आकड़ों (लदन, इफीथम, विल्सन और कंपनी 1892 पृ0 160

1. मानेटरी कमीशन आफ दि इंडियानापोलिस कान्वेंशन, शिकागो, की रिपोर्ट-1898 पृ. 138-45
2. 1881 की अन्तर्राष्ट्रीय मानेटरी कान्फ्रेंस में नीदरलैंड के प्रतिनिधि प्रो. पियरसन का भाषण, संयुक्त राज्य, सिनसिनाती के प्रतिनिधियों की रिपोर्ट, 1881, पृ. 77-84

तालिका-XXIV

फ्रांस में सोने तथा चांदी के सिक्कों की ढ़लाई*

अवधि	सोना मिलियन फ्रेंक	चांदी मिलियन फ्रेंक	मूल्य का अनुपात
1803 से 1820	868	1,091	1 : 15.58
1821 से 1847	301	2,778	1 : 15.80
1848 से 1852	448	543	1 : 15.67
1853 से 1856	1,795	102	1 : 15.35
1857 से 1866	3,516	55	1 : 15.33
1867 से 1873	876	587	1 : 15.62

* यह तालिका नीदरलैंड के प्रतिनिधि एम. पियरसन द्वारा 1881 के पेरिस अंतर्राष्ट्रीय मानीटरी सम्मेलन में प्रस्तुत की गई थी।

इसकी न्यूनीकरण में द्विधातुवादियों के पास देने के लिए कोई चीज नहीं थी। इसमें संदेह नहीं कि उस समय ऐसी योजनाएं थीं जैसी एक योजना प्रो. मार्शल द्वारा प्रस्तावित की गई थी। इसमें कुछ उस निश्चित अनुपात[1] में सोने तथा चांदी से जुड़ी छड़ों पर आधारित कागजी मुद्रा थी। इसका उद्देश्य इसे "दोनों में से एक धातुवाद को दोहरे–धातुवाद" में बदलना था। परन्तु ऐसी योजनाओं को छोड़कर, द्विधातुवाद की मुक्त सिक्का व निश्चित अनुपात योजना को वितरण में प्रत्यावर्तन के प्रति कोई गारंटी नहीं दी। वास्तव में, उस योजना के अंतर्गत प्रत्यावर्तन या एकान्तरण उस क्रिया विधि की आत्मा है जो अनुपात को अव्यवस्थित होने से बचाती है। इसके न्यूनीकरण में द्विधातुवादी केवल एक यह बात कह सकते थे कि[2] मुद्रा में एकान्तरण व प्रत्यावर्तन केवल बैंक निधि (बैंक रिजर्व) तक ही सीमित रहेगा और वह लोगों की जेबों तक नहीं जाएगा। यह केवल एक बहानेबाजी थी[3] क्योंकि बैंक, लोगों के पूर्वाग्रहों के अनुरूप होने के अलावा अपनी निधि की व्यवस्था कैसे कर सकते थे? यहां तक कि सोने तथा चांदी का एक निश्चित अनुपात में प्रयोग करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समझौता भी इस बात की कोई गारंटी नहीं

1. मार्च 1887 के लिए समकालीन पुनरीक्षण। इस बात को नोट करना रोचक है कि वास्तव में यही योजना का सुझाव प्रो. मार्शल से 115 वर्ष पहले जेम्स स्टीवर्ट द्वारा उस समय दिया गया था जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने उसका परामर्श इस प्रश्न पर लिया था कि उस समय बंगाल की अव्यवस्थित मुद्रा को सुधारने का क्या तरीका है। उसने इसके लिए कम्पनी पर द्रबाव नहीं दिया क्योंकि उसका विचार था कि "सभी मानव दार्शनिक नहीं होते" उसकी कृति प्रिंसिपल्स आफ मनीएज एल्टलाइड टू दि प्रजेन्ट ऑफ दि कॉमन ऑफ बंगाल (द्वितीय संस्करण, 1772) पृ. 8-11 विलियम वार्ड द्वारा बैंक स्टाक आफ लन्दन को संबोधित एक पत्र में "ऑन मोनेटरी डिरेजमेंट 1840 पृ. 8 में था
2. प्रो. फोक्सवैल, आक्सफोर्ड इकोनेमिक रिव्यू, 1893 वाल्यूम 3, पृ. 297
3. प्रो. केनन द्वारा उत्तर वही—पृ. 457

था कि इस समवर्ती परिचालन को बनाए रखा जाएगा। अनुपात की स्थिरता, बहुत बडी सीमा तक, एक अंतर्राष्ट्रीय समझौते पर निर्भर थी। क्योंकि इसे एक राष्ट्र की कार्रवाई द्वारा बनाए रखा जा सकता था, पर उस स्थिति में अनुपात से विचलन संभवतः और अधिक होता। परन्तु केवल मात्र अंतर्राष्ट्रीय समझौते में अपनी स्वयं की ऐसी कोई शक्ति नहीं होती जो एक धातु को दूसरी धातु को बाहर निकालने से रोक सके। इस बात को मान लेना बिल्कुल गलत है ग्रेशम का नियम, अंतर्राष्ट्रीय समझौते के अंतर्गत शक्तिहीन है। ग्रेशम का नियम मुद्रा की गति की कुल आवश्यकता के लिए, दो धातुओं के सापेक्ष तुलनात्मक उत्पादन द्वारा नियंत्रित होता है। मान लिया जाए कि एक धातु का उत्पादन दूसरी धातु की तुलना में इतना भारी था कि वह मुद्रा के लिए आवश्यकता से भी बहुत अधिक था, तो अंतर्राष्ट्रीय समझौता पहली धातु की, दूसरी धातु को प्रचलन से पूर्णतया बाहर करने की प्रक्रिया को कैसे रोक सकता है? इसके विपरीत, अंतर्राष्ट्रीय समझौता इस प्रक्रिया को हतोत्साहित करने के बजाए प्रोत्साहित करेगा।

इसलिए द्विधातुवाद को अपनाकर, राष्ट्रों को एक स्थिर अनुपात तथा एक समवर्ती प्रचलन के बीच चयन करना पड़ा था क्योंकि एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती थी जिसमें एक स्थिर अनुपात तो होता, परन्तु दोनों धातुओं का समवर्ती प्रचलन न होता। यदि सम्मेलन भंग हुआ था तो इसका कारण यह नहीं था कि उन्होंने इस संभावना को मान्यता नहीं दी, जिसे 1886 के स्वर्ण तथा रजत आयोग जैसे निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा सर्वसम्मति से माना गया था, यह संभावना एक द्विधातुक प्रणाली के अंतर्गत एक स्थिर अनुपात को बनाए रखने की थी। वे इसलिए भंग हुए थे क्योंकि द्विधातुक प्रणाली ने दो धातुओं के समवर्ती व प्रचलन की कोई गारंटी नहीं दी थी। तथापि यदि द्विधातुवाद का तात्कालिक प्रभाव स्वर्ण का प्रचलन में प्रवाह होता तो यह निश्चित है कि समवर्ती प्रचलन की असंभावना से ऐसी कमी व असुविधा न होती। परन्तु उस समय जैसी स्थिति थी तात्कालिक प्रभाव चांदी को प्रचलन में लाने के लिए होता। यही एक कारण था जिसके कारण अधिकांश राष्ट्र द्विधातुक प्रणाली को अपनाने से डर गए। यह एक अजीब बात है कि जो राष्ट्र सोने तथा चांदी के बीच एक स्थिर अनुपात लाने के लिए एक साथ एकत्रित हुए थे उन्हीं ने एक ऐसी प्रणाली को अस्वीकृत कर दिया जिसने अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण आधार पर ऐसी स्थिरता का आश्वासन दिया था जो सोने से चांदी के प्रचलन की संरचना को बदलने के लिए प्रभावी थी। परन्तु इस तथ्य को मानना चाहिए कि जिस समय द्विधातुक प्रणाली के पुनर्गठन का प्रश्न जनता के मस्तिष्क को आंदोलित कर रहा था, तब यूरोप के अधिकांश देशों में सोना तथा चांदी को मुद्रा के लिए समान रूप से अच्छा मानना छोड़ दिया था। सोने परिमाण व मात्रा में अधिक मूल्य के वाहक के रूप में सोने को चांदी से श्रेष्ठ माना जाता था। इस श्रेष्ठता को उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अधिकाधिक महत्व दिया जाने लगा था और स्थिरीकरण की ऐसी किसी योजना को जन साधारण का अनुमोदन मिलने की संभावना नहीं थी जिसमें सोने के अबाध प्रचलन की

विधिमान्य मुद्रा[1] बनाकर एक स्थिर अनुपात को स्थापित करने के अपने प्रयास में सफलता प्राप्त करने के बाद वह संघ का माध्यम से अपनी गैर जिम्मेदाराना कार्यवाही से लाभ उठाने का वचन दे। भारत सरकार ने ये सब गारंटी द्विधातुवाद के उद्देश्य के प्रति एक कारूणिक निष्ठा में दी थी, क्योंकि इस द्विधातुवाद की सफलता पर वह बहुत अधिक निर्भर थी। इसके फलस्वरूप, जब प्रयास असफल हो गया तो भारत सरकार को इससे जो निराशा हुई उसने उसका दिल तोड दिया। यह बात कहने में कोई कठोरता नहीं है कि इस निराशा को उत्पन्न करने में ब्रिटिश प्राधिकारियों ने जो भूमिका अदा की थी वह अत्यंत गैरजिम्मेदाराना थी–जिसे दुष्टतापूर्ण भी कहा जा सकता है। उन्होंने भारत पर उसकी घोषित इच्छा के विपरीत दबाव डाला कि भारत रजतमान को बनाए रखे। उसने ऐसा आंशिक रूप में इसलिए किया कि वह सोने के लिए किसी प्रकार की मांग न करने और आंशिक रूप से वह अन्य राष्ट्रों को इस बात की आलोचना करने से चुप करना चाहता था कि ब्रिटेन चांदी को[2] पुनर्व्यवस्थित करने के मामले में अपना हिस्सा नहीं ले रहा है। यही केवल मात्र लाभ नहीं था जो आज्ञापालन करने के लिए बाध्य देश से वसूल करना था। एक ओर इसने भारत सरकार को मुद्रा के सुधार के मामले में स्वतंत्र कार्रवाई करने से रोका और दूसरी ओर उस क्षति व हानि को जो अवमूल्यन वाली मुद्रा के कारण हुई थी, पूरा करने के लिए उपयुक्त अन्य ऐसे साधनों की संसदीय निन्दा के अन्तर्गत कर दिया। हाउस आफ कामन्स को दो बार प्रस्ताव पेश कर प्रेरित किया गया, एक बार 1877 में और फिर 1879 में। प्रस्ताव में कहा गया कि यदि भारत सरकार प्रकट रूप में अपनी शुल्क दर कम करे, मुक्त व्यापार के हित में परन्तु वास्तविक रूप में, ऐसा लंकाशायर की बिगड़ी दशा को राहत पहुंचाने के लिए था। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार अपने सबसे अधिक संकट के समय में अपने राजस्व के एक महत्वपूर्ण स्रोत को काम में नहीं ला सकी। केवल एक मात्र पर्याप्त क्षतिपूर्ति ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा एक सरकार को जो इस प्रकार पूर्णरूप से उनकी आज्ञाँ अशक्त हो गई थी और जिसके हित में उन्होंने कानूनी ट्रस्टी होने का बहुत जोर से दावा किया था, की जा सकती थी, वह यह थी कि वे द्विधातु संघ में शामिल होने के लिए अपनी सहमति दे देते इसका निष्पादन केवल उनकी दया पर निर्भर था। परन्तु जैसा कि सुविदित है कि उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया जिससे प्रवर्तित प्रतीक्षा की अवधि के बाद और अपरिहार्य कष्ट के निवारण के कोई साधन न होने से, भारत सरकार ने 1893 के अंत में स्वयं को वहीं पाया जहां पर वह 1878 के प्रारंभ में थी।

सहजबुद्धि वाले सभी लोगों की भांति जो प्रार्थना करते हैं और साथ ही साथ अपना

1. भारतीय प्रतिनिधियों की रिपोर्ट पृ. 12
2. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा सम्मेलन, 1878 में श्री गोशेन का भाषण तृतीय अधिवेशन, अमरीकी प्रतिनिधियों की रिपोर्ट, सीनेट एक्जीकुटिव प्रलेख, सं. 58, 45वीं कांग्रेस, तृतीय अधिवेशन, वाशिंगटन, 1879 पृ. 50-52

बारूद भी सूखा रखते है, संयुक्त राज्य अमरीका को छोडकर चांदी के अधीन सभी देशों ने इस अंतराल का उपयोग अपने सोने के आधार को सुदृढ करने में किया। यह कार्य उन्होंने चांदी प्रयोग को बढाने[1] संबंधी मनोरंजक योजना पर मुद्रा सम्मेलनों के विचार विमर्श में भाग लेकर किया। 1878 के सम्मेलन में श्री गोशेन ने बिल्कुल दार्शनिक अंदाज में यह कहा था कि संयुक्त राज्य अमरीका चांदी को उसके अवमूल्यन के कारण प्रयोग करने से डरता था और अवमूल्यन इसलिए जारी था क्योंकि संयुक्त राज्य उसका प्रयोग करने से डरता था। अब यदि इस निदान का प्रथम भाग सही होता तो हम यह देखते कि संयुक्त राज्य अमरीका उस समय चांदी को पुनः स्थापित करने व उसकी स्थिति को सुधारने में गंभीरतापूर्वक लगता, जब संयुक्त राज्य अमरीका के चांदी सम्बन्धी कानून द्वारा उसकी कीमत को सहारा दिया गया था। उसके विपरीत, जहां तक चांदी की मासिक खरीद का प्रश्न है, 1878 के ब्लैंड एलिसन एक्ट, या 1890 के शेरमन एक्ट के अंतर्गत, उसने चांदी की कीमत को रोके रखा। वे उसको पुनः उसकी पूर्व स्थिति पर न लाने के लिए कदम उठाने को केवल उत्सुकता महसूस नहीं कर रहे थे बल्कि उन्होंने वास्तव में, इस वृद्धि का लाभ उसको निकालने में उठाया।[2] उनको किसी बात के लिए दोष देना संभव नहीं क्योंकि एक द्विधातुक संघ के हवा में गायब होने की संभावना के साथ–साथ इस महाभार का संचय व ढेर भी एक निराधार लज्जाजनक स्थिति में समाप्त हो गया होता। अकेले भारत ने इस दबाव से लाभ उठाने से मना कर दिया, जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका ने अन्य राष्ट्रों के लिए स्थानापन्न रूप में लिया और मूल्यवान समय को निकलने दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इसे उसी उपाय के लिए वापिस वहां भेज दिया, जिस उपाय को अपनाने से 1878 में इनकार कर दिया गया था।

यदि उसे स्वर्णमान वाला होना ही था तो बेहतर होता यदि उसे 1878 में किया ही जाता। इसमें संदेह नहीं, कि भारत सरकार ने उस समय जिस योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की थी वह इतनी अधिक जटिल तथा इतनी अधिक सारहीन थी कि वह व्यवहार्य नहीं हो सकती थी। परन्तु उसे अस्वीकार कर देने से स्वर्णमान के प्रवेश को बिल्कुल ही निलम्बित नहीं कर देना चाहिए था। यदि उसे अंग्रेजी नमूने पर रूढिवादी प्रकार का होना था तो इसमें संदेह नहीं कि उसमें सरकार को कुछ खर्च करना पड़ता। इस खर्च के लिए देश के चांदी के भंडार के एक भाग को घटे हुए मूल्य पर बेचने के लिए बाध्य होना पड़ता जिससे रुपये को एक सहायक स्थिति प्रदान की जा सके और उसके रिक्त स्थान की पूर्ति स्वर्ण मुद्रा से की जा सके। इस परिवर्तन का खर्च 1878 में नगण्य होता,

1. सम्मेलनों में सुझाई गई अनेक प्रकार की योजनाओं के लिए 1892 के अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा सम्मेलन, वाशिंगटन, 1893 को अमरीकी प्रतिनिधियों की रिपोर्ट।
2. रसल ओपी पृ. 410, पोलिटिकल इकोनोमी जर्नल (शिकागो) खंड 1 पृष्ठ 174 में प्रो. ढफ.ए. वाकर का लेख" दि फ्री कोयनैज ऑफ सिल्वर" भी ।

" ... कि भारतीय टकसालों को चांदी के असीम सिक्कों के बनाने के लिए बंद कर दिया जाए, और उस समय तक आगे कोई कदम न उठाया जाए जब तक टकसालों के बंद करने के प्रभाव का पता न लग जाए।"

"जिस अनुपात पर चांदी से सोने में परिवर्तन किया जाना चाहिए उसका बाद में निर्णय किया जाएगा और यह कहा गया था कि टकसालों के बंद करने से पहले एक सीमित अवधि के दौरान चांदी के औसत मूल्य पर आधारित अनुपात संभवतः सबसे सुरक्षित तथा सबसे उचित होगा। जब इस अनुपात का निर्णय हो जाए तो उस अनुपात पर सोने के सिक्कों का निर्माण करने के लिए टकसाल खोली जानी थी और किसी भी राशि के सोने के सिक्कों को वैध मुद्रा बनाना था।"

इन प्रस्तावों को जांच पड़ताल के लिए एक विभागीय समिति के समक्ष प्रस्तुत किया गया जिसे आमतौर से हर्शल समिति के नाम से जानते हैं। उन प्रस्तावों को एक महत्वपूर्ण स्थिति में दोषपूर्ण बताया गया और वह दोष था उसमें रुपये के मूल्य के बनाए रखने के लिए सोने के रिजर्व (निधि) की आवश्यकता की उचित मान्यता का न होना। अनेक लोगों को इन प्रस्तावों की सफलता के संबंध में उस समय तक संदेह था, जब तक एक पर्याप्त स्वर्ण निधि का उनको सहारा नहीं मिलता। परन्तु हर्शल समिति ने विभिन्न देशों की मुद्रा प्रणाली की कार्यशैली का विस्तृत अध्ययन करने के बाद यह रिपोर्ट की[1]

"यह असंभव है .... विदेशी मुद्रा प्रणाली की इस भावना के बिना समीक्षा करना कि हमारी अपनी (इंगलिश) मुद्रा प्रणाली की सतर्कता चाहे कितनी ही सराहनीय क्यों न हो अन्य राष्ट्रों ने अलग प्रणाली को अपनाया है जिनके संबंध में ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने बिना कठिनाई के काम किया है और वे अपनी–अपनी मुद्रा के लिए स्वर्णमान को बनाए रखने और विश्व के स्वर्ण का प्रयोग करने वाले देशों के साथ थोडे से सोने से या सोने के बिना ही विनिमय की महत्वपूर्ण समानता बनाए रखने में समर्थ हुए है।" अतएव समिति भारत सरकार के प्रस्तावों से पूर्णतया संतुष्ट थी और उसने केवल उनको अपनाने की ही स्वीकृति नहीं दी[2] बल्कि उसने उनमें रूपांतरण की शुरूआत करके यह बात और जोडी कि–

"चांदी के मुक्त सिक्का निर्माण के विरुद्ध टकसालों को बंद करने के साथ–साथ यह घोषणा भी की जानी चाहिए कि यद्यपि वे जनता के लिए बंद रहेंगी, परन्तु उनका उपयोग सरकार द्वारा सोने के बदले में रुपये के सिक्के बनाने के लिए किया जाएगा। उसके अनुपात को निर्धारित करना होगा, वह अनुपात प्रति रुपया 1 शि. 4 पै हो सकता है और यह कि सरकारी खजानों में सोना, उसी अनुपात में जनता के दातव्यों की

1. रिपोर्ट– पैरा–93
2. रिपोर्ट पैरा–155

संतुष्टि पर प्राप्त किया जाएगा"।[1] इन सिफारिशों को 26 जून 1893 को प्रभावी (लागू) किया गया। भारतीय मुद्रा के इतिहास में वर्ष 1835 में घटी एक युगान्तरकारी घटना है। उस तारीख को एक विधायी अधिनियम तथा तीन कार्यकारी अधिसूचनाएं साथ–साथ जारी की गई, ताकि जो उद्देश्य सामने था, उसे पूरा किया जा सके। 1893 का अधिनियम (8) केवल एक निरस्त करने वाला अधिनियम था। इसने निम्नलिखित को निरस्त किया–

(1) भारतीय सिक्का अधिनियम 23, 1870, धारा 19 से 26 (दोनों शामिल) जिनके अनुसार टकसालों के स्वामियों के लिए यह आवश्यक था कि वे अपनी टकसालों में सिक्के ढालने के लिए लाई गई सभी चांदी के सिक्के बनाएं।"[2]

(2) भारतीय कागजी मुद्रा, 1882[3]

(क) धारा 11, अनुच्छेद (ख) जिसके अनुसार कागजी मुद्रा विभाग के लिए यह आवश्यक था कि वह पुर्तगाली कन्वेशन एक्ट, 1881 के अधीन निर्मित चांदी के सिक्कों के बदले नोट जारी करें।[4]

(ख) धारा 11, अनुच्छेद (ख)। इसके अनुसार कागजी मुद्रा विभाग के लिए यह आवश्यक था कि वह सिल्वर बुलियन या विदेशी चांदी के सिक्के के बदले नोट जारी करें।[5]

(ग) धारा 13 इसका केवलं वह प्रावधान जो कागजी मुद्रा निधि के स्वर्ण भाग को कुल निधि के एक चौथाई भाग तक सीमित करता था।[6]

अधिनियम द्वारा इन निरसनों की एक कार्यकारी अधिसूचना सं. 2663 द्वारा समर्थन प्राप्त हुआ। जिसमें हर्शल समिति के इस सुझाव की पुष्टि करते हुए यह घोषणा की गई

1. रिपोर्ट पैरा–156
2. इन धाराओं में यह भी व्यवस्था थी कि टकसालों में सिक्के बनाने के लिए निजी (प्राइवेट) व्यक्तियों द्वारा लाए गए सब सोने के सिक्के बनाए जाएं। टकसाल में लाई गई मात्रा बिल्कुल नगण्य होती थी और सोने के सिक्के अर्थात मोहरें वैध मुद्रा नहीं थी क्योंकि उनका स्थान सावरेन को लेना था जिनका खुला निर्माण बाद में टकसालों में सोने के मुक्त सिक्का ढलाई के लिए होता था, अतः ऐसी और अधिक मोहरों के सिक्के बनाना अवांछनीय समझा गया। इसके फलस्वरूप टकसालों को चांदी के साथ–साथ सोने के लिए भी बंद कर दिया गया।
3. अधिनियम की इन धाराओं का निरसन अन्य धाराओं को निरस्त करने के लिए भी आवश्यक हो गया, जैसे धारा 14 तथा धारा 15 तथा धारा 21 एवं 28 में परिवर्तन, जिससे समूचे अधिनियम को, उस समय उद्घाटित स्वर्णमान की नीति के अनुसार लाया जा सके।
4. यह प्रथा समाप्त हो गई थी, और इसलिए इस अनुच्छेद धारा को बनाए रखना अनावश्यक था।
5. इस अनुच्छेद को टकसालों के बंद करने के बाद बनाए रखना असंगत था
6. सोने को भारत का भावी मानक होना था, इसलिए यह सीमा रखना आवश्यक नहीं था।

के लाभ के लिए आग की भट्टी में अपने हाथ खतरे में डाले? इन प्रस्तावों पर टिप्पणी करते हुए भारत सरकार ने यह अवलोकन किया[1]

"महारानी की सरकार के समक्ष प्रस्तावित व्यवस्था में शामिल परिवर्तन निम्नलिखित हैं :– फ्रांस तथा संयुक्त राज्य को अपनी टकसालें खोलनी हैं जहां वे चांदी के सिक्के ढालने के लिए स्वतंत्र हों, सोने के मुक्त सिक्के बनाना जारी रखना तथा दोनों धातुओं के सिक्कों की असीमित वैध मुद्रा बनाना। इनका अनुपात फ्रांस में अपरिवर्तनिय बना रहेगा और संयुक्त राज्य में 15½ : 1 के फ्रांसीसी अनुपात में परिवर्तित होगा। **भारत को अपनी टकसाल चांदी के लिए खोलनी होगी और उनको सोने के लिए बंद रखना होगा और यह वचन देना होगा कि सोने को वैध मुद्रा नहीं बनाया जाएगा। इस प्रकार फ्रांस तथा संयुक्त राज्य द्विधातुक होंगे, भारत एक धात्विक (चांदी) होगा जबकि विश्व के अधिकांश अन्य देश एक धात्विक (सोना) होंगे।**

** ** ** **

इन प्रस्तावित उपायों का पहला परिणाम यदि वे अस्थाई रूप से भी अपने उद्देश्यों में सफल होते हैं, तो यह होगा कि भारतीय व्यापार तथा उद्योग की बहुत बड़ी अव्यवस्था होगी यह अव्यवस्था रुपये में लगभग 16 पैंस से लगभग 23 पैंस तक की अचानक वृद्धि के कारण होगी। ऐसी वृद्धि हमारे निर्यात व्यापार को कम से कम कुछ समय के लिए समाप्त करने के लिए पर्याप्त होगी। ऐसी व्यवस्था जैसा कि प्रस्तावित की गई है, भारत के लिए अन्य दो देशों में से किसी की भी अपेक्षा अनन्तरूप में अधिक गंभीर होगी। क्योंकि यह बात साफ प्रतीत होती है कि व्यावहारिक रूप में असफलता से घोर संकट का सारा खतरा केवल भारत के लिए होगा। यदि समझौता भंग हो गया और समाप्त हो गया तो तीन देशों में से प्रत्येक देश के लिए क्या होगा? फ्रांस के पास सोने का एक विशाल भंडार है और संयुक्त राज्य भी अधिकतर उसी स्थिति में है जैसी स्थिति में फ्रांस है, यद्यपि उस धातु का भंडार अधिक विशाल नहीं है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि, यदि कोई सावधानी न बरती गई, तो सोने का यह भण्डार (रिजर्व) समझौते के लागू होने से लुप्त हो सकता है और उस स्थिति में, यदि प्रयोग अंततः असफल हो गया तो संबंधित दो देशों को बहुत बड़ी हानि होगी। परन्तु यह बात कल्पनातीत है कि सब घटनाओं के सम्बन्ध में सावधानी नहीं बरती जाएगी। अतः स्वर्ण भण्डार के निःशेष का खतरा दिखाई देगा और इसलिए यह संभव है कि फ्रांस या संयुक्त राज्य की मुद्रा प्रणाली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होगा। इस समझौते का एकमात्र प्रभाव चांदी का सिक्का बनाना होगा जो समझौते के समाप्त होने के साथ ही समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार यदि प्रयोग असफल हो गया तो असफलता के सारे व्यय का वहन भारत द्वारा किया जाएगा। यहां रूपये में बड़ी तेजी से वृंद्धि होगी, इसमें कुछ समय तक दृढता रहेगी और फिर जब उसका पतन

1. सेक्रेट्री ऑफ स्टेट का 16 सितम्बर 1897 का पत्र पृष्ठ 9 टेढे अक्षर मूल में नहीं है।

होगा तो वह सिर के बल गिरेगा। फिर हम चांदी के मूल्य में उतार–चढ़ाव के साथ मूल्य के अपने मानक के विनिमय मूल्य के उतार–चढ़ाव को रोकने के लिए क्या प्रक्रिया या मार्ग अपना सकते हैं? हम यह नहीं सोचते कि हमारे सामने कोई उपाय खुला होगा क्योंकि यदि भारतीय टकसालों को अब चांदी के लिए पुनः खोल दिया गया तो भारत सरकार के लिए इन्हें पुनः बंद करना वास्तव में असंभव होगा और यदि उन्हें बंद कर भी दिया गया तो यह तभी होगा जब प्रचलन में चांदी की राशि में बहुत अधिक वृद्धि हो जाएगी।

परन्तु जैसे ही उसने अपने समक्ष प्रस्तुत अपने लक्ष्य अर्थात स्वर्णमान की शुरूआत से हटने से इनकार किया, वैसे ही उसके शीघ्र बाद उसके सामने उसकी वर्तमान मुद्रा व्यवस्था में एक कठिन समस्या आ खड़ी हुई। रूपये का भंडार जिसमें टकसालों के बंद होने के कारण 1893 से वृद्धि नहीं हुई थी, इतना विशाल था कि वह यथेष्ट समय तक लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त था। बंद होने के पहले कुछ वर्षों में रुपये की मुद्रा केवल प्रचुर मात्रा में ही नहीं थी, बल्कि यह फालतू भी थी। शीघ्र ही यह फालतू नहीं रही और वास्तव में 1898 के आखिर तक वह इतनी अधिक दुर्लभ हो गई कि भारतीय मुद्रा बाजार में बट्टे व छूट की दर बढकर 16 प्रतिशत तक पहुंच गई और वह वर्ष के अधिकांश भाग में इसी अवस्था में जारी रही। मुद्रा के लिए तरसाने की इस नीति के विरुद्ध इतना हो हल्ला हुआ कि सरकार को बाध्य होकर 1898 में एक अधिनियम (सं.11) पारित करना पड़ा। इसके अनुसार, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को लंदन में दिए गए सोने के विरुद्ध भारत में मुद्रा के नोटों को जारी करने की अनुमति दी गई। इस अधिनियम ने उस समय भारतीय मुद्रा बाजार की अभावग्रस्त स्थिति को दोहरा लाभ पहुंचाया। 1893 में अपनाए गए उपायों के अनुसार सोना एक सामान्य वैध मुद्रा नहीं था। अतः जब रुपये की मुद्रा आवश्यकता से कम पड़ गई तो उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता था। यह सही है, कि नए अधिनियम ने सोने को वैध मुद्रा नहीं बनाया था, परन्तु इस अधिनियम ने इसको आम जनता[1] की ओर से मुद्रा नोटो को जारी करने के लिए एक सहारे के रूप मं प्रयोग करने की अनुमति दे दी थी। वे मुद्रा नोट वैध मुद्रा थे। तथापि, अधिनियम में यह अपेक्षित हो सकता था कि नोटों को जारी करने से पहले भारत में सोने को रखा जाए। क्योंकि भारत में सोने के प्रेषण में लगभग तीन या चार सप्ताह का समय लग गया। अतः यह भय व आशंका हुई[2] कि यह उपाय इतना अधिक धीमा व ढीला सिद्ध हो सकता है कि वह उस समय तक प्रभावी नहीं हो सकता था जब तक उस अंतराल को यह व्यवस्था करके समाप्त न कर दिया जाता कि लंदन में सेक्रेटरी आफ स्टेट के पास जो सोना था, वह नोट को जारी करने के लिए कागजी मुद्रा विभाग के पास सोना होने के समान ही है। अर्थात उस सोने को मुद्रा विभाग के पास विद्यमान

1. 1893 की अधिसूचना सं. 2664 के अनुसार नोट महानियंत्रक को केवल सोने के विरुद्ध जारी किए जा सकते थे।
2. विधेयक को प्रस्तुत करते समय माननीय सर जेम्स वैस्टलैंड का भाषण दिनांक 14 जनवरी, 1898.

होने के समान ही मान लिया जाए।

ऐसा करके अधिनियम ने परिस्थिति की आवश्यकता को केवल प्रमाणित किया। एक स्वस्थ मुद्रा प्रणाली में प्रसार तथा संकुचन की क्षमता होनी चाहिए। सरकार ने 1893 में टकसालों को बंद करके मुद्रा को इतना अधिक संकुचित कर दिया था कि उससे खतरा उत्पन्न हो गया था। 1898 में ऐसे उपाय शुरू करने की आवश्यकता पड़ी जिनसे उसका प्रसार किया जा सके। अब इस वांछित परिणाम को प्राप्त करने के लिए दो तरीके थे। एक टकसालों को बंद करना और सावरेन को सामान्य वैध मुद्रा बनाकर सोने के प्रयोग द्वारा मुद्रा में वृद्धि करने की अनुमति देना था। भारत सरकार द्वारा प्रस्तावित यही योजना थी। अपने दिनांक 8 मार्च, 1898 के पत्र में उन्होंने यह तर्क दिया।[1] "हमारी मंशा इस समय, व्यापार के स्वचालित प्रक्रिया में विश्वास करना है। वाणिज्य की आवश्यकताओं के लिए जितने सिक्के अपेक्षित हैं उनकी राशि में प्रतिवर्ष वृद्धि होती है, और चूंकि हम चांदी के सिक्कों को बढ़ाकर मुद्रित नहीं करते अतः हम युक्तिसंगत रूप में यह आशा कर सकते हैं कि सिक्कों के लिए बढ़ती हुई मांग का प्रभाव विनिमय को एक ऐसे बिन्दु तक पहुंचा देगा जिस पर देश में सोने का प्रवाह होगा और वह प्रचलन में रहेगा। और इस प्रकार जैसे–जैसे समय गुजरेगा वैसे स्थिति और अधिक मजबूत होती जाएगी। परन्तु कम से कम प्रारंभ में सोने का प्रचलन देश में विनिमय की स्थिरता को प्राप्त करने के लिए आवश्यक सीमा से अधिक नहीं होगा। प्रचलन अधिकांश चांदी का ही होगा और उसे एक मूल्यांकित मूल्य पर बनाए रखा जाएगा। (ठीक जैसा इस समय है) और हम यह देखकर संतोष कर सकते हैं कि सोने के सिक्के सीमा से थोड़ा अधिक प्रचलन में बने हुए हैं और इसका कारण यह है कि देश के बाहर इसके प्रेषण से देश में सिक्के का अभाव उत्पन्न हो सकता है, जिसका प्रभाव चांदी के रुपये के विनिमय मूल्य को बढाने पर इस तरीके से पड़ेगा कि वह वापिस आ जाएगी अथवा अधिक से अधिक उससे बाहर की ओर प्रेषण का प्रवाह रुक जाएगा। हम उन स्थितियों में स्वर्णमान को प्राप्त कर लेते जो फ्रांस में विद्यमान स्थिति से भिन्न नहीं थी, यद्यपि इंगलिश अर्थों में वह सोने का वितरण प्रचलन न होता और संभवतः और बाद में यह बिल्कुल भी आवश्यक न हो।"

सोने के प्रयोग द्वारा मुद्रा का प्रसार करने के अलावा, उसी उद्देश्य को लागू करने का एक और तरीका भी था। यह कहा गया कि मुद्रा की यह वृद्धि अतिरिक्त मुद्रा के लिए जब भी आवश्यकता पड़े तभी सरकार द्वारा रुपये के सिक्के बनाने से भी हो सकती है। यद्यपि टकसालें बंद कर दी गई थीं, परन्तु सरकार ने अधिसूचना सं. 2662 द्वारा यह शुरू कर दिया था कि वह प्रत्येक इच्छुक व्यक्ति को प्रति रुपया 7.53344 ग्रा. टाय शुद्ध सोने की दर से रुपया प्रदान करने का वचन दिया था।[2] मुद्रा को किसी

1. भारत सरकार द्वारा मुद्रा सम्बंधी प्रस्तावों के विषय में पत्राचार 1898 की पत्रा. 1898 पृ.3
2. देखिए सुप्ता

भी वांछित सीमा तक बढ़ाने के लिए सरकार को उस अधिसूचना को लागू करना था। मुद्रा का प्रसार करने की इस योजना के प्रमुख समर्थक श्री प्रोबीन तथा श्री ए.एम. लिंडसे थे। दोनों ने यह दावा किया कि भारत सरकार की योजना दोषपूर्ण है क्योंकि यद्यपि उसने सोने को वैध मुद्रा बनाकर मुद्रा के प्रसार की व्यवस्था की है परन्तु उसने रुपये को पूर्णतया अपरिवर्तनीय बना दिया है और उससे उसके विनिमय मूल्य को स्थिर करने की नीति के परास्त होने की संभावना है। इसके विपरीत उन्होंने भारत सरकार की योजना से अपनी योजना को श्रेष्ठ माना, क्योंकि उन्होंने इस जिम्मेदारी व बाध्यता को रुपये की मुद्रा को कुछ शर्तों पर परिवर्तित करने की व्यवस्था करने के लिए मान्यता दी। यद्यपि उन दोनों की योजनाओं में एक प्रकार की परिवर्तनशीलता विनिमेयता अपेक्षित थी, फिर भी उनके वे विशेष तरीके वास्तव में अलग–अलग थे जिनमें विनिमय को लागू करना था। श्री प्रोबीन ने यह प्रस्ताव किया[1] –

1. कि 1893 की अधिसूचना को कानूनी प्रभाव दिया जाना चाहिए, जिसके अधीन जनता रुपये को, सोने के बदले 1 शि. 4 पें (1 एस 4 डी) की दर पर भारतीय टकसालों तथा रिजर्व खजानों से प्राप्त कर सके।
2. कि इस प्रकार प्राप्त सोना कागजी मुद्रा निधि का भाग होना चाहिए और उसे या तो ब्रिटेन की पूर्ण वैध मुद्रा स्वर्ण के सिक्कों के रूप में या सोने की सिल्ली/छड़ के रूप में रखना चाहिए। उनमें से प्रत्येक सिल्ली 1,000 रूपये से कम न हो।
3. कि रुपये की मुद्रा को संकुचन की स्वचालित शक्ति प्रदान करने के लिए सरकार को चाहिए कि जैसे ही कागजी मुद्रा निधि (रिजर्व) का एक भाग लगातार एक वर्ष तक उस राशि से कम रहे जो सोने में रखी थी, तो तत्काल रुपये के बदले सोना दे, या रूपये के नोट 1 शि. 4 पें. (1 एस 4 डी) की दर से दे यदि उन्हें 10,000 रुपये की राशि में उसके लिए प्रस्तुत किया जाए। देने की यह शक्ति यद्यपि अपेक्षित न भी हो सरकार को यह शक्ति प्रदान की जानी चाहिए।
4. प्रचलन में दस हजार रुपये के नोटों को वापस ले लेना चाहिए और भविष्य में धारक की इच्छा पर या तो सोने या चांदी के रुपये में देय दस हजार रुपये के नोटों को केवल अकेले सोने के बदले में जारी किया जाना चाहिए चूंकि सिल्लियों व छडों के रूप में सोना विशेष रूप से किसी ऐसे बकाया नोटों को चुकाने के लिए आरक्षित रखा जाता है।

इसके विपरीत, श्री लिंडसे ने श्री प्रोबीन द्वारा अपनाए गए मार्ग से बिल्कुल अलग

1. उसकी भारतीय सिक्के तथा मुद्रा, इफिंघम विल्सन, लंदन, 1897 पासिम, विशेषत: पृष्ठ 121 इकोनोमिक जर्नल, खंड-7, पृष्ठ 574-75 में लिंडसे द्वारा सारांश भी।

मार्ग का अनुसरण किया। उसने यह प्रस्तावित किया[1] कि एक ओर सरकार को बिना किसी सीमा के भारत में रुपये हुंडी (ड्राफ्टस) 16 1/16 पैंस (डी) रुपये के बदले और दूसरी ओर लंदन में पाउंड हुंडी (ड्राफ्ट) 15 3/4 पैंस (डि) रुपये के बदले बेचने के लिए आवश्यक निधियों (फंडों) को लंदन तथा भारत में "स्वर्णमान" कार्यालयों में सरकार की साधारण बकाया राशि से अलग रखना था। लंदन कार्यालय के पास उसको दी गई हुंडियों (ड्राफ्टस) का भुगतान करने के लिए निम्न प्रकार से निधि फंड सुरक्षित रखनी थी–

1. पांच या दस मिलियन पाउंड तक सोने में उधार लेकर
2. भारत पर हुंडी (ड्राफ्ट्स) की बिक्री द्वारा वसूल की गई प्राप्तियों (रसीदों) द्वारा
3. पिघलाए गए रुपये में चांदी बुलियन की बिक्री द्वारा वसूल[2] की गई प्राप्तियों रसीदों[1] द्वारा, और
4. जब आवश्यक हो तो और सोना उधार लेकर भारतीय स्वर्णमान कार्यालय के पास, उसको दिए गए ड्राफ्टों (हुंडियों) को चुकाने व भुगतान करने के लिए निधि (फंड) को सुरक्षित रखना था–
   (1) लन्दन पर हुंडियों (ड्राफ्टस) की बिक्री द्वारा वसूल की गई प्राप्तियों, द्वारा और
   (2) जब आवश्यक हो तो लंदन स्वर्णमान वाले कार्यालय द्वारा खरीदी तथा भारत में प्रेषित बुलियन से सिक्के बनाना।

भारत सरकार द्वारा समर्थन प्राप्त मुद्रा की योजना तथा दूसरी ओर सर्वश्री प्रोबीन तथा लिंडसे द्वारा प्रस्तुत योजना के बीच मुख्य अंतर यह था कि भारत ने स्वर्ण मुद्रा के साथ स्वर्ण मान स्थापित करना प्रस्तावित किया था जबकि उन दोनों ने स्वर्ण मुद्रा के बिना स्वर्णमान स्थापित करना प्रस्तावित किया था।

स्वर्ण मुद्रा सहित स्वर्णमान तथा स्वर्णमुद्रा के बिना स्वर्णमान के तुलनात्मक गुणों का निर्णय देने के लिए सेक्रेटरी आफ स्टेट ने एक और विभागीय समिति की नियुक्ति की। इस समिति का अध्यक्ष सर हेनरी पावलर को बनाया गया। सारी महत्वपूर्ण साक्ष्य लेने के बाद, समिति ने यह अवलोकन किया[3] :–

---

1. उसकी योजना का प्रारम्भिक विस्तारपूर्ण उल्लेख अक्तूबर 1878 के कलकत्ता रिव्यू में मिलता है। यह उसके लेख "इंग्लैंड तथा भारत में स्वर्ण के सिक्कों के बिना स्वर्णमान (ए गोल्ड स्टेन्डर्ड विदाउट ए गोल्ड थोपनेज इन इंग्लैंड इंडिया) और सबसे बाद में रिकार्डो का विनिमय उपाय इफिंघम विल्सन, 1892 नामक पैम्पलेट में दिया गया। इस योजना को दिनांक 6 जनवरी, 1898 में "पायनियर आफ इलाहाबाद (भारत) नामक समाचार पत्र में और आगे विकसित किया गया था। इससे पूर्ण उद्धरण 1898 के पत्रा. पृ. 13 में दिए गए हैं।
2. श्री लिंडसे ने यह विचार किया कि जब लंदन पर सोने की हुडियों की मांग इतनी अधिक हो गई जो उसकी आवश्यकता को सूचित करती है। रुपये की मुद्रा के आकार को संकुचित कर दिया जाए। यह कार्य रुपये को पिघलाकर और चांदी को "स्वर्णमान" कार्यालय लंदन में जमा होने वाले सोने के बदले बेचकर किया जाना चाहिए।
3. भारतीय मुद्रा की जांच करने हेतु नियुक्त समिति का प्रतिवेदन पी.पी.सी. 9390–1899 का पृष्ठ 15

50. इस योजना (श्री प्रोबीन की) पर हमारी यह टिप्पणी कि बुलियन को विनिमय का अंतर्राष्ट्रीय माध्यम माना जाए, परन्तु ऐसी कोई नजीर या पूर्वोदाहरण नहीं है जिसमें इसे आंतरिक मुद्रा के लिए स्थायी रूप में अपनाया गया हो और न यह यूरोपीय या भारतीय उपयोग से मेल खाती है कि मानक धातु को चालू सिक्के के सुविधाजनक रूप में एक हाथ से दूसरे हाथ में नहीं गुजरना चाहिए। ऐसी योजना के लिए "पील के अधिनियम, 1819 के बिल्कुल अस्थायी प्रावधान से कोई वास्तविक समर्थन प्राप्त नहीं होता है, जिससे बैंक आफ इंग्लैंड को नकद रोकड भुगतान के कार्य को पुनः आरंभ करने के लिए प्रथम कदम के रूप में एक सीमित अवधि के लिए, मोहर चिन्हित स्वर्ण की छड़ों, उसके नोटों का उस समय भुगतान करने के लिए प्राधिकृत किया गया जब उन्हें 200 पाउंड से अधिक के पार्सलों में प्रस्तुत किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि सोने के बुलियन के लिए, 1821 में बैंक से कोई मांग नहीं की गई।

* * * * *

"53. यह बात स्पष्ट है कि वे तर्क जो श्री प्रोबीन की बुलियन स्कीम को स्थायी रूप में अपनाने के विरुद्ध और भारत के लिए स्वर्ण मुद्रा के पक्ष में दिए जाते हैं वे श्री लिंडसे की चतुर योजना, जिसे विनिमय मानक की संज्ञा दी गई, के विरुद्ध और अधिक दृढता से बताते हैं। हम लार्ड रोथ शील्ड, सर जॉन लुबक, सर सेमुअल मोंटेगु तथा अन्य व्यक्तियों के साक्ष्यों से प्रभावित हुए हैं कि एक दिखाई देने वाली स्वर्ण मुद्रा के बिना किसी भी प्रणाली को अविश्वास के साथ देखा जाएगा। इस मत की अभिव्यक्ति के सामने इस निष्कर्ष को टालना कठिन है कि लिंडसे की योजना को अपनाने से भारत में पूंजी का वह प्रवाह रुक जाएगा जिस पर भारत का आर्थिक भविष्य बहुत अधिक निर्भर है। हम श्री लिंडसे की स्कीम की सिफारिश करने के लिए तैयार नहीं हैं अथवा एक स्थायी व्यवस्था के रूप में अपनाने के लिए स्व. श्री राफेल तथा मेजर डारविन द्वारा प्रस्तावित समानार्थक योजनाओं की भी सिफारिश नहीं कर सकते, और वर्तमान परिस्थितियों में पाउंड विनिमय को निर्धारित करने के लिए अस्थायी उपाय के रूप में इनमें से किसी भी योजना को अपनाने की आवश्यकता नहीं है।"

समिति ने भारत सरकार की योजना को तरजीह दी और उसे स्थायी आधार प्रदान करने के लिए अपनाए जाने वाले कार्रवाई के तरीके की रूपरेखा प्रस्तुत की। इसे नीचे समिति की ही अपनी भाषा में उद्धृत किया जाता है :–

"54. हम ब्रिटिश सावरेन को भारत में एक वैध मुद्रा तथा चालू सिक्का बनाने के पक्ष में हैं। हमारा यह भी विचार है कि साथ ही साथ भारतीय टकसालों के द्वार सोने के प्रतिबंधित सिक्का निर्माण के लिए खोल देने चाहिए। ऐसा उन शर्तों पर किया जाए जो रॉयल टकसाल की तीन आस्ट्रेलियाई शाखाओं पर लागू होती हैं। इसका परिणाम यह होगा कि समान परिस्थितियों में, सावरेन के सिक्के बनाए जाएंगे और उनका चलन

ब्रिटेन में तथा भारत में होगा। जो सोने के मुक्त अंतर्वाह तथा बहिर्वाह के सिद्धांत पर आधारित स्वर्णमान तथा मुद्रा की भारत में प्रभावी स्थापना की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हुए हम इन उपायों को अपनाने की सिफारिश करते हैं।"

"इन सिफारिशों को सेक्रेटरी ऑफ स्टेट द्वारा स्वीकार कर लिया गया था[1] जिसने यह निर्णय किया था कि—

"भारतीय टकसालों को चांदी के अप्रतिबंधित सिक्का निर्माण के लिए बंद रखने की नीति को ज्यों का त्यों रखा जाएगा।" और भारत सरकार से यह कहा जाएगा कि वह जितना जल्दी उचित समझे उतना जल्दी ब्रिटिश सावरेन को वैध मुद्रा तथा एक चालू सिक्का बनाने के लिए आवश्यक कार्रवाई करें और समिति द्वारा सुझाई गई शर्तों के अनुसार सोने के सिक्के बनाने के लिए तैयारी करें।"

समिति की प्रथम सिफारिश को सरकार ने एक अधिनियम पारित करके लागू किया। उस अधिनियम का सामान्य नाम "भारतीय सिक्का तथा कागज मुद्रा अधिनियम (इंडियन कोयनेज एंड पेपर करंसी एक्ट (22) 1899 था। उस अधिनियम ने सावरेन तथा अर्धसावरेन को क्रमशः 15 रुपये तथा 7½ रुपये की दर पर वैध मुद्रा बना दिया और उनके बदले मुद्रा के नोटों के निर्गम को प्राधिकृत कर दिया।

भारतीय मुद्रा को स्वर्ण आधार पर रखने के साथ—साथ सरकार सोने के सिक्कों के मुक्त निर्माण के लिए एक टकसाल खोलने के लिए भी उत्सुक थी। परन्तु टकसाल से जारी किया जाने वाला सिक्का "इंगलिश सावरेन" था, अतः भारत सरकार पूर्णतया ब्रिटिश ट्रेजरी के हाथ में थी। "इंगलिश कॉयनेज एक्ट, 1870 के प्रावधानों के अनुसार एक घोषणा जारी करना आवश्यक था जिसके अनुसार एक भारतीय टकसाल को रोयल टकसाल की शाखा बनाना था यह विषय ट्रेजरी की सहमति पर पूर्णतया निर्भर था, भारत सरकार का यह इरादा था कि वह सावरेन को वैध मुद्रा बनाने वाले अधिनियम को पारित करने के साथ ही साथ घोषणा भी जारी कर दे। वास्तव में उसने घोषणा के आने तक विधि निर्माण के कार्य को भी रोक लिया[2] बडे अनमने ढंग से उस समय कार्रवाई आरंभ की जब यह परामर्श दिया गया कि कानूनी तथा तकनीकी प्रश्नों के कारण घोषणा में कुछ और विलम्ब होने की संभावना है।" ट्रेजरी द्वारा की गई आपत्तियां यद्यपि केवल तकनीकी आपत्तियां थीं, परन्तु वे पहले तो बिल्कुल अलंध्य व दुस्तर प्रतीत हुई[3] और यदि भारत कार्यालय (इंडिया आफिस) का दृष्टिकोण समझौता मैत्रीपूर्ण न होता तो (संधि) वार्ता टूट गई होती। परन्तु ट्रेजरी इस परियोजना को अवसर प्रदान करने की इच्छुक नहीं थी। जब इस प्रश्न के तकनीकी पहलू पर समझौता हुआ तो ट्रेजरी ने रूख बदला

1. देखें 25 जुलाई, 1899 का प्रेषण संख्या 140 (वित्तीय) 1899 का सी. 9421
2. इंडियन कोयनेज तथा पेपर करंसी बिल पर दिनांक 8 सितम्बर 1899 को माननीय श्री डॉकिन्स का भाषण
3. एच आफ सी रिटर्न 495ए 1913 पृष्ठ 14.

और एक प्रश्न उठाया कि क्या सोने के सिक्कों का निर्माण करने के लिए भारत में एक टकसाल का होना आवश्यक है? ट्रेजरी ने यह तर्क दिया :—

"इस बात पर अपनी संतुष्टि प्रकट करते हुए कि अब समझौता हो गया है, यह समिति यह वांछनीय समझती है कि इस योजना को लागू करने से पहले लार्ड जॉर्ज हैमिल्टन से यह अनुरोध किया जाए कि वे भारत में सावरेन के निर्माण के पक्ष में दिए गए तर्कों की समीक्षा करें और इस बात पर विचार करें कि जब यह प्रस्ताव किया गया था तबसे दो वर्ष गुजर गए हैं, क्या इन दो वर्षों के दौरान घटना क्रम से उनकी उपदेयता कम तो नहीं है। और वह उन ऐसे लाभों को बताएं व प्रस्तुत करें जो लाभ एक ऐसी शाखा टकसाल की स्थापना से होंगे और क्या उस पर किये जाने वाले खर्च का अनुपात अधिक तो नहीं होगा...। अब स्वर्णमान दृढता से स्थापित हो गया है और जनता को भारतीय सरकार की उनकी नीति पर जो विवाद से परे है वापिस न लौटने के इरादे व इच्छा के संबंध में किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान परिस्थितियों में जब भी आवश्यकता होती है, तभी सावरेन तत्काल खिंचे चले आते हैं... इसके विपरीत भारत सरकार द्वारा, उस देश में सिक्कों के निर्माण के लिए उपलब्ध सोने के संबंध में जो अनुमान लगाए गए हैं व आंकलन किये गये हैं वे पूर्वानुमानों से कम हैं। और न उसमें कुछ समय तक किसी भी तरह की अधिक वृद्धि होने की आशा भी है।

वर्ष के अधिकांश समय तक कर्मचारी खाली बैठे रहेंगे जिससे भारतीय खजाने पर खर्च का अत्यधिक बोझ होगा। अब वास्तव में इस बात का निर्णय लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टन को करना है कि क्या इन आपत्तियों के बावजूद भी इस योजना पर कार्रवाई की जाए।"

भारत कार्यालय (इंडिया ऑफिस) ने उत्तर दिया :— "सोने के सिक्के बनाने के लिए भारत में एक टकसाल की स्थापना, एक नई मुद्रा प्रणाली की निष्पत्ति का एक सबसे स्पष्ट बाह्य संकेत है और अब इस प्रस्ताव को रद्द करने से लोगों का ध्यान इस ओर जाएगा और उससे उनमें आलोचना तथा बैचेनी उत्पन्न होगी. . . . यह स्कीम अब जिस अवस्था में पहुंच गई है उसमें अब इसे रद्द करने में लॉर्ड की कोई रूचि नहीं है।"

ट्रेजरी ने एक जबरदस्त व कड़ा उत्तर भेजा, उसमें उसने यह कहा :—

"भारतीय मुद्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति अन्य स्रोतों से कर दी जाती है और स्थानीय रूप में, सावरेन के सिक्के निर्माण के लिए वास्तव में कोई मांग नहीं है .. यदि कोई विश्वास नहीं कर सकता कि भारत में सोने के सिक्कों को प्राप्त करने के लिए मशीनों की व्यवस्था करने से भारत में सोने की स्थिति मजबूत होगी या सरकार के इरादे के प्रति जनता का विश्वास जगेगा पहले से जो विश्वास जमा हुआ है उसका उपाय समिति की रिपोर्ट के समय से विनिमय के तरीके से पर्याप्त मात्रा में परिलक्षित होता है और जिस तत्परता से सोना भारत में जलयानों द्वारा भेजा जाता है, उससे विश्वास और भी अधिक हो जाता है। . . . कि ट्रेजरी ने समूचे प्रस्ताव के प्रति शायद अप्रत्यक्ष

शत्रुता की भावना से काम किया "यह बात सुस्पष्ट है। परन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि ट्रेजरी ने पूर्णतया ठोस व युक्तियुक्त तर्क प्रस्तुत किए। यह बात स्वर्णमान की कार्यशैली के लिए महत्वहीन थी कि सिक्कावाला सावरेन कहां से आता था। जब तक एक टकसाल सावरेन के मुक्त सिक्का निर्माण के लिए खुली रहती, तब तक भारतीय स्वर्णमान पूर्ण हो जाता, टकसाल का स्थान चाहे जहां होता। वास्तव में सिक्का वाली सावरेन को लंदन से प्राप्त करना केवल पर्याप्त ही नहीं होता बल्कि वह कम खर्चीला भी होता।

तथापि सरकार ने जो चिंता व्यक्त की थी वह सोने की टकसाल के अभाव के कारण नहीं थी। वास्तव में उसका विश्वास उसकी आवश्यकता के प्रति इतना कम था कि ट्रेजरी के विरोध को दृष्टि में रखते हुए उसने शालीनता से इस प्रस्ताव को छोड़ना स्वीकार कर लिया। उसको सबसे अधिक परेशानी नई मुद्रा प्रणाली में रुपये की विलक्षण स्थिति से हुई। भारत सरकार को अपने विज्ञप्ति में उसे यही खेद रहा कि उसे रुपये को अवमुद्रित करने का तरीका नहीं दिखाई दे सका और भारतीय मुद्रा का उस प्रकार स्वांगीकरण तरीका नहीं देख सकी जो इंगलैंड में प्रचलित था। विज्ञप्ति का सामान्य अवलोकन करने पर यह पता चलता है कि यद्यपि उसने भारतीय मुद्रा के फ्रांस तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की मुद्रा अपनाने की सिफारिश की थी परन्तु उसने ऐसा इस कारण नहीं किया था कि उसने यह सोचा था कि उनकी प्रणाली सर्वोत्तम व आदर्श प्रणाली है बल्कि इसका कारण यह था कि उसका विश्वास था कि इससे बेहतर प्रणाली तक उसकी पहुंच नहीं है। फ्रांस तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की मुद्रा प्रणाली के स्वीकृत दृष्टिकोण के प्रति सम्मान के कारण यह स्वाभाविक था कि भारत सरकार ने स्वयं को इसके प्रति बहुत उल्लसित महसूस नहीं किया। इन दो देशों की मुद्रा प्रणाली की दृष्टि से पांच फ्रैंक के सिक्के तथा चांदी के डालर की स्थिति को हमेशा इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है जैसे कि ये एक दूसरे के बहुत ही सदृश हैं। प्रो. पियरसन जैसा महान विद्वान भी उनको, मुद्रा के विभिन्न रूपों के वर्गीकरण करने की परम्परागत योजना में सुबोधगम्य स्थान प्रदान करने में असफल रहा।[1] परम्परागत स्वर्णमान सुव्यवस्थित प्रणाली में स्वर्ण ही एकमात्र ऐसी धातु है जिसके सिक्के मुक्त रूप में बनाए जाते हैं और केवल यही एक मात्र ऐसी धातु है जिसमें पूर्ण वैध मुद्रा की शक्ति है, यद्यपि चांदी के भी सिक्के बनाए जाते रहे, परन्तु उसके सिक्के सीमित मात्रा में सरकारी लेखे पर बनाए जाते हैं और चूंकि इसका आन्तरिक मूल्य उसके अंकित मूल्य की अपेक्षा कम होता है, अतः यह एक सीमित वैध मुद्रा होती है। पहली प्रकार के सिक्कों को मानक सिक्के कहते हैं और बाद वाले प्रकार के सिक्कों को सहायक सिक्के कहा जाता है और दोनों मिलकर एक धातुक स्वर्णमान का आदर्श प्रस्तुत करते हैं जैसा कि इंग्लैंड में 1816 से स्थापित है। ऐसी स्थिति में लेखकों को डालर या पांच फ्रैंक के सिक्कों को उपयुक्त ठहराने में कठिनाई हुई है। उनकी विशेषता इस तथ्य में निहित है कि यद्यपि

1. प्रिंसिपल्स ऑफ इकोनोमिक्स, खंड.1, पृष्ठ 569

उनका आंतरिक मूल्य, उनके अंकित व नामित मूल्य की अपेक्षा कम होता है फिर भी वे अविनिमेय तथा असीमित वैध मुद्रा रहे हैं। इस असंगति के कारण ही थोड़े से स्वर्णमान के अधिकार को अमरीकी तथा फ्रांसीसी मुद्रा प्रणाली के लिए अस्वीकृत कर दिया गया है अर्थात इन मुद्राओं को स्वर्ण का हक नहीं दिया गया है। शिथिल व लचीले मानक[1] में बहुत कम लोगों का विश्वास हो सकता है। ऐसे मानक के संबंध में यह कहा जाता है कि किसी प्रकार चांदी के सिक्के का आंतरिक मूल्य यद्यपि सोने की अपेक्षा कम होता है और वह लड़खड़ाता है पर फिर भी उसे समानता पर बनाए रखा जाता है। ऐसा उसको उसके अपेक्षाकृत और अधिक प्रबल सहयोगी के साथ संयोजित करके (मिलाकर) किया जाता है।[2]

परन्तु क्या फ्रांसीसी मुद्रा प्रणाली इंगलिश मुद्रा प्रणाली से इतनी अधिक अलग थी कि उससे उसकी स्थिरता के संबंध में संदेह उत्पन्न हो जाए? इन दोनों प्रणालियों के बीच चाहे जो अन्तर रहा हो, इनका निकट विश्लेषण करने से पता चलता है कि वे मूल रूप में एक समान हैं। यदि एक ओर हम 1803 के फ्रांसीसी द्विधातुक कानून तथा 1878 की टकसाल स्थगन आदेश (मिंट सस्पेंशन डिक्री ऑफ 1878) और दूसरी ओर 1844 के बैंक चार्टर एक्ट के साथ–साथ 1816 के इंगलिश गोल्ड स्टैंडर्ड एक्ट के प्रावधानों का एक साथ अध्ययन करें और उनकी तुलना करें तो क्या हमें फ्रांसीसी तथा ब्रिटिश मुद्रा प्रणाली के बीच कोई बड़ा अंतर मिलता है? 1878 से पहले फ्रांस में सोना तथा चांदी दोनों के सिक्कों के असीमित वैध मुद्रा होने का एक असीमित था। सन 1844 से पहले इंग्लैंड में इन दोनों अर्थात सोने के सावरेन तथा बैंक ऑफ इंग्लैंड के नोटो दोनों के असीमित वैध मुद्रा होने का असीमित था। 1844 में इंग्लैंड बैंक नोटों का (निर्गम) सीमित कर दिया परन्तु निर्गमों को उनकी वैध मुद्रा की शक्ति से वंचित नहीं किया था।[3] 1878 में फ्रांस ने भी अपने नोटों के साथ ठीक–ठीक वैसा ही किया जैसा 1844 में इंग्लैंड ने अपने नोटों के साथ किया था। टकसाल के निलंबन के आदेश द्वारा, फ्रांस ने वास्तव में, यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप में ही, पांच फ्रैंक के सिक्कों पर प्रतिबंध लगा दिया। परन्तु उनको उनकी वैध मुद्रा की शक्ति से वंचित नहीं किया। यदि हम फ्रांस के पांच फ्रैंक के सिक्कों को चांदी पर मुद्रित नोटों के रूप में मानते हैं तो इस बात को देखना कठिन है कि इन दो प्रणालियों के बीच कौन सा अंतर है, जिसके कारण अर्थशास्त्री एक

---

1. ऐसा इस विश्वास की कमी के कारण था जो जर्मनी ने 1 अक्तूबर 1907 के कानून द्वारा अपने सिल्वर थेलर्स से वैध मुद्रा की पूर्ण शक्ति ले ली। संयुक्त राज्य में चांदी के डालर को संविदा की शर्तों द्वारा विशेष रूप से बाहर निकाल दिया जाए तो वह वैध मुद्रा नहीं रहता। ए.सी. व्हिटाकर, विदेशी विनिमय (फॉरेन एक्सचेंज) एपिल्टन, न्यूयार्क 1920 पृ. 8 तथा 277
2. सी.एफ.डब्लू.टासिंग, प्रिंसिपल्स द्वितीय संस्करण, 1918 पृ. 280
3. बैंक ऑफ इंग्लैंड के नोटों को लॉर्ड आल्थोर्पस के 1833 के अधिनियम द्वारा वैध मुद्रा बनाए गए थे।

को स्वर्णमान तथा दूसरे को लड़खड़ाने वाला मान कहते हैं। यदि चांदी की फ्रैंक लंगड़ाती है और साथ-साथ लड़खड़ाती है बैंक नोट भी उसी प्रकार करता है और फ्रैंक नोट की अपेक्षा बेहतर ढंग से लड़खड़ाता है, क्योंकि इन दोनों में उसका आंतरिक मूल्य इसकी अपेक्षा अधिक होता है। तथापि, यदि यह तर्क दिया जाता है कि बैंक नोट सोने में विनिमेय होता है जबकि पांच फ्रैंक का सिक्का नहीं होता। इसका उत्तर यह है कि तुलना बैंक ऑफ इंग्लैंड के न्यासीय नोटों के साथ की जानी चाहिए। वे नोट वास्तव में अविनिमेय होते हैं। क्योंकि किसी निश्चित समय पर बैंक ऑफ इंग्लैंड सोने के साथ अपने निर्गम विभाग में नोटों के न्यासीय भाग को रखता है तो उसके अंतर्गत नहीं आता और इसलिए उसे उतना ही अविनिमेय माना जा सकता है जितना पांच फ्रैंक का अप्रतिबंधित निर्गम होता है। परन्तु यदि इस बात पर जोर दिया जाए कि न्यासीय नोटों को उस प्रकार से अविनिमेय नहीं माना जा सकता जिस प्रकार पांच फ्रैंक के सिक्के होते हैं। यह बात बता देनी चाहिए कि इन दोनों में समानता का निर्धारण विनिमेयता अथवा अविनिमेयता के विचार से नहीं किया जाता है। अविनिमेयता का लक्षण जिससे बैंक ऑफ इंग्लैंड के न्यासीय नोट संपन्न किए जाते हैं एक अनावश्यक लक्षण हैं जो पांच फ्रैंक के सिक्कों की तुलना में उनकी स्थिति में वृद्धि नहीं करता। उन दोनों में समानता इस तथ्य के कारण है कि उन दोनों का निर्गम एक निश्चित सीमा के अंतर्गत होता है। इस दृष्टि से, फ्रांसीसी लड़खड़ाता मानक तथा इंगलिश स्वर्णमान और कुछ नहीं बल्कि "उस सीमा तक मुद्रा सिद्धांत" के विभिन्न उदाहरण हैं, जहां तक कि एक न्यासीय मुद्रा पर निर्गम की निर्धारित सीमा, उस सिद्धांत का एक मूल है।

फ्रांस की मुद्रा प्रणाली का संगठन ही केवल इंगलिश मुद्रा प्रणाली के समान है, बल्कि दोनों की अभिकल्प बनावट व ढांचा भी एक समान है। जो विवाद बैंक चार्टर एक्ट, 1844 के संबंध में उत्पन्न हुआ था, उसमें लार्ड ओवरस्टोन के अभिप्राय, बैंकिंग विचार धारा के उसके विरोधियों ने ठीक–ठीक व बिल्कुल स्पष्ट रूप में पूर्णतया समझा नहीं था। लॉर्ड ओवरस्टोन की नोटों के प्रचलन के अवमूल्यन को रोकने के तरीके प्रदान करने में कोई रूचि नहीं थी, जैसा कि उसके विरोधी उसके संबंध में ऐसा सोचते थे। उसका सर्वोपरि ध्यान सोने को प्रचलन से लुप्त होने से रोकने का था। ऐसे तर्क की एक श्रृंखला से आरंभ करके, जिनकी प्रामाणिकता व दृढता के सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता, वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि नोटों के निर्गम में वृद्धि से सोने का प्रचलन बंद हो जाएगा। सोने को प्रचलन में रखने का केवल एकमात्र उपाय नोटों के निर्गम पर प्रतिबंध लगाना था और 1844 के बैंक चार्टर एक्ट का यही उद्देश्य था। चांदी के सिक्कों का निर्माण स्थगन करने में फ्रांस का भी हूबहू वही उद्देश्य था। जैसा कि पहले कहा जा चुका है। 1873 के बाद चांदी के मूल्य में गिरावट के कारण इस अवमूल्यित धातु के प्रतिस्थापन द्वारा सोना तेजी से प्रचलन से बाहर हो गया था। इसके कारण अनुपात बढ़ जाने की स्थिति को रोकने के लिए फ्रांस ने वही उपाय अपनाया जो लार्ड ओवरस्टोन

का उपाय था और चांदी के सिक्के बनाना स्थगित करने से उनका सोना प्रचलन से बाहर होने से बच गया। यदि चांदी के निर्गम पर कोई प्रतिबंध न लगाया जाता तो सोना निश्चय ही प्रचलन से बाहर हो जाता।

इसलिए ही यह तर्क देना गलत होगा कि भारत सरकार द्वारा जिस योजना का विचार किया गया और जिसे फाउलर समिति द्वारा अनुमोदित किया गया और जो फ्रांसीसी प्रणाली के समान थी, वह योजना उन्हीं सिद्धांतों पर आधारित थी जो इंगलिश मुद्रा प्रणाली को नियंत्रित करते थे। जेवोन्स के मतानुसार ये सिद्धांत स्वस्थ वित्तीय विधि निर्माण के स्मारक थे।

जिन लोगों की जन-आंदोलनों में रुचि है, उन्हें... केवल धार्मिक दृष्टिकोण अपनाना छोड़ देना चाहिए। उन्हें भारत के लोगों के प्रति सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण भी अपनाना होगा।

— भीमराव अम्बेडकर

अध्याय—5

स्वर्ण मानक से स्वर्ण विनिमय मानक तक

एक बार ऐसा लगा था कि अवमूल्यित रुपये की समस्या का संतोषजनक ढंग से समाधान हो गया है। शताब्दी के चतुर्थांश जैसी दीर्घ अवधि में चिन्ताओं और कठिनाइयों की क्षतिपूर्ति पूर्णरूपेण उस समाधान से संभव नहीं हुई जिसका कि विगत अध्याय में वर्णन किया जा चुका है। लेकिन अस्वाभाविक घटनाओं के कारण, मूल रूप से जो कार्यशैली निर्धारित की गई थी वह क्रियान्वित होने से पूर्व ही समाप्त हो गई। इसके स्थान पर भारतीय मुद्रा के प्रचलन का सिलसिला प्रारंभ हुआ जोकि इसका बिल्कुल उलटा था। फाउलर समिति की सिफारिशों के लगभग तेरह वर्ष के उपरांत विधायी स्वीकृति प्रदान की गई। भारतीय वित्त और मुद्रा के विषय में चेम्बरलेन आयोग ने कहा :

> "इस तथ्य के रहते कि सन् 1898 की समिति की सिफारिशों को सरकार ने मान लिया था और उन पर कार्यवाही प्रारंभ की, फिर भी पूरी तरह से आज भी भारतीय मुद्रा पद्धति में असमानता विद्यमान है जैसी कि समिति ने सिफारिश की थी, जबकि विनिमय को नियंत्रित करने वाली कार्य संरचना में पर्याप्त समान गुण मौजूद हैं, उन सिफारिशों के साथ जो समिति को श्रीमान ए.एम. लिंडसे ने प्रस्तुत किए थे।"[1]

यहां पर यह याद रखना होगा[2] कि मि. लिंडसे की योजना में भारतीय मुद्रा को पूरी तरह रुपया-मुद्रा होना था। सरकार को हर मामले में स्वर्ण के बदले रुपये लौटाने थे और केवल विदेशी प्रेषण के मामले में रुपयों के बदले स्वर्ण देना था। इस योजना को दो कार्यालयों के माध्यम से कार्यरूप में परिणित करना था — एक कार्यालय लंदन में होना था और दूसरा भारत में। रुपयों की जरूरत पड़ने पर लंदन के कार्यालय को ड्राफ्टों की बिक्री करनी थी और भारत स्थित कार्यालय को स्वर्ण की आवश्यकता पड़ने पर ड्राफ्टों की बिक्री करनी थी। यह आश्चर्य

1. रपट, पी.पी. कमांड 9068, (1913), पृ. 13
2. देखें अध्याय IV

की बात है कि भारत में आज यही प्रणाली चल रही है। यहां पर यह ध्यान देने योग्य है कि मि. लिंडसे के प्रस्ताव जो 1898 में रद्द कर दिए गए थे उन्हीं प्रस्तावों के अनुरूप भारत सरकार ने दो सुरक्षित भंडार बनाए हैं—एक स्वर्ण का और दूसरा रुपयों का—जो नकद अधिशेष, कागजी मुद्रा और स्वर्ण प्रतिमान सुरक्षित भंडार से बनाए गए हैं। मुद्रा प्रणाली की प्रकृति को देखते हुए ये दोनों मिश्रित हैं। नकदी अति दोष जो राजस्व की प्राप्तियों से मिलते हैं, शुद्ध रुपयों में और स्वर्ण मुद्रा में एकत्र होते हैं। और दोनों ही वैध मुद्रा हैं। उन दोनों के बदले नोट जारी किए जाते हैं। इसलिए कागजी मुद्रा की निधि या भंडार में स्वर्ण मुद्रा और रूपये दोनों ही रहते हैं। अगस्त 1915 तक स्वर्ण प्रतिमान आरक्षित निधि का भी कुछ भाग स्वर्ण में और कुछ रुपयों में रखा जाता था।[1] छंटाई या सार्टिंग की एक प्रणाली द्वारा जिसे तकनीकी भाषा में "अंतरण या ट्रांसफर" कहा जाता है, सरकार को रुपयों और स्वर्ण मुद्रा पर अधिकार मिल जाता है जिससे वह अपने दायित्वों को पूरा कर सकती है। इन विधियों के स्थान भी वही हैं जैसे मि. लिंडसे ने सुझाए थे। नकद अधिशेष अर्थात सरकार का तिजोरी धन अनिवार्यतः भारत में भारत सरकार के पास और लंदन में भारत सचिव (सेक्रेटरी ऑफ स्टेट) के पास जो हिस्सा होता है वह पूरा का पूरा सोने में होता है और भारत सरकार के पास चांदी में। नकद अधिशेषों की तरह स्वर्ण प्रतिमान आरक्षित निधि अनुविहित आरक्षित निधि नहीं है। फलतः इसके स्थान का फैसला करना कार्यपालिका के हाथ में रहता है। इस दशा में व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि निधि का स्वर्ण भाग लंदन में भारत सचिव के पास और रुपयां का भाग, जब तक उसे भारत सरकार रखे भारत में रहेगा। जिस आरक्षित निधि को आसानी से मुद्रा के हेर फेर से नहीं बदला जा सकता, वह है कागजी मुद्रा की आरक्षित निधि और इसका कारण यह है कि इसका स्थान और निपटान या स्थान कानून द्वारा निर्धारित है। इसे दृष्टि में रखते हुए, ऐसी कानूनी शक्ति लेली गई है कि सुरक्षित भंडार के स्वर्ण भाग का स्थान बदला जा सके और इसके लिए 1898 के अस्थायी अधिनियम II के उपबंध को स्थायी बना दिया गया है और इसके अंतर्गत यह अधिकृत किया गया है कि लंदन में भारत सचिव के पास विद्यमान स्वर्ण के बदले भारत में नोट जारी किए जा सकें। इस तरह मुद्रा की नई प्रणाली के अंतर्गत लंदन में भारत सचिव और भारत सरकार दो सुरक्षित भंडार रखते हैं—पहला सुरक्षित भंडार सोने का होता है जो मुख्यतः भारत सचिव

1 तब से रुपया शाखा को चैम्बरलेन कमीशन की सिफारिशों के आधार पर बन्द कर दिया गया है।

2 इसके अतिरिक्त भी, यदि सरकार के पास रुपयों की कमी हो जाए, तो उसे इस बात की कानूनी शक्ति प्राप्त है कि कागजी मुद्रा आरक्षित निधि के रूप में उसके पास जो स्वर्ण है उसे रुपयों में तब्दील करके रुपयों का स्टाक पूरा कर ले।

के पास रहता है और दूसरा रुपये का जो पूरे का पूरा भारत सरकार के पास भारत में रहता है किंतु वर्तमान प्रणाली और मि. लिंडसे की प्रणाली इन कोषों के रखरखाव और स्थान के बारे में ही नहीं है। दोनों कोषों के परिचालन के बारे में भी यह समानता है। जैसा कि मि. लिंडसे ने सुझाया था, जब भारत मे रुपयों की आवश्यकता होती है तब भारत सचिव "कौंसिल बिल" बेच देता है जिनके बदले भारत के सरकारी खजानों से रुपये लिए जा सकते हैं। इस तरह भारत में रुपया–मुद्रा की व्यवस्था हो जाती है। जब भारत सरकार को स्वर्ण की आवश्यकता पड़ती है, वह "रिवर्स कौंसिल" लंदन की होम ट्रेजरी को बेच देती है और इस तरह विदेशी भुगतान के लिए स्वर्ण की व्यवस्था हो जाती है। "कौंसिल बिलों" और "रिवर्स कौंसिल" की इन दोनों कोषों के बिलों का नतीजा यह निकलता है जैसा कि फाउलर कमेटी ने चाहा था कि भारतीय मुद्रा को स्वर्ण प्रतिमान वाली स्वर्ण मुद्रा बना दिया जाए, उसे बदल कर मि. लिंडसे की इच्छा के अनुसार बिना स्वर्ण मुद्रा के स्वर्ण प्रतिमान वाली मुद्रा बना दिया गया है।

जैसा कि भारत सरकार ने मूल रूप में कल्पना की थी, उसकी जगह जो प्रणाली विकसित हो गई है, वह स्वर्ण विनिमय प्रतिमान है। इस शीर्षक का जो कुछ भी तात्पर्य निकले परंतु यह वह प्रणाली नहीं है जिसकी 1898 में भारत सरकार ने कल्पना की थी। यह फेर–बदल कैसे हुआ, इसकी चर्चा हम अन्यत्र करेंगे। यहां पर यह कह देना काफी है या यों कहिए कि अनिवार्य है, क्योंकि कई लेखक इस मुद्दे पर आकर गलती कर गए हैं कि **भारत सरकार ने स्वर्ण विनिमय प्रतिमान स्थापित करने के लिए शुरूआत नहीं की थी।** वास्तव में परिकल्पना तो यह थी कि एक वास्तविक और शुद्ध स्वर्ण प्रतिमान कायम किया जाएगा यद्यपि इसे तैयार करने वाले भी पर्याप्त रूप से नहीं समझे थे पर असल में यह 1844 के इंगलिश बैंक चार्टर एक्ट के सिद्धांतों के अनुरूप बन गया था।

अब इस नई प्रणाली के बारे में हम क्या कहें? चैम्बरलेन कमीशन ने इसके बारे में रिपोर्ट देते हुए कहा था कि इसे आदर्श स्वर्ण मुद्रा वाले स्वर्ण मानक से तो हटा दिया गया है और साथ ही इसमें यह भी टिप्पणी की गई[1]–

> "पर इस प्रत्यन्तर का उल्लेख करने का यह मतलब नहीं कि हम की गई कार्रवाई की या वास्तविक प्रचलित प्रणाली की निन्दा करते हैं..."

अब ऐसा क्यों नहीं किया गया? क्या यह वही प्रणाली नहीं है जिसका प्रस्ताव भारत सरकार ने 1878 में किया था और 1879 में समिति ने जिसकी निन्दा

1. रिपोर्ट, पैरा 46

की थी। यह सच है कि समिति ने 1879 में इस योजना के विरूद्ध जो तर्क दिए थे उनमें बहुत वजन नहीं था।[1] तथापि यह योजना निश्चय ही मजबूत नहीं थी। स्वर्ण मानक जारी करने के पक्ष में मुख्य मुद्दा यह था कि रूपयों की मात्रा की सीमा रखी जाए। इसी दृष्टि से हमें इस योजना पर विचार करना चाहिए। परन्तु 1878 की योजना में ऐसा कुछ नहीं जिस पर इस उद्देश्य की पूर्ति की दिशा से विचार किया गया हो। रुपयों की मात्रा पर कोई सीमा लगाने की जगह योजना में तो जानबूझ कर टकसालों को यह छूट दी गई थी कि वे चांदी के सिक्के बना लें। इस योजना की एक रोचक बात यह थी कि इसमें मालिकाना प्रणाली की व्यवस्था इस तरह की गई थी कि रुपयों की मूल्यवान धातु का मूल्य इसे दिए गए स्वर्ण मूल्य के बराबर हो। परन्तु, रुपयों के सिक्के ढ़ालने की एक सीमा रखने की दृष्टि से यह बेकार की बात थी। केवल मालिकाना हक लगा देने से। यह जरूरी नहीं कि सभी परिस्थितियों में इससे रुपये के सिक्के बनाने की एक सीमा तय हो जाएगी। सब कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि स्वर्ण के रूप में चांदी के टकसाली और बाजार मूल्य के अंतर से मालिकाना हक कितना अधिक मिलता है। यदि मालिकाना हक इस अंतर से कम है तो इससे रूपये के सिक्के ढालने को तब तक के लिए प्रोत्साहन मिलेगा जब तक कि उन पर बट्टा न मिलने लगे। इस दृष्टि से उस योजना में 1816 के इंगलिश गोल्ड स्टैंडर्ड एक्ट को और भी खराब ढंग से लागू किया गया है। भारत सरकार की 1878 की योजना की तरह, यह एक्ट भी दिखाता तो यह था कि वह स्वर्ण प्रतिमान लागू करना चाहता हैं पर उसने बन्द की गई टकसाल को पुनः खोलने को प्राधिकृत कर दिया था कि मालिकाना प्रभार लाभ कर वह चांदी के सिक्के खुले रूप में ढालने शुरू कर दे। यह बात आमतौर पर नहीं समझी जाती कि इस एक्ट की खुले रूप से चांदी के सिक्के ढालने की धाराएं कितनी मूर्खतापूर्ण थीं[2] जिसे एक धातु के रूढ़िवादी पक्ष पर आदर्श मानते हैं? परंतु इंग्लैंड का यह सौभाग्य था कि मिंट मास्टर (टकसाल के मुख्य अधिकारी) को विवश करने वाली वह घोषणा कभी जारी ही नहीं की गई कि जो भी चांदी टकसाल में लाई जाए उसके सिक्के बना दिए जाएं। अन्यथा स्वर्ण प्रतिमान का चलना ही बहुत काफी संकट में पड़ जाता।[3] 1816 के अधिनियम में कम से कम एक सावधानी बरती गई थी और वह यह थी कि वैध मुद्रा के रूप में चांदी की एक सीमा निर्धारित कर

1 देखें उल्लिखित अध्याय IV

2 तथापि आर.जी.हॉट्रे कृत "करेंसी एंड ब्रेडिट" भी देखें। 1919 पृष्ठ 302–3

3 1819 में नियुक्त नकद अदायगी की लार्डस कमेटी के समक्ष कुछ गवाहों ने 1816 के चांदी संबंधी अधिनियम की धारा के बारे में कुछ सन्देह प्रकट किए थे कि क्या नकद अदायगी की व्यवस्था इंगलैंड में स्वर्ण प्रतिमान स्थापित करने का एक उपयुक्त साधन है। देखें विशेष रूप से कमेटी के समक्ष दी गई मि. फ्लेचर तथा मि. मुशेट की गवाही।

दी गई थी। भारत सरकार की योजना में न केवल चांदी के सिक्के खुले तौर पर बनाने की अनुमति दी गई बल्कि उसे पूर्ण वैध मुद्रा का दर्जा भी दिया गया। इस तरह जहां तक इस योजना में रुपयों की मांग पर नियंत्रण की व्यवस्था नहीं है, यह उस स्वर्ण प्रतिमान को नष्ट करने वाला भी है जिसे दृष्टि में रखकर यह व्यवस्था की गई है।

1878 की योजना और वर्तमान प्रणाली में अंतर केवल इतना ही है कि पिछली योजना में टकसालें जनता के लिए भी खुली थीं जबकि वर्तमान प्रणाली में वे केवल सरकार के लिए खुली हैं। दूसरे शब्दों में एक मामले में चांदी के सिक्के जनता के लिए बनाए जाते थे जबकि दूसरे मामले में वे सिक्के सरकार के लिए बनाए जाते हैं। यहां यह बात नहीं है कि 1878 में सरकार ने यह सोचा ही नहीं था कि टकसालें जनता के लिए बन्द कर दी जाएं। बल्कि सरकार ने रुपये के सिक्के सरकार द्वारा बनवाने की सम्भावना पर विचार किया था पर उसे कुछ ठोस कारणों से रद्द कर दिया था। तत्कालीन सरकार ने इस योजना की रूपरेखा के बारे में भेजी गई विज्ञप्ति में कहा था:—

"48. प्रस्तावित परिवर्तन लाने के लिए जो पहली सावधानी बरती जानी चाहिए वह यह है कि मुद्रा के प्रसार की पूरी छूट होनी चाहिए, यदि यह देश की व्यापारिक आवश्यकताओं की मांग हो। हमारे विचार में यदि टकसालें जनता के लिए (चांदी के सिक्के ढालने के लिए) पूरी तरह बन्द कर दी जाएं, तो ऐसा नहीं हो सकता। यदि यह कदम उठाया गया तो चांदी की मांग पूरी करने की जिम्मेदारी सरकार पर आ पड़ेगी और आज बाजार में सोने और चांदी की मांग की जो स्थिति है उसे देखते हुए सरकार के लिए यह जिम्मेदारी उठाना संभव नहीं होगा।"

"49. स्वर्ण प्रतिमान के साथ चांदी की भारतीय मुद्रा के विस्तार के लिए जो सबसे सरल उपाय लगता है और इसलिए उसे सर्वोत्तम उपाय कहा जा सकता है, वह यह है कि जो भी व्यक्ति सरकार से स्वर्ण मुद्रा के बदले चांदी की मुद्रा मांगे वह नई प्रणाली में निश्चित दर निर्धारित कर दें। दो और टकसालों को स्वर्ण मुद्रा बनाने के लिए खोल दे और चांदी की मुद्रा बनाने के लिए बंद कर दे। परन्तु चूंकि भारत में चांदी की पूर्ति इतनी नहीं है कि सिक्के बनाने के लिए आवश्यक मात्रा में मिल सके, इसलिए सरकार यह जिम्मेदारी नहीं उठा सकती क्योंकि ऐसा करने के लिए सरकार को चांदी खरीदने और उसका भंडार रखने की जटिल प्रक्रिया में से गुजरना पड़ेगा और यह करना समीचीन नहीं होगा।"

इन कारणों से यद्यपि हम प्रत्यक्ष रूप में सम्बद्ध नहीं हैं, तथापि हाल में "इंडिया आफिस ने चांदी की खरीद में जो घोटाला किया है, उसे देखते हुए

1. देखें 1912 का पृष्ठ 400

तो ये देववाणी तुल्य प्रतीत होते हैं।[1] महत्वपूर्ण बात तो यह देखना है कि क्या मुद्रा जारी करने के तरीके से रूपये के सिक्कों की मात्रा पर प्रभावकारी ढंग से सीमा लगाने पर कोई अंतर पड़ता है। अब इस बारे में काफी भ्रम है कि व्यक्तियों द्वारा सिक्के बनवाने के लिए टकसालों को बन्द करने का क्या विशेष लाभ हुआ। आमतौर पर यह विश्वास किया जाता था कि जनता के लिए टकसालें बन्द कर देने से सरकार को रुपये जारी करने का एकाधिकार मिल जाएगा और यह एकाधिकार मिल जाने से रुपये का स्वर्ण मूल्य स्थिर बना रहेगा क्योंकि अधिक रुपये जारी करने पर रोक लगाई जा सकेगी। यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जनता के लिए टकसालें बंद कर देने से सरकार को एकाधिकार मिल गया है। परन्तु एकाधिकार मिल जाने से रुपये की मुद्रा अधिक मात्रा में जारी करने पर रोकथाम लग जाएगी, यह बात आसानी से समझ में नहीं आती। जनता को मुक्त रूप से रुपये बनवाने के लिए टकसालों को बंद कर देना ऐसा ही है जैसा बैंकों को नोट जारी करने की छूट न दी जाए और यह एकाधिकार किसी सैंट्रल बैंक को दे दिया जाये। परंतु यह तर्क कभी किसी ने नहीं दिया कि क्योंकि सैंट्रल बैंक का एकाधिकार होगा, इसलिए वह जरूरत से ज्यादा नोट जारी नहीं कर सकता। इसी तरह चूंकि भारत सरकार के पास एकाधिकार है, इसलिए यह तर्क बेवकूफी होगी कि वह जरूरत से ज्यादा मुद्रा जारी नहीं कर सकती। वास्तव में एक एकाधिकारवादी भी अधिक नहीं तो उतनी ज्यादा मात्रा में तो मुद्रा जारी कर ही सकता है जितनी जनता के सब लोग मिल कर करते। सिक्के ढालने में लाभ की दृष्टि से तो वर्तमान योजना 1878 की योजना से कहीं घटिया है। यह सच है कि दोनों ही मामलों में लाभ की मात्रा ढाले गए सिक्कों की मात्रा पर निर्भर करेगी। परंतु पहले मामले में लाभ के कारण सिक्के ढालने को कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता था– न तो सरकार को, क्योंकि उसके पास सिक्के बनाने की शक्ति नहीं थी और न ही लोगों को जो सिक्के ढालने की मात्रा निर्धारित करते थे क्योंकि व्यावहारिक रूप से मालिकाना नियंत्रण से टकसाल में सिक्के ढालने के लिए फालतू धातु लाना कोई लाभकारी नहीं रहता था। परंतु वर्तमान मामले में चूंकि सिक्के ढालने का पूरा काम सरकार के हाथों में होगा, इसलिए लाभ कमाने के लिए (मुद्रा को मजबूत बनाने के नाम पर) सरकार जरूरत से ज्यादा सिक्के ढलवा लेगी और विशेषकर इस दशा में यदि चांदी की कीमतें बहुत ही घट गईं और रुपये की टकसाली कीमत और बाजार की कीमत में बहुत अन्तर आ गया।[1]

1. इस दृष्टि से प्रो. केन्स का यह प्रस्ताव वर्तमान मुद्रा प्रणाली के लिए अपेक्षाकृत असुरक्षित लगता है कि चांदी की लागत चाहे कुछ भी न हो, रुपये. का स्वर्ण मूल्य निर्धारित कर दिया जाए। देखें 1919 के इंडियन करेंसी कमीशन के आगे प्रो. केन्स की गवाही, प्रश्न 2,680

यदि यह तर्क दिया जाए और हो सकता है कि दिया भी जाए कि एक एकाधिकारी के नाते सरकार की इच्छा यह होगी कि मुद्रा का मूल्य ह्रास न हो जाए और इसलिए हो सकता है कि वह जरूरत से अधिक रुपये जारी नहीं करे बजाय उस समय के जब सिक्के ढालने का काम जनता या लोगों के हाथ में हो। अतः इस बात का उत्तर यह है कि सरकार इस सीमा को प्रभावकारी तभी बना सकती है जब उसके पास सिक्के जारी करने से मना करने की शक्ति हो। जहां तक इच्छा का सवाल है केन्द्रीय बैंक अपनी मुद्राओं की सीमा बांध सकते हैं क्योंकि उनका किसी व्यक्ति को मुद्रा जारी करने अथवा न करने का कोई दायित्व नहीं होता है। परन्तु इस बारे में भारत सरकार की स्थिति तो दयनीय रूप से दुर्बल होती है। जब भी कोई मांग करे, उसे मुद्रा जारी करनी ही पड़ेगी। यह सच है कि हर बार मुद्रा जारी करने का यह अर्थ नहीं होता कि प्रचलन की मुद्रा में वृद्धि हो जाएगी, क्योंकि नई जारी की गई मुद्रा का एक अर्थ तो वह होगा जो सरकार के पास वापस लौट आई होगी। बहरहाल यह नहीं कहा जा सकता कि अपने एकाधिकार के बूते पर सरकार मुद्रा की मात्रा की कारगर सीमा बांध सकती है। इसके विपरीत सरकार के पास मुद्रा जारी करने से बचने का कोई उपाय ही नहीं है, वास्तव में इस अधिकार ने सरकार को जकड़ लिया है और उनकी स्थिति मजबूत बनाने की जगह काफी कमजोर कर दी है।[1] इस बारे में चैम्बरलेन कमीशन का विचार था[2] –

"यद्यपि सरकार विनिमय बाजार की बहुत बड़ी व्यापारी है तथापि वह एकाधिकारवादी नहीं है (!) और यह सन्देहास्पद है कि क्या वह किसी ऐसी चीज (न्यूनतम निर्धारित दर) पर वर्ष भर टिकी रह पाएगी।"

कमीशन का यह विचार इस दृष्टिकोण से रोचक है कि इसमें यह (दोष) मान लिया गया है कि टकसाल बन्द करने का यह लाभ नहीं होगा कि रुपये की मुद्रा की मात्रा की सीमा निर्धारित कर दी जाए जिससे सरकार हमेशा रुपये की कीमत निर्धारित करती रहेगी जिसे वह स्वयं ही बना सकती है।

इस तरह वर्तमान प्रतिमान 1878 के प्रस्तावित प्रतिमान से केवल नाम की दृष्टि से भिन्न है। यदि इसकी यह विशेषता बताई जाए कि विनिमय की दर मुद्रा की मात्रा का नियमन करने की सूचक होगी, तो यह बात पिछले प्रतिमान पर भी लागू होती थी। परंतु जैसी कि मि. हॉट्रे ने टिप्पणी[3] की है कि रुपये

1. रूपये की मुद्रा जारी करने के इस अनिश्चित दायित्व के खतरे को 1919 की स्मिथ करेंसी कमेटी ने भी स्वीकार किया था और सिफारिश की थी कि यह दायित्व बापस ले लिया जाए। तथापि इसके पीछे कमेटी का उद्देश्य और ही था।
2. रिपोर्ट पैरा 182
3. 'करेंसी एंड क्रेडिट' 1919, पृष्ठ 341

की कीमत बनाए रखने के लिए कुछ भी जोड़–तोड़ कीजिए–"रुपये का मूल्य प्रचलन में मुद्रा की मात्रा पर निर्भर करेगा।" दूसरे शब्दों में स्वर्ण प्रतिमान की सुरक्षा के लिए यह जरूरी है कि रुपया जारी करने के विरुद्ध एक उपबंध है। परंतु जैसा कि हमने देखा है कि न तो 1878 की योजना और न ही वर्तमान योजना इस खतरे से मुक्त है। फलतः हमारा निष्कर्ष यह है कि क्योंकि दोनों एक सी हैं इसलिए पहली के विरुद्ध जो तर्क दिए जाते हैं, वे दूसरी पर भी लागू होते हैं।

परंतु चैम्बरलेन कमीशन यह मानने के लिए तैयार नहीं होगा कि विनिमय प्रतिमान एक मृत प्रायः योजना को पुनः जीवन देने की कोशिश करने के समान है। दूसरी तरफ यह तो मानक में आस्था पैदा करने का प्रयास किया गया है। इसका कथन है कि[1]

"वर्तमान भारत में प्रभावी कुछ महान यूरोपीय देशों और अन्य देशों की मुद्रा प्रणालियों से बहुत अधिक मिलती जुलती है। यह देखने के लिए ये मिलती जुलती बातें कौन सी हैं या थीं, हमें मि. केन्स के रोचक शोध प्रबन्ध 'इंडियन करेंसी एंड फाइनेंस' के दूसरे अध्याय का अवलोकन करना होगा। इस शोध प्रबंध में मि. केन्स ने यह बताने की चेष्टा की है कि भारतीय मुद्रा प्रणाली के परिचालन में और यूरोप के कुछ महत्वपूर्ण देशों के केन्द्रीय बैंकों के परिचालन में मूलभूत साम्यता है। उन्होंने पाया है कि इन बैंकों में यह परिपाटी थी कि विदेशों को प्रेषण करने के उद्देश्य से ये बैंक फारेन बिल्स ऑफ एक्सचेंज को अपने पास रख लेते थे। इन फारेन बिल्स को बेचने और भारत सरकार द्वारा रिवर्स कौंसिल्स को बेचने में उन्होंने एक निकट साम्यता देखी क्योंकि दोनों में ही –"

> "स्थानीय मुद्रा का उपयोग किया जाता है जो मुख्यतः स्वर्ण की नहीं होती, स्थानीय मुद्रा के बदले स्वर्ण देने की अनिच्छा रहती है किन्तु एक निश्चित अधिकतम दर पर स्थानीय मुद्रा में अदायगी के लिए बहुत अधिक इच्छा रहती है।"[2] परंतु जैसा कि प्रो. केमेरर ने बताया है[3] भारत सरकार द्वारा रिवर्स कौंसिल्स बेचने और विदेशी बैंकों द्वारा फारेन बिल्स को अपने पास रोक रखने में कोई साम्यता देख पाना कठिन है। कोई साम्यता होने की जगह वास्तव में दोनों प्रणालियां एक दूसरी की उल्टी हैं। रिवर्स कौंसिल्स बेचते समय–"

---

1. रिपोर्ट, पैरा 46
2. केन्स : इंडियन करेंसी एंड फाइनेंस, पृष्ठ 29
3. "क्वार्टर्ली जर्नल ऑफ ईकनॉमिक्स', फरवरी 1914 के अंक में केन्स की पुस्तक की समीक्षा

"सरकार ड्राफ्ट अपने फारेन गोल्ड क्रेडिट (अर्थात स्वर्ण के आरक्षित भंडार) की साख पर बेचती है जबकि देश में मुद्रा अपेक्षाकृत फालतू पड़ी होती है। इसका इस बात से पता चलता है कि विनिमय स्वर्ण निर्यात बिन्दु तक पहुंच जाता है। इस तरह प्रचलन से मुद्रा निकाल कर तथा ड्राफ्टों की अदायगी के फलस्वरूप मिलीं स्थानीय मुद्राओं को बन्द कर के रख देने से व्यर्थ पड़ी मुद्रा पर भार कम हो जाता है। फारेन बिल्स को रोक कर रखने की प्रणाली में मुद्रा बाजार को संरक्षण देने के लिए कैन्द्रीय बैंक अपने फारेन बिल्स बेच देता है, विशेष कर उस समय जब अपने देश में मुद्रा का अपेक्षाकृत अभाव होता है। इस तरह आयात के लिए अथवा उसका निर्यात रोकने के लिए स्वर्ण मिल जाता है। पहले मामले में ड्राफ्टों की बिक्री स्वर्ण के निर्यात की जगह की जाती है और स्थानीय मुद्रा का प्रचलन से निकलना, यथार्थ में निर्यात के समान है। दूसरे मामले में विदेशों में ड्राफ्ट की बिक्री आयात के लिए स्वर्ण प्राप्त करने या उसका निर्यात रोकने के लिए होती है।"

इस तरह हम मि. केन्स के इस विश्वास से सहमत नहीं हो सकते कि भारतीय मुद्रा प्रणाली और यूरोपियन मुद्रा प्रणालियों में कोई समानता है। परन्तु यदि हम भारतीय मुद्रा प्रणाली के समान्तर कोई मुद्रा प्रणाली देखना चाहते हैं तो वह थी इंग्लैंड में बैंक सस्पेंशन के समय (1797-1821) में प्रचलित मुद्रा प्रणाली। यदि हम एक क्षण के लिए भारत सरकार के प्रेषण कार्यों और भारत सचिव को एक तरफ कर दें जिनसे भारतीय मुद्रा की स्थिति धुंधली हो जाती है, तो दोनों प्रणालियों में मूलभूत समानता असंदिग्धता नजर आती है। यदि हम इस परदे को हटा दें और निकट से जांच करें तो भारतीय मुद्रा प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएं नजर आती हैं :–

(1) स्वर्ण का पौंड पूर्ण वैध सिक्का है;

(2) चांदी का रुपया भी पूर्ण वैध सिक्का है,

(3) सरकार पौंड के बदले रुपये देने का वायदा करती है परंतु रुपयों के बदले पौंड देने का नहीं; अर्थात रुपया अपरिवर्तनीय मुद्रा है और असीमित मात्रा में जारी किया जा सकता है।

बैंक सस्पेंशन की अवधि में इंग्लिश मुद्रा प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएं थीं :–

(1) स्वर्ण का पौंड पूर्ण वैध मुद्रा थी।

(2) कानून के मुताबिक भले ही न हो, व्यवहार में बैंक आफ इंग्लैंड के कागजी नोट मुद्रा की तरह स्वीकार किए जाते थे।[1]

---

1 देखें एंड्रीएडस कृत 'हिस्ट्री ऑफ दि बैंक आफ दि इंगलैंड', पृष्ठ 198

(3) बैंक ऑफ इंग्लैंड स्वर्ण या मर्केंटाइल बिलों के बदले नोट देने को तैयार रहता था पर नोटो के बदले स्वर्ण नहीं देता था, अर्थात नोट अपरिवर्तनीय मुद्रा थे जो असीमित मात्रा में जारी किए जाते थे। केवल एक ही मामले में यह असमानता अपूर्ण लगती थी। भारत सरकार यह वचन देती थी। यहां यह बात नोट करने की है कानूनी दायित्व के रूप में नहीं बल्कि कार्यपालिका की इच्छा के अनुसार यदि विनिमय दर निर्धारित अंकित दर से कम हो जाए तो वह विदेशी प्रेषण के लिए निश्चित दर पर रुपयों के बदले स्वर्ण दे देगी। परंतु सस्पेंशन अवधि में बैंक ऑफ इंग्लैंड ने ऐसा नहीं किया था। अब सारे प्रश्न का दारोमदार इस बात पर निर्भर करता है कि क्या यह परिवर्तनीयता इतनी अधिक है कि भारतीय मुद्रा को संस्पेशन अवधि की इंगलिश मुद्रा से भिन्न समझा जाए और दोनों प्रणालियों के बीच की समानता को स्वीकार न किया जाए। इस बारे में कोई निश्चित फैसला करने से पहले हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि इस परिवर्तनीयता का विशेष महत्व क्या है? अपरिवर्तनीय मुद्रा के प्रति हमारा दुराग्रह इतना प्रबल होता है कि लोग किसी भी ऐसी प्रणाली से संतुष्ट हो जाते हैं जिसमें चाहे बहुत कम मात्रा में हो, पर परिवर्तनीयता हो अवश्य। परंतु यह दृष्टिकोण एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न को अत्यंत गौण बना देता है। हमें अपने दिमाग में इस बारे में बिल्कुल साफ होना चाहिए कि परिवर्तनीय मुद्रा और अपरिवर्तनीय मुद्रा में अंतर क्या होता है। आमतौर पर जो अंतर बताया जाता है, वह यह है कि एक तो स्वतः चालित होती है और दूसरी की व्यवस्था करनी पड़ती है। परंतु यह एक बड़ी भारी गलती है और इसे स्वीकार नहीं करना चाहिये। परंतु व्यवस्था की जाने वाली मुद्रा से हम समझते हैं कि उसे जारी करना, जारी करने वाले के विवेक पर निर्भर करता है, इसलिए परिवर्तनीय मुद्रा की भी उतनी ही व्यवस्था करनी पड़ती जितनी एक अपरिवर्तनीय मुद्रा की। दोनों में भेद इस बात में होता है कि परिवर्तनीय मुद्रा की व्यवस्था में मुद्रा जारी करने के विवेक का विनियमन होता है जबकि अपरिवर्तनीय मुद्रा जारी करने के पीछे विनियमन नहीं होता। पर विनियमित होने के बावजूद मुद्रा जारी करना विवेक पर निर्भर करता है और उस हद तक परिवर्तनीय मुद्रा भी उतनी सुरक्षित नहीं होती कि उसे अपरिवर्तनीय मुद्रा से बिल्कुल ही अलग मान लिया जाए, इसमें वृद्धि करना क्योंकि विवेक पर निर्भर करता है इसलिए उसका प्रभाव यह पड़ता है कि स्वर्ण और चांदी की मुद्रा प्रचलन से निकल जाते हैं और इस तरह एक परिवर्तनीय मुद्रा भी अपरिवर्तनीय बन जाती है। इस तरह अंततोगत्वा परिवर्तनीय और अपरिवर्तनीय मुद्रा में अंतर इतना रहता है कि मुद्रा जारी करने के

अधिकार का प्रयोग एक से अधिक सावधानीपूर्वक और बुद्धिमानीपूर्वक किया जाता है जबकि दूसरे में कम बुद्धिमानीपूर्वक। दूसरे शब्दों में परिवर्तनीयता मुद्रा जारी करने के अधिकार पर रोक का काम करती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि गलत व्यवस्था करने से परिवर्तनीय मुद्रा भी अपरिवर्तनीय बन जाती है, हम यह समझ सकते हैं कि परिवर्तनीयता का यह दायित्व निभाना कितना कठिन होता है कि मुद्रा का प्रबंध इतनी बुद्धिमानी से किया जाए कि बिना समझ के किए गए प्रबंध से जरूरत से ज्यादा मुद्रा जारी न हो जाए। इसलिए यदि यह सच है कि परिवर्तनीय मुद्रा वाले देशों में मुद्रा की व्यवस्था इतनी बुद्धिमानीपूर्वक चलाई जाती है, कि जब एक देश से स्वर्ण व चांदी की मुद्रा चली जाती है, तो उसकी जगह लेने के लिए कागजी नोट जारी नहीं किए जाते बल्कि आमतौर पर उनकी मात्रा स्वर्ण मुद्रा की अपेक्षा अधिक मात्रा में घटा दी जाती है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि परिवर्तनीयता का दायित्व "प्रभावकारी, निर्बाध तथा तालालिक" परिवर्तनीयता से होता है।[1]

अब हम प्रो. सुमनेर के इन शब्दों का तात्पर्य अच्छी तरह समझ सकते हैं[2] :-

"मुद्रा की परिवर्तनीयता मनुष्य के अंतर्विवेक की तरह होती है : इसकी कई श्रेणियां होती हैं और यह उसी अनुपात में मूल्यवान होती है जितनी यह अनमनीय और शुद्ध होती है।"

इस परिस्थिति में यह मान लेना मूर्खता होगी कि अपरिवर्तनीय मुद्रा का हम पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ेगा जब तक कि हमें यह पता न हो कि परिवर्तनीय मुद्रा किस श्रेणी की उपलब्ध है। अब भारत में रुपये की परिवर्तनीयता की क्या प्रकृति है? यह परिवर्तनीयता आस्थगित, गैर विधिक, गैर स्थानीयकृत और इस तरह गैर शक्तिशाली किस्म की परिवर्तनीयता है। वास्तव में यह परिवर्तनीयता है ही नहीं, यह तो वास्तव में अधिस्थगन की तरह है जो परिवर्तनीयता को नकारने के समान है। व्यवहार में विदेशी प्रेषण की परिवर्तनीयता का क्या अर्थ होता है। इसका सीधा-सादा अर्थ यह होता है कि जब तक विनिमय दर नहीं गिरे, तब तक रुपये के मामले में अधिस्थगन औसत परिवर्तनशीलता बनी रहती है। यह अधिस्थगन केवल तब तक नहीं रहता जब तक विनिमय दर गिरे नहीं, बल्कि इस बात की भी कोई गारंटी नहीं होती कि विनिमय दर गिरने के बाद भी यह

1 प्रो. निकल्सन ने 'वार फाइनेंस', द्वितीय संस्करण, 1918 पृष्ठ 36 पर कहा कि कोई एक पूर्ण अर्थ नहीं बता सकता।

2 ए हिस्टरी ऑफ अमेरिकन करेंसी, न्यूयार्क - 1874, पृष्ठ 116

अधिस्थगन हटा लिया जाएगा। हो सकता है कि यह न हटाया जाए, क्योंकि यह कानून पर नहीं, बल्कि अंतर्विवेक पर निर्भर करता है।[1] यदि कोई परिवर्तनीयता शब्द का ही शौकीन हो तो क्या परिवर्तनीयता की यह श्रेणी सस्पेंशन पीरियड के नोटों की अपरिवर्तनीयता से कुछ भिन्न है? जो लोग ऐसा कहना चाहते हैं, वे भले ही कहते रहें। जो व्यक्ति बारीकियों को नहीं समझता उसे इस परिवर्तनीयता और पूर्ण अपरिवर्तनीयता के बीच अंतर इतना कम लगेगा कि वह यह नहीं समझ सकेगा कि इन दोनों में बहुत अधिक अंतर है। जब हम भारत में और भारत के बाहर कीमतों की समस्या का विश्लेषण करते हैं तो हम देखते हैं कि इन दोनों में कोई भेद नहीं और व्यवहारिक तौर पर दोनों में बहुत समानता है।

तथापि यह कहा जा सकता है कि एक अपरिवर्तनीय मुद्रा की व्यवस्था इतनी अच्छी तरह चलाई जाए कि इसमें स्वर्ण को कोई वरीयता नहीं मिलती जिसके फलस्वरूप इसमें और पूर्णतः परिवर्तनीय मुद्रा में से चुनाव करने के लिए कुछ नहीं बनता। परंतु क्या एक अपरिवर्तनीय मुद्रा की व्यवस्था इतने अच्छे ढंग से चलाई जा सकती है? यह तो उसके वास्तविक कामकाज पर निर्भर करेगा और फिर क्या केवल स्वर्ण मुद्रा पर वरीयता न मिलने से ही अपरिवर्तनीय मुद्रा को

---

1 वायसराय की कौंसिल के वित्त सदस्य ने अपने 1908-9 के वक्तव्य (पृष्ठ 23, इटेलिक्स वाले वाक्य मूल नहीं हैं) में कहा था—"यदि हम बिना किसी सीमा के (स्वर्ण की) मांग को पूरा कर देते, तो स्वर्ण की सारी सप्लाई कुछ सप्ताह में ही समाप्त हो जाती .... *इन कालमों से हमने अपने कानूनी अधिकारों का सहारा लेना उचित समझा..... हम रुपयों के बदले स्वर्ण को पौंड देने के लिए बाध्य नहीं हैं जो हम केवल अपनी सुविधानुसार ही देंगे।* इसलिए मुद्रा कार्यालयों को दिए गए अनुदेश कि किसी व्यक्ति को एक दिन में जारी की गई स्वर्ण की मात्रा 10,000 पौंड से अधिक न हो।" इन शब्दों का उपयोग सरकार का यह दृष्टिकोण बनाने के लिए किया गया था कि 1907 के संकट के समय रुपये की परिवर्तनीयता के बारे में सरकार अपना दायित्व कितना समझती है? परिवर्तनीयता की मात्रा क्योंकि प्रशासनिक विवेक का विषय है, यह कहना कठिन है कि व्यवहार में इसे किस हद तक लागू किया जाता है। सरकारी साक्ष्य द्वारा जनता पर यह प्रभाव डालने की चेष्टा की गई है कि व्यावहारिक तौर पर रुपया परिवर्तनीय है। यदि यही बात है तो इसे *कानूनी रूप से* परिवर्तनीय क्यों नहीं बना दिया जाता। यदि यह व्यवहार में पूर्णतया परिवर्तनीय है, तो इसे कानूनी रूप से परिवर्तनीय बनाने पर सरकार पर उससे ज्यादा दायित्व नहीं आ पड़े जितना सरकारी साक्ष्य के अनुसार सरकार ने पहले से उठा रखा है। यह कहा जाता है कि सरकार ऐसा इसलिए नहीं करती कि विनिमय का सट्टा करने वाले इससे गैर-वाजिब फायदा उठाने लगेंगे। परंतु वे ऐसा क्यों न करें। क्या वे अपने रुपयों के मालिक नहीं हैं? तथापि इस बात को पूरी तरह नहीं समझा जाता कि इस सुरक्षात्मक रवैये का तात्पर्य यह है कि मुद्रा "संतृप्ति की स्थिति" के बाद भी इतनी अधिक मात्रा में जारी कर दी जाती है कि उसका मूल्य बिल्कुल सीमांत पर पहुंचा रहता है जिस पर सट्टे के तत्व का फौरन प्रभाव पड़ता है।

परिवर्तनीय मुद्रा के समकक्ष समझा जा सकेगा? कीमतों के मामले में तो यह बात परिस्थितियों पर भी निर्भर करती है। इन सब प्रश्नों पर यथास्थान विचार किया जाएगा।[1] इस समय हम इस बात पर विचार कर रहे हैं कि अपरिवर्तनीय मुद्रा की अन्तर्निहित सम्भावनाएं क्या होती हैं। यहां इतना कह देना पर्याप्त है कि स्वर्ण विनिमय प्रतिमान का नाम दे देने से भारतीय मुद्रा प्रतिमान की वास्तविक प्रकृति छिपाई नहीं जा सकती। इसका सार तब इस बात में है कि यद्यपि स्वर्ण असीमित वैध मुद्रा है, परन्तु उसी के साथ-साथ एक अन्य प्रकार की न्यासीय मुद्रा चलाई जाती है जो करीब-करीब अपरिवर्तनीय होती है और उसमें असीमित वैध मुद्रा का गुण भी होता है।

यह देखने के लिए कोई बहुत गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं कि इस व्याख्या के अनुसार भारत की वर्तमान मुद्रा प्रणाली उससे बिल्कुल उल्टी है जिसकी रूपरेखा भारत सरकार ने 1898 में प्रस्तुत की थी और जिसे फाउलर कमेटी ने पास किया था। ये दोनों उसी कारण से एक दूसरे के विपरीत हैं जिस कारण इंग्लैंड में बैंक चार्टर एक्ट और बैंक सस्पेंशन एक्ट एक दूसरे के विपरीत थे। इन दोनों अधिनियमों के अंतर्गत इंग्लैंड में मिश्रित मुद्रा थी जो आंशिक रूप में स्वर्ण की थी और आंशिक रूप से कागज की। अन्तर यह था कि बैंक सस्पेंशन एक्ट के अंतर्गत स्वर्ण मुद्रा सीमित मात्रा में होती थी और कागजी मुद्रा असीमित मात्रा में; जबकि बैंक चार्टर एक्ट में स्थिति इसकी उल्टी थी जिसमें कागजी मुद्रा सीमित थी और स्वर्ण की मुद्रा असीमित। इसी तरह भारत सरकार की मूल योजना में रुपये की मुद्रा सीमित होती थी और स्वर्ण की असीमित। वर्तमान प्रचलित प्रणाली में स्वर्ण की मुद्रा सीमित हो गई है और रुपये की असीमित बन गई है।

भारत सरकार ने मूल रूप में जिस विचार की कल्पना की थी, क्या वर्तमान प्रणाली से उसमें कोई सुधार हुआ है? उस योजना के बारे में एकमात्र आपत्ति यह थी कि उसमें रुपयों को अपरिवर्तनीय बना दिया गया था।[2] परन्तु क्या परिवर्तनीयता इतनी महत्वपूर्ण शर्त है और यदि है तो किन परिस्थितियों में। यह विचार निरर्थक सा लगता है कि समय का मूल्य बनाए रखने के लिए परिवर्तनीयता

1. जिन कारणों से रुपये के रूप में स्वर्ण को प्रीमियम मिलता है, उसके लिए अध्याय VI देखें। बिना स्वर्ण के रूप में मुद्रा का मूल्यह्रास हुए, रुपये का मूल्यह्रास किन कारणों से हो सकता है, यह देखने के लिए अध्याय VI का अंतिम भाग और अध्याय VII का प्रारंभिक भाग देखें।
2. लिंडसे और प्रोबिन, दोनों ने इसी आधार पर भारत सरकार की योजना की आलोचना की थी और कहा था कि उनकी योजनाएं कम से कम इस दृष्टि से श्रेष्ठतर थी कि उनमें किसी न किसी रूप में परिवर्तनीयता का अर्थ था।

आवश्यक है। क्या केलों का मूल्य बनाए रखने के लिए केलों को सेबों में बदलना जरूरी होता है। केलों का मूल्य इस कारण से बना रहता है कि केलों की मांग होती है और उनकी पूर्ति सीमित होती है। यह मानने का कोई कारण नहीं कि मुद्रा इस नियम का अपवाद होती है। हमें तो केवल इसी बात की अधिक चिन्ता है कि मुद्रा का मूल्य केलों की अपेक्षा अधिक स्थिर बना रहे क्योंकि मुद्रा तो कीमतों का सामान्य माप होता है। मुद्रा का मूल्य बनाए रखने के लिए या किसी भी चीज का मूल्य बनाए रखने के लिए जरूरी होता है कि उसकी आपूर्ति प्रभावकारी ढंग से सीमा में रखी जाए। परिवर्तनीयता इसलिए उपयोगी नहीं होती क्योंकि इससे मुद्रा का मूल्य बना रहता है। यह तो मूर्खतापूर्ण बात है, बल्कि इससे मुद्रा की आपूर्ति पर अंकुश लगा रहता है, उसकी सीमा बंधी रहती है। परंतु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परिवर्तनीयता एकमात्र उपाय नहीं है। यदि किसी प्रणाली में मुद्रा जारी करने की उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी जाती है, तो उसका भी वही प्रभाव पड़ता है, अपितु कहीं ज्यादा प्रभाव पड़ता है। अब यदि टकसाल रुपये के सिक्के ढालने के लिए पूरी तरह बन्द कर दी जाएं तो मुद्रा जारी करने की उच्चतम सीमा निर्धारित हो जाएंगी और ऐसे अपरिवर्तनीय रुपये से परिवर्तनीयता के सभी उद्देश्य पूरे हो जाएंगे। अपितु उससे भी ज्यादा उद्देश्य पूरे हो जाएंगे। ऐसा अपरिवर्तनीय रुपया उस छद्म परिवर्तनीय रुपये से कहीं ज्यादा प्रभावशाली होगा जो भारत में चल रहा है।[1] उच्चतम सीमा निर्धारित होने पर रुपये का मूल्य गिरने का कोई खतरा नहीं रहेगा। यदि कोई खतरा था तो वह यह था कि रुपये का मूल्य काफी बढ़ जाता। परन्तु स्वर्ण को सामान्य वैध मुद्रा बना कर इस खतरे से बचा लिया गया है। उच्चतम सीमा निर्धारित करने का दूसरा प्रभाव यह होता कि इसकी व्यवस्था करने की जरूरत ही न रहती क्योंकि मुद्रा जारी करने की मात्रा का प्रश्न तो एक बार ही हल हो गया होता।

इसलिए इन मामलों में स्वर्ण विनिमय मानक अपरिवर्तनीय रुपये की मूल योजना का बिगड़ा हुआ रूप है जिसमें जारी की गई एक निश्चित मात्रा की प्रतिपूर्ति स्वर्ण से की जाती है और फिर मूल्य स्तर निर्धारित करने की दृष्टि से भी विनिमय मानक मूल योजना से अधिक अच्छा नहीं है। यह भले ही कहा जा सकता है कि मूल योजना को इस तरह विकृत करना कोई खेद की बात नहीं। चाहे स्वर्ण मूल्य का प्रतिमान हो या न्यासीय मुद्रा मूल्य का प्रतिमान हो, दोनों से ही कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि दोनों ही मूल्य का स्थिर प्रतिमान प्रदान नहीं कर सकते। स्वर्ण प्रतिमान भी कागजी प्रतिमान जितना अस्थिर सिद्ध हुआ

1. लिम्पिंग स्टैंडर्ड की एक्सचेंज स्टैंडर्ड से तुलना करते हुए लगता है कि प्रो. फिशर ने इन बातों की पूरी तरह अनदेखी कर दी है। देखें उनकी पुस्तक "परचेजिंग पावर...... 1911, पृष्ठ 131-32

है क्योंकि दोनों ही संकुचन और प्रसार के प्रति बहुत संवेदनशील हैं। निस्संदेह यह सब सच है। तथापि यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी भी मुद्रा प्रणाली में अनिश्चित संकुचन का कोई खतरा नहीं होता।[1] जिस बात पर ध्यान देने की जरूरत है, वह यह है अनिश्चित विस्तार की सीमा से बचा जाए। परंतु अनिश्चित विस्तार की सम्भावना मुद्रा की प्रकृति के अनुसार बदलती रहती है। जब मूल्य का प्रतिमान स्टैंडर्ड धातु की मुद्रा हो तो उसका बहुत अधिक विस्तार नहीं हो सकता क्योंकि उत्पादन की लागत के कारण पर्याप्त सीमाबन्दी हो जाती है। जब मूल्य का प्रतिमान परिवर्तनीय कागजी मुद्रा हो तो आरक्षित भंडार संबंधी उपबंधों के कारण इस विस्तार पर रोक लग जाती है। परंतु जब मूल्य का प्रतिमान ऐसी मुद्रा होती है जिसका मूल्य उसकी लागत से अधिक होता है और अपरिवर्तनीय होती है तो खतरा हो जाता है कि उसका अनिश्चित रूप से विस्तार हो सकता है जो मूल्यह्रास या मूल्य वृद्धि का दूसरा नाम है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि बैंक चार्टर एक्ट से बैंक रेस्ट्रिक्शन एक्ट में कोई सुधार नहीं हुआ। वास्तव में यह एक बड़ा सुधार था। इसने एक ऐसी मुद्रा प्रतिस्थापित की जिसका कम विस्तार होता था जबकि दूसरी मुद्रा का कहीं अधिक विस्तार हो सकता था। अब रुपया एक ही सिक्का है, अपरिवर्तनीय है और असीमित वैध मुद्रा है।[2] इस तरह यह एक ऐसी मुद्रा है जिसमें अनिश्चित विस्तार की संभावना अन्तर्निहित है अर्थात मूल्यह्रास की और मूल्य वृद्धि की। इस स्थिति से बचने के लिए पिछली मूल योजना निश्चय ही बेहतर थी जिसमें कहा गया था कि रुपये जारी करने की सीमा तय कर दी जाए ताकि भारतीय मुद्रा प्रणाली इंगलिश प्रणाली के अनुरूप हो जाए जो 1844 के बैंक चार्टर एक्ट के अंतर्गत संचालित की जाती है।

---

1. देखें हॉट्रे, आरजी, अध्याय 1
2. यह समझना कठिन है कि भारतीय मुद्रा विषय पर लिखने वाले कुछ लेखक इस तथ्य को स्वीकार क्यों नहीं कर लेते। देखें : *इंडियन इकॅनॉमिक्स एसोसिएशन* की वार्षिक बैठक में मि0 मदन के शोध प्रबंध पर चर्चा *(इंडियन जर्नल ऑफ इकॅनॉमिक्स,* खण्ड III, भाग 4, सीरियल नं. 12, पृष्ठ 560) यह सच है कि रुपये की हीनता अब उतनी स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं हो रही जितनी उस समय होती जब इसका वजन वही रखा जाता और इसे और उसे और अधिक ही (बेसर), बना दिया जाता, या इसकी शुद्धता उतनी ही रखी जाती और उसे हल्का बनाया जाता। परंतु जैसा कि हैरिस ने अपनी पुस्तक "ऐसे *अपौन मनी एंड कायंस* (भाग II, अध्याय I, पैरा 8) में बताया है— टकसाल में या स्वयं सिक्कों में कोई परिवर्तन किए बिना मुद्रा का मूल मापदंड बदल दिया जाए" "जैसे मान लीजिए नौ पैसे को या नौ पैसे में जितनी चांदी है, उसे शिलिंग कहा जाए और यह मूल्य का ह्रास करने का एक तरीका है जो रुपये से भिन्न नहीं है, और वास्तव में मूल्य का ह्रास करने के अन्य दो तरीके जैसे ही हैं। इस तरह देखने से इस निष्कर्ष से नहीं बचा जा सकता कि रुपया एक खोटा सिक्का है।

यदि उल्लिखित तर्कों में कोई दम है तो एक्सचेंज स्टैंडर्ड संबंधी चैम्बरलेन कमीशन की राय से सहमत होना आसान नहीं है। अपितु इससे तो यह प्रश्न पैदा हो जाता है कि क्या कमीशन ने जो कुछ कहा है उसमें कहीं न कहीं कोई ऐसी कमजोरी तो नहीं जिससे यह व्यवस्था ही भंग न हो जाए। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि इस मानक की बुनियादी बातों पर नए दृष्टिकोण से विचार किया जाए।

अध्याय–6

विनिमय मानक की स्थिरता

यह स्मरणीय बात है कि जब भारतीय टकसालों में मुक्त रूप से चांदी के सिक्के ढालना बंद किया गया तो उस समय देश में दो दल थे, एक जो इसके पक्ष में था और दूसरा जो बन्द किए जाने का विरोधी था। रुपयों में गिरावट आने के कारण सरकार बड़ी लज्जाजनक स्थिति में थी और इसलिए वह टकसालें बन्द करने को उत्सुक थी ताकि स्वर्ण की अदायगी के बोझ से राहत पाने के लिए वह रुपये की कीमत बढ़ा सके। दूसरी ओर उत्पादक हित यह जोर डाल रहे थे कि रुपये का मूल्य बढने से भारत के व्यापार और उद्योग पर कुठाराघात होगा। यह तर्क दिया जा रहा था कि 1873.93 के बीच भारतीय उद्योग ने दिन दूनी और रात चौगुनी जो प्रगति की थी उसका एक कारण यह था कि वरदान स्वरूप विनिमय दर गिरने से भारतीय निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन मिला था। यदि टकसाल बन्दी से रुपये की गिरावट रोकी गई तो अन्देशा है कि इससे अवश्य ही भारतीय व्यापार को दोनों तरफ से नुकसान पहुँचेगा। इससे भारत के मुकाबले चांदी का उपयोग करने वाले देशों को प्रोत्साहन मिलेगा और उससे भारत को वह प्रोत्साहन मिलना बन्द हो जाएगा जो उसे विनिमय में गिरावट के कारण स्वर्ण का उपयोग करने वाले देशों के मुकाबले मिलता था।

सिद्धान्ततः तो इन आशंकाओं को गलत सिद्ध किया जा चुका है। इसलिए यह देखना रूचिकर होगा कि बाद के इतिहास ने भी इसका समर्थन कर दिया कि यह सिद्धान्त ठीक था। रुपये की गिरावट रोकने के बावजूद भारत का व्यापार न तो स्वर्ण प्रतिमान वाले इंगलैंड जैसे देश से कम हुआ और न ही चांदी के प्रतिमान वाले देश चीन से। अगली तालिकाओं में दिए गए आंकड़े इसकी उल्टी बात का पर्याप्त प्रमाण देते हैं :–

तालिका XXV

ग्रेट ब्रिटेन से भारत का व्यापार (टकसाल बन्दी के पहले और बाद में)

वार्षिक औसत	ग्रेट ब्रिटेन को निर्यात			ग्रेट ब्रिटेन से आयात		
	तिजारती माल पौंड	सोना–चांदी और सिक्के पौंड	योग पौंड	तिजारती माल पौंड	सोना चांदी और सिक्के पौंड	योग पौंड
I 1889-93	31,569,891	1,180,646	32,750,537	31,837,482	7,694,149	39,531,631
II 1894-98	26,329,764	2,215,049	24,544,813	28,963,180	6,750,736	35,713,916
III 1899-1903	28,709,819	2,089,656	30,799,475	33,498,480	7,301,172	40,799,652
IV 1903-08	36,784,628	2,232,857	39,017,485	47,294,311	9,586,706	56,881,017
प्रतिशत वृद्धि:द्ध या कमी :द्ध पहली अवधि की तुलना में दूसरी अवधि में	-16.598	+87.613	-25.055	-9.028	-12.261	-9.657
दूसरी अवधि की तुलना में तीसरी अवधि में	+9.039	-5.661	+25.483	+15.659	+8.154	+14.240
तीसरी अवधि की तुलना में चौथी अवधि में	+28.126	+6.853	+26.682	+41.183	+31.304	+39.415
पहली अवधि की तुलना में चौथी अवधि में	+16.518	+89.122	+19.135	+48.549	+24.597	+43.887

तालिका XXVI

चीन से भारत का व्यापार

वार्षिक औसत	चीन को निर्यात			चीन से आयात		
	तिजारती माल	वहुमूल्य वस्तुएं	योग	तिजारती माल	वहुमूल्य वस्तुएं	योग
	पौंड	पौड	(पौंड)	(पौंड)	(पौंड)	(पौंड)
I 1889-93	9,454,014	20,223	9,474,238	1,666,840	1,992,914	3,659,754
II 1894-98	8,509,284	112,105	8,621,389	1,713,529	503,357	2,216,886
III 1899-1903	9,679,830	183,647	9,863,477	1,309,975	798,053	2,108,028
IV 1903-08	12,461,535	160,879	12,622,414	1,248,822	919,402	2,168,224
1	2	3	4	5	6	7
प्रतिशत वृद्धि(+) या कमी (-) पहली अवधि की तुलना में दूसरी अवधि मे	-9.993	+454.333	-9.002	+2.801	-74.743	-39.425
दूसरी अवधि की तुलना में तीसरी अवधि में	+13.756	+63.817	+14.407	-23.551	+58.546	-4.910
तीसरी अवधि की तुलना में चौथी अवधि में	+28.737	-12.398	+27.971	-4.668	+15.206	+2.856
पहली अवधि की तुलना में चौथी अवधि में	+31.812	+695.508	+33.229	-25.078	-53.866	-40.755

जैसी कि आशा थी टकसालों को बन्द कर देने से रुपये में आने वाली गिरावट रूक जाने से भारतीय वित्त व्यवस्था पर बोझ कम हो गया। यद्यपि कराधान में महत्वपूर्ण कमी की गई और सामाजिक उपयोगिता के कार्यों पर अधिक व्यय करने के बावजूद वार्षिक बजटों में कभी–कभी ही घाटा दिखाई दिया। (देखिए तालिका XXVII)[1]

अब कुछ लेखकों में यह प्रवृत्ति है कि इससे वे यह दिखाना चाहते हैं कि यह मुद्रा प्रणाली की मजबूती का निर्विवाद प्रमाण है। यह तर्क दिया जाता है कि देश के व्यापार को कोई धक्का नहीं लगा[1] और देश की वित्तीय स्थिति सुधर गई है[2] तब इसका तात्पर्य यह निकलता है कि जिस मुद्रा के इतने अच्छे परिणाम निकलते हैं, वह अच्छी ही होगी। इसके लिए मुद्रा के विद्यार्थियों को सावधान करना जरूरी नहीं है कि मुद्रा प्रणाली की मजबूती के बारे में इतनी आसानी से राय बना लेना भले ही ऊपर से ठीक लगे, परन्तु इसमें विश्वास पैदा करने वाले तर्क का अभाव है। व्यापार निस्संदेह अच्छी मुद्रा पर निर्भर करता है, परन्तु व्यापार में वृद्धि इस बात का निश्चित प्रमाण नहीं होती कि मुद्रा अच्छी है। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि हीन या आधारच्युत मुद्रा के जमाने में जब लोगों को इतनी अधिक असहनीय तकलीफें और परेशानी सहनी पड़ी तब भी इन देशों ने व्यापार में काफी प्रगति की थी। 17वीं शताब्दी में इंग्लैंड में आधारच्युत मुद्रा थी और मुद्रा भी बराबर बदलती रहती थी और उन्हीं दिनों वहां गृह युद्ध चल रहा था और अन्य गडबड़ियां भी फैली हुई थीं, उस समय की चर्चा करते हुए लार्ड लिवरपूल ने, जो उस जमाने के राजनैतिज्ञों में सबसे बुद्धिमान थे और खराब मुद्रा की बुराइयों को अच्छी तरह समझते थे, उन्होंने इसके बारे में निम्नलिखित टिप्पणी की:–

"तथापि यह निश्चित है कि इस सम्पूर्ण अवधि में जब हमारी मुद्रा के बारे में इतना अधिक भ्रम फैला हुआ था हमारे राज्य की वाणिज्य व्यवस्था बराबर सुधार रही थी और व्यापार संतुलन लगभग सदा ही देश के पक्ष में रहा।"[3]

मुद्रा बुरी होने पर भी वाणिज्य की दशा बराबर सुधर सकती है। यह बात भारत के अपने अनुभव से भी पुष्ट की जा सकती है और किसी अवधि में भारत ने व्यापार में इतनी अधिक प्रगति नहीं की जितनी 1873 और 1893 की अवधि के बीच की। क्या उस अवधि की भारतीय मुद्रा अच्छी थी? दूसरी ओर, यह भी

1. केन्स – पिछला उल्लेख, पृष्ठ 3
2. बार्बर डी–4, स्टैंडर्ड ऑफ वैल्यू, पृष्ठ 224
3. एट्रीटीज ऑन दि कॉयंस ऑफ दि रीएल्स (1880 का रिप्रिंट) पृष्ठ 135

तालिका–XXVII

सरकार की विशेष व्यवस्था

वर्ष	बचत+ घाटा–	वर्ष	बचत+ घाटा–	वर्ष	बचत+ घाटा–	वर्ष	बचत+ घाटा–	वर्ष	बचत+ घाटा–
	रुपये		पौंड		पौंड		पौंड		
1893-94	–1,546,998	1898-9	+2,640,873	1903-4	+2,996,400	1908-9	–3,737,710	1913-14	+2,312,423
1894-95	+693,110	1899-1900	+2,774,623	1904-5	+3,456,066	1909-10	+606,641	1914-15	–1,785,270
1895-96	+1,533,998	1900-1	+1,670,204	1905-6	+2,091,854	1910-11	+3,936,287	1915-16	–1,188,661
1896-97	–1,705,022	1901-2	+4,950,243	1906-7	+1,589,340	1911-12	+3,940,334	1916-17	+7,478,170
1897-98	–5,359,211	1902-3	+3,069,549	1907-8	+300,615	1912-13	+3,107,634	–	–

कहा जा सकता है कि व्यापार की दशा अच्छी इसलिए थी क्योंकि मुद्रा बुरी थी। 1873 और 1893 के बीच भारत का व्यापार इसलिए फला–फूला क्योंकि उसे यह इनाम स्वरूप मिल गया था। परन्तु यह इनाम भारतीय मजदूर के लिए तो दण्ड स्वरूप रहा क्योंकि उसके वेतन इतनी तेजी से नहीं बढे जितनी तेजी से कीमतें बढ़ीं। इसलिए उस अवधि की भारतीय समृद्धि उत्पादन पर आधारित नहीं थी बल्कि मुद्रा स्फीति के फलस्वरूप हुई लूट-पाट के कारण थी।

इसी तरह यह बात भी बिना किसी दुविधा के स्वीकार नहीं की जा सकती कि नई मुद्रा वास्तव में अच्छी ही है क्योंकि इसने स्वर्ण भुगतान का बोझ कम कर दिया है और भारतीय करदाता को राहत दी है। इस विचार से इस बारे में गलत धारणा बनती है कि गिरती विनिमय दर की अवधि में भारत के लिए स्वर्ण भुगतान का सही स्रोत कौन सा है। यह बात आमतौर पर कही जाती है कि स्वर्ण भुगतान का बोझ इसलिए पड़ा कि चांदी का स्वर्ण–मूल्य कम हो गया था। इस धारणा का तात्पर्य यह निकलता है कि भारत यदि स्वर्ण प्रतिमान का देश होता तो इस भारी बोझ से बच सकता था। पर यह बात सिद्ध करना भी जरूरी नहीं कि यह धारण कितनी गलत है।[1] इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि स्वर्ण भुगतान के बढे हुए मूल्य के कारण भारत को अतिरिक्त बोझ उठाना पड़ा। परंतु जो बात अच्छी तरह नहीं समझी जाती वह यह है कि यह बोझ तो सभी स्वर्ण ऋणदाताओं पर पड़ा, चाहे उन्होंने स्वर्ण प्रतिमान अपनाया या चांदी प्रतिमान। इस संदर्भ में स्वर्ण प्रतिमान वाले देश आस्ट्रेलिया की दशा चांदी प्रतिमान वाले देश भारत से भिन्न नहीं थी। जहां तक स्वर्ण ऋणी के देश थे, उन्हें उसी कारण से कष्ट झेलने पड़े अर्थात उस प्रतिमान की मूल्य वृद्धि हो गई जिसमें उनके ऋण आंके जाते थे। इस बात में उनकी स्थिति पर कोई अंतर नहीं पड़ा कि एक ने ऋण स्वर्ण में चुकाया और दूसरे ने चांदी में सिवाय इस बात के कि चांदी में ऋण भुगतान करने के कारण एक ऐसा अपवर्तक (रिफ्रेक्टरी) माध्यम मिल गया जिससे यह पता चलना सम्भव हो गया कि उस पर कितना बोझ पड़ा है। चांदी में गिरावट के कारण भारत पर स्वर्ण भुगतान का बोझ नहीं बढा अपितु इससे तो यह आंका जा सका या मापा जा सका कि उस पर कितना बोझ बढ़ा है। रुपयों में गिरावट पर रोक लग जाने को इस बात का प्रथम दृष्टि में ही कारण नहीं माना जा सकता कि करदाता को राहत मिली है और इसलिए यह मुद्रा प्रणाली की मजबूती का प्रमाण है। यह सम्भव है कि इस लाभ के लिए भारी कीमत अदा की गई हो।

यद्यपि चेम्बरलेन कमीशन पर इस बात का अनुकूल प्रभाव पड़ा कि विनिमय

1. देखें गोल्ड और सिल्वर कमीशन, 1886 के सम्मुख प्रो. मार्शल का साक्ष्य, प्रश्न 10, 140–50

प्रतिमान के अंतर्गत व्यापार बढ़ा और सरकारी वित्त में उठाव आया, तथापि चेम्बरलेन कमीशन ने इन तर्कों के आधार पर अपना मामला या केस नहीं बनाया। जिस मुख्य कारक पर इसने भरोसा किया वह यह था कि मुद्रा प्रणाली रुपयों की विनिमय दर स्वर्ण के साथ एक निश्चित दर पर बनाए रख सकी।[1] इसलिए कमीशन ने विनिमय प्रतिमान के पक्ष में जो दावा किया, हमें उसकी जांच करनी चाहिए। तालिका XVIII में दिए गए आंकड़ों से इस प्रश्न पर पर्याप्त रोशनी पड़ती है। यदि एक क्षण के लिए यह मान लिया जाए कि कमीशन द्वारा अपनाई गई कसौटी ठीक है, तब क्या उल्लिखित आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रुपये ने अपना स्वर्ण मूल्य बनाए रखा? कमीशन की संकीर्ण दृष्टि से भी यह कहना कि इसे निस्संदेह सफलता मिली है, यदि नहीं, तो जरूरत से अधिक विश्वास प्रगट करने के समान जरूर है।

जून 1893 और जनवरी 1917 के स्वर्ण के रूप में रुपये की दर 1= 7.53344 ट्राय ग्रेन शुद्ध सोना आंकी गई थी। उस दर से एक पौंड (सॉवरेन) 15 रुपये के बराबर होना चाहिए। तब 'बार गोल्ड 100 टच' सोने की टकसाली दर 23 रुपए 14 आने 4 पाई प्रति तोला (अर्थात 130 ग्रेन) बैठती है जो लन्दन की 1 शिलिंग 4 पैंस होनी चाहिए और स्वर्ण के आयात की दृष्टि से 1 शिलिंग 4.125 पैंस और निर्यात की दृष्टि से 1 शिलिंग 3.906 पैंस होनी चाहिए।

स्वर्ण में रुपये के मूल्य की दर से रुपये की स्थिरता का सर्वेक्षण किया जाए तो उससे पता चलेगा कि जब टकसाल बन्द की गई तबसे 1898 तक रुपया अपनी सममूल्य दर से काफी कम था। विनिमय दर या स्वर्ण के मूल्य या पौंड के रूप में रुपये का 25 से 30 प्रतिशत तक मूल्य ह्रास हुआ। यह मूल्य ह्रास इतना अधिक था कि जब रुपये का मूल्य स्वर्ण से स्थिर नहीं किया गया, तब सरकार के सामने आने वाली कठिनाइयां दुगुनी हो गईं। कौंसिल बिल की बिक्री कर होम ट्रेजरी की वित्त व्यवस्था करना लगभग असम्भव हो गया।[2] भारत सचिव ने अपने आपको बड़ी उलझन में पाया। यदि सममूल्य से कम पर बिक्री की जाती तो उसकी इस कारण आलोचना होती कि यह विनिमय दर में स्थिरता लाने की नीति के क्षेत्र में पराजय के समान होती। यदि बाजार की दरों पर बिक्री न की जाती तो उसमें ट्रेजरी के खाली होने का खतरा पैदा हो जाता। भारत सरकार ने सुझाव दिया कि सचिव को या तो न्यूनतम दर निर्धारित कर देनी चाहिए या बाजाार में लाने वाले बिलों की अधिकतम मात्रा निर्धारित कर देनी चाहिए। सैक्रेट्री आफ स्टेट ने ये दोनों ही बातें नहीं मानी परंतु यह मान लिया कि निकालने वाली राशि कम कर देंगे ताकि विनिमय दर जरूरत से ज्यादा घटने न पाए। टकसाल बन्दी के पहले वर्ष में सैक्रेट्री आफ स्टेट ने सबसे कम धन निकाला जैसा कि नीचे की सारणी से स्पष्ट है:–

1. रिपोर्ट, पृष्ठ 18 और 20
2. देखें 1894 की कामन्स पेपर 7, ईस्ट इंडिया (करेंसी एंड सेल आफ बिल्स)

तालिका XXVIII

रुपये का स्वर्ण मूल्य

लन्दन में विदेशी विनिमय दर के संदर्भ में विभाषित 1 रुपया = 1 शिलिंग 4 पैंस			वर्ष	स्वर्ण के संदर्भ में विभाषित			
				सावरेन कर रुपये में मूल 15 रु. = 1 सावरन		बार गोल्ड का मूल्य रुपये में एक तोला = 23 रु. 14 आने 4 पाई	
वर्ष	उच्चतम	न्यूनतम		उच्चतम	न्यूनतम	उच्चतम	न्यूनतम
	सिलिंग पैंस	सिलिंग पैंस		रु. आने. पाई.	रु. आने. पाई.	रु. आने. पाई.	रु. आने. पाई.
1892-93	1 3.969	1 2.625	1893	16 10 6	15 6 0	26 11 0	24 14 0
1893-94	1 4.031	1 1.500	1894	19 0 0	16 1 0	32 4 0	25 9 0
1894-95	1 1.906	1 0.000	1895	19 5 0	18 2 6	30 8 0	27 6 0
1895-96	1 2.875	1 1.000	1896	17 7 0	16 1 0	27 13 6	27 2 0
1896-97	1 3.842	1 1.781	1897	16 10 0	15 3 0	26 12 6	25 4 0
1897-98	1 4.125	1 2.250	1898	15 7 0	15 1 0	24 10 0	24 0 0
1898-99	1 4.156	1 3.094	1899	15 4 0	15 0 0	24 2 0	23 4 0
1899-1900	1 4.375	1 3.875	1900	15 1 3	15 0 0	24 2 0	23 15 6
1900-1901	1 4.156	1 3.875	1901	15 0 0	15 0 0	24 2 0	24 0 0
1901-1902	1 4.125	1 3.875	1902	15 4 6	15 2 6	24 2 6	24 0 0
1902-1903	1 4.156	1 3.875	1903	15 3 0	15 1 6	24 3 0	24 0 0
1903-1904	4 4.156	1 3.875	1904	15 5 0	15 1 3	24 2 0	24 0 3
1904-1905	1 4.156	1 3.970	1905	15 4 0	15 1 6	24 2 0	24 0 0
1905-1906	1 4.156	1 3.937	1906	15 1 0	15 2 0	24 4 6	24 0 0
1906-1907	1 4.187	1 3.937	1907	15 4 0	15 0 0	24 4 0	23 15 6
1907-1908	1 4.187	1 3.875	1908	15 1 0	15 0 0	24 10 0	24 2 0
1908-1909	1 4	1 3.875	1909	12 और 13	प्रतिशत के बीच प्रीमियम	24 3 6	23 15 0
1909-1910	1 4.156	1 3.875	1910	15 5 0	15 0 0	24 4 0	23 15 0
1910-1911	1 4.156	1 3.875	1911	15 0 0	15 0 0	24 0 6	23 14 0
1911-1912	1 4.156	1 3.937	1912	15 0 0	15 0 0	24 0 0	23 14 0
1912-1913	1 4.156	1 3.970	1913	15 0 0	15 0 0	24 0 3	—
1913-1914	1 4.156	1 3.937	1914	15 14 0	15 2 0	26 10 0	23 15 6
1914-1915	1 4.094	1 3.937	1915	15 13 6	15 5 0	25 14 0	24 8 0

तालिका XXIX

कौंसिल निकालना

आहरण की तारीख	आहरण की राशि (1000 पौंड में)	आहरण की दर पैंस प्रति रुपये
1893– जून	2,478	15,039
जुलाई	25	15,974
अगस्त	78	15.243
सितम्बर	7	15.350
अक्तूबर	5	15.334
नवम्बर	617	15.251
दिसम्बर	14	15.242
जनवरी	98	14.408
फरवरी	1,023	13.787
मार्च	1,015	13.870
अप्रैल	1,360	13.626

विनिमय दर को नीचे गिरने से बचाए रखने के लिए आहरण कम करना कोई अधिक लाभप्रद नहीं हुआ क्योंकि होम ट्रेजरी की वित्त व्यवस्था के लिए स्टर्लिंग उधार लेने का जो तरीका अपनाना जरूरी हो गया, वह कम खर्चीला नहीं था।[1] रुपया निकालने से प्रेषित रकम 1893-94 में होम ट्रेजरी की कुल संवितरित राशि से 6,588,000 पौंड कम थी। यह घाटा 7,430,000 पौंड का स्थायी स्टर्लिंग ऋण लेकर पूरा किया गया और इस रकम पर ब्याज पहले से ही स्वर्ण भुगतान के भारी बोझ और पड़ गया। इतना भारी दण्ड या जुर्माना अदा करने की जगह सैक्रेट्री ऑफ स्टेट ने बाजार पर अपना प्रभुत्व बनाए रखने से बेहतर यही समझा कि वह बाजार के पीछे–पीछे चलें। परन्तु "जैसा होता है, होने दो" की नीति की भी अपनी कीमत अदा करनी पड़ी। विनिमय दर 1 शिलिंग 4 पैंस से भी कम होने के कारण होम ट्रेजरी को जाने वाली रकम पर और बोझ बढ गया और भारत सरकार को अपने यूरोपियन सैनिक और गैर सैनिक अधिकारियों को विनिमय मुआवजा भत्ता देना पड़ा जिसे वह अब तक रोके हुए थी। रुपये के अपने सममूल्य से भी नीचे गिर जाने की जो लागत भारत सरकार को चुकानी पड़ी, वह रकम काफी बड़ी थी।[2]

1. फाउन्लर कमेटी के सम्मुख सर एच. वाटरफील्ड का साक्ष्य, प्रश्न 4332–39
2. फाउलर कमेटी के सम्मुख माननीय ए. आर्थर का साक्ष्य प्रश्न 1806–7

सारणी XXX

रुपये में गिरावट की कीमत

वर्ष	कौंसिल बिलों को सममूल्य से कम मूल्य पर बेचने से होने वाला नुकसान	विनिमय मुआवजा भत्ता देने से होने वाला नुकसान	ब्रिटिश फौजियों का वेतन बढने से नुकसान	हर खाते का वार्षिक योग	तीन वर्षों में सभी खातों का योग	
					रुपये में	स्टर्लिंग में 1 शिलिंग 4 पैंस की दर से
1894-95	3,74,15,000	78,02,000	3,784,000	490,01,000	11,91,86,000	7,945,733
1895-96	3,05,91,000	87,18,000	4,938,000	4,42,47,000		
1896-97	1,66,48,000	48,95,000	4,425,000	2,59,38,000		

इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसी स्थिति में रुपये की चरम स्थिरता में सरकार का विश्वास खत्म हो गया क्योंकि जैसा कि हम देखते हैं, अक्तूबर, 1896 में कौंसिल के वित्त सदस्य व्यक्तिगत रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्थिरता की दृष्टि से यही बेहतर होगा कि रुपये और स्वर्ण के बीच विनिमय साम्य के रूप में 16 पैंस के स्थान पर 15 पैंस कर दी जाए।[1] परंतु बाद में यह विचार छोड़ दिया गया क्योंकि रुपये में स्वर्ण के सममूल्य तक पहुंचने के चिह्न दिखाई देने लगे और ऐसा स्थापित सममूल्य से मूल्य ह्रास होने के पूरे वर्ष बाद जनवरी 1898 में हुआ।

जनवरी 1898 और जनवरी 1917 के बीच रुपया स्वर्ण दर के मुकाबले दो बार गिरा। सन् 1907–8 में दूसरी बार विनिमय स्तर के अंतर्गत रुपयों की समता दर गड़बड़ा गई। बाजार में विनिमय की वास्तविक प्रचलित दरें इस प्रकार थीं:–

1. शिराजकृत इंडियन फाइनेंस एंड बैंकिंग पृष्ठ 168

तालिका XXXI

विनिमय दरें, लन्दन की भारत पर ('टाइम्स' से उद्धृत)

	दर — रुपया = 1 शि. 4 पैंस			
तिथि	कलकत्ता पर		बम्बई पर	
	उच्चतम	न्यूनतम	उच्चतम	न्यूनतम
1907 सितम्बर	1 4 1/32	1 3 31/32	1 4 1/32	1 3 31/32
अक्तूबर	1 4 1/32	1 3 31/32	1 4 1/32	1 3 31/32
नवम्बर	1 4	1 3 23/32	1 3 31/32	1 3 23/32
दिसम्बर	1 3 15/16	1 3 21/32	1 3 15/16	1 3 27/32
1908 जनवरी	1 3 15/16	1 3 29/32	1 3 15/16	1 3 7/8
फरवरी	1 3 31/32	1 3 7/8	1 3 31/32	1 3 7/8
मार्च	1 3 29/32	1 3 27/32	1 3 29/32	1 3 27/32
अप्रैल	1 3 7/8	1 3 27/32	1 3 27/32	1 3 27/32
मई	1 3 7/8	1 3 27/32	1 3 15/16	1 3 27/32
जून	1 3 29/32	1 3 27/32	1 3 7/8	1 3 27/32
जुलाई	1 3 7/8	1 3 27/32	1 3 7/8	1 3 27/32
अगस्त	1 3 29/32	1 3 27/32	1 3 29/32	1 3 27/32
सितम्बर	1 3 31/32	1 3 29/32	1 3 31/32	1 3 7/8
अक्टूबर	1 3 15/16	1 3 7/8	1 3 29/32	1 3 13/16
नवम्बर	1 3 29/32	1 3 7/8	1 3 7/8	1 3 7/8
दिसम्बर	1 3 15/16	1 3 29/32	1 3 31/32	1 3 7/8

एक वर्ष से भी अधिक समय तक यह संकट चलने के बाद रुपया अपनी स्वर्ण की पुरानी सममूल्य दर पर पहुंच गया और फिर मोटेतौर पर, यद्यपि निश्चित तौर पर नहीं, उस दर पर लगभग 7 वर्ष तक स्थिर बना रहा। परन्तु 1914-15 में वह फिर अपनी समता दर से नीचे गिर गया। (देखिए तालिका XXXII)

1916 के बाद विनिमय प्रतिमान की स्थिरता को एक ऐसे खतरे का सामना करना पड़ा जिसके बारे में कभी सन्देह तक नहीं हुआ था। भारतीय विनिमय प्रतिमान एक ऐसे दृष्टिकोण पर आधारित था कि चांदी का स्वर्ण मूल्य तो गिरना

था या कम से कम उसके वास्तविक मूल्य (इनट्रिंजिक मूल्य) स्तर तक नहीं पहुंचेगा कि रुपये का सामान्य मूल्य से अधिक हो जाए। चांदी की कीमत पर रुपये का

तालिका XXXII

विनिमय दरें, कलकत्ता पर लन्दन की (नेशनल बैंक आफ इंडिया से)

	1914		1915	
महीना	अधिकतम	न्यूनतम	अधिकतम	न्यूनतम
जनवरी	...	...	1 $3_{15/16}$	1 $3_{15/16}$
फरवरी	...	...	1 $4_{1/32}$	1 $3_{29/32}$
मार्च	...	...	1 4	1 $3_{15/16}$
अप्रैल	...	...	1 $3_{15/16}$	1 $3_{29/32}$
मई	1 $4_{1/4}$	1 $3_{15/16}$	1 $3_{15/16}$	1 $3_{7/8}$
जून	1 $3_{31/32}$	1 $3_{15/16}$	1 $3_{7/8}$	1 $3_{27/32}$
जुलाई	1 $3_{31/32}$	1 $3_{15/16}$	1 $3_{22/32}$	1 $3_{23/32}$
अगस्त	1 $3_{7/8}$	1 $3_{15/16}$	1 $3_{15/16}$	1 $3_{27/32}$
सितम्बर	1 $3_{15/16}$	1 $3_{13/16}$	1 4	1 $3_{15/16}$
अक्टूबर	1 $3_{15/16}$	1 $3_{15/16}$	...	...
नवम्बर	1 $3_{15/16}$	1 $3_{15/16}$	...	...
दिसम्बर	1 $3_{15/16}$	1 $3_{15/16}$	...	...

वास्तविक मूल्य उसके सामान्य मूल्य के बराबर होना था, वह था 43 पैंस प्रति ओंस। जब तक रुपये का वास्तविक मूल्य इसके अंकित मूल्य से अधिक था, अर्थात चांदी की कीमत 43 पैंस से अधिक नहीं बढी, तब तक रुपये के मुद्रा के रूप में प्रचलन में रहने को कोई खतरा पैदा नहीं हुआ। पर जब चांदी का मूल्य उससे अधिक बढ़ गया तो रुपया मुद्रा के रूप में प्रचलन में नहीं रहा बल्कि तुरंत उसे पिघलाया जाने लगा। सितम्बर 1904 से दिसम्बर 1907 की छोटी सी अवधि के अतिरिक्त 1872 से ही चांदी के स्वर्ण मूल्य में घटने की उल्लेखनीय प्रवृत्ति दिखाई दी। इसका मूल्य लगातार और स्थिरता से इतना घटा कि आमतौर पर यह माना जाने लगा कि कम कीमतें तो बरकरार बनी रहेंगी और यह विचार इतना बल पकड़ गया कि विनिमय प्रतिमान के निर्माताओं ने इस आकस्मिकता के बारे में सोचा ही नहीं था कि चांदी की कीमत 43 पैंस से भी बढ जाएगी। इसकी इतनी कम कल्पना की गई थी कि भारतीय मुद्रा पर बनी कमेटियों और कमीशनों के सामने किसी भी गवाह ने इस आधार पर इस प्रतिमान की आलोचना नहीं की थी। परंतु अनहोनी भी हो जाती है। 1916 के बाद ऐसी अनहोनी हुई

और बिल्कुल अचानक हुई। 10 फरवरी 1914 को स्टैंडर्ड शुद्धता वाली चांदी की प्रति ओंस नकद कीमत 26 5/8 पैंस थी जो 10 फरवरी 1918 को गिरकर $22_{11/16}$ पैंस हो गई। यद्यपि 1916 में इसी तारीख को बढकर यह 27 पैंस हो गई तथापि, यह भी रुपये के पिघलाव बिन्दु से नीचे थी। तथापि अंत में उल्लिखित तारीख के बाद यह बेहद तेजी से बढ़ी। 9 फरवरी 1917 को यह बढकर $37_{5/8}$ पैंस हो गई; 8 फरवरी 1918 को यह 43 पैंस हो गई और 1919 में उसी तारीख को $48_{7/16}$ पैंस हो गई। और इस तरह रुपये के पिघलाव बिन्दु से काफी बढ गई। परन्तु 11 फरवरी, 1920 को तो इसके सारे रिकार्ड टूट गए जब इसका मूल्य बढ कर $89_{1/2}$ पैंस प्रति स्टैंडर्ड औंस हो गया।

अंकित मूल्य के मुकाबले रुपये का वास्तविक मूल्य बढने से एक दम यह समस्या पैदा हो गई कि रुपये का प्रचलन बरकरार कैसे रखा जाए। इस समस्या के हल के दो तरीके दिखाई देते थे। एक तो यह था कि रुपये की शुद्धता घटा दी जाए और दूसरा यह था कि इसकी स्वर्ण दर या सममूल्यता बढ़ा दी जाए। अन्य जितने भी देशों के सामने ऐसी समस्या आई, उन्होंने अपनी चांदी की मुद्रा के बारे में पहला तरीका अपनाया। यह तरीका 1904–07 की अवधि में फिलीपींस, जलडमरूमध्य के उपनिवेश और मैक्सिको में सफलतापूर्वक अपनाया गया। इन वर्षों में इन देशों में चांदी का मूल्य बढने से यही समस्या पैदा हो गई थी।[1] परन्तु सेक्रेट्री ऑफ स्टेट ने दूसरा तरीका अपनाया हर बार चांदी की कीमत बढने के साथ-साथ रुपये की दर बदलते गए। चांदी की कीमतों में परिवर्तन के साथ-साथ रुपये की कीमतों में जो फेरबदल किए गए, वे नीचे की सारणी में दिए गए हैं:–

तालिका XXXIII

रुपये की दर में परिवर्तन की तारीख	सम मूल्य में परिवर्तन
	शिलिंग पैंस
3 जनवरी 1917	1 4½
28 अगस्त 1917	1 5
12 अप्रैल 1918	1 6
13 मई 1919	1 8
12 अगस्त 1919	1 10
15 सितम्बर 1917	2 0
22 नवम्बर 1919	2 2
12 दिसम्बर 1919	2 4

1. देखें ई. डब्ल्यू. केमेरर कृत माडर्न करेंसी रिफार्म्स, 1916, पृष्ठ 349–54, 445–49 और 535–47

इस तरह रुपये के सममूल्य में 2 वर्ष तक परिवर्तन करने के बाद, जैसे इनका कोई सामाजिक प्रभाव नहीं पडा हो सैक्रेट्री ऑफ स्टेट ने 30 मई 1919 को वैलिंगटन स्मिथ की अध्यक्षता में एक नई मुद्रा कमेटी की नियुक्ति की जो स्थिर स्वर्ण विनिमय प्रतिमान सुनिश्चित करने की दिशा में सिफारिशें करे। छः महीने के गम्भीर विचार विमर्श के बाद बहुमत ने निम्नलिखित रिपोर्ट दी[1].

(i) उद्देश्य यह होना चाहिए कि रुपये की स्थिरता को पुनः प्राप्त किया जाए और व्यावहारिक रूप से यथासम्भव शीघ्र तारीख से मुद्रा प्रणाली पुनः स्वचालित ढंग से काम करने लगे।

(ii) यह स्थायी संबंध स्वर्ण से होना चाहिए न कि स्टर्लिंग से।

(iii) रुपये के तुल्य स्वर्ण इतना पर्याप्त ऊंचा होना चाहिए कि जहां तक व्यावहारिक हो, उससे यह आश्वासन मिले, कि रुपया अपने वर्तमान वजन और शुद्धता के बावजूद एक प्रतीक मुद्रा रहे, अथवा दूसरे शब्दों में उसमें विद्यमान चांदी का मूल्य विनिमय मूल्य से अधिक न हो।

"(समिति ने कहा कि) बहुत सावधानीपूर्ण विचार विमर्श के बाद हम सर्वसम्मति से (सिवाय हमारे एक सदस्य के जिसने अलग रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए हैं) सिफारिश करते हैं कि रुपये और स्वर्ण के बीच ऐसा स्थिर संबंध होना चाहिए कि एक विदेशी विनिमय और आंतरिक प्रचलन दोनों के लिए एक रुपया 11.30016 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण के बराबर होना चाहिए अर्थात रुपया दो शिलिंग (स्वर्ण) के समकक्ष होना चाहिए।

अल्पमत रिपोर्ट में इसी पुरानी बात को दोहराया गया कि कम विनिमय दर को प्रोत्साहन दिया जाए और अधिक विनिमय दर पर दंड लगाया जाए। इसमें कहा गया कि पुरानी दर कायम रखी जाए अर्थात 15 रु. का सोने का पौंड या 113.0016 ग्रेन ट्राय शुद्ध स्वर्ण का हो और यह सिफारिश की कि दो रुपये का चांदी का नया सिक्का जारी किया जाए जिसकी शुद्धता पुराने रुपये के मुकाबले कम हो जब तक कि न्यूयार्क में चांदी की दर 92 सेंट से अधिक रहे।[2]

2 फरवरी 1920 की घोषणाओं के अनुसार भारत सचिव ने और भारत सरकार ने समिति के बहुमत की सिफारिशें स्वीकार कर लीं जिसने प्रति रुपया 7.53344 ग्रेन की पुरानी समता समाप्त कर के 11.30016 ग्रेन ट्राय की नई समता स्वीकार कर ली। अब क्या रुपये ने स्वर्ण के साथ अपनी नई समता को कायम रखा है?

---

1. देखिए रिपोर्ट पी.पी.सी.डी., 1920 की 527, पैरा 59
2. रिपोर्ट, पृष्ठ 41

इस तथ्य का पता लगाने के लिए लन्दन की विनिमय दर कोई मार्गदर्शक नहीं है क्योंकि रुपये का मूल्य 2 शिलिंग स्वर्ण है न कि 2 शिलिंग स्टर्लिंग। यदि स्वर्ण और स्टर्लिंग समकक्ष होते, तब तो और बात थी। परन्तु युद्ध के दौरान मुद्रा वस्तुतः अपरिवर्तनीय हो गई थी और स्वर्ण के रूप में पौंड स्टर्लिंग का मूल्य ह्रास हो गया था। इसलिए हमें मानक के रूप में एक ऐसी मुद्रा को लेना पड़ेगा जो स्वर्ण के साथ सममूल्य पर रही थी। ऐसी मुद्रा अमरीकी डालर थी। इसलिए न्यूयार्क की विनिमय दर रुपये का स्वर्ण मूल्य मापने के लिए अधिक सहायक होती बजाय लन्दन की स्टर्लिंग दर के। हम मापने के लिए रुपये–स्टर्लिंग की वास्तविक दर का भी उपयोग कर सकते थे और उसकी तुलना स्टर्लिंग की उस राशि से करते जितना एक रुपया खरीद सकता और 11.30016 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण के सममूल्य होती और उसे न्यूयार्क और लन्दन के बीच विद्यमान विपरीत दर द्वारा सही कर लिया जाता।[1]

विनिमय के सममूल्य की तुलना करने से लन्दन या न्यूयार्क में वास्तविक विनिमय दर से पता चलता है कि रुपये में गिरावट आई है जो वास्तव में आश्चर्यजनक बात है। (देखें तालिका XXXIV)।

इसी के साथ रुपये के बाह्य स्वर्ण मूल्य तथा सावरेन तथा बार गोल्ड के सन्दर्भ में इसके आंतरिक मूल्य पर भी विचार कीजिए। (देखें तालिका XXXV)

इन तालिकाओं पर कोई टिप्पणी करने की जरूरत नहीं है। रुपया न केवल 2 शिलिंग (स्वर्ण) से बहुत दूर है, बल्कि 1 शिलिंग 4 पैंस स्टर्लिंग के निकट भी नहीं है।

क्या ये तथ्य इस बात का अकाट्य प्रमाण नहीं हैं कि विनिमय प्रतिमान बिल्कुल व्यर्थ है? जो प्रणाली स्वर्ण के रूप में अपना मूल्य नहीं बनाए रख सकती, जिसकी इससे आशा की जाती है, तो उसे एक मजबूत मुद्रा प्रणाली कैसे समझा जा सकता है? इस प्रणाली के कार्य करने से कहीं न कहीं कोई ऐसी कमजोरी है जिससे समय–समय पर सब कुछ बिगड़ जाता है और प्रणाली काम करना बन्द कर देती है। 1893 में रुपये में गिरावट आई या यह सममूल्य से

---

1 इसके हिसाब लगाने का सूत्र इस प्रकार है–
यदि 'X' पैंस = 1 रुपया = 11.30016 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण
23.22 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण = डालर
'डी' डालर = 1 पौंड स्टर्लिंग = 240 पैंस

$$\text{तब } X = \frac{11.30016 \times 240}{23.22 \times \text{डी}} = \frac{11.680}{\text{डी}} \text{ पैंस}$$

देखें रशफोर्थ, एफ.वी. कृत दि इंडियन एक्सचेंज प्राब्लम, 1921, पृष्ठ 9.

तालिका XXXIV

रुपये का वास्तविक स्वर्ण मूल्य और विदेशी विनिमय के सन्दर्भ में उसकी नई पैरिटी या समानता

महीने के मध्य की स्थिति	बम्बई पर न्यूयार्क (सेंट में)						बम्बई पर लन्दन (शिलिंग पैंस में)					
	1920		1921		1922		1920		1921		1922	
	सममूल्य दर	वास्तविक दर	सममूल्य दर	वास्तविक दर	सममूल्य दर	वास्तविक दर	सममूल्य दर	वास्तविक दर	सममूल्य दर	वास्तविक दर	सममूल्य दर	वास्तविक दर
जनवरी	0.4866	0.4400	0.4866	0.2925	0.4866	0.2800	2 7½	2 $3^{5}/_{8}$	2 $7^{5}/_{16}$	1 $5^{5}/_{8}$	2 $3^{5}/_{8}$	1 $3^{11}/_{16}$
फरवरी	0.4866	0.4850	0.4866	0.2800	0.4866	0.2845	2 $10^{11}/_{32}$	2 $9^{1}/_{8}$	2 $5^{13}/_{16}$	1 $4^{1}/_{8}$	2 $2^{7}/_{32}$	1 $3^{9}/_{16}$
मार्च	0.4866	0.4850	0.4866	0.2625	0.4866	0.2787	2 $7^{29}/_{32}$	2 $5^{3}/_{4}$	2 $5^{31}/_{32}$	1 $3^{1}/_{4}$	2 $2^{29}/_{32}$	1 $3^{5}/_{16}$
अप्रैल	0.4866	0.4775	0.4866	0.2625	0.4866	0.2785	2 $5^{7}/_{16}$	2 $3^{3}/_{4}$	2 $5^{13}/_{16}$	1 $3^{5}/_{8}$	2 $2^{1}/_{2}$	1 $3^{1}/_{8}$
मई	0.4866	0.4325	0.4866	0.2675	0.4866	0.2930	2 $6^{19}/_{32}$	2 $2^{1}/_{8}$	2 $5^{7}/_{32}$	1 $3^{1}/_{2}$	2 $2^{1}/_{4}$	1 $3^{9}/_{16}$
जून	0.4866	0.4125	0.4866	0.2525	0.4866	0.2900	2 $5^{31}/_{32}$	1 $10^{15}/_{16}$	2 $6^{29}/_{32}$	1 $3^{3}/_{8}$	2 $2^{1}/_{8}$	1 $3^{19}/_{32}$
जुलाई	0.4866	0.3900	0.4866	0.2400	0.4866	0.2900	2 $5^{31}/_{32}$	1 $8^{1}/_{15}$	2 $8^{9}/_{32}$	1 $3^{1}/_{4}$	2 $2^{5}/_{8}$	1 $3^{5}/_{8}$
अगस्त	0.4866	0.3650	0.4866	0.2475	0.4866	0.2916	2 $8^{9}/_{32}$	1 $10^{1}/_{16}$	2 $7^{29}/_{32}$	1 $4^{3}/_{4}$	2 $2^{3}/_{16}$	1 $3^{19}/_{32}$
सितम्बर	0.4866	0.3325	0.4866	0.2675	0.4866	0.2875	2 $9^{9}/_{16}$	1 $10^{1}/_{16}$	2 $7^{15}/_{32}$	1 $5^{1}/_{16}$	2 $2^{6}/_{16}$	1 $3^{9}/_{16}$
अक्तूबर	0.4866	0.3025	0.4866	0.2825	0.4866	—	2 $9^{21}/_{32}$	1 $7^{3}/_{4}$	2 $6^{1}/_{32}$	1 $5^{7}/_{16}$	—	—
नवम्बर	0.4866	0.3025	0.4866	0.2695	0.4866	—	2 $10^{9}/_{16}$	1 $7^{1}/_{8}$	2 $5^{16}/_{32}$	1 $4^{1}/_{8}$	—	—
दिसम्बर	0.4866	0.2650	0.4866	0.2775	0.4866	—	2 $9^{9}/_{16}$	1 $5^{1}/_{4}$	2 4	1 $3^{7}/_{8}$	—	—

तालिका XXXV

रुपये का स्वर्ण मूल्य तथा सावरेन और स्वर्ण के मूल्य के संदर्भ में नया साम्य

महीना	1920				1921				1922			
	ब्रिटिश सावरेन का रुपये के साथ सममूल्य 10 रु. प्रति 1 सावेरन	स्वर्णस्तर का प्रति तोला 100 टच सममूल्य 15 रु. 14 आने 10 पाई प्रति 1 तोला			ब्रिटिश सावरेन का रुपये के साथ सममूल्य 10 रु. प्रति 1 सावेरन			स्वर्णस्तर का प्रति तोला 100 टच सममूल्य 15 रु. 14 आने 10 पाई प्रति 1 तोला	ब्रिटिश सावरेन का रुपये के साथ सममूल्य 10 रुपये प्रति 1 सावेरन			स्वर्ण स्तर का प्रति तोला 100 टच सममूल्य 15 रुपये 14 आने 10 पाई प्रति 1 तोला
	रुपये आने पाई	रुपये	आने	पाई	रुपये	आने	पाई	रुपये आने पाई	रुपये	आने	पाई	रुपये आने पाई
जनवरी	बराये नाम	28	0	0	बराये नाम				17	14	0	
फरवरी	बराये नाम	22	0	0	बराये नाम				17	14	0	
मार्च	बराये नाम	24	0	0	बराये नाम				17	14	0	
अप्रैल	बराये नाम	24	8	0	18	12	0	सरकारी आंकड़े अभी समय, तक प्रकाशित नहीं हुए *				सरकारी आंकड़े अभी समय, तक प्रकाशित नहीं हुए *
मई	बराये नाम	22	12	0	19	0	0		—			
जून	बराये नाम	22	4	0	19	12	0		—			
जुलाई	बराये नाम	23	0	0	20	9	0		—			
अगस्त	बराये नाम	21	8	0	20	9	0		—			
सितम्बर	बराये नाम	25	4	0	19	2	0		—			
अक्तूबर	बराये नाम	27	6	0	18	14	0		—			
नवम्बर	बराये नाम	28	10	0	18	8	0		—			
दिसम्बर	बराये नाम	27	12	0	18	6	0		—			

नीचे गिर गया और 1900 तक इसकी समता में कोई मजबूती नहीं आई। सात वर्ष के अंतराल के बाद 1907 में रुपया अपने सममूल्य से फिर नीचे गया। 1914 में रुपये में एक बार और गिरावट आई। 1917 से इसमें बहुत तेजी से उछाला आया और 1920 के बाद इसमें पुनः गिरावट आई। इस विलक्षण स्थिति से स्वभावतः यह प्रश्न पैदा होता है कि इन अवसरों पर रुपया स्वर्ण से अपनी समता क्यों नहीं बनाए रख सका? इस प्रश्न के सही उत्तर से पता चलेगा कि विनिमय प्रतिमान की कमजोरी किस बात में निहित है।

रुपयों में गिरावट का एकमात्र वैज्ञानिक कारण यह हो सकता है कि रुपया अपनी सामान्य क्रयशक्ति खो बैठा है। यह एक सुस्थापित तथ्य है कि किसी मुद्रा या लेखा की इकाई का मूल्य किसी अन्य मुद्रा में या किसी अन्य लेखा की इकाई में इतना होगा जितना सामान उससे खरीदा जा सकता है। एक ठोस उदाहरण लें– अंग्रेज लोग और अन्य लोग भारत के रुपये का उतना मूल्य लगाएंगे जितना वे रुपयों से भारतीय माल खरीद सकेंगे। दूसरी ओर भारतीय लोग अंग्रेजी पौंड का (या लेखा की अन्य किसी इकाई का) उतना मूल्य लगाएंगे जितना वे इन पौंडों से अंग्रेजी सामान खरीद सकेंगे। यदि भारत में रुपये की क्रय शक्ति बढ़ जाती है (अर्थात भारत में मूल्य स्तर गिर जाता है) जबकि पौंडों की क्रय शक्ति घट जाती है या स्थिर रहती है या कम तेजी से बढ़ती है (अर्थात अंग्रेजी मूल्य स्तर भारतीय मूल्य स्तर की अपेक्षा अधिक बढ़ता है), तो पहले से कम रुपये पौंड के बराबर हो जाएंगे अर्थात पौंड के रूप में भारतीय रुपये का विनिमय मूल्य बढ़ जाएगा। दूसरी ओर यदि भारत में रुपये की क्रय शक्ति घट जाती है (अर्थात भारतीय मूल्य स्तर बढ जाता है) जबकि पौंड की क्रय शक्ति बढ जाती है या स्थिर रहती है या कम तेजी से गिरती है (अर्थात यदि अंग्रेजी मूल्य स्तर भारतीय मूल्य स्तर की अपेक्षा गिरता है) तो अधिक रुपये एक पौंड के बराबर होंगे अर्थात पौंड के मुकाबले रुपये विनिमय मूल्य घट जाएगा।

इस सिद्धांत के आधार पर भारतीय विनिमय स्तर में गिरावट से भारतीय मूल्य स्तर की गतिविधि में ढूंढना होगा। इस प्रस्ताव की वैधता के बारे में कोई सन्देह न हो, इसके लिए हमें गिरावट की हर घटना को देखना चाहिए और यह देखना चाहिए कि क्या यह गिरावट रुपयों की क्रय शक्ति में गिरावट से मेल खाती है।[1]

---

1. इन तालिकाओं में दिए गए आंकड़े, तब तक अन्यत्र उल्लेख न हो *रिपोर्ट ऑफ दि प्राइस इनक्वायरी कमेटी*, कलकत्ता 1914 से लिए गए हैं।

तालिका XXXVI

अवधि I–1890–99

वर्ष	प्रचलन में मुद्रा रुपये +नोट		भारत में कीमतों का सूचकांक	इंग्लैंड में कीमतों का सूचकांक
	करोड़ रुपये में	सूचकांक 1890–94=100	1890–94=100	1890–94=100
1890	120	92	113	104
1891	131	100	106	105
1892	141	108	100	99
1893	132	101	96	99
1894	129	99	85	93
1895	132	101	89	90
1896	127	97	99	89
1897	125	96	120	90
1898	122	93	109	91
1899	131	100	108	94

तालिका XXXVII

अवधि II 1900–1908

वर्ष	प्रचलन में मुद्रा रुपये + नोट		भारत में कीमतों का सूचकांक	इंग्लैंड में कीमतों का सूचकांक
	करोड़ रुपये में	सूचकांक 1890–94=100	1890–94=100	1890–94=100
1900	134	103	126	103
1901	150	115	120	98
1902	143	109	115	96
1903	147	113	111	97
1904	152	116	110	100
1905	164	126	120	100
1906	185	142	134	107
1907	190	145	138	113
1908	181	139	147	104

तालिका XXXVIII

अवधि III 1909–14*

वर्ष	प्रचलन में मुद्रा रुपये + नोट		भारत में कीमतों का सूचकांक	इंग्लैंड में कीमतों का सूचकांक
	करोड़ रुपये में	सूचकांक 1890–94=100	1890–94=100	1890–94=100
1	2	3	4	5
1909	198	152	138	105
1910	199	152	137	110
1911	209	160	139	114
1912	214	164	147	117
1913	238	182	152	124
1914	237	182	156	124

**1913 और 1914 के आंकड़े मि0 शिराज कृत इंडियन फाइनेंस एंड बैंकिंग के परिशिष्ट में दिए गए हैं। कालम 3 के आंकड़ों का हिसाब इनके आधार पर लगाया गया है।*

तालिका XXXIX

अवधि IV 1915–1921*

वर्ष	प्रचलन में मुद्रा रुपये + नोट		भारत में कीमतों का सूचकांक	इंग्लैंड में कीमतों का सूचकांक
	करोड़ रुपये में	सूचकांक 1890–94=100	1890–94=100	1890–94=100
1	2	3	4	5
1915	266	104	112	127.1
1916	297	116	125	159.5
1917	338	132	142	206.1
1918	407	155	178	226.5
1919	463	180	200	241.9
1920	411	160	209	295.3
1921	393	114	183	182.4

*कीमतों के सूचकांक *लीग आफ नेशन्स* के *मेमोरेंडम ऑन करेंसी,* 1913-21, द्वितीय संस्करण (1922) से लिए गए है। सारणी VIII प्रचलन के आंकडे एच. एस. जेवंस कृत *दि फ्यूचर ऑफ एक्सचेंज एंड इंडियन करेंसी* 1922, पृष्ठ 44 से लिए गए हैं। प्रचलन के सूचकांकों का हिसाब लगाया गया है।

अब क्या ये तालिकाएं इस बात का समर्थन करती हैं या नहीं कि रुपये के स्वर्ण मूल्य में गिरावट रुपये की आम क्रयशक्ति में गिरावट के अनुरूप है? जब स्वर्ण मूल्य में गिरावट आई, उस समय रुपये की सामान्य क्रय शक्ति क्या थी? यदि हम उल्लिखित तालिकाओं के आंकड़ों की जांच करें तो निस्संदेह इस तर्क के पीछे बल की कोई कमी नहीं है। इन तालिकाओं से पता चलता है कि 1893–1898 के बीच रुपये का स्वर्ण मूल्य इसलिए बढा क्योंकि उसकी सामान्य क्रय शक्ति में निरंतर सुधार होता गया। यदि कभी उसमें गिरावट आई और फिर बाद में जब कुछ अवसरों पर विनिमय दर गिरी, जैसे यह 1908, 1914 और 1920 में गिरी थी तो देखा जाएगा कि इन वर्षों में भारत में कीमतों का स्तर चोटी पर पहुंच गया था। दूसरे शब्दों में इन वर्षों में रुपये की सामान्य क्रय शक्ति में सबसे अधिक मूल्य ह्रास हुआ। यदि जरूरत हो तो, तर्क का एक और प्रमाण यह है कि रुपये का विनिमय मूल्य उसकी सामान्य क्रय शक्ति से आंका जाना चाहिए। यह 1920 से रुपये–स्टर्लिंग की विनिमय दरों की गतिविधियों से पता चलता है। (देखें तालिका XL)

यद्यपि इस सैद्धांतिक विचार का समर्थन उन आंकड़ों से हो जाता है जो यह बताते हैं कि समय–समय पर रुपये के स्वर्ण मूल्य में परिवर्तन क्यों होता है (जिसे विनिमय में गिरावट कहा जाता है), भारत सरकार इससे सहमत नहीं है। रुपये के स्वर्ण मूल्य में गिरावट का सरकारी स्पष्टीकरण यह दिया जाता है कि यह प्रतिकूल व्यापार संतुलन के कारण है। विनिमय प्रतिमान के प्रतिष्ठित समर्थकों जैसे मि. केनेस[1] और मि. शिराज[2] का भी, यही विचार है।

निस्सन्देह ऐसे ही तर्कों के फलस्वरूप 1920 के मुद्रा का पूरा बंटाढार हो गया। अन्यथा रुपये का विनिमय मूल्य बढाने का और क्या कारण बताया जा सकता है। भारतीय मुद्रा पर स्मिथ कमेटी[3] और भारत सरकार[4] दोनों ही इस बात को समझते थे कि रुपये का भारी मूल्य ह्रास हो चुका है। भारत के बढते हुए मूल्य इसके साक्षी थे।

---

1. देखें पिछला पृष्ठ 16,
2. देखें पिछला पृष्ठ 4
3. देखें रिपोर्ट पृष्ठ 19–20
4. भारतीय मूल्यों के उतार–चढाव के बारे में सरकार के ज्ञापन। करेंसी कमेटी, 1919 की रिपोर्ट का परिशिष्ट 28

तालिका XL

तारीख	भारत में रुपये की कीमतें 1915=100	इंगलैंड में स्टर्लिंग की कीमतें 1918=100	लन्दन और कलकत्ता के मध्य औसत विनिमय दर	रुपया–स्टर्लिंग क्रयशक्ति समता 16 पैंस x $\frac{\text{कालम 3}}{\text{कालम 2}}$
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1920 जनवरी	202	289	27.81	22.89
फरवरी	203	306	32.05	24.12
मार्च	194	301	29.66	25.40
अप्रैल	193	300	27.88	25.95
मई	190	298	25.91	25.77
जून	192	293	23.63	25.08
जुलाई	196	282	22.63	24.49
अगस्त	193	263	22.75	24.70
सितम्बर	188	244	22.31	24.94
अक्तूबर	188	232	19.88	24.00
नवम्बर	186	215	19.69	22.62
दिसम्बर	179	209	17.44	21.81
1921 जनवरी	169	200	17.66	21.96
फरवरी	164	191	16.31	20.98
मार्च	162	183	15.53	20.40
अप्रैल	163	186	15.75	19.63
मई	170	182	15.44	17.98
जून	172	176	15.53	17.14
जुलाई	171	163	15.38	17.40
अगस्त	178	161	16.25	16.36
सितम्बर	178	157	17.22	15.82
अक्तूबर	178	156	17.02	14.65
नवम्बर	173	161	16.25	14.89
दिसम्बर	169	157	15.94	14.86
1922 जनवरी	162	156	15.88	15.41
फरवरी	159	156	15.59	16.70
मार्च	160	157	15.34	15.70
अप्रैल	160	159	15.19	15.90
मई	162	159	15.59	15.70
जून	169	160	15.63	15.14
जूलाई	170	158	15.69	14.87
अगस्त	166	153	15.66	14.74

इस तथ्य को देखते हुए कि रुपये का स्वर्ण मूल्य 2 शिलिंग स्वर्ण तक बढ़ाने का कोई मतलब नहीं क्योंकि उसकी क्रय शक्ति तो 1 शिलिंग 4 पैंस भी नहीं थी। कमेटी ने गैर जिम्मेदाराना शब्दों में भारतीय विनिमय को स्थिरता प्रदान करने की इच्छा प्रगट की। परंतु इस दृष्टि से कमेटी का इस बात पर जोर देना कि रुपयों को स्वर्ण से जोड़ दिया जाए, कुछ उपहासपूर्ण ही कहा जाएगा। प्रो. मार्शल के शब्दों में स्थिर विनिमय की बात करना ऐसा ही है कि दुनिया भर की रेलों के विभिन्न गेजों को मुख्य लाइन के गेज में बदल दिया जाए। यदि स्थिर विनिमय से यही आशा की जाती है तो रुपये का स्वर्ण से जोड़ने का मतलब ही क्या है जब स्वर्ण 'मेन लाइन' रहा ही नहीं? लोग तो एक ऐसे प्रतिमान का स्थिर विनिमय चाहते हैं जिनमें मूल्य मापे जाते हों। स्वर्ण से जोड़ने का मतलब है कि उसे स्टर्लिंग से अलग कर दिया जाए जब असली महत्व स्टर्लिंग का है न कि स्वर्ण का। स्वर्ण के मुकाबले स्टर्लिंग के महत्व को देखते हुए क्या किसी स्थिर विनिमय नीति की जरूरत भी है?

अब स्थिरता की समस्या मुख्यतः इस बात की है कि दो मुद्राओं की क्रय शक्ति समता में असामान्य फेर बदल न हो जाए। भारत के मामले में रुपये और स्टर्लिंग की क्रय शक्ति समता में कोई असामान्य फेरबदल नहीं हुआ अपितु दूसरी ओर भारतीय विनिमय कमोबेश उसके अनुरूप चलता रहा। इसलिए विनिमय स्थिरता की नीति को शुरू करने का कोई भी कारण नहीं था। परन्तु मान लीजिए कि उसमें कुछ कारणों से असामान्य फेर बदल हुए और जिनका कमेटी को पता था कि कमेटी को यह विश्वास था कि रुपया अपने पुराने विनिमय मूल्य की प्राप्ति नहीं कर पाएगा जो उसकी क्रय शक्ति को देखते हुए उचित था कि कमेटी को विनिमय की एक ऐसी दर निर्धारित कर देनी चाहिए थी जो रुपये की क्रय शक्ति की सीमाओं के भीतर होती। अब जो हुआ, कमेटी ने रुपये को ऐसा मूल्य स्थिर किया जो कभी भी रुपये का मूल्य नहीं रहा था। रुपये का मूल्य उसी क्रय शक्ति समता से अधिक निर्धारित करके कमेटी ने रुपये का मूल्य स्थिर करने की सरल सी समस्या की जगह एक कहीं बड़ी और बिल्कुल भिन्न समस्या पैदा कर दी जो रुपये के मूल्य की अवस्फीति करने की या उसका पूर्ण या मूल्य बढा देने की। यह लक्ष्य किस तरह प्राप्त किया जा सकता है? कमेटी ने इस समस्या पर विचार किया ही नहीं। और क्यों? क्या इसलिए कि चांदी का मूल्य बढ गया था? शायद ऐसा हो। परंतु यह बात सन्देहास्पद है कि क्या कमेटी को यह दृढ विश्वास था कि चांदी का मूल्य स्थायी रूप से इतना बढ जाएगा कि स्वर्ण के मुकाबले उसकी दर में संशोधन किया जाए। किसी भी व्यक्ति ने जिसने चांदी की कीमत में वृद्धि का अध्ययन किया है उन्हें पता चल गया होगा कि यह वृद्धि मुख्यतः सट्टेबाजी के आधार पर थी, स्थायी नहीं थी।

तालिका XLI

चांदी की स्टर्लिंग (पैंस) में* कीमत

वर्ष	उच्चतम	न्यूनतम	औसत	फेरबदल की सीमा
1913	$29\frac{3}{8}$	$25\frac{15}{16}$	$27\frac{9}{16}$	$3\frac{7}{16}$
1914	$27\frac{3}{4}$	$22\frac{1}{8}$	$25\frac{5}{16}$	$5\frac{5}{8}$
1915	$27\frac{1}{4}$	$22\frac{5}{16}$	$23\frac{11}{16}$	$4\frac{15}{16}$
1916	$37\frac{1}{8}$	$26\frac{11}{16}$	$31\frac{5}{16}$	$10\frac{7}{16}$
1917	55	$35\frac{11}{16}$	$40\frac{7}{8}$	$19\frac{11}{16}$
1918	$49\frac{1}{2}$	$42\frac{1}{2}$	$47\frac{9}{16}$	7
1919	$79\frac{1}{8}$	$47\frac{3}{4}$	$57\frac{1}{16}$	$31\frac{3}{8}$
1920	$89\frac{1}{2}$	$38\frac{7}{8}$	$61\frac{7}{16}$	$50\frac{5}{8}$
1921	$43\frac{3}{8}$	$30\frac{5}{8}$	37	$12\frac{3}{4}$

परंतु मान लीजिए कि चांदी की कीमत में सट्टेबाजी के कारण वृद्धि नहीं हुई, तो क्या इससे यह समझा जाए कि रुपये की कीमत बढा दी गई थी? कमेटी ने इसका निदान करते समय गंभीर भूल की। कमेटी के सामने प्रस्तुत तथ्यों से यह तथ्य रखे गए थे यह समझना कठिन है कि कोई व्यक्ति जिसे कीमतों के उतार-चढाव का सतही ज्ञान भी है, वह भी इस निष्कर्ष पर कैसे पहुंचेगा कि क्योंकि चांदी की कीमत बढ़ गई है इसलिए रुपये की कीमत भी बढ गई है। दूसरी ओर हुआ यह था कि चांदी और स्वर्ण सहित अन्य वस्तुओं के रूप में रुपये का मूल्य कम हो गया था। वास्तव में चांदी का मूल्य बढ़ने से रुपये का मूल्य कम हो गया था। आगे वाली तालिका पर इसका निर्णायक प्रभाव है।

* किरकेल्डीज कृत *'ब्रिटिश वार फाइनेंस*, 1921 से पृष्ठ 35, 1921 के आकड़े *इंडियन पेपर करेंसी* रिपोर्ट से लिए गए हैं।

तालिका–XLII

रुपये का मूल्य ह्रास

तिथि	भारत (बम्बई) में सोने की छड़ की 180 ग्रेन के एक तोला की कीमत	भारत (बम्बई) में चांदी का प्रति 100 तोला मूल्य	भारत में मूल्यों का सूचक अंक 1913=100
	रु. आने	रु. आने	
1914	24.10	65.11	—
1915	24.14	61.2	112
1916	27.2	78.10	125
1917	27.11	94.10	142
	(जुलाई) 34.0	(16 मई)117.2	178
1918	28	28 नवंबर 82.10	—
1918 अगस्त	30.0	—	—
1918 सितम्बर	32.4	—	—
1919 मार्च	32.0	113.00	200

इस तरह चांदी की कीमत में वृद्धि रुपये के मूल्य ह्रास के फलस्वरूप हुई कीमतों में आम वृद्धि का ही एक भाग था। कमेटी चाहती थी रुपये का स्वर्ण मूल्य बढाकर 10 रुपये प्रति सावरेन कर दिया जाए जबकि बाजार में सावरेन खरीदने के लिए इससे दुगुने रुपये देने पड़ते थे। स्वर्ण के रूप में रुपये का इतना ज्यादा ह्रास हो गया था कि कमेटी की रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने से कुछ महीने पहले कलकत्ता के अखबार "स्टेट्समैन" ने लिखा था:–

> "यदि आप देश में एक सावरेन ले कर उतरें तो सरकार इसे आप से ले लेगी और आप को बदले में 11 रु. 3 आने दे देगी। यदि आप देश के अंदर पहुंच जाएं और आपके पास सावरेन हो जिसे आप करेंसी आफिस ले जाएं तो आपको उसके लिए 15 रुपये मिल जाएंगे। दूसरी ओर यदि आप उसे बाजार में ले जाएं तो 21 रुपये देने वाले ग्राहक भी मिल जाएंगे।"

इस तथ्य को भारत सरकार के वित्त विभाग ने भी स्वीकार किया था कि इसमें बहुत काफी सच्चाई है।[1] इसके बावजूद कमेटी ने सिफारिश की कि रुपये को 2 शिलिंग के स्वर्ण मूल्य के समान माना जाए। कमेटी ने रुपये को चांदी के साथ संकुलित कर दिया और रुपये को प्रचलन में बनाए रखने तथा स्वर्ण

1. देखें माननीय मि. सिन्हा के प्रश्न के उत्तर में माननीय मि. हार्वर्ड का उत्तर 23 सितम्बर 1919, एस.एल.सी.पी. खण्ड 57, पृष्ठ 417

का विनिमय मूल्य बढाने की समस्या में अंतर करने में असफल रही। बाद वाला हल तभी व्यावहारिक था जब रुपये के मूल्य में वृद्धि हो जाती। परंतु हुआ यह कि रुपये की तुलना में चांदी की मूल्य वृद्धि हो गई। इसलिए एकमात्र सम्भव उपाय यह था कि रुपये की प्रस्तावित शुद्धता में कमी कर दी जाती। यदि कमेटी किसी भी अन्य वस्तु की तरह चांदी को रुपये से अलग वस्तु के रूप में मान कर चलती जिसका मूल्य रुपये में आंका जाता तो शायद वह ऐसी भीषण भूल न करती जो उसने कर दी थी। परंतु अधिक संभावना इस बात की है कि कमेटी ने यह कभी नहीं सोचा कि जिस बारे में कमेटी की रिपोर्ट देने के लिए कहा गया था, उसमें रुपयों की क्रय शक्ति का भी कोई महत्व हो सकता है। उसकी राय में तो महत्वपूर्ण बात यह थी कि रुपये का मूल्य बनाए रखने के लिए व्यापार संतुलन पक्ष में होना चाहिए और जब कमेटी ने रिपोर्ट का प्रारूप तैयार किया तब व्यापार संतुलन पक्ष में था। कमेटी ने विनिमय प्रतिमान के बारे में आम टिप्पणी करते हुए कहा थाः–

> "यह प्रणाली इस दृष्टि से प्रभावकारी सिद्ध हुई है कि रुपये का मूल्य 1 शिलिंग 4 पैंस से नीचे नहीं गिरा और जब तक अनुकूल व्यापार संतुलन वाले एक निर्यातक देश के रूप में भारत की स्थिति में कोई विशेष जोरदार परिवर्तन नहीं होता, तब तक यह समझने का कोई कारण नहीं कि स्थिति बुरी तरह बिगड़ जाएगी।[1]"

जब कमेटी ने इस दृष्टिकोण से प्रश्न पर विचार किया तो उसका यह तर्क देना बिल्कुल स्वाभाविक था कि यदि 1 शिलिंग स्वर्ण विनिमय पर व्यापार संतुलन अनुकूल बनाए रखा जा सकता है तो 2 शिलिंग स्वर्ण विनिमय पर क्यों अनुकूल नहीं बनाए रखा जा सकता?

और फिर यह निश्चय ही ऐसा अनुमान जो इस बात को स्पष्ट कर सकती है कि समिति की सिफारिशों को तब अपनाया गया जब उनके अपनाने की आवश्यकता ही खत्म हो गई थी। यदि रुपये का वास्तविक मूल्य उसके अंकित मूल्य से अधिक होता तो भी ऐसा कोई खतरा नहीं था कि रुपया प्रचलन से पूरी तरह लुप्त हो जाता क्योंकि भारत में रुपया भारी मात्रा में प्रचलन में है।[2] तब जो होता, वह यह नहीं था कि थोक ढंग से रुपयों को पिघलाया जाता बल्कि धीमे–धीमे और गैर कानूनी ढंग से भारत सरकार के जारी आदेश का उल्लंघन किया जाता कि रुपये के सिक्के पिघलाए न जाएं या उनका निर्यात न किया जाए। जिस समय (दिसम्बर 1919 में) कमेटी ने रिपोर्ट दी उस समय चांदी की

1. रिपोर्ट पैरा 33
2. देखें 1919 की कमेटी के समक्ष मि. केन्स का साक्ष्य पृ. 2665–68

कीमत निस्संदेह अधिक थी। परंतु जब सरकार ने इस रिपोर्ट पर कार्रवाई की (सन् 1920 में) तो चांदी की कीमतें गिरने लगी थीं। असल में 31 अगस्त 1920 को जब कौंसिल में रुपये का स्वर्ण मूल्य परिवर्तित करने का विधेयक पेश किया गया तब सोना 23¼ रूपये प्रति तोला के हिसाब से बिक रहा था, और जब कि सावरेन 10 रुपये के समान था तो सोने का बाजार भाव 15 रु.14 आने प्रति तोला होना चाहिए था ताकि रुपये के स्वर्ण से बाजार अनुपात और नए टकसाल अनुपात में 7½ रुपये या 33 प्रतिशत का अंतर होता। और फिर चांदी की कीमत भी गिर कर 44 पैंस के आसपास पहुंच गई थी। इसलिए इस बात का कोई खतरा नहीं था कि रुपये के सिक्कों को पिघला दिया जाता और इस तरह वे प्रचलन में न रहते।[1] परंतु इस अंतर के बावजूद सरकार ने रुपये का अधिक ऊंचा सम–मूल्य रखने में जल्दबाजी की। तथापि जल्दबाजी भरे इस कदम के पीछे का वित्तीय कारण स्पष्ट था। निकट भविष्य में जो संवैधानिक परिवर्तन होने जा रहे थे उनके अंतर्गत ब्रिटिश भारत में प्रांतीय और शाही या इम्पीरियल वित्त को एक दूसरे से पूरी तरह अलग कर दिया जाना था। वित्त की पुरानी प्रणाली के अंतर्गत सरकार यदि चाहे तो प्रांतीय सरकारों पर अंशदान के रूप में नजराना लगा सकती थी ताकि ऐसी अत्यावश्यक आवश्यकताएं पूरी की जा सकें जिन्हें वह अपने साधनों से पूरा नहीं कर सकती थीं। इसके अतिरिक्त हर बार प्रांतीय वित्त तय करते समय भी सबसे बड़ा भाग ले लिया करती थी। नए संविधान में उसे इस शक्ति से वंचित कर दिया जाना था। इसलिए सरकार राहत के किसी ऐसे स्रोत की खोज में थी जो किसी पर विशेष कर के समान न लगे। ऐसा करने के लिए ऊंची विनिमय दर एक बड़ा सुखद साधन था क्योंकि हिसाब लगाया गया था कि इससे होम चार्जेज या घरेलू प्रभार में बड़ी बचत हो जाती। परंतु मान लीजिए कि वित्तीय दृष्टिकोण से ऊंची विनिमय दर रखना वांछनीय था तो भी सवाल यह था कि इसे बनाए कैसे रखा जाए[2] जिस से सरकार कमेटी की रिपोर्ट पर कार्रवाई करने लगी, न केवल चांदी की कीमतें गिर गई थी और स्वर्ण के रूप में रुपये का भी स्पष्टतया मूल्य ह्रास हो गया था अपितु बाजार संतुलन भी भारत के प्रतिकूल हो गया था। किंतु असामान्य जल्दबाजी में बनाया गया यह कानून इस आशा से बनाया गया था कि कुछ समय बाद व्यापार संतुलन अनुकूल हो जाएगा जो रुपये का मूल्य 2 शिलिंग स्वर्ण पर बनाए रखने में मददगार होगा। उक्त कथन सरकारी गणना की सही व्याख्या है, यह उस पत्र से स्पष्ट

1. माननीय मि. टाटा का *इण्डियन काएनेज अमेंडमेंट बिल* पर भाषण; खंड 59 पृष्ठ 112
2. भारतीय विनिमय पर हाल की चर्चाओं में इस बात को पूरी तरह ओझल कर दिया गया है कि भारतीय विनिमय को 2 शिलिंग स्वर्ण तक बढाने के पीछे यह उद्देश्य था। परंतु 10 मार्च 1920 को रिवर्स कौंसिल्स के बारे में प्रस्ताव पर चर्चा में भाग लेते हुए वित्त सदस्य ने यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर दी थी। एल.एल.सी.पी. खण्ड 58, पृष्ठ 1292

हो जाता है जो सरकार ने बंगाल चैम्बर आफ कामर्स की मुद्रा के मोर्चे पर मिली पूर्ण असफलता की व्याख्या देते हुए लिखा था।[1] इसमें पहले वाणिज्य को बढावा देने के लिए अंतर्राष्ट्रीय ऋण स्वीकार करने की चर्चा करने के बाद पत्र में आगे कहा गया थाः–

"परंतु बाकी चीजों के लिए वह (अर्थात भारत सरकार) अब घटनाओं को स्वाभाविक तौर पर होने पर तथा निर्यात की उत्साहजनक परिस्थितियों पर और उसी के साथ आयात कम होने पर ही निर्भर रह सकती है ताकि विनिमय को मजबूत बनाया जा सके। अनुभव ने दिखा दिया है कि विश्वास की वर्तमान परिस्थिति में स्थिरता प्राप्त नहीं की जा सकती........ परंतु भारत सरकार को इस बात का कोई कारण नजर नहीं आता कि स्वाभाविक परिस्थितियों को ही........विनिमय दर उस स्तर पर क्यों न तय करने दी जाए जिसकी वकालत करेंसी कमेटी की रिपार्ट में की गई है।"

इन दोनों विचारों मे से कौनसा विचार ठीक है? क्या रुपये की कम क्रयशक्ति इसकी गिरावट की जिम्मेदार हे या प्रतिकूल व्यापार संतुलन इसका जिम्मेदार है? अब यहां यह बात तुरंत बता दी जानी चाहिए कि प्रतिकूल व्यापार संतुलन को विनिमय में गिरावट का उत्तरदायी बताना, भारत के सरकारी दस्तावेजों में एक नई चीज है। 1873 और 1893 के बीच विनिमय में आम तौर पर गिरावट आती रही परंतु किसी सरकारी अधिकारी ने कभी प्रतिकूल व्यापार संतुलन को इसके लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया। और क्या प्रतिकूल व्यापार संतुलन का सिद्धांत 1907, 1914, और 1920 में आने वाली गिरावट की अंतिम रूप से व्याख्या कर सकता है? सबसे पहले यदि सब दृश्य और अदृश्य वस्तुओं को ध्यान में रखा जाए तो किसी भी देश के व्यापार की तुलन पत्र (बैलेंसशीट) हमेशा संतुलित रहनी चाहिए। असल में तो इंडियन पेपर करेंसी रिपोर्टों के साथ जो प्रबन्ध संलग्न होता है जिनमें आमतौर पर यह बताया जाता है कि प्रतिकूल संतुलन विनिमय में गिरावट का कारण होता है, उसमें यह बताने में कभी चूक नहीं होती कि भारत से कुछ भी निष्कासन नहीं होता। इसमें एक–एक वस्तु के साथ यह दिखाया जाता है कि किस तरह भारत से होने वाले निर्यात की अदायगी आयात से होती है–उन वर्षों में भी जब विनिमय में गिरावट आ जाती है। सबसे विचित्र बात यह है कि वहीं ये रिपोर्टें प्रतिकूल व्यापार संतुलन की चर्चा बार–बार दुहराते हैं। यदि यह मान लिया जाए कि भारत के समूचे निर्यात की अदायगी हो जाती है तो यह समझना कठिन है कि संतुलन के बारे में और कुछ कहने की जरूरत क्या रहती है। व्यापार के जिस भाग का परिसमापन धन द्वारा किया जाता है,

1. यह पत्र टाइम्स आफ इंडिया के 20 नवम्बर 1920 के अंक में प्रकाशित हुआ था। पृष्ठ 14 कालम 1

उसे "संतुल्य" क्यों कहा जाता है? कोई व्यक्ति व्यापार संतुलन की छुरी–कांटे या किसी अन्य वस्तु के रूप में भी दिखा सकता है। दो देशो के व्यापारिक सौदों के बीच धन की जितनी मात्रा होती है, वह किसी भी अन्य वस्तु की तरह सापेक्ष मूल्यों के नियम पर आधारित होती है। यदि देश से पहले की अपेक्षा अधिक धन बाहर जाता है तो इसका सीधा–सादा मतलब यह है कि यह अन्य वस्तुओं की अपेक्षा सस्ता हो गया है। परंतु यदि प्रतिकूल संतुलन कोई चीज होती है अर्थात वस्तुओं का आयात वस्तुओं के निर्यात से बढ जाता है, तो फिर अगला सवाल यह पैदा होता है– निर्यात क्यों गिरते हैं और आयात क्यों बढ जाते हैं। दूसरे शब्दों में यदि व्यापार में साम्यावस्था बनी रहती है तो व्यापार संतुलन प्रतिकूल कैसे होता है? इस बात की कोई सरकारी व्याख्या नहीं है। वास्तव में सरकारी कागजों में इस प्रकार के प्रश्न की कल्पना ही नहीं की जाती। परंतु यह तो एक मूलभूत प्रश्न है। उल्लिखित आधार पर प्रतिकूल व्यापार संतुलन यह कहने का एक दूसरा ढंग है कि वह देश एक ऐसा बाजार बन गया है जहां बेचना तो अच्छा है और खरीदना बुरा है। अब एक बाजार बेचने के लिए अच्छा है और खरीदने के लिए बुरा तब होता है जब उस बाजार में कीमतें बाहर की कीमतों के स्तर से अधिक होती हैं। इसलिए यदि प्रतिकूल व्यापार संतुलन विनिमय में गिरावट का कारण होता है और यदि व्यापार संतुलन प्रतिकूल इसलिए होता है कि आंतरित कीमतें बाहरी कीमतों की अपेक्षा अधिक होती हैं, तो इसका यह निष्कर्ष निकलता है कि विनिमय में गिरावट मुद्रा की शक्ति में गिरावट के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और कीमतें बढने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रतिकूल व्यापार संतुलन की व्याख्या निर्णायक कारक से बस एक कदम पहले की व्याख्या होती है। इस समस्या को कोई किसी भी तरह रोकना चाहे, इस निष्कर्ष से नहीं बचा जा सकता कि रुपये के विनिमय मूल्य में गिरावट रुपये की क्रय शक्ति में गिरावट के परिणामस्वरूप होती है।

अब रुपये की क्रय शक्ति में गिरावट का क्या कारण है? रिपोर्ट आफ प्राइस इनक्वायरी कमेटी[1] यदि उपहास नहीं तो एक भ्रामक प्रपत्र जरूर है। उसमें अन्य कारणों[2] के साथ–साथ भारत में मूल्य वृद्धि का एक कारण यह भी बताया गया था कि जनसंख्या के मुकाबले माल की पूर्ति में कमी आई है। अब आमतौर पर

1. यह कमेटी 1910 में भारत में कीमतों में वृद्धि की जाच करने के लिए नियुक्त की गई थी और इसके सदस्य सर्वश्री दत्त, शिराज और गुप्ता थे। इसके पहले और अंतिम कमीश्नर भारत सरकार के वित्त विभाग के सदस्य थे। इसलिए इस कमेटी को कमोबेश सरकारी कमेटी माना जा सकता है। इस कमेटी की जांच के परिणाम 1914 मे 5 खंडों में प्रकाशित किए गए। इसमें पहले खंड की रिपोर्ट पर मि. दत्ता के हस्ताक्षर हैं।
2. देखें रिपोर्ट, पैरा 126-27

यह सिद्धात स्वीकार किया जाता है कि मूल्य निर्धारित करने का मुख्य कारण मुद्रा की मात्रा होता है, इसलिए कमेटी ने जो कारण बताया है, वह कुछ विचित्र सा लगता है। परंतु, इस बात को समझने के पर्याप्त कारण हैं कि कमेटी ने कीमतों में वृद्धि की यह अद्भुत व्याख्या क्यों दी। भारतीय मुद्रा की व्यवस्था में सरकार की स्थिति कुछ संवेदनशील है। कागजी मुद्रा जारी करने का प्रश्न पहले से ही सरकार के हाथों में था। टकसाल बन्द करने से इसने रुपये की मुद्रा की व्यवस्था भी अपने हाथों में ले ली। अब चूंकि रुपये के सिक्कों और कागजी मुद्रा अर्थात पूरी मुद्रा का नियंत्रण सरकार ने अपने हाथों में ले लिया है, इसलिए मुद्रा के जो भी परिणाम निकलेंगे, सरकार उसके लिए पूरी तरह जिम्मेदार होगी। तथापि यह नहीं भूल जाना चाहिए कि सरकार पर प्रतिपक्ष बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण हमले करते रहा और व्यंग्य बाणों में कमी नहीं करते। इस स्थिति के परिणामस्वरूप सरकार बहुत सावधानीपूर्वक चली है और बहुत सावधानीपूर्वक ही किसी बात को स्वीकार करती है। हार्नर के 1811 के प्रस्ताव पर वाद–विवाद में भाग लेते हुए लार्ड कैसलरीग ने कहा था कि जरूरत से ज्यादा जारी किए जाने के कारण बैंक नोटों का मूल्य ह्रास हो गया है और हाउस आफ कामन्स से पूछा था कि भले ही यह एक तथ्य हो परन्तु यदि सदन यह स्वीकार कर लेता कि मूल्य ह्रास है तो नेपोलियन क्या करता। भारत सरकार भी उसी स्थिति में है और उसे सोचना चाहिए कि यदि उसने यह या वह सिद्धांत स्वीकार कर लिया तो प्रतिपक्ष क्या करेगा। भारत सरकार के यह स्वीकार करने का यह कारण है कि प्रतिकूल व्यापार संतुलन से ही विनिमय में गिरावट आई है। जिस तरह कमेटी ने यह कहा है कि कीमतें माल की कमी के कारण बढ़ी हैं इन दोनों सिद्धांतों की व्याख्या में एक साझी बात यह है कि इसमें घटनाओं को सरकारी नियंत्रण से बाहर बताया गया है और इस तरह सरकार को किसी भी आरोप से बचा लिया गया है जो उस पर लगाया जा सकता था। यदि व्यापार संतुलन प्रतिकूल हो जाए तो सरकार क्या कर सकती है? और यदि वस्तुओं की सप्लाई कम हो जाए तो क्या यह सरकार का दोष है? सरकार ऐसे भारी कवचों के अंतर्गत सुरक्षित रह सकती है।[1] परंतु क्या कमेटी द्वारा दी गई व्याख्या के कारण यह व्याख्या गलत मान

1. तथापि यहां यह नोट किया जाना चाहिए कि वस्तुओं की कमी की जो व्याख्या सरकार को इस इलजाम से मुक्ति देने के लिए दी गई थी कि उसने मुद्रास्फीति की है, सरकार ने स्वयं अपने एक प्रस्ताव में उसका प्रतिवाद किया जिसमें कमेटी की रिपोर्ट की विवेचना की गई थी क्योंकि इसे स्वीकार करने का मतलब निकाला जा सकता था कि इस सरकार के अंतर्गत भारत दरिद्र होता जा रहा है। परंतु अपनी जल्दबाजी में सरकार ने यह नहीं देखा कि यदि इस सिद्धांत का भी प्रतिवाद कर दिया जाए तो भारत में कीमतों की वृद्धि के लिए एक ही कारण बना रहेगा कि मुद्रा जारी करने से इसकी मात्रा बढ़ा दी गई थी।

ली जाए कि भारत में कीमतों में वृद्धि का कारण मुद्रा की मात्रा में बढोत्तरी था। धन का मूल्य मुद्रा और वस्तुओं के (विनिमय के)[1] एक समीकरण के परिणाम पर आधारित होता है। इस समीकरण के दो पहलू हैं— मुद्रा का पहलू और वस्तुओं का पहलू। अर्थशास्त्रियों में यह विवाद युगों से चला आ रहा है कि जब विनिमय के समीकरण के परिणाम में परिवर्तन होता है अर्थात जब आय मूल्य स्तर में परिवर्तन आता है, तो इन दोनों में से निर्णायक कारण कौन सा होता है? कुछ अर्थशास्त्री धन के मूल्य या सामान्य शक्ति पर विचार करते समय समीकरण में धन के पहलू की अपेक्षा वस्तुओं के पहलू पर जोर देते हैं और उसे निर्णायक समझते हैं। उनके अनुसार यदि कीमतों में आम गिरावट आती है तो हो सकता है कि यह धन की कमी के कारण न हो अपितु वस्तुओं की पूर्ति में अधिकृता के कारण हो। इसी तरह यदि कीमतों में आम वृद्धि होती है तो यह धन की मात्रा में अधिकता की जगह वस्तुओं की मांग में कमी के कारण हो सकता है। इस ढंग से विचार किया जा सकता है जैसा कि कुछ अर्थशास्त्रियों ने अपनाया था, परन्तु यह कल्पना करना कि धन की मात्रा का सिद्धांत ही गलत सिद्ध हो गया है, एक गलती ही होगी। वास्तव में यह मत अपना कर धन की मात्रा के सिद्धांत को रत्ती भर भी हानि नहीं पहुंचा रहे हैं। वह उसी को अलग ढंग से व्यक्त कर रहे हैं। उनके इस मत में कमजोरी यह है कि इसमें यह बात ध्यान में नहीं रखी गई कि यदि वस्तुओं की अधिकता अथवा कमी में उसी के साथ–साथ मुद्रा को शामिल कर लिया जाए तो आय मूल्य स्तर पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। यदि वस्तुओं की मात्रा बढ़ जाए जिसमें मुद्रा की बढ़ी हुई मात्रा भी शामिल हो, तो इस बात का कोई कारण नहीं कि आम कीमतों का आय स्तर क्यों गिर जाए। इसी तरह यदि वस्तुओं की मांत्रा और उसी के साथ मुद्रा की मात्रा घट जाए तो इस बात का कोई कारण नहीं कि कीमतों का स्तर क्यों गिर जाए। इसी तरह यदि वस्तुओं की मात्रा घट जाए और इसी के साथ मुद्रा की मात्रा भी घट जाए तो इस बात का कोई कारण नहीं कि आम कीमतें क्यों बढ़ जाए। यदि वस्तुओं के रूप में व्याख्या की जाए, तो यह धन के मूल्य की मात्रा व्याख्या का उलटा नहीं है, जो कुछ ऊपर कहा गया है, उसे देखते हुए कमेटी के तर्क को बिना उसकी भाषा बदले हुए इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि भारत में कीमतों में वृद्धि इसलिए हुई कि वस्तुओं की पूर्ति में कमी आने क साथ–साथ मुद्रा की मात्रा में कमी नहीं आई। संक्षेप में रुपये की क्रय शक्ति इसलिए घटी क्योंकि मुद्रा आवश्यकता से अधिक मात्रा में जारी कर दी गई और इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं है कि 1893 में टकसालें बन्द होने के बाद से भारत में भारी मात्रा में मुद्रा जारी की गई।

1893–98 की पहली अवधि अपेक्षाकृत एकमात्र ऐसी अवधि थी जिसमें मुद्रा के विस्तार के बारे में विशेष रूप से सावधानीपूर्वक नीति अपनाई गई थी। उसका

1. कोष्ठक में दिए गए शब्द "प्राब्लम आफ रूपी" से ले कर डाले गए हैं।

कारण सर्वविदित है। उस समय टकसालें बन्द कर दी गई थीं और मुद्रा पहले ही फालतू मात्रा में उपलब्ध थी। तथापि यह अवधि भी मुद्रा के विस्तार से पूरी तरह मुक्त नहीं थी।[1] जिस समय टकसालें बंद की गई, उस समय लोगों के पास जो चांदी बुलियन थी, उनका चांदी का मूल्य घटने के कारण मूल्य ह्रास हो गया। जिन लोगों का इसमें स्वार्थ था, उन्होंने एक आंदोलन शुरू कर दिया जिससे सरकार को उनकी हानि की भरपाई के लिए विवश किया जा सके। अंततोगत्वा सर जेम्स मैके (अब लार्ड इंचकेय) सरकार को इस बात के लिए तैयार करने में सफल हो गए कि सरकार बैंकों से चांदी ले ले। सर मैके वही व्यक्ति थे जिन्होंने सरकार को टकसालें बन्द करने के लिए मजबूर किया। सरकार ने सैक्रेट्री आफ स्टेट को प्रस्ताव भेजा कि उसे हानि उठा कर भी, चांदी बेचने की अनुमति दी जाए बजाय इसके कि वह चांदी के सिक्के बनाए क्योंकि मुद्रा पहले ही फालतू मात्रा में बनी पड़ी है। चूंकि सैक्रट्री आफ स्टेट ने इंकार कर दिया इसलिए चांदी के सिक्के बना लिए गए और मुद्रा की मात्रा और भी बढ़ गई। 1893-94 में कौंसिल बिलों की रोक से खजानों में अस्थायी तौर पर सिक्कों का बड़ा भंडार जमा हो गया था। इससे व्यवहारतः मुद्रा में संकुचन आ गया। परंतु बाद में सरकार ने फैसला किया कि यह धन रेलों के निर्माण पर व्यय कर दिया जाए। इस नीति से परोक्ष रूप से मुद्रा में वृद्धि हो गई। 1894 के बाद कौंसिल बिल पुनः चालू करने का भी वही प्रभाव पड़ा क्योंकि बिलों की बिक्री में अतिरिक्त मुद्रा सम्मिलित होती थी। क्योंकि घरेलू खजाने के लिए वित्त व्यवस्था करने के लिए स्वर्ण उधार लेने पर भारी लागत आई इसलिए बिक्री पुनः शुरू करना क्षम्य था। परंतु जो बात बिलकुल अक्षम्य थी, वह कागजी मुद्रा के अस्थायी या फिडुशियरी भंडार को 8 करोड़ रु. से 10 करोड़[2] रुपये कर देना। इस तरह 2 करोड़ रुपये के सिक्के प्रचलन में आ गए विशेष कर इसलिए कि वित्तमंत्री ने इस बात पर विचार करने से ही इंकार कर दिया कि उसका मुद्रा नीति पर कोई प्रभाव पड़ेगा। उनका तर्क थाः—

> "मुझे इस बारे में थोडा सन्देह है कि मुद्रा के भंडार के निवेश के प्रश्न पर विचार करते समय क्या हम इस प्रकार के बाहरी प्रभावों पर विचार कर सकते हैं।"[3]

तथापि कुल मिला कर पहली अवधि में दूसरी अवधि (1900-1908) की तुलना में मुद्रा में वृद्धि नहीं के बराबर हुई। इस अवधि में सरकार ने प्रचलन में भारी मात्रा में मुद्रा डाल दी जिससे मुद्रा की मात्रा बेतहाशा बढ़ गई। इस अवधि में जो रुपये के सिक्के बनाए गए, उसके बारे में मि0 केन्स ने, जो सरकारी

1. देखें — एच.एम.एस कृत *'दी टाइम्स आफ दि स्टैंडर्ड'* कलकत्ता 1909, पृष्ठ 16-17
2. 1896 के एक्ट XV के द्वारा
3. फाइनेंशियल स्टेटमेंट 1896-97, पृष्ठ 89

नीतियों का विरोध करने वाले आलोचक थे, लिखा[1]

"सन 1900 में रुपये के सिक्कों का उल्लेखनीय पैमाने पर ढालना पुनः शुरू कर दिया गया – स्थिर वार्षिक मांग के फलस्वरूप – 1901-2 में मांग कम रही। (1903–4 में अधिक थी परंतु असामान्य कभी भी नहीं थी।) इसलिए टकसालें आराम से सिक्के ढाल कर कुछ समय आराम भी कर लेती थी यद्यपि 1903–4 में उन्हें मामूली सी कठिनाई हुई। 1905–6 को मांग तेजी से बढी और जुलाई 1905 से तो गैर सिक्के वाली चांदी के सिक्के बनाने के बावजूद नई सप्लाई मांग पूरी नहीं कर सकी। किन्तु यह थोड़ा सा अभाव सरकार के सिर चकराने के लिए काफी था। और एक बार जब उन्होंने तेजी से सिक्के बनाने शुरू किए तो फिर वह बराबर वैसा ही करती गई–बिना सामान्य बुद्धि का उपयोग करते हुए इस बात की प्रतीक्षा किए बिना कि 1906–7 का **व्यस्त मौसम** कैसा बीतेगा, सरकार गर्मी के महीनों में तेजी से सिक्के बनाती गई।...... 1906 की गर्मियों की तरह सरकार 1907 की गर्मियों में भी सिक्के ढालती गई बिना कोई प्रतीक्षा किए कि जब तक 1907-8 के मौसम की समृद्धि का आश्वासन नहीं मिल गया।"

स्पष्टतः इस अवधि में सरकार ने अपनी नीति कुछ इस ढंग से बनाई कि जैसे "एक समाज में मुद्रा की खपत निरन्तर भूख मिटाने के लिए ऐसे कर रही है जिस तरह अन्य समाजों में बीयर की खपत करते हैं।" इस अवधि में कागजी मुद्रा का भी काफी विस्तार हुआ। 1903 तक करेंसी नोटों का उपयोग सीमित था क्योंकि वे जारी किए जाने वाले सर्कल के बाहर वैध मुद्रा नहीं होते थे और फिर उनकी जगह केवल जारी करने वाले सर्कल दफ्तर से ही मिल सकती थी। भारत में कागजी मुद्रा के विस्तार पर यह एक बडा प्रतिबन्ध था। 1903 के अधिनियम VI द्वारा 5 रुपये के नोट को बर्मा के सिवाय समस्त ब्रिटिश भारत में सर्वमान्य बना दिया गया अर्थात वह सभी सर्कलों के लिए वैध मुद्रा बन गया और जारी किए जाने वाले सभी दफ्तरों से उसकी अदायगी ली जा सकती थी। इसके अतिरिक्त 1905 के अधिनियम III के अंतर्गत कागजी मुद्रा भंडार का निक्षेपी या फिडुशियरी भाग बढा कर 12 करोड़ रुपये कर दिया गया। पहले कदम का उद्देश्य तो नोटों के प्रचलन के व्यवहार को बढ़ावा देना था परंतु दूसरे कदम का उद्देश्य रुपया–मुद्रा का मूल्य कम करना था।

मुद्रा विस्तार की दृष्टि से तीसरी अवधि (1909–14) को अपेक्षाकृत संयत कहा जा सकता है यद्यपि वह भी कोई मन्दी का समय नहीं था। इस अवधि के पहले तीन वर्षों को रुपये के सिक्के जारी करने की दृष्टि से दबी हुई भावनाओं का वर्ष कहा जा सकता है। एक अपवाद 1910 का था जब रुपये के नए सिक्कों में कोई शुद्ध वृद्धि नहीं हुई और 1911 में भी जारी किए गए नए सिक्कों की

1. देखें उल्लिखित पृष्ठ 131–35

संख्या बहुत कम थी। 1909 और 1912 मे 24 से 30 लाख रुपये के सिक्के जारी किए गए। परंतु इस अवधि के अंतिम दों वर्षों में अचानक ही बहुत बडी मात्रा में रुपये के सिक्के जारी कर दिए गए और सिक्कों की कुल मात्रा 26½ करोड़ रुपये तक पहुंच गई। इस अवधि में कागजी मुद्रा का भी तेजी से विस्तार हुआ। 1909 में 5 रुपये का नोट बर्मा में भी सर्वत्र स्वीकृत मुद्रा मान लिया गया। इससे पहले इसे भारत के सभी भागों में स्वीकृत मुद्रा मान लिया गया था। इस अवधि में नोटों को सर्वत्र स्वीकृत करने की प्रक्रिया जारी रही और पेपर करेंसी अधिनियम (1910 का II) के अंतर्गत दिए गए अधिकार से 1910 में 5 रुपये और 50 रुपये तथा 1911 में 100 रुपये के नोट सर्वत्र स्वीकृत मान लिए गए। इसी के साथ अधिक मात्रा में कागजी मुद्रा को प्रोत्साहन दिया गया और 1911 के अधिनियम VII के अंतर्गत भारत सरकार ने वास्तव में कागजी मुद्रा के निक्षेपी या फिडुशियरी भाग को 12 करोड़ से बढ़ाकर 14 करोड़ रुपये कर दिया। इसी तरह प्रचलन में 2 करोड़ रूपये और आ गए।

चौथी अवधि (1915–20) में जितनी भी सावधानियां बरती जाती थी उन्हें तिलांजलि दे दी गई।[1] इसी अवधि में दूसरा महायुद्ध शुरू हुआ जिसके कारण भारतीय माल की मांग बहुत बढ गई और भारत को ब्रिटिश साम्राज्य की ओर से भी भारी व्यय करना पड़ा। इन दोनों के लिए सरकार को खरीद के अपने चालू साधनों में वृद्धि करनी पड़ी। इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए सरकार के पास तीन साधन थे–(1) सोने का आयात किया जाए, (2) रुपये के सिक्कों की मात्रा बढ़ाई जाए, और (3) कागजी मुद्रा में वृद्धि की जाए। इससे यह बिल्कुल नहीं समझना चाहिए कि भारत सरकार के पास आवश्यक मुद्रा मुहैया करने के साधन नहीं थे। भारत सरकार भारत में जो भी खर्च करती थी, लंदन में सेक्रेट्री ऑफ स्टेट को उसकी अदायगी कर दी जाती थी। इस तरह साधन प्रचुर मात्रा में थे। कठिनाई केवल यह थी कि उन्हें उचित खाते में कैसे बदला जाए। सामान्यतया सैक्रेट्री ऑफ स्टेट अपने पास उपलब्ध स्वर्ण से चांदी खरीद लेता है ताकि भारत में उससे रुपये के सिक्के बनाए जाएं। इस अवधि के पहले दो वर्षों में यही आम तरीका अपनाया गया था और इसी तरीके से मुद्रा की मात्रा बढ़ा दी जाती थी। परंतु चांदी के मूल्य बढ़ने से इस साधन की उपलब्धि कम हो गई। इस तरह सैक्रेट्री आफ स्टेट को दो बातों में से चुनाव करना था– या तो स्वर्ण बाहर भेजे या कागजी मुद्रा जारी करे। इसमें से पहले विकल्प को देशभक्ति पूर्ण नहीं माना गया था। वास्तव में तो सैक्रेट्री आफ स्टेट को विश्वास था कि साम्राज्यिक दृष्टिकोण से यह बात भी बिल्कुल अभद्रतापूर्ण होगी कि इंग्लैंड

1. इस अवधि की मुद्रा नीति के मुख्य स्रोत हैं उन वर्षों के भारत सरकार के वार्षिक वित्तीय विवरण।

में जो स्वर्ण इसके पास पड़ा है, उसे भारत के सोने की संज्ञा दी जाय। परंतु फिर भारत में मुद्रा की अतिरिक्त मांग कैसे पूरी की जाती? विचार विमर्श के बाद इस बात पर सहमति हुई कि भारत में बिना स्वर्ण के मुद्रा जारी करने का सर्वोत्तम तरीका सैक्रेट्री आफ स्टेट के लिए यह होगा कि उसे भारत की ओर से जो स्वर्ण मिले, वह उसका निवेश भारत की ओर से ब्रिटिश ट्रेजरी बिलों की खरीद में कर दे और भारत सरकार इन बिलों की जमानत के आधार पर मुद्रा के नोट जारी कर दे। अब यहां यह देखा जा सकता है कि इस तरह भारत में कागजी मुद्रा जारी करने के बुनियादी सिद्धांत में जोरदार संशोधन कर दिए गए। सिद्धांत यह था कि निक्षेपी (फिडुशियरी) नोटों की मात्रा बढ़ा दी जाए और ऐसा करने के लिए सुरक्षित धातु के एक भाग का निवेश तभी किया जाए जब काफी लम्बी अवधि बाद यह देखा जाए कि प्रचलन में कुल नोटों के मुकाबले सुरक्षित धातु के अनुपात से यह पता चले कि सुरक्षित निवेश का विस्तार करने की ओर धातु के सुरक्षित भंडार में कमी करने की आवश्यकता है। इस सिद्धांत का सबसे बड़ा प्रभाव यह था कि कागजी मुद्रा की मात्रा लोगों की आदतों पर निर्भर करती है क्योंकि किसी भी समय निक्षेपी नोटों की मात्रा उस सुरक्षित धातु भंडार के अनुरूप होती थी जो एक समय विद्यमान होते थे। नई योजना में पुराने सिद्धांत को त्याग दिया गया था और कागजी मुद्रा बिना किसी सुरक्षित धातु भंडार के जारी कर दी जाती है और उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कागजी मुद्रा की मात्रा लोगों की आदतों पर नहीं बल्कि सरकार की आवश्यकता पर और सरकार के पास विद्यमान सिक्युरिटी पर निर्भर करती थी। भारत सरकार ने यह आत्मघाती और सहज प्रक्रिया इतनी अधिक अपनाई कि चार वर्षों में ही इसे एक के बाद एक आठ अधिनियम पास करने पड़े और सिक्यूरिटीज के बदले वह नोट जारी करती गई। तालिका–XLIII से पता चलता है कि अधिनियम में कितनी सीमा निर्धारित की गई और उनके अंतर्गत असल में कितनी मुद्रा जारी की गई।

परंतु इस सरल प्रक्रिया को हमेशा के लिए तो जारी नहीं रखा जा सकता था क्योंकि उसका नोटों की परिवर्तनीयता पर बुरा असर पड़ता। फलतः कागजी मुद्रा की मात्रा बढाने से मुद्रा की मांग बढ़ी जिसने सरकार को इस बात के लिए विवश किया कि वह धातु की मुद्रा की व्यवस्था करे ताकि खरीद के चालू साधनों का इंतजाम किया जा सके और ढीली पड़ रही कागजी मुद्रा को भी सहारा दिया जा सके। चूंकि चांदी की कीमतें बढ़ रही थीं, इसलिए सरकार ने स्वाभाविक तौर पर सोने को अपनाया। 29 जून 1917 को एक अध्यादेश जारी किया गया जिसके अंतर्गत यह जरूरी हो गया कि भारत में आयात किया जाने वाला सारा सोना सरकार को स्टर्लिंग एक्सचेंज पर आधारित मूल्य पर बेंचना होगा और मोहरें बनाने के लिए बम्बई में एक टकसाल खोली गई।[1] विभिन्न स्थानों से स्वर्ण प्राप्ति के अनथक प्रयास किए गए। 9 जून 1917 को संयुक्त राज्य अमरीका के स्वर्ण के निर्यात पर रोक हटाने और दक्षिण अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया

1. 1918 का अधिनियम 14.

तालिका XLIII

जारी किए गए करेंसी नोट

	फिडुशियरी कागजी नोट जारी करने वाले अधिनियम						
I. फिडुशियरी नोटों की सीमा	1915का एक्ट V	1916का एक्ट IX	1917का एक्ट XI	1917का एक्ट XIX	1918का एक्ट VI	1919का एक्ट II	1919का एक्ट XXVI
				(लाख रुपयों में)			
(क) स्थायी	14,00	14,00	14,00	14,00	14,00	14,00	14,00
(ख) अंतरिम	600	12,00	36,00	48,00	72,00	86,00	106,00
कुल सीमा	20,00	26,00	50,00	62,00	86,00	100,00	120,00
II. कुल जारी करेंसी नोटों की संख्या	61,63	67,73	86,38		99,79	153,46	179,67*
स्वर्ण	32,34	23,57	19,22		10,79	37,39	47,44
चांदी	15,29	24,16	18,67		27,52	17,49	32,70
III. सुरक्षित (सिक्यूरिटियां)	14,00	20,00	48,49		61,48	98,58	99,53

* 30 नवम्बर 1919 की स्थिति। बाकी सभी आंकड़े 31 मार्च के हैं।

के सोने को बाजार में मुक्त रूप से आने देने के कारण, सरकार को इस धातु की कुछ सप्लाई मिली। 18 जुलाई 1919 से कनाडा में ओटावा स्थित टकसाल में जमा किए गए सोने के सिक्कों या सोने को चालू विनिमय दरों पर तार द्वारा हस्तांतरित करने की सुविधा दी गई और 22 अगस्त 1919 से न्यूयार्क में प्रतियोगी निविदाओं के आधार पर यह सुविधा दी गई। लन्दन और संयुक्त राज्य अमरीका में सीधे स्वर्ण खरीदने की भी व्यवस्था की गई। अंत में स्वर्ण के निजी आयात को प्रोत्साहन देने के लिए 15 सितम्बर 1919 से अर्जन दर में तब्दीली की गई ताकि स्टर्लिंग के ह्रास को ध्यान में रखा जा सके। परन्तु इस तरह जो सोना मिला, वह नगण्य मात्रा में था और फिर सोने के सिक्के जारी करने से भी उस उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हुई जो सरकार के मन में था– कि ये सिक्के प्रचलन में बने रहें। जिस तरह की स्थिति बनी हुई थी, उसमें यह असम्भव था। स्वर्ण की तुलना में रुपये के मूल्य का भारी ह्रास हो गया। फलतः चालू विनिमय की दर पर सरकार जैसे ही स्वर्ण के सिक्के जारी करती बाजार में आने के साथ ही गायब हो जाते थे। इसलिए सरकार केवल यही कर सकी कि सोने और चांदी के सिक्कों का उपयोग मुद्रा के अतिरिक्त अन्य किसी भी ढंग से उपयोग करने पर पाबंदी लगा दी गई और उनका निर्यात भी बंद कर दिया गया। ऐसा सरकार ने 29 जून और 3 सितम्बर 1917 की अधिसूचनाओं द्वारा किया। सरकार जब यह समझ गई कि वह स्वर्ण पर निर्भर नहीं रह सकती तो उसने रुपये के सिक्के जारी करने के प्रयास तेज कर दिए। रुपये की धातु की खरीद सुविधाजनक बनाने के लिए 3 सितम्बर 1917 से निजी ढंग से चांदी का आयात बन्द कर दिया गया। तथापि इस कदम से थोड़े से ही छोटे–मोटे प्रतियोगी रास्ते से हटे और दुनिया में चांदी की मांग इतनी अधिक थी कि सैक्रेट्री आफ स्टेट को पर्याप्त मात्रा में चांदी मिली ही नहीं यद्यपि चांदी की बहुत बचत छोटे सिक्कों में चांदी की जगह निकल[1] का उपयोग सहायक रूप में किया गया और एक रुपये[2] तथा रु. 2.8[3] के नोट भी जारी किए गए। संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार से भी यह अनुरोध किया गया कि उसके रिजर्व में पड़े चांदी के डालरों का एक भाग मुक्त कर दिया जाए। अमरीकी सरकार इस बात से सहमत हो गई और उसने पिटमैन एक्ट पास किया जिसके अंतर्गत भारत सरकार ने 101½ सेंट प्रति औंस की दर से पर्याप्त मात्रा में चांदी प्राप्त कर ली। इस अवधि में जो कुल चांदी प्राप्त की गई, उसका विवरण इस प्रकार है:–

1. 1918 का एक्ट IV और 1919 का एक्ट XXI-I
2. पहली बार 1 दिसम्बर 1917 को जारी किए गए।
3. पहली बार 2 जनवरी 1918 से प्रचलन में आए।

तालिका XLIV

रुपये के सिक्कों की ढलाई, 1915–20

वर्ष	खुले बाजार में खरीदी गई चांदी (स्टैंडर्ड औंस)	संयुक्त राज्य अमरीका से खरीदी गई चांदी (स्टैंडर्ड औंस)	कुल स्टैंडर्ड औंस
1915-16	8,636,000	—	—
1916-17	124,535,000	—	—
1917-18	70,923,000	—	—
1918-19	106,410,000	152,518,000	—
1919-20	14,108,000	60,875,000	
योग	324,612,000	213,393,000	538,005,000

अब जब हम यह देखते हैं कि 1900 से 1914 तक सरकार ने 53 करोड़ 20 लाख स्टैंडर्ड औंस चांदी के सिक्के बनाए थे[1] तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि इन पांच वर्षों में चांदी के सिक्कों की मात्रा पिछले 14 वर्षों की अपेक्षा 50 लाख औंस अधिक थी।

इस तरह अपरिवर्तनीय मुद्रा असीमित मात्रा में जारी करने की शक्ति का उपयोग करने का एक अपरिहार्य परिणाम था कि रुपये के स्वर्ण मूल्य में गिरावट आई। इतिहास में ज्ञात सभी अपरिवर्तनीय मुद्राओं का ही ह्रास हुआ है। परन्तु यह कहा जाता है कि रुपये की मुद्रा को इसका एक अपवाद मानना चाहिए क्योंकि यदि सरकार को इसे असीमित मात्रा में जारी करने की छूट है तो गिरावट होने की दशा में सरकार के पास इन दुष्प्रभावों को सुधारने के उपाय भी हैं। इसलिए अब हमें इन उपायों की जांच करनी चाहिए।

इस तर्क का आधार यह है कि रुपया एक प्रतीक या टोकन मुद्रा है और यदि प्रतीक मुद्रा का मूल्य स्वर्ण में प्रतिदान के सिद्धांत लागू करके स्वर्ण के सममूल्य पर बनाए रखा जा सकता है[2] तो वही प्रक्रिया अपना कर रुपये को स्वर्ण के समतुल्य रखा जाना भी संभव होना चाहिए। जरूरत इस बात की है कि स्वर्ण

---

1. तुलना करें ये आंकड़े एल. अब्राहम ने 1919 की करेंसी कमेटी के समक्ष अपने साक्ष्य में दिए थे—साक्ष्य के कार्यवृत्त, प्रश्न 37—41
2. इस संबंध में लाफलिन कृत *'प्रिंसिपल आफ मनी'* अध्याय XV में प्रतीक मुद्रा के बारे में एक रोचक विवाद पढ़ा जा सकता है। लगे हाथों यह बताया जा सकता है कि लाफलिन मुद्रा के द्रव्य परिमाण सिद्धांत का विरोधी है परंतु प्रतीक मुद्रा के बारे में इस विवाद में वह असल में इस सिद्धांत को मान लेता है।

का पर्याप्त कोष हो और जब तक सरकार के पास यह कोष है, तब तक हम इस बारे में आश्वस्त हो सकते हैं कि हमें रुपये के मूल्य में सम्भावित गिरावट आने की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भारत सरकार के पास ऐसा कोष है और सभी तीनों अवसरों पर जब रुपये का स्वर्ण मूल्य सममूल्य से अधिक गिरा तो इस कोष का सहारा लिया गया। प्रतिदान की यह क्रिया मुख्यतः तीन तरीकों से की जाती है–(1) रिवर्स कौंसिल्स की बिक्री से जिसके द्वारा सरकार लन्दन में सोना लौटा कर रुपये प्राप्त कर सकती है; (2) भारत में रुपये प्राप्त करने के लिए आंतरिक रूप से सोना मुक्त कर सकती है; (3) सैक्रेट्री आफ स्टेट के कौंसिल बिलों को रोक कर अधिक रुपयों को प्रचलन में आने से रोक सकती है। कहा जाता है कि इन सबका कुल प्रभाव यह पड़ेगा कि इससे मुद्रा में संकुचन आएगा और उसका मूल्य सममूल्य पर पहुंच जाएगा। यद्यपि इन तीनों उपायों का उपयोग किया जा सकता है, तथापि सरकार प्रतिदान की प्रक्रिया का उपयोग ही सबसे अधिक करती है। इन तीनों अवसरों पर प्रतिदान का कितना उपयोग किया गया था, यह तालिकाएं XLV, XLVI, XLVII तथा XLVIII से स्पष्ट है जो अगले पृष्ठों पर दी गई हैं।

पिछले दो अवसरों पर इस प्रक्रिया की सफलता से इस विश्वास को बल मिला है कि इससे रुपये का मूल्य पुनः स्थापित किया जा सकता है। परंतु 1920 के संकट के समय इस प्रक्रिया की असफलता से इस प्रक्रिया के सामान्य रूप से कारगर होने पर संदेह पैदा हो गया। यह नहीं कहा जा सकता कि विनिमय दर इसलिए सफल नहीं हुई क्योंकि यह प्रक्रिया अमल में नहीं लाई गई थी। तथापि दूसरी ओर 1920 में रिवर्स कौंसिल्स की बिक्री के बारे में सरकार के विचारों में 1907-08 के संकट के दौरान के मुकाबले बहुत परिवर्तन आ गया था। उस संकट के समय सरकार ने एक कृपण की तरह व्यवहार किया था; वह अपने स्वर्ण भंडार पर जम कर बैठी हुई थी और जिस उद्देश्य के लिए स्वर्ण भंडार की स्थापना की गई थी, उसके लिए सरकार ने उसका उपयोग करने से मना कर दिया। एक एकाउंटेंट जनरल को "घुटनों के बल चलाकर" भारत सरकार को इस बात के लिए राजी रखना पड़ा था कि वह सोने को मुक्त कर दे।[1] 1907 में स्वर्ण भंडार का उपयोग न कर सकने पर चैम्बरलेन कमीशन ने इसको तो डांट पिलाई थी, शायद उसे ध्यान में रखते हुए 1920 के संकट के समय सरकार ने रिवर्स कौंसिल्स बेचने की नीति पर इतने साहसपूर्वक परिकल्पना की, आम जनता ने अज्ञानतावश इस नीति की बहुत अधिक आलोचना की कि यह तो 'संगठित लूट' है? परंतु वित्तमंत्री अविचलित रहे और उन्होंने तर्क दिया कि[2]:–

1. चैम्बरलेन कमीशन के सामने मि0 एफ.सी हैरिसन का साक्ष्य, पृ. 10, 209
2. रिवर्स कौंसिल्स प्रस्ताव पर भाषण, 10 मार्च 1920, एस.एल.सी.पी खण्ड 518 पृष्ठ 1291

तालिका XLV

1. मुद्रा का प्रतिदान

तिथि	रिवर्स कोंसिल्स की बिक्री से		सरकार के पास उपलब्ध सोने के स्टाक में से महीने में निकाला गया सोना	महीने के दौरान सोने के सिक्कों का प्राइवेट निर्यात	सैक्रेट्री आफ स्टेट का आह्वान
	प्रस्तावित रकम	बेची गई रकम			
	पौंड £	पौंड £	पौंड £	पौंड £	पौंड £
1907–					
सितम्बर	---	---	152,000	14	858,596
अक्तूबर	---	---	254,000	9109	921,678
नवम्बर	---	---	532,000	3	427,344
दिसम्बर	---	---	338,000	2501	571,905
1908					
मार्च, 26	500,000	70,000	226,000	...	172669 (पूरे महीने के लिए)
अप्रैल 2	500,000	449,000			
अप्रैल 9	500,000	340,000			
अप्रैल 16	500,000	441,000	461,000	...	66,834
अप्रैल 23	500,000	329,000			
अप्रैल 30	500,000	205,000			
मई 7	500,000	81,000			
मई 14	500,000	145,000	645,000	...	62,764
मई 21	820,000	793,000			
मई 28	500,000	500,000			
जून 4	1000,000	75,000			
जून 11	1000,000	70,000	334,000	...	169,810
जून 18	500,000	Nil			
जून 25	500,000	50,000			
जुलाई 2	500,000	470,000			
जुलाई 9	500,000	304,000			
जुलाई 16	500,000	500,000	16,000	...	186,847
जुलाई 23	1000,000	968,000			
जुलाई 30	1000,000	860,000			
अगस्त 6	1000000	418000			
अगस्त 13	500000	310000	354,000	...	262,217
अगस्त 20	500000	नगण्य			
अगस्त 27	500000	नगण्य			
सितम्बर 3	500000	नगण्य	502,000	—	1,431,012
सितम्बर 10	500000	नगण्य			
योग	15,320,000	8,058,000	4,394,000	2,49,942	...

तालिका XLVI

II 1914–16 में प्रतिदान

तिथि	रिवर्स कौंसिल्स 1000 पौंड में	सैक्रेट्री आफ स्टेट का आहरण (लाख रुपये)
1914 अप्रैल	शून्य	270
मई	"	61
जून	"	68
जुलाई	"	66
अगस्त	2,778	72
सितम्बर	1,515	25
अक्तूबर	1,895	41
नवम्बर	1,044	32
दिसम्बर	1,250	30
1915 जनवरी	225	29
फरवरी	शून्य	181
मार्च	"	287
	योग 8,707	**1,162**
1915 अप्रैल	शून्य	1,53
मई	"	1,03
जून	651	17
जुलाई	3,377	8
अगस्त	815	26
सितम्बर	50	2,17
अक्तूबर	शून्य	2,25
नवम्बर		2,02
दिसम्बर	"	3,28
1916 जनवरी	"	5,26
फरवरी	"	6,02
मार्च	"	6,33
योग	**4,893**	**30,37**

तालिका XLVII

III. 1920 में किया गया प्रतिदान

रिवर्स कौंसिल्स की बिक्री (आंकड़े हजार पौंड में)

बिक्री की तिथि		हर बिक्री के लिए प्रस्तुत रकम की मांग	हर बिक्री के लिए प्रस्तुत रकम	हर बिक्री में विक्रय की रकम	हर बिक्री राशि का प्रगामी योग
1920	जनवरी 2	1,000	770	770	770
	जनवरी 8	1,000	8,499	990	1,760
	जनवरी 15	2,000	300	300	2,060
	जनवरी 22	2,000	4,890	2,000	4,060
	जनवरी 29	2,000	1,334	5,000	5,394
	फरवरी 5	2,000	32,390	2,000	7,394
	फरवरी 12	2,000	41,312	2,000	12,394
	फरवरी 19	2,000	122,335	2,000	14,394
	फरवरी 26	2,000	78,417	2,000	16,394
	मार्च 3	2,000	64,931	2,000	18,394
	मार्च 11	2,000	117,185	2,000	20,394
	मार्च 18	2,000	153,559	2,000	22,394
	मार्च 25	2,000	56,295	2,000	24,394
	मार्च 31	2,000	35,050	1,988	26,382
	अप्रैल 1				
	अप्रैल 8	2,000	16,721	2,000	28,382
	अप्रैल 15	2,000	48,270	2,000	30,382
	अप्रैल 22	2,000	59,020	2,000	32,382
	अप्रैल 29	1,000	53,210	1,000	33,382
	मई 6	1,000	89,514	1,000	34,382
	मई 13	1,000	101,625	1,000	35,382
	मई 20	1,000	122,279	1,000	36,382
	मई 26	1,000	85,620	1,000	37,382
	जून 3	1,000	101,821	1,000	38,382
	जून 10	1,000	109,245	1,000	39,382
	जून 15	1,000	122,991	1,000	40,382
	जून 24	1,000	73,391	1,000	41,382
	जुलाई 1	1,000	106,751	1,000	42,382
	जुलाई 8	1,000	63,690	1,000	43,382
	जुलाई 15	1,000	101,830	1,000	44,382
	जुलाई 22	1,000	103,960	1,000	15,382
	जुलाई 29	1,000	75,486	1,000	46,382
	अगस्त 5	1,000	101,260	1,000	47,382
	अगस्त 12	1,000	112,230	1,000	48,382
	अगस्त 19	1,000	114,767	1,000	49,382
	अगस्त 26	1,000	117,390	1,000	50,382
	सितम्बर 2	1,000	126,425	1,000	51,382
	सितम्बर 7	1,000	117,200	1,000	52,382
	सितम्बर 13	1,000	115,095	1,000	53,382
	सितम्बर 21	1,000	122,590	1,000	54,382
	सितम्बर 28	1,000	120,050	1,000	55,382

सरकार ने रिवर्स काउंसिल्स को न केवल बड़े पैमाने पर बेचा बल्कि आन्तरिक परिचालन हेतु स्वर्ण को भी रुपयों में बेचा, जो उसने पहले कभी नहीं किया था।

तालिका XLVIII
III. 1920 में किया गया प्रतिदान
स्वर्ण की बिक्री

बिक्री की संख्या	बिक्री की तिथि	स्वीकृत निविदा की न्यूनतम दर	स्वीकृत निविदा की औसत दर	बिक्री की गई मात्रा (तोलों में)	बम्बई के बाजार में देशी सोने की सिल्ली की कीमत
		रु. आ. पा.	रु. आ. पा.		रु. आ. पा.
1.	1919 सितम्बर 3	25 8 0	26 12 1	3,29,130	28 10 0
2.	सितम्बर 17	24 8 0	24 10 0	3,96,640	26 1 0
3.	अक्तूबर 6	25 8 0	25 9 8	3,26,000	27 0 0
4.	अक्तूबर 20	26 15 3	27 0 2	3,34,000	28 0 0
5.	नवम्बर 3	27 14 6	27 15 6	3,25,000	28 5 0
6.	नवम्बर 17	26 15 0	27 0 11	5,18,500	26 2 0
7.	दिसम्बर 8	26 0 6	26 4 6	10,00,650	27 10 0
8.	1920 जनवरी 5	26 4 3	26 7 9	7,63,300	27 3 0
9.	जनवरी 19	26 13 3	26 14 7	8,00,000	27 5 0
10.	फरवरी 5	25 2 3	25 9 7	7,56,450	25 6 0
11.	फरवरी 19	16 2 3	21 9 4	9,60,590	26 4 0
12.	मार्च 3	18 8 0	16 12 1	12,96,125	21 7 0
13.	मार्च 17	21 6 0	21 7 7	12,53,325	22 13 0
14.	अप्रैल 7	22 7 3	22 9 4	12,46,200	24 0 0
15.	अप्रैल 21	23 7 4	23 8 6	10,68,175	24 4 0
16.	मई 5	20 13 3	21 3 2	11,96,750	21 8 0
17.	मई 19	21 0 3	21 1 7	12,46,050	21 12 0
18.	जून 9	21 8 9	21 9 8	11,32,350	22 2 6
19.	जून 23	20 14 10	21 0 5	12,23,250	21 8 0
20.	जुलाई 7	21 1 4	22 2 2	12,81,500	21 6 0
21	जुलाई 21	22 0 1	22 0 11	12,42,000	22 5 0
22.	अगस्त 4	22 5 6	23 6 3	12,78,950	23 7 0
23.	अगस्त 19	23 9 4	23 10 2	5,54,500	23 7 0
24.	सितम्बर 1	22 8 3	22 10 8	8,27,700	23 1 6
25.	सितम्बर 14	23 9 4	23 12 11	2,30,500	23 8 0
			योग	2,15,89,635	

1920 में सैक्रेट्री आफ स्टेट ने भारत सरकार पर कौंसिल बिलों का आहरण नहीं किया।

"यह हमारी विनिमय नीति का एक अभिन्न अंग है------ कि हम न केवल लगभग गोल्ड पाइंट पर कौंसिल बिल्स के जरिए लन्दन से भारत को प्रेषण करें बल्कि विनिमय की निर्बलता के समय भी गोल्ड पाइंट पर ही भारत से लन्दन को भी स्टर्लिंग प्रेषण की, या जिसे रिवर्स कौंसिल्स कहते हैं उसकी बिक्री की व्यवस्था होनी चाहिए। सीधी-सादी भाषा में यह स्वर्ण के निर्यात का विकल्प है। यह कोई नई बात नहीं है। हम वर्षों से रिवर्स कौंसिल्स बेच रहे हैं..... और जब तक हम ऐसा नहीं करेंगे, विनिमय नीति प्रभावकारी नहीं होगी।..... यही कारण है और एकमात्र कारण है कि हमने रिवर्स कौंसिल्स बेचे हैं...... वास्तव में यह विनिमय दर को गोल्ड पाइंट के निकटतम रखने का प्रयास है..... यदि हम दबाव के आगे झुक गए और कौंसिल बिल बेचने बिल्कुल बन्द कर दिए तो उसका क्या परिणाम होगा? मैं यह मांग तो समझ सकता हूं कि रिवर्स कौंसिल्स किसी अन्य तरीके से बेचे जाएं या वर्तमान में लागू दरों से भिन्न दरों पर बेचे जाएं परंतु मुझे यह मांग समझ में नहीं आती कि रुपयों को बाहरी मुद्रा में बदलने की सुविधाएं बिल्कुल वापस ले ली जाएं। बम्बई में कहा जाता है कि विनिमय को अपने 'स्वाभाविक स्तर' पर आने दिया जाए। इस सूत्र शब्द का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हाल में जिस विचार को लेकर इस शब्द का उपयोग किया गया है, विनिमय में 'स्वाभाविक स्तर' जैसी कोई चीज नहीं होती क्योंकि जब हम आंतरिक मुद्रा को किसी और मुद्रा में बदलते हैं, तो कोई ऐसा सामान्य मापदण्ड होना चाहिए जिसके लिए दोनों मुद्राएं लाई जा सकें, यह सोना भी हो सकता है, या चांदी भी, स्टर्लिंग भी, स्पेन का पेसेटा भी, जिसे आधार बनाया जा सकता है। रुपये को भी किसी चीज से जोड़ना चाहिए[1], और जब उसे किसी चीज से जोड़ा जाए तो उसकी एक निश्चित दर होनी चाहिए, और इसके लिए यह जरूरी है कि कभी-कभी हमें रिवर्स कौंसिल्स बेचने के लिए भी तैयार रहना चाहिए ताकि हम इस दर को बनाए रख सकें। यदि रिवर्स कौंसिल्स को पूरी तरह वापस ले लिया जाए तो हमारा न तो स्वर्ण प्रतिमान (स्टैंडर्ड) होगा, न स्वर्ण विनिमय प्रतिमान होगा और न ही किसी और किस्म का प्रतिमान।"

---

1. 21 जून 1920 के अध्यादेश III के द्वारा भारतीय सिक्का ढलाई अधिनियम (1906 का III) की धारा 11 में वर्णित स्वर्ण सिक्के भुगतान के लिए खाते के लिए या वैध मुद्रा नहीं रहे पर यह व्यवस्था की गई कि 21 दिन की अवधि में 15 रुपये की दर से सरकार उन्हें स्वीकार कर लेगी। यहां अध्यादेश 9 सितम्बर 1920 तक लागू रहा जब 1920 के अधिनियम XXXVI द्वारा पौंड (सावरेन) को पुनः वैध मुद्रा बना दिया गया। इस अवधि में भारत में सोने को कोई वैध दर्जा प्राप्त नहीं था।

परंतु उससे यह प्रश्न पैदा होता है – यदि रिवर्स कौंसिल्स से विनिमय को ठीक किया जा सकता है, तो फिर इसका प्रभाव इतना विनाशकारी असफल क्यों रहा? वित्तमंत्री ने इसका उत्तर बड़े रूखे और अकाट्य शब्दों में दिया। उन्होंने कहाः–

"यदि हम रुपये के बाजार भाव और उसकी सैद्धांतिक स्वर्ण-कीमत का अंतर कम करने में असफल रहे हैं.... तो उसका कारण यह नहीं है कि हमने बहुत ज्यादा रिवर्स कौंसिल बेचे हैं; किन्तु यह है कि हमने बहुत कम बेचे हैं। मैं यहां उपस्थित व्यापारी समुदाय के किसी भी सदस्य से पूछता हूँ, और बिना किसी खंडन के भय के पूछता हूं कि यदि हमारे साधनों ने अनुमति दी होती... और यदि हम दो, तीन या चार करोड़ के रिवर्स कौंसिल बेच सकते; तो रुपये के बाजार भाव और उसकी सैद्धांतिक स्वर्ण कीमत में शायद कोई भी अंतर न रहता। हमारी कठिनाइयों में से एक यह नहीं रही कि हमने बहुत अधिक रिवर्स कौंसिल बेचे हैं, अपितु यह रही है कि हम बहुत कम रिवर्स कौंसिल बेचने के लिए मजबूर थे।"[1]

इस तर्क में कुछ वजन जरूर होता बशर्ते कि बेचे हुए रिवर्स बिलों की राशि "बहुत कम" होती। केवल दो, तीन या चार करोड़ के रिवर्स बिल नहीं बेचे गए थे बल्कि 5.50 करोड़ के रिवर्स बिल बेचे गए थे। इसके अतिरिक्त देश में भी बड़ी मात्रा में स्वर्ण जारी किया गया और कौंसिल बिलों को पूरी तरह रोक दिया गया। फिर भी रुपये का मूल्य 1 शिलिंग 4 पैंस स्टर्लिंग से अधिक नहीं बढ़ा, 2 शिलिंग स्वर्ण तक पहुंचने की बात तो दूर रही। रिवर्स कौंसिल्स की बिक्री इतनी क्यों नहीं की गई कि विनिमय ठीक हो जाता? इसलिए इसके प्रतिदान की कारगरता के समूचे प्रश्न पर विचार करना चाहिए।

यह जरूरी है कि शुरू में ही यह समझ लिया जाए कि प्रतिदान से यह भी हो सकता है कि एक मुद्रा की जगह दूसरी मुद्रा ले ले और या एक मुद्रा प्रचलन से ही हट जाए। जहां तक एक मुद्रा की जगह दूसरी मुद्रा ले लेती है, उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि इस प्रतिस्थापन से मुद्रा का संकुचन नहीं होता।[2] किसी मुद्रा का मूल्य पुनःस्थापित करने के लिए यह जरूरी होता

1. उल्लिखित पृष्ठ 130।
2. इसका सबसे उल्लेखनीय उदाहरण है अमरीकी बैंक नोट (ग्रीनबैक्स)। 1875 के कानून के अंतर्गत 1879 तक उनका प्रचलन काफी कम कर दिया गया था ताकि सोने से उनकी समानता बनाए रखी जा सके। परंतु 1879 में इसका प्रतिरोधी कानून बराबर ऐसे 347,000,000 नोट प्रचलन में रखे गए। जैसे ही उसे निष्क्रिय किया जाएगा, वैसे ही उन्हें दोबारा जारी करना ही पड़ेगा। उन्हें बन्द नहीं किया जा सकता था।

है कि उसका संकुचन किया जाए अर्थात उसका अपसरण कर दिया जाए उसे रद्द कर दिया जाए। इस प्रक्रिया के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि किस सीमा तक उसे निष्पादन किया जाता है अपितु यह है कि किस सीमा तक उसे प्रचलन से निकाला जाता है। वर्तमान काल में प्रचलित विचारधारा के अनुसार बिना कोई प्रश्न उठाए यह स्वीकार कर लिया जाता है कि यह भारत सरकार और सैक्रेट्री आफ स्टेट के स्वंर्ण साधनों पर निर्भर करता है। सबसे पहले हम यह स्पष्ट कर दें कि ये स्वर्ण साधन किन स्थानों पर स्थित हैं और किस तरह वितरित किए जाते हैं। यहां यह स्मरणीय है कि स्वर्ण साधन (1) कागजी मुद्रा रिजर्व, (2) स्वर्ण प्रतिमान रिजर्व और (3) सैक्रेट्री आफ स्टेट के रोकड़ शेष के बीच वितरित रहते हैं। जब विनिमय का संकट पैदा हो तो इन साधनों पर जिन्हें तीन "रक्षा पंक्तियां" कहने का रिवाज बन गया है, सरकार आराम से निर्भर कर सकती है। परंतु क्या ये सचमुच ऐसी हैं? यदि दो सब मुक्त साधन हों अर्थात विनियोजित साधन न हों, तभी अपसरण के लिए ये निर्भरता योग्य हो सकते है। किस हद तक ये गैर–विनियोजित होते हैं? क्या सैक्रेट्ररी ऑफ स्टेट कागजी मुद्रा के भंडार के पीछे रखे स्वर्ण को वापस ले सकता है? हाँ ले सकता है। परंतु तब उसे स्वर्ण की जगह बदले में और कुछ रखना पड़ेगा या उतने नोट रद्द करने पड़ेंगे। क्या सैक्रेट्री आफ स्टेट अपने रोकड़ शेष में से स्वर्ण ले सकता है। हाँ, ले सकता है। परंतु तब उसे अपने खजाने को भरने के लिए उधार लेना पड़ेगा या भारत सरकार के बूते पर खर्च करेगा बशर्ते कि कोई उसके बिल खरीदने को तैयारं हो जो रुपये की मुद्रा जारी करने के समान है। कागजी मुद्रा के रिजर्व में और रोकड़ शेष में जो स्वर्ण है, उसका कोई उपयोग नहीं होता क्योंकि उससे रुपये की मुद्रा को रद्द नहीं किया जा सकता। जब इसके मूल्य में गिरावट आती है तब यही उसके मूल्य को पुनः स्थापित करता है। इसलिए यह कहना बिल्कुल मूर्खतापूर्ण है कि प्रतिदान की प्रभावकारिता ऐसी ही है जैसे सैक्रेट्री आफ स्टेट के पास स्वर्ण साधन हों। यह विषय बहुत महत्वपूर्ण है और यहां एक उदाहरण देना गलत न होगा। मान लीजिए 'क' के पास रुपये हैं और वह उनकी जगह स्वर्ण चाहता है। इसके लिए वह तीन काउंटरों पर जा सकता है– (1) रोकड़ शेष काउंटर के मुख्य नियंत्रक के पास, (2) कागज मुद्रा रिजर्व के मुख्य मुद्रा नियंत्रक के पास; अथवा (3) स्वर्ण प्रतिमान के अभिरक्षक के पास। यदि 'क' पहले काउंटर पर जाएगा तो उसका क्या नतीजा होगा? रोकड़ शेष उतनी कम हो जाएगी। यदि यह मान लिया जाए कि रोकड़ शेष न्यूनतम है, जैसा कि होना भी चाहिए तो नियंत्रक को अपनी ऋण शोधन क्षमता बनाए रखने के लिए इंडिया पर एक बिल ड्रा करेगा और इस तरह स्वर्ण के बदले मिले रुपयों को पुनः प्रचलन में डाल देगा ताकि मुद्रा का संकुचन न हो। यदि 'क' मुद्रा नियंत्रक के पास जाता है, तब क्या होता है? नियंत्रक उसे स्वर्ण दे देता है, पर इस पूर्व कल्पना

पर कि कागजी मुद्रा का खाता एक अलग अनुविहित खाता है और 'क' से प्राप्त रुपयों को उसे अपने भंडार से दिए गए सोने के बदले रख देना चाहिए। इससे यह होता है कि उसकी रिजर्व की रचना तो बदल जाती है परंतु कुल कागजी मुद्रा की मात्रा उतनी ही रहती है। इसलिए यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि जहां तक कागजी मुद्रा रिजर्व में और रोकड़ शेष में स्वर्ण का परिचालन होता है, तो उसका परिणाम मुद्रा के अपसरण में नहीं निकलता। जैसा कि प्रायः कहा जाता है, उन्हें "रक्षा पंक्तियां" बताना इस बात की अनदेखी करना होता है कि ये दोनों मुक्त संसाधन नहीं हैं बल्कि विनियोजित संसाधन हैं।

तब फिर सरकार के रुपया मुद्रा को बंद करने के क्या साधन है? केवल स्वर्ण प्रतिमान रिजर्व। केवल यही एक ऐसा आरक्षित भंडार है जिसकी राशि का किसी विशेष उपयोग के लिए विनियोजन नहीं किया जाता। यह तो मुक्त नकदी होती है और उसी हद तक जहां सरकार के लिए रुपये का स्वर्ण मूल्य घटने की दशा में रुपये की मुद्रा को पुनः स्थापित करना सम्भव हो। यहां इस बात को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि इसी सीमा तक मुद्रा को बन्द किया जा सकता है। यह नहीं कि ऐसा होगा ही; हो सकता है कि ऐसा न हो और ऐसे मामलों की कमी नहीं है जहां ऐसा नहीं हुआ। यहां दो उदाहरण देना पर्याप्त होगा। जब पहली बार 1893–98 में टकसाल बन्द की गई तब यह याद दिलाया जा सकता है कि सरकार के पास किस तरह रुपये भारी संख्या में एकत्र हो गए थे और रुपये का मूल्य बढ़ाने की दृष्टि से यह जरूरी था कि उन्हें बन्द करके रख दिया जाए। परंतु इसकी जगह हुआ यह कि भारत सरकार ने रेलों के विस्तार और अन्य सार्वजनिक कार्यों पर रुपये व्यय करना शुरू कर दिया मानो सरकार द्वारा रुपये क्रय करने का उससे कोई भिन्न परिणाम होगा जो जनता द्वारा रुपये व्यय किए जाने पर होता। ऐसा ही एक और अनुत्तरदायित्व पूर्ण कार्य था 1920 में रिवर्स कौंसिल्स की बिक्री। इन रिवर्स कौंसिल्स की आवश्यकता पूरी करने के लिए भारत सचिव ने कागजी मुद्रा के रिजर्व में से सोना निकाल लिया। परन्तु जितना सोना निकाला गया था, उसके बराबर नोट रद्द करने की जगह सरकार ने 1920 के अधिनियम XXI के अंतर्गत यह अधिकार प्राप्त कर लिया कि इस अंतर को पूरा करने के लिए तदर्थ सिक्यूरिटीज बना ली जाए, जिससे प्रतिदान तो हुआ परन्तु मुद्रा बन्द नहीं हुई और इतना अधिक सोना व्यर्थ हो गया क्योंकि न तो उसका कीमतों पर प्रभाव पड़ा और न ही विनिमय पर। मार्च 1920 में पास किया गया यह अधिनियम अस्थायी अवधि के लिए था और इसे अक्तूबर 1920 में समाप्त होना था। तब तक सरकार मुद्रा बन्द कर सकती थी। परंतु ऐसा करने की जगह सरकार ने कागजी मुद्रा कानून में ही 1920 के अधिनियम XLV द्वारा अस्थायी की जगह स्थायी रूप से

परिवर्तन कर दिया और उसके उपबन्ध इस तरीके से बदल दिए गए कि सरकार अपनी निर्मित सिक्यूरिटियों को बन्द करके मुद्रा को न्यूनतम डिग्री तक रद्द कर सकती थी। तथापि सरकार के बजट में घाटे के कारण ऐसा भी नहीं किया गया।

परन्तु यदि ऐसे अविवेकपूर्ण कार्य नहीं भी दोहराए गए तब भी यह तो सच है कि स्वर्ण प्रतिमान रिजर्व के अनुसार जितना मुमकिन है, सरकार उससे अधिक मात्रा में सिक्कों को बन्द नहीं कर सकती। यदि वह रिजर्व असफल हो जाए तो सरकार के पास दो ही साधन बचते हैं– (1) रुपयों को पिघला दिया जाए और इस प्रकार जो चांदी की धातु को सोने की जगह बेच दो और मुद्रा में तब तक और संकुचन करते जाओ जब तक कि उसका मूल्य पुनः स्थापित न हो जाए, अथवा (2) सोना उधार लिया जाए। स्पष्ट है कि दोनों ही तरीके काफी महंगे हैं। रुपये को चांदी के रूप में बेचने से हानि होगी ही बशर्ते कि बिक्री के समय चांदी का मूल्य उस समय की अपेक्षा अधिक हो जब वह सिक्के बनाने के लिए खरीदी गई थी। दूसरी प्रक्रिया अर्थात उधार लेने के तरीके को जिससे एक रिजर्व फंड बन सके जिससे मुद्रा का प्रचलन बन्द किया जा सके, आसानी से नहीं अपनाया जा सकता। वास्तव में ये तरीके इतने महंगे हैं और इसका निश्चित प्रमाण है कि यदि वे अपनाए गए तो उससे विनिमय मानक में निश्चित रूप से अस्थिरता आ जाएगी इस लिए सरकार ने कभी इस पर गंभीरतापूर्वक विचार ही नहीं किया कि विनिमय के संकट के समय उससे निजात पाने के लिए एक संभावित तरीके के रूप में उन्हें अपनाया जाए। तथापि यह निश्चित लगता है कि सरकार भी यह मानती है कि गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व अपने आप में विनिमय को बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं है। जैसा कि हम देखते हैं, 1907–8 के वर्ष से लंदन और भारत के बीच सरकारी अधिशेष के वितरण में पूर्ण परिवर्तन हो गया है। उस समय तक सैक्रेट्री आफ स्टेट की यह नीति थी कि केवल उतना ही निकाला जाए जितना घरेलू खजाने को वित्त पोषित करने के लिए जरूरी हो। उस तारीख के बाद यह पद्धति अपनाई गई थी कि उतना निकाला जाए जितने की भारत सरकार व्यवस्था कर सके, और चूंकि भारत सरकार वित्तीय मामलों में सर्वोच्च है इसलिए उसने अधिक कर लगाकर तथा बचत का बजट बना कर काउंसिल आहरणों के लिए बड़ी मात्रा में धन प्रदान किया। इसका नतीजा यह हुआ कि सैक्रेट्री आफ स्टेट के पास रोकड़ शेष बहुत बढ़ गया।[1] घरेलू खजाने के लिए वित्त–प्रबन्ध करने के ऐसे अनूठे तरीके अपनाने के लिए सरकार की ओर से कोई संतोषजनक कारण नहीं दिया गया।[2] परंतु यदि हम

1. आंकड़ों के लिए देखिए अध्याय VII
2. तुलना करें *मेमोरेंडम आन इंडिया आफिस बैलेंसिज* 1913 का सी.डी. 6619

यह कहें कि यह रोकड़ शेष संचय करने का उद्देश्य एक दूसरा गोल्ड रिजर्व बनाना है जो वास्तविक गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व का पूरक हो, तो हम शायद बहुत गलत नहीं होगें। इस आकस्मिक साधन से सरकार वर्तमान में चाहे कुछ अधिकार प्राप्त कर ले, यह स्पष्ट है कि वह स्थायी नहीं होगी। सरकार के वित्त का नियंत्रण जब लोकप्रिय हाथों में होगा, तो रोकड़ शेष इतना न्यूनतम रखना होगा जो खजाने के कार्य करने के लिए जरूरी हो और गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व ही ऐसा रिजर्व होगा जिस पर सरकार को निर्भर रहना पड़ेगा।

रुपये के लिए गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व का वही स्थान है जो नोटों के लिए कागजी मुद्रा रिजर्व का है। दोनों का अभिप्राय यही है कि वे अपनी-अपनी मुद्राओं को सहारा दें और उन्हें गिरने न दें या वे बट्टे पर न मिलने लगें। परंतु सरकार ने रिजर्व के संदर्भ में रुपये और कागजी मुद्रा के प्रति जैसा व्यवहार रखा है, उसमें पर्याप्त विरोधाभास नजर आता है। कागजी मुद्रा के मामले में, जैसा कि ऊपर भी कहा गया है, जो रिजर्व होता है, वह अनुविहित होता है और जब भारतीय कागजी मुद्रा का पूरा मूल आधार ही बदल दिया गया, तब भी रिजर्व संबंधी उपबंध अभी भी कड़े हैं और बिना कानून तोड़े सरकार उनकी अनदेखी नहीं कर सकती। आजकल भी रुपया महज चांदी पर छपे नोट की तरह ही तो है।[1] इसलिए रिजर्व संबंधी उपबंध भी होने चाहिए जो कागजी मुद्रा के बारे में होते हैं। तथापि यह बात बड़ी अजीब लगती है कि स्वर्ण मानक रिजर्व के बारे में कोई भी नियमन न होना सबकी आंखों में खटकता है।[2] न केवल सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह रुपये को छुडा ले परंतु ऐसा भी लगता है कि सरकार रिजर्व रखने तक के लिए बाध्य नहीं है। और यदि इसने कोई ऐसा रिजर्व रखा हुआ है तो भी इस बात का कोई आश्वासन नहीं है कि इस रिजर्व के नष्ट होने की दशा

1. वास्तव में हमने रुपया मुद्रा का स्तर घटा कर टोकन या प्रतीक मुद्रा का कर दिया है और व्यवहारतः अब हम ऐसे बैंकरों की स्थिति में आ गए हैं जिन्होंने एक निश्चित मात्रा में फिडुशियरी नोट जारी कर रखे है (इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे कागज के हैं या धातु के); और उस फिडुशियरी मुद्रा का मूल्य बनाए रखने के लिए हमारे लिए यह बंधनकारी है कि जब व्यापार की वाजिब आवश्यकताओं के लिए जरूरी हो तो हम उसे सोने में बदलने की स्थिति में हों। (१६०३.४ के वित्तीय वक्तव्य में पृष्ठ १४ पर दिया गया कथन)।

2. चैम्बरलेन कमीशन ने कहा--"संकट के समय सरकार की आजादी पर प्रतिबन्ध लगाने की अपनी हानियां है और यह अवांछनीय है कि रिजर्व की मात्रा और उसकी प्रवृत्ति रूढ़िबद्ध या किसी पिटी हो———इसलिए हम यह नहीं समझते कि गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व का नियमन किसी कानून के द्वारा हो।"

में, उसकी जगह और रिजर्व की पूर्ति की जाएगी।[1] इन अन्तरों के अतिरिक्त भी क्या गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व पर्याप्त रिजर्व है? सरकारी प्रकाशनों में गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व के विस्तार के जो आंकड़े दिये जाते हैं, उनका कोई मतलब नहीं होता। परिसम्पत्तियां दिखाने का तब तक क्या लाभ जब तक कि उसके साथ दायित्व न दिखाए जाएं। उक्त रिजर्व की पर्याप्तता के बारे में किसी निर्णय पर पहुंचते समय हमें यह जरूर पता होना चाहिए कि कुल कितने रुपये प्रचलन में हैं। तथापि जब हम प्रचलन में रुपयों की तुलना रिजर्व से करते हैं, तो वह अनुपात इतना पर्याप्त बड़ा नहीं लगता कि इस प्रणाली की स्थिरता के बारे में विश्वास पैदा हो। (देखिए तालिका XLIX)

जब रिजर्व इतना कम हो तो भला परिचालन बन्द करने की प्रक्रिया को हम पर्याप्त सीमा तक कैसे ले जा सकते हैं? ऐसा सदैव नहीं किया जा सकता, इसका पर्याप्त प्रमाण 1920 के संकट से मिल जाता है। परंतु विनिमय मानक के समर्थकों का यह कहना है कि रिजर्व कम होने का कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि रिजर्व केवल विदेशों में प्रेषण करने या भेजने के ही काम आता है। यह कहा जाता है कि इस प्रकार की स्थिति में रिजर्व का बड़ा होना जरूरी नहीं होता। यदि इस बात को मान लिया जाए कि रिजर्व का आकार किन बातों पर निर्भर करना चाहिए ताकि वह किसी भी स्थिति में और प्रत्येक स्थिति में पर्याप्त सिद्ध हो? इस बारे में मार्गदर्शक नियम बनाने की एकमात्र चेष्टा केवल प्रो. केन्स[2] ने की है। उस नियम को भारत के व्यापार संतुलन के सम्भावित फेर बदल में पाते हैं। अब इससे क्या रिजर्व के नियमन की समस्या को अधिक निश्चित रूप मिल जाता है? जैसा कि पहले बताया जा चुका है, प्रतिकूल व्यापार संतुलन मुद्रा के मूल्य ह्रास के कारण हो सकता है। इससे मि. केन्स का कथन कुछ इस प्रकार का हो जाता है– रिजर्व मूल्य–ह्रास की मात्रा के हिसाब से बदले जाने

---

1. इंडियन पेपर करेंसी (टेम्परेरी अमेंडमेंट) बिल दिनाक 17 मार्च 1920 पर बोलते हुए वित्तमंत्री ने कहा था-------- "व्यावहारिक दृष्टि से यह वांछनीय होगा कि गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व को तब तक के लिए छोड़ दिया जाए जब तक कि कागजी मुद्रा रिजर्व का पुनः हस्तांतरण न कर दिया जाए, यदि-------- भारत सचिव अपने भारी घरेलू दायित्वों के कारण अपने पास कौंसिल के रूप में फंड रखना असम्भव समझें तब वह गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व का उपयोग कर सकेगा और हम उसे गोल्ड स्टेंडर्ड रिजर्व में जमा कर सकेंगे। एक तीसरी बात भी है और मुझे लगता है कि यह निष्कर्ष के रूप में है। जब आप कागजी मुद्रा रिजर्व के बदले में कुछ करते हैं, तो आपको कागजी मुद्रा रिजर्व के अंतर्गत ही काम करना पड़ता है; जब आप गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व के बदले में कुछ करते हैं, तो वह लुप्त हो जाता है, वह पिघल जाता है और यह हमारा दायित्व नहीं होता कि हम उसे लौटा दें; परन्तु कागजी मुद्रा रिजर्व को लौटाने के लिए तो हम कानूनन दायित्व से बंधे हुए है। एस.एल.सी.पी. खण्ड LVIII. पृष्ठ 1416
2. देखिए ओ पी सिट संदर्भ, पृष्ठ 166-7

तालिका XLIX

गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व का वितरण और प्रचलन में रुपयों से उसका अनुपात (000 पौंड स्टर्लिंग में)

प्रति वर्ष 31 मार्च को	इंगलैंड में					भारत में							
	स्टर्लिंग सिक्यूरिटीज का क्रय मूल्य	अल्प सूचना पर नकदी	होम (घरेलू) खजाने को अल्पकालिक कर्जा	बैंक आफ इंगलैंड में जमा किया गया स्वर्ण	योग	भारत में ढाले गए रुपये	राज कोष की ओर बकाया ऋण	राज कोष को अल्प-कालीन कर्जा	स्वर्ण	योग	कुल रिजर्व इंगलैंड और भारत में	प्रचलन में रुपयों का परिमाण (करोड़ रुपयों में)	रिजर्व तथा प्रचलन में रुपयों का प्रतिशत (पौंड–15 रुपये*
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)	(13)	(14)
1901	—	—	—	—	—	—	1,831	—	1,200	3,031	3,031	143	3.1
02	3,454	—	—	—	3,410	—	—	—	—	—	3,454	138	3.7
03	3,810	—	—	—	3,810	—	1	—	—	1	3,811	136	3.4
04	6,377	—	—	—	6,377	—	167	—	—	167	6,544	144	6.8
05	8,377	—	—	—	8,377	—	152	—	—	152	8,529	152	8.4
06	12,165	—	—	—	12,165	—	287	—	—	287	12,452	164	10.7
07	12,519	—	—	—	12,519	4,000	301	—	22	4,323	16,842	178	10.6
08	13,187	—	1,131	—	14,318	4,000	—	—	—	4,000	18,318	191	11.2
09	7,414	—	470	—	7,884	10,587	—	—	—	10,587	18,471	187	7.1
10	13,219	3,011	—	—	16,230	2,534	—	—	—	2,534	18,764	186	13.8
11	15,849	1,477	—	—	17,326	1,934	—	—	—	1,934	19,260	184	14.8
12	16,748	1,074	—	—	17,822	1,934	—	—	—	1,934	19,956	182	14.9
13	15,946	1,006	—	1620	18,572	4,000	35	—	—	405	22,607	191	14.8
14	17,165	25	—	4320	21,510	4,000	22	—	—	4,022	25,532	187	17.2
15	12,149	8	—	1250	13,407	—	70	7000	5,238	13,308	25,715	204	18.9
16	16,219	5,792	—	—	22,011	—	1	4000	239	4,240	26,251	212	15.7
17	25,106	6,001	—	—	31,407	—	—	—	103	103	31,510	227	20.8
18	28,453	6,000	—	—	34,453	—	—	—	—	—	24,453	219	23.5
19	29,729	6,016	—	—	35,745	—	—	—	—	—	35,745	228	23.5

*अनुपात निकालते समय रिजर्व में रुपयों वाले भाग को शामिल नहीं किया गया है।

चाहिए। परन्तु सरकार यह कैसे करे? केवल मूल्य स्तर के उतार-चढाव पर ध्यान देकर। परंतु मुद्रा व्यवस्था करते समय भारत सरकार कीमतों की समस्या पर कभी भी ध्यान नहीं देती। जैसा कि ऊपर बताया गया है, असल में या विनिमय के गिरावट के कारणों की संकल्पना, एक मात्र सही संकल्पना से बिल्कुल भिन्न है। केवल उसी पर अच्छी पकड़ होने पर संकट पर काबू पाया जा सकता है। सही संकल्पना की जानकारी न होने के कारण यह तब तक आंख मूंद कर मुद्रा जारी करती जाती है जब तक कि व्यापार संतुलन प्रतिकूल न हो जाए। इसका एकमात्र उद्देश्य यह है कि गोल्ड रिजर्व बनाए रखा जाए; और जब तक इसके पास वह रिजर्व है, वह यह कभी नहीं सोचती कि वह कितनी मुद्रा जारी कर रही है। चूंकि जारी मुद्रा और रिजर्व में सहसम्बन्ध नहीं होता, इसलिए जहां तक विनिमय की स्थिरता रिजर्व पर निर्भर करती है, वह सदैव अस्पष्ट ही रहेगी और इस प्रणाली के प्रति विश्वास पैदा होने में समस्या हमेशा बनी रहेगी। बल्कि विदेश प्रेषण के प्रतिदान का दायित्व जो बहुत छोटा लगता है, वह इतना अधिक अनिश्चित हो जाएगा कि विनिमय मानक की स्थिरता को पुनः बनाए रखने की सारी बात ही खतरे में पड़ जाएगी।

परन्तु क्या मुद्रा का मूल्य बनाए रखने के लिए स्वर्ण रिजर्व इतना महत्त्वपूर्ण होता है? कहा जाता है कि विनिमय मानक के सभी समर्थक इस सिद्धांत में विश्वास करते हैं। परन्तु यह विचार किसी भी आलोचना का उत्तर देने में सक्षम नहीं हैं। यह समझना कि स्वर्ण रिजर्व इस बात का कारण है कि सभी प्रकार का धन सोने के समतुल्य रहता है, पूरी तरह भ्रामक है।[1] ऐसा विचार करना तो सामान्य सी बात को उल्टा कर के देखने के समान है। स्वर्ण रिजर्व के कारण प्रचलन की मुद्रा का मूल्य स्थिर नहीं रहता बल्कि यह तो उसके कुल परिमाण के सीमित होने के कारण होता है जिससे न केवल इसका अपना मूल्य स्थिर रहता है अपितु इससे यह भी सम्भव हो जाता है कि देश में जितना भी स्वर्ण रिजर्व है, उसे संचित रखा जा सके और उसे सुरक्षित रखा जा सके। मुद्रा के परिमाण की सीमा हटा दीजिए, तब न केवल यह अपना मूल्य बनाए रखने में असफल हो जाएगा अपितु जो भी स्वर्ण रिजर्व है, उसका संचित होना भी रुक जाएगा। किसी मुद्रा का मूल्य सुरक्षित रखने में स्वर्ण रिजर्व का महत्व इतना कम है कि यदि उसके जारी करने पर कड़ी पाबन्दी लगा दी जाए तो हम पूरी तरह स्वर्ण रिजर्व समाप्त कर के भी काम चला सकेंगे और मुद्रा के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। चैम्बरलेन कमीशन ने सिफारिश की थी कि रुपयों का मूल्य

---

1 इस संदर्भ में देखिए एफ.ए. फैटर द्वारा विद्वत्तापूर्ण प्रबन्ध *"दी गोल्ड रिजर्व : इट्स फंक्शन्स एंड इट्स मेनटेनेंस"* जो "पॉलिटिकल साईंस क्वार्टली" 1896 खण्ड XI नं. 2 में छपा था।

बनाए रखने के लिए भारत सरकार को एक रिजर्व संचित करना चाहिए क्योंकि यूरोपियन बैंक भी अपनी मुद्राओं का मूल्य अपने-अपने रिजर्व की मार्फत बनाए रखते हैं। सत्य का इससे बड़ा विस्तृत रूप और नहीं हो सकता। यूरोपियन बैंकों ने जो किया वह चैम्बरलेन कमीशन की सिफारिशों का बिल्कुल उल्टा था। जब कभी उनका सोना लुप्त होने लगता था, वे अपनी मुद्राएं घटा देते, न केवल तुलनात्मक रूप में अपितु पूर्ण रूप में भी। वे तो अपनी मुद्राओं की सीमाएं बांध-करके अपनी मुद्राओं का मूल्य भी और स्वर्ण रिजर्व भी बनाए रखते थे।

इस तरह रिजर्व होने से स्वर्ण विनिमय मानक की शक्ति नहीं बढ सकती। दूसरी तरफ, यदि हम रिजर्व की उत्पत्ति के बारे में जांच–पड़ताल करें तो पता चलेगा कि यह उस मानक के लिए भारी कमजोरी का कारण बनता है। सरकार अपना स्वर्ण मानक स्टैंडर्ड रिजर्व कैसे प्राप्त करती है? क्या वह अपना रिजर्व इसी तरह बढ़ाती है जैसे बैंक अपने द्वारा जारी मुद्रा आदि का परिचालन घटा कर? इसका बिल्कुल उल्टा होता है। भारतीय स्वर्ण मानक रिजर्व की संरचना इतनी विचित्र है कि इसकी परिसम्पत्तियां अर्थात रिजर्व और इसकी देयताएं अर्थात रुपया पूरी तरह सहगामी है। दूसरे शब्दों में रिजर्व तब तक नहीं बढ़ सकते जब तक कि रुपये की मुद्रा न बढे। यह अनिष्टकारी स्थिति इसलिए पैदा होती है कि रिजर्व को रुपये के सिक्के की ढलाई से होने वाले लाभ से बनाया जाता है। ज़ब यही मूल स्रोत है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कोष केवल तभी बढ़ सकता है जब रूपये के सिक्के अधिक ढाले जाएं। एक रुपये के सिक्के ढालने से जो लाभ होता है, वह इस बात पर निर्भर करता है कि रूपये पर लागत कितनी आती है और इसका विनिमय मूल्य कितना है। ढलाई के खर्च के अतिरिक्त, जो कमोबेश निश्चित होता है, इस स्थिति में सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता चांदी की कीमत का होता है। रिजर्व में डालने के लिए कोई लाभ होगा या नहीं, वह इस बात पर निर्भर करेगा कि रुपये ढालने वाली चांदी की क्या कीमत दी गई थी।[1]

जैसा कि इसकी मूल उत्पत्ति से पता चलता है, यह रिजर्व न केवल एक बुराई है, अपितु इसकी दस्तावेजी प्रकृति को देखते हुए, इस रिजर्व पर संकट के समय पूरी तरह निर्भर भी नहीं रहा जा सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रिजर्व के निवेश के पीछे सरकार का आशय यही है कि जिन सिक्यूरिटियों में इसका निवेश किया जाता है, उसका ब्याज जमा होने से रिजर्व और भी बढ़ जाएंगे। सरकार के आलोचक चाहते हैं कि रिजर्व बड़ा भी हो और उसी के साथ धातु में हो। परन्तु वे यह नहीं समझते कि रिजर्व के मूल स्रोत को देखते हुए

1. श्री एम.एल.रेड्डी गारू के उत्तर मे (पृष्ठ 232 पर अंकित) वक्तव्य पटल पर रखा गया था।

मि.एम.एल. रेड्डी गारु के प्रश्न के उत्तर में निम्नलिखित वक्तव्य पटल पर रखा गया।

खरीदी गई चांदी की औसत लागत को दर्शाने वाला वक्तव्य

वर्ष	स्टेंडर्ड औंस के लिए शाही टकसाल की औसत लागत	स्टैंडर्ड औंस के लिए इंडिया आफिस की औसत लागत	वित्त वर्ष
	पैंस	पैंस	
1893	$36^{5}/_{16}$	कोई खरीद नहीं	1893-94
1894	$29^{1}/_{4}$	कोई खरीद नहीं	1894-95
1895	$30^{3}/_{8}$	कोई खरीद नहीं	1895-96
1896	$30^{5}/_{16}$	कोई खरीद नहीं	1896-97
1897	$27^{7}/_{8}$	कोई खरीद नहीं	1897-98
1898	$27^{1}/_{4}$	कोई खरीद नहीं	1898-99
1899	$27^{1}/_{2}$	28	1899-1900
1900	$28^{1}/_{4}$	29	1900-01
1901	$27^{15}/_{16}$	कोई खरीद नहीं	1901-02
1902	$24^{5}/_{16}$	22.80	1902-1903
1903	$23^{11}/_{16}$	27.19	1903-1904
1904	$26^{1}/_{2}$	27.14	1904-1905
1905	$27^{7}/_{16}$	29.74	1905;1906
1906	$31^{1}/_{16}$	31.59	1906-1907
1907	$30^{9}/_{26}$	31.27	1907-1908
1908	$24^{7}/_{16}$	कोई खरीद नहीं	1908-1909
1909	$23^{11}/_{16}$	"	1909-1910
1910	$24^{7}/_{8}$	"	1810-1911
1911	$24^{11}/_{16}$	"	1911-1912
1912	$27^{15}/_{16}$	28.71	1912-1913
1913	$26^{1}/_{16}$	28.71	1913-1914
1914	$24^{5}/_{16}$	कोई खरीद नहीं	1914-1915
1915	$24^{1}/_{4}$	33.96	1915-1916
1916	$30^{5}/_{8}$	33.96	1916-1917
1917	$39^{15}/_{16}$	42.78	1917-1918
1918	$47^{15}/_{16}$	48.20	1918-1919
1919	$49^{5}/_{8}$	52.04	1919-1920
1920	$50^{7}/_{8}$	बाल्डविन खानो से और पर्थ टकसालों विशेष दरों पर खरीदी गई चांदी	1920-1921

* लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स खंड II नं 3, 10 सितम्बर 1921, पृष्ठ 181

इस बारे में कोई जानकारी नहीं कि कीमत जहरत तक निशुल्क (एफ ओ बी) है या लागत बीमा भाडा कीमत (सी आई एफ) है। इसलिए यह कहना कठिन है कि क्या भारत मंत्री के मास्टर आफ दी रायल मिंट की अपेक्षा चांदी की अधिक कीमत देनी पड़ी थी।

दोनों मांगे परस्पर विरोधी हैं। यदि रिजर्व अधिक होना चाहिए तो उसका निवेश किया जाना चाहिए। वास्तव में यदि रिजर्व का निवेश नहीं किया गया होता, तो बहुत ही कम रह जाता।[1] परन्तु क्या इस प्रकार के रिजर्व में कोई खतरा नहीं होता?

वास्तव में इस प्रकार के रिजर्व के खतरे को जेवन्स ने भांप लिया था। उसने कहा था[2]

"........अच्छी सरकार के निधि और अच्छे बिल सदैव किसी कीमत पर बेचे जा सकते हैं ताकि इस प्रकार की मजबूत रिजर्व वाली एक बैंकिंग फर्म हमेशा अपनी ऋण शोधन क्षमता बनाए रख सकती है। परन्तु समाज के लिए निदान रोग से भी बुरा हो सकता है और विवश हो कर रिजर्व बेचने से मुद्रा बाजार में एक ऐसी उथल–पुथल हो जाएगी कि वह भुगतान को निलम्बित कर देने से भी अधिक हानिकारक सिद्ध होगी –"

इसी तरह यह कौन कह सकता है कि ब्याज से रिजर्व में होने वाली बढोतरी विनिमय संकट काल में सिक्यूरिटियों को स्वर्ण में परिवर्तित करने के फलस्वरूप सिक्यूरिटियों की कीमतों में मंदी आने से मटियामेट नहीं हो जाएगी? मान लीजिए कि सिक्यूरिटियों का पूरा मूल्य प्राप्त हो जाता है, तो प्रतिशत का मौका आने पर रिजर्व कितना रुपया लगाएगा वह इस बात पर निर्भर होगा कि किस कीमत पर रुपये वापस खरीदे जाएंगे। यदि रुपये में गिरावट कम है, तो मुद्रा को बड़ी मात्रा में बन्द किया जा सकता है और इस तरह उसका मूल्य पुनर्स्थापित किया जा सकता है। दूसरी ओर यदि गिरावट अधिक है तो मुद्रा के थोड़े भाग को बन्द करना पर्याप्त होगा और हो सकता है कि उससे रुपये का मूल्य पुनर्स्थापित न हो जैसा कि 1920 में हुआ था जिससे कि एक बड़ा रिजर्व भी नितांत अपर्याप्त सिद्ध होगा। परंतु इस विचार के अतिरिक्त कि अपेक्षाकृत कितना बड़ा रिजर्व बनाया जा सकता है, यहां जो मुद्रा को अनदेखा कर दिया गया है वह यह है कि *रिजर्व बनाने की प्रक्रिया में सीधे ही मुद्रा की मात्रा बढाने की प्रक्रिया शुरू करनी पड़ती है।* चैम्बरलेन कमीशन इस बात को जानता था कि स्वर्ण मानक रिजर्व तब तक नहीं बनाया जा सकता जब तक कि रुपये के सिक्के न ढाले जाएं। वास्तव में इसने इस बात के प्रति सावधान किया था कि स्वर्ण मुद्रा के इच्छुक लोगों को

---

1. 1900-1 से 1920-21 के बीच गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व में डाला गया ढलाई का लाभ केवल 28,573,606 पौंड था, जबकि उसी अवधि में ब्याज और बट्टे से 13,304,847 पौंड मिले जो सिक्का ढलाई से होने वाले लाभ का लगभग आधा था। तुलना करें : *ईस्ट इंडिया: एकाउंट्स एंड ऐस्टीमेट्स,* 1921-22. सी.एम.डी. 1921. का 1517, पृष्ठ 20
2. मनी, पृष्ठ 227

यह याद रखना चाहिएं कि यदि स्वर्ण ने नए रुपयों का स्थान लिया, जिनका अन्यथा ढाला जाना आवश्यक होगा, तो उसका प्रभाव यह होगा कि स्वर्णमानक रिजर्व की ताकत उस अनुपात में घट जाएगी जितना नए सिक्के ढालने में लाभ होगा।[1] कमेटी ने ऐसी नीति की सिफारिश करने की जगह जिससे स्वर्णमान रिजर्व की स्वाभाविक वृद्धि का अंत हो जाएगा, सरकार को इस बात की अनुमति दे दी कि वह रुपये ढाले। परंतु क्या ऐसे रिजर्व में कोई खतरा नहीं? ऐसे रिजर्व का क्या फायदा जिससे ऐसी बुराई पैदा हो जिसको बाद में मिटाने की उससे आशा की जाती है। जो लोग भारतीय गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व को बढ़ाने का आंदोलन कर रहे हैं, वे वास्तव में इस बात के प्रति सजग नहीं हैं कि ऐसे रिजर्व में क्या खतरे निहित हैं। गोल्ड रिजर्व जितना कम होगा, वास्तव में उतना ही बेहतर होगा क्योंकि तब मुद्रा स्फीति नहीं होगी, रुपये की क्रय शक्ति में कोई गिरावट नहीं आएगी, और इसके बन्द करने की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी।

स्वर्णमानक रिजर्व के मूल को देखते हुए, यह रिजर्व अन्धाधुन्ध रुपये की मुद्रा जारी करने पर रोक लगाने की जगह उसका सीधा कारण बन जाता है और एक अपरिवर्तनीय मुद्रा के दुष्प्रभावों का विरोध करने की जगह उन्हें बढ़ा देता है। इससे अधिक विकृति नहीं हो सकती। यदि स्वर्ण मानक रिजर्व जैसी प्रक्रिया, जोकि मुद्रा को सीमित रखने के लिए बनाई गई थी, बिना मुद्रा की मात्रा बढाए अपना काम नहीं कर सकती, तब अगर यह प्रणाली मुद्रा को निर्बल नहीं बनाती तो आश्चर्य है कि और कौन बना सकता है। विनिमय मान के समर्थन में बड़े–बड़े नामों का उल्लेख किया जाता है। इस योजना का कोई पूर्व उदाहरण खोजने के लिए बड़ी मेहनत करने के बाद मि0 लिंडसे ने फालर कमेटी के सम्मुख दावा किया कि इसे[2] आयरिश एक्सचेंज के बारे में बनाई गई संसदीय समिति

1. रिपोर्ट, पैरा 63
2. 1876 में जब मि0 लिंडसे ने 'कलकत्ता रिव्यू' के पृष्ठों में इस स्कीम को प्रस्तुत किया, तब उन्होंने इसके समान और किसी भी चीज की चर्चा नहीं की। सन् 1892 में अपने प्रबंध *'रिकार्डोज एक्सचेंज रेमेडी'* में उन्होंने अपनी इस स्कीम के बारे में एक प्रामाणिक विद्वान के रूप में रिकार्डो का नाम लिया। परंतु 1898 में उन्होंने अपने इस विचार को बदल लिया; यहां तक कि उन्होंने प्रोदिन पर आरोप लगाया कि उसने रिकार्डो की 'सोने की ईंट' (गोल्ड ब्रार) योजना को अपना आधार बना लिया है (इकॅनॉमिक जर्नल)। रिकार्डो को अपना प्रामाणिक विद्वान मानने से इंकार करने के पीछे शायद मूल कारण यही था कि मुद्रा के बारे में रिकार्डो के सामान्य विचार, उनके विचारों को हानि पहुंचाने वाले थे। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि उसकी पुस्तक *'प्रोपोजल्स फॉर इन इकॅनॉमिकल एंड सिक्योर करेंसी'* के शीर्षक को लेकर बहुत से लोग दावे से कहने लगे हैं कि रिकार्डो ने धातु स्टैंडर्ड के विरोध में लिखा। उसकी इस पुस्तक में से यह उद्धरण उल्लेखनीय

की रिपोर्ट में देखा गया है।[1] इस बात पर मजबूत आधार पर खड़े थे। अन्य बातों के साथ–साथ कमेटी ने यह भी सिफारिश की थी कि इंग्लैंड और आयरलैंड के बीच विनिमय में स्थिरता लाने के लिए बैंक ऑफ आयरलैंड को बैंक आफ इंग्लैंड में एक क्रेडिट खाता खोलना चाहिए और लन्दन में एक निश्चित कीमत पर ड्राफ्ट बेचने चाहिए। जहां तक लन्दन में एक्सचेंज स्टैंडर्ड गोल्ड रिजर्व पर निर्भर करने का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि लिंडसे ने पूरी तरह आयरिश कमेटी ऑन एक्सचेंज के प्लान का अनुसरण किया है। परन्तु उसने कमेटी की एक अन्य और अत्यंत आवश्यक सिफारिश को महत्व देने की उपेक्षा कर दी।[2] इस सिफारिश में कहा गया था कि "उपचार के इस तरीके में जिन प्रस्तावित लाभों की चर्चा की गई है वे तब तक नहीं मिलेंगे और बहुत ही थोड़ी अवधि के होंगे जब तक कि यह (अर्थात बैंक आफ आयरलैंड) इस बात का वचन न दे कि वह अधिक मात्रा में जारी की गई मुद्रा को कम नहीं कर देगा जिससे आयरलैंड में कागजी मुद्रा के ह्रास का उपचार हो सके।" वास्तव में जारी की गई मुद्रा को सीमित रखने पर इतना अधिक जोर दिया गया था कि जब पार्नेल ने हाउस आफ कामन्स में आयरिश मुद्रा में सुधार के संबंध में एक प्रस्ताव रखा, तो उन्होंने इस बात पर अफसोस जाहिर किया कि कमेटी की सिफारिश को नहीं माना गया।[3] थार्नटन ने अपने जवाब में कहा कि आयरिश एक्सचेंज में तब तक स्थिरता नहीं आएगी जब तक कमेटी द्वारा रखी गई शर्त की उपेक्षा की जाएगी। इस विनिमय को खूंटी पर बाधने के अनुभव से इस अत्यावश्यक शर्त के महत्व

पिछले पृष्ठ के फुटनोट का शेष

है "बुलियन संबंधी प्रश्नों पर बाद में होने वाली चर्चा, यह बात लगभग न्यायोचित ठहराते हुए कही गई कि किसी मुद्रा के पूर्ण होने के लिए जरूरी है कि उसके मूल्य में कतई परिवर्तन नहीं होना चाहिए। परंतु यह भी कहा गया कि बैंक रेस्ट्रिक्शन बिल के परिणामस्वरूप हमारी मुद्रा ऐसी बन चुकी है क्योंकि इस बिल में हमने बड़ी बुद्धिमत्तापूर्वक इस बात को नकार दिया है कि स्वर्ण और चांदी हमारी मुद्रा का स्टैंडर्ड हो। जिन लोगों ने इस विचार का समर्थन किया, उन्होंने यह नहीं देखा कि परिवर्तनीय होने की जगह, उसमें सबसे अधिक परिवर्तन हो सकते हैं–स्टैंडर्ड का एकमात्र उपयोग होता है उसकी मात्रा नियमन करना, और मात्रा के जरिए मुद्रा के मूल्य का और स्टैंडर्ड के अभाव में इसमें सब प्रकार के फेरबदलों का इस पर प्रभाव पड़ सकेगा जो फेरबदल मुद्रा जारी करने वालों की अनभिज्ञता या उनके निहित स्वार्थों के फलस्वरूप हो सकते हैं।"

1. यह रिपोर्ट एक विद्वत्तापूर्ण दस्तावेज है, परंतु यह बुलियन रिपोर्ट के कारण ओझल हो गई क्योंकि इसे 1826 तक छापा ही नहीं गया था। तथापि इन दोनों में उसी सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। देखिए लार्ड्स पेपर, 1826 का 48वां।
2. रिपोर्ट, पृष्ठ 16
3. देखें हंसार्ड पार्लियामेंटरी डिबेट्स, खण्ड XIV पृष्ठ 75-91

का पता चलता है। एक्सचेंज को खूंटी पर बांध देना बुनियादी तौर पर एक ऐसा उपाय होता है जिसके द्वारा आंतरिक मूल्य के साथ–साथ मुद्रा के बाहरी मूल्य को भी गिरने से रोका जाए। यहां पर यह देखना महत्वपूर्ण है कि खूंटी पर बांध देने का इस पर क्या प्रभाव पड़ता है।[1] इसे बांधने का बुनियादी प्रभाव यह होता है कि एक निर्धारित कीमत पर घरेलू मुद्रा की जगह विदेशी मुद्रा प्राप्त करके विदेशी सामान खरीदने की अनुमति देना, और यह निर्धारित कीमत उस कीमत से अधिक होती है जो दोनों देशों की मुद्राओं की क्रयशक्ति के आधार पर निर्धारित की जाती है। बांध देने से सस्ती कीमत पर हासिल की गई विदेशी मुद्रा से लोगों को विदेशी सामान खरीदने से विदेशी मूल्य बढ़ कर घरेलू मूल्यों के स्तर तक पहुंचने लगते हैं। इस तरह विनिमय दर स्थिर इसलिए नहीं होती कि उसे बांध दिया गया है बल्कि इसलिए होती है कि दोनों देशों के बीच मूल्य स्तर एक नए साम्य पर पहुंच गया है। मुख्य रूप से विनिमय दर इसलिए स्थिर है क्योंकि यह कृत्रिम क्रय शक्ति की समानता है। यह ऐसा बना रहेगा कि नहीं इस बात पर निर्भर करता है कि घरेलू मूल्यों में उतार–चढ़ाव वैसा रहता है। यदि घरेलू कीमतों में वृद्धि विदेशी मूल्य के बोधन के बावजूद अधिक होती है, तो यह प्रक्रिया निश्चित रूप से भंग होगी। इसी बात को ध्यान में रखते हुए विनिमय के बारे में आयरिश कमेटी ने जारी की मुद्रा की सीमा के बारे में शर्त लगाई थी और यह एक बहुत महत्वपूर्ण कृति है। भारतीय मुद्रा के संदर्भ में इस शर्त का उल्लेख न करना आयरिश कमेटी की रिपोर्ट के सर्वोत्तम भाग की उपेक्षा करने के समान है।

मि0 लिंडसे ने अपना विनिमय मानक बनाने में उत्पन्न कठिनाइयों पर कोई ध्यान क्यों नहीं दिया, इसका कारण यह है कि भले ही एक नई प्रणाली के प्रवर्तक के रूप में उन्होंने प्रसिद्धि पा ली हो, परंतु मुद्रा के मूल्य के वास्तविक सिद्धांत के बारे में वे अनभिज्ञ थे। न तो वे उन्हें और न ही 1890 के दशक में भारतीय विनिमय की कठिनाइयों[2] को दूर करने के उपाय करने की योजनाएं बनाने वाले अनेकों मुद्रा के व्यापारी यह समझते थे कि विनिमय को स्थिर करने की समस्या असल में उसकी मात्रा पर नियंत्रण करके मुद्रा की क्रयशक्ति को स्थिर रखने की समस्या होती है।[3] स्वर्ण विनिमय मानक में इस तथ्य की उपेक्षा की जाती है कि दीर्घकाल में तो मुद्रा की सामान्य क्रयशक्ति ही अंततः विनिमय मूल्य को तय करती है। इसका उद्देश्य है विनिमय को स्थिर करना और क्रय शक्ति की

1. तुलना करें :– टी.ई. तिगोरी का सारगर्भित वक्तव्य, फारेन एक्सचेंजिज़ पृष्ठ 85
2. देखें अध्याय IV
3. तुलना करें–फाउलर कमेटी के सामने दिए गए मि. लिंडसे के साक्ष्य से जिसमें उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि एक्सचेंज का प्रचलन में मुद्रा की मात्रा से कोई संबंध नहीं होता।

समस्या को लटकने देना। वास्तव में नीति यह होनी चाहिए कि मुद्रा की सामान्य क्रय शक्ति को स्थिर रखा जाए और विनिमय को अपनी चिंता स्वयं करने दी जाए। यदि चैम्बरलेन कमीशन ने विनिमय मानक पर इस दृष्टिकोण से विचार किया होता तो उसने इसे एक सुदृढ़ स्टैंडर्ड न कहा होता क्योंकि मूलभूत रूप से यह इसका बिल्कुल उल्टा था।

अब यदि कोई व्यक्ति विनिमय मान की इस निर्बलता से संतुष्ट नहीं होता तो वह यह कह सकता है कि इसकी स्थिरता का आकलन करते समय हमने केवल उन्हीं अवसरों को ध्यान में रखा है जब यह मानक विफल हो गया। इस प्रणाली के प्रति ऐसे बर्ताव को वह अनुचित समझ सकता है और कह सकता है कि उन वर्षों के बारे में क्या कहना है जब स्थिरता बनाए रखी गई थी। क्या उस प्रणाली के पक्ष में कुछ नहीं कहना जिसने 1901 से 1907 तक अथवा फिर 1909 से 1914 तक रुपये के स्वर्ण मूल्य को बनाए रखा। यह प्रश्न प्रासंगिक है और इसके समर्थक लोग यह समझते हैं कि यहां उनकी स्थिति बड़ी मजबूत है और वे विनिमय मानक के विरोधियों से कहते हैं कि या तो वे यह स्वीकार करें कि यह एक स्थिर मानक है या यह दिखाएं कि इस मानक के अंतर्गत रुपया कभी भी अपना स्वर्ण मूल्य बनाए नहीं रख सका।[1]

इस स्थिति की मान्यता कुछ ऐसी अवधारणाओं पर आधारित है जो इतनी युक्तिसंगत और सर्वमान्य प्रतीत होती हैं कि विनिमय मानक के विरुद्ध दिए गए तर्कों का तब तक कोई असर नहीं होगा जब तक कि उनकी व्यर्थता को पूरी तरह दिखा न दिया जाए। पहली अवधारणा यह है कि मुद्रा का मूल्यह्रास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि स्वर्ण के रूप में उसका मूल्य ह्रास न हो जाए। दूसरे शब्दों में, यदि वृद्धि से मुद्रा के मूल्य में गिरावट किसी एक विशेष वस्तु जैसे स्वर्ण के रूप में परिलक्षित नहीं होती, तब सामान्य तौर पर वस्तुओं के रूप में कोई वृद्धि नहीं हुई है। एक समय था, विशेष कर बुलियन रिपोर्ट पर चर्चा के दौरान जब सामान्य वस्तुओं के संदर्भ में मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन की संकल्पना बहुत से जानकार लोग[2] भी अच्छी तरह नहीं समझते थे और उच्च सरकारी अधिकारी भी इसे अमान्य मानते थे।[3] जब सूचक अंकों की प्रणाली नहीं

1. डॉडवेल, *"ए गोल्ड करेंसी फॉर इंडिया"*, इकॉनॉमिक जर्नल, 1911, *"रिपोर्ट ऑल द एनक्वायरी इनटु दि राइज आफ प्राईसिज इन इंडिया"*, 1914, पृष्ठ 94.
2. बुलियन पर हुई बहस के दौरान यदि केनिंग के लार्ड कैसलरीघ की स्टैंडर्ड की परिभाषा को यदि मूल्य की अनुभूति बताया, तो इसे उनकी अनभिज्ञता ही समझना चाहिए।
3. रिकार्डो ने अपने *'प्रोपोजल्स फार एन इकॅनॉमिक्स एंड सिक्यूर करेंसी'* में लिखा – "यह वास्तव में कहा गया है कि किसी मुद्रा के मूल्य का निर्णय किसी एक वस्तु के संदर्भ में नहीं, बल्कि बहुत सी वस्तुओं के संदर्भ में किया जाना चाहिए ...... परन्तु इस कसौटी का कोई भी उपयोग नहीं होगा ...... इस प्रस्तावित कटौती से मुद्रा के मूल्य का पता लगाना ..... स्पष्टतः असम्भव है।"

थी, तो मूल्य ह्रास को किसी वस्तु के रूप में आंकते, जैसे स्वर्ण के रूप में आंकने को क्षम्य समझा जा सकता है। परन्तु आज यह बात आधारहीन हो गई है। अब किसी को यह दिखाने की जरूरत नहीं कि हर वस्तु की कीमत में उतना ही फेरबदल हुआ है और उसी दिशा में हुआ है जैसा कि वस्तुओं के सामान्य मूल्य स्तर में हुआ है। केवल स्वर्ण जैसी एक ही वस्तु को मूल्य ह्रास का पैमाना क्यों बनाया जाए? यदि स्वर्ण का मूल्य ह्रास अन्य सभी वस्तुओं के रूप में मुद्रा के मूल्य ह्रास का सही पैमाना है तो इसकी अनुमति दी जा सकती है यद्यपि यह अदूरदर्शितापूर्ण है। परंतु बात ऐसी है नहीं। गृह युद्ध के दिनों में संयुक्त राज्य अमरीका के ग्रीनबैक्स के अनुभव की चर्चा करते हुए प्रो. उब्ल्यू सी. मिशल ने कहा[1]

"स्वर्ण के मूल्य में घट-बढ को जिसने लोगों का इतना ज्यादा ध्यान आकृष्ट किया, अन्य वस्तुओं के मूल्यों में आई भारी घट-बढ़ के मुकाबले सीमित ही कहा जाएगा। स्वर्ण की कीमतें अन्य वस्तुओं की कीमतों में आई घट-बढ़ के क्षेत्र के काफी भीतर ही रहती हैं...... युद्ध काल में स्वर्ण की कीमतों में अन्य वस्तुओं की कीमतों के मुकाबले अधिक घट-बढ़ हुई.........जब स्वर्ण की कीमतें बढ रही थीं तो अन्य अधिकांश वस्तुओं की कीमतें भी बढ़ीं परंतु स्वर्ण के मुकाबले अपेक्षाकृत कम तेजी से.........जब स्वर्ण की कीमतें गिर रही थी, तब अधिकांश वस्तुओं की कीमत स्थिर रहीं या धीमी गति से गिरीं। युद्ध के बाद वस्तुओं के मूल्य गिरने की दर में कमी आना और भी अधिक स्पष्ट लगने लगा। यद्यपि कीमतों में गिरावट तेजी से आई परंतु यह गिरावट स्वर्ण में आई गिरावट जितनी तेज नहीं थी। एक और रोचक बात यह है कि दस वर्ष तक वस्तुओं का कीमत स्तर स्वर्ण के मुकाबले अधिक बना रहा।"

इससे पता चलता है कि विनिमय मानक के पक्षधर लोगों ने जो कसौटी अपनाई है, वह गलत है और उससे मुद्रा के मूल्य के बारे में गलत सूचना मिलती है। इस बारे में कोई सन्देह नहीं कि जिन लोगों ने इस कसौटी को इस मानक पर लागू करने की बात की है, यदि वह इस बात[2] को अच्छी तरह ध्यान में रखते कि स्वर्ण के रूप में किसी मुद्रा के विशिष्ट मूल्य ह्रास और वस्तुओं के रूप में आए सामान्य मूल्य ह्रास में अंतर होता है तो शायद वह इस बात पर इतना जोर न देते जितना कि अभी उन्होंने दिया था। आस्थगित अवधि में बैंक आफ इंग्लैंड का अनुभव इस सिद्धांत का सबसे बड़ा उदाहरण है जहां मुद्रा का तो आमतौर पर मूल्य ह्रास हुआ यद्यपि विशिष्ट मूल्य ह्रास के दर्शन नहीं हुए।

1. 'गोल्ड प्राइसिज एंड वेजिज अंडर ग्रीनबैक स्टैंडर्ड, 1908, पृष्ठ 39–41
2. तुलना करें– प्रो. निकलसन कृत *'प्रिंसिपल्स आफ पॉलिटिकल इकॅनोमी'* (1893), खण्ड II अध्याय XV 4 और वाकर.एफ.ए.कृत 'मनी', 1878 पृष्ठ 387-91

तालिका L

बैंक आफ इंग्लैंड के नोटों का मूल्य ह्रास[1]

	बैंक नोटों का प्रतिशत मूल्य	
	स्वर्ण के रूप में	वस्तुओं के रूप में
1797	100.0	110
1798	100.0	118
1799	...	130
1800	107.0	141
1801	109.0	153
1802	...	119
1803	...	128
1804	103.0	122
1805	103.0	136
1806	...	133
1807	...	132
1808	...	149
1809	...	161
1810	...	164
1811	123.9	147
1812	130.2	148
1813	136.4	149
1814	124.4	153
1815	118.7	132
1816	102.9	109
1817	102.2	120
1818	104.6	135

1 हॉट्रे कृत *'क्रेडिट एंड करेंसी'* के पृष्ठ 269 से स्वर्ण के रूप मे नोटों के मूल्य के बारे में प्रो0 फॉक्सवेल कहते हैं–"बैंक के सबसे कटु आलोचक भी स्वीकार करते हैं कि इस बात का कोई ठोस आधार नहीं है कि 1808-09 तक प्रतिबन्ध के दौरान बैंक के व्यवहार की कोई शिकायत की जाए। ऐसा नहीं लगता कि इस तारीख तक इसके नोटों का कोई वास्तविक मूल्य ह्रास हुआ था। चार पौंड प्रति औंस की कीमत 1803-9 के दौरान लगभग एक समान बनी रही। यह वास्तव में अपनी मर्जी से बैंक ने निर्धारित की थी जिस पर वह विदेशी सोना खरीदेगा।" *'प्रीफेस टु एंड्रीडीस'*, पृष्ठ XVI। कुछ लोग इस बात पर सन्देह करने लगते हैं कि 1810 तक बैंक आफ इंगलैंड के अपरिवर्तनीय नोटों में कोई विशेष मूल्य ह्रास नहीं हुआ। दुर्भाग्यवश इस तथ्य के बारे में प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप मे कोई आंकडे उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु परिस्थिति जन्य साक्ष्य उपलब्ध हैं। यह बात याद रखने योग्य है कि उन दिनों मूल्य ह्रास मापने का एकमात्र तरीका जो बैंक आफ इंगलैंड को पता था, वह स्वर्ण पर मिलने वाला प्रीमियम था। तथा हार्नर, रिकार्डो और अन्य व्यक्ति बैंक आफ इंगलैंड के जाने–माने शत्रु थे। ऐसी हालत में यह संभावना नहीं लगती कि यदि इस अवधि में बैंक आफ इंगलैंड के नोटों का मूल्य ह्रास हुआ होता तो हार्नर 1810 तक हाउस आफ कामन्स में अपना प्रस्ताव रखने की प्रतीक्षा न करता।

अगले अध्याय में हम इस बात की चर्चा करेंगे कि किस प्रकार अवमूल्यन अधिक बड़ी बुराई है। अभी तो हम बैंक आफ़ इंग्लैंड के इस अनुभव को लेंगे। हमारे पास यह तथ्य मौजूद है कि बिना विशिष्ट अवमूल्यन के भी सामान्य अवमूल्यन हो सकता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए विनिमय मानक के पक्षधर इस बात पर गर्व नहीं कर सकते कि लम्बी-लम्बी अवधियों के दौरान रुपये ने विशिष्ट अवमूल्यन के चिहन नहीं दिखाए। एक बैंक नोट जो नितांत रूप से अपरिवर्तनीय है और जिसे जारी करते समय कोई नियमन ध्यान में नहीं रखे गए और इसके बावजूद वह 13 वर्ष तक सममूल्य पर बना रहा, रुपये का यह अनुभव आस्थगित प्रणाली के पक्ष में कहीं अधिक जाता है बजाय विनिमय मानक के। दूसरी बात की अपेक्षा पहली बात अधिक आश्चर्यजनक है। इस बात के बावजूद कि यद्यपि रुपये का मूल्य स्वर्ण के रूप में मापा जाता है और स्वर्ण का मूल्य ह्रास हो रहा था, इसके बावजूद रुपयों का मूल्य बना रहा। यह पहले दिए गए इंग्लैंड में सामान्य कीमतों के आंकड़ों से स्पष्ट होता है और थोड़ी सी यह आशा कि किसी न किसी किस्म की परिवर्तनीयता भी आज नहीं तो आगे चल कर होगी हालांकि बैंक आफ़ इंग्लैंड के नोटों में उसका कोई स्थान नहीं था, तथापि शायद ही किसी व्यक्ति ने आस्थगित अवधि की मुद्रा प्रणाली की प्रशंसा की होगी या उसे न्यायोचित ठहराया होगा, यद्यपि इसके कारण काफ़ी लम्बे समय तक विशिष्ट मूल्य ह्रास नहीं हुआ।

स्वर्ण के रूप में मूल्य ह्रास मापने का तरीका अपेक्षाकृत हानिरहित ही रहता बशर्ते कि उसे एक और ऐसी कल्पना का आधार न बना लिया जाता जिस पर विनिमय मानक टिका हुआ है अर्थात मुद्रा का सामान्य और विशिष्ट मूल्य ह्रास एक दूसरे से संबंधित नहीं हैं। इसके मुकाबले यह अनुरोध करना जरूरी है कि विनिमय मानक के पक्षधरों के लाभ के लिए बैंक आफ इंग्लैंड के अनुभव से यह सीखें कि यद्यपि उनका उतार-चढ़ाव बिल्कुल सामंजस्यपूर्ण नहीं है तथापि वे निश्चित रूप से एक दूसरे सें संबंधित हैं। इस बात को सार रूप में इस तरह बताया जा सकता है कि जब मुद्रा का सामान्य मूल्य ह्रास हुआ है, तब अन्य बातें सामान्य रहने पर विशिष्ट मूल्य ह्रास होना अवश्यम्भावी है यद्यपि इसमें समय लग सकता है यदि सामान्य मूल्य ह्रास एक सीमा को पार कर जाए। सामान्य मूल्य ह्रास होने के बाद विशिष्ट मूल्य ह्रास में कितना समय लगेगा, यह कई प्रकार की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। लगातार पानी में वृद्धि होने पर झील की सतह की तरह सामान्य मूल्य ह्रास का असर भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर भिन्न-भिन्न समय में पड़ता है जो इस पर निर्भर करता है कि सामान्य काल में उसकी मांग अपेक्षाकृत कितनी शक्तिशाली रहती है। यदि स्वर्ण की मांग मुद्रा के लिए अथवा औद्योगिक इस्तेमाल के लिए नहीं हो रही तो स्वर्ण के रूप में

मुद्रा का मूल्य ह्रास विलम्ब से होगा। यह तो विदेशी भुगतान के लिए ही स्वर्ण की मांग अनुभव की जाती है और यहीं पर विशिष्ट मूल्य ह्रास का पहले-पहल पता चलता है। परंतु यहां पर भी यह जरूरी नहीं होता क्योंकि हर चीज इस बात पर निर्भर करती है कि क्या विदेशी अन्य वस्तुओं को भी स्वर्ण की तरह स्वीकार कर लेगा या नहीं और क्या वे उपलब्ध हैं या नहीं। अब भारत में ये तीनों कारक लगभग काम कर रहे हैं जिनसे विशिष्ट मूल्य ह्रास स्थगन किया जा सकता है। रुपया एक पूर्ण वैध मुद्रा है और स्वर्ण का सहारा लेने से मजबूर हुए बिना इससे ऋणों का निबटान किया जा सकता है। भारत जैसे गरीब देश[1] में उद्योगों के लिए स्वर्ण की मांग बहुत अधिक कभी नहीं हो सकती। फलतः

---

1. **विभिन्न देशों में स्वर्ण की खपत के बारे में निम्नलिखित तालिका बहुत रोचक है:–**

स्वर्ण की खपत (मिलियनस पौंड स्टर्लिंग, 85 शिलिंग प्रति फाइन औंस की दर से)*

	1915	1916	1917	1918	1919	1920
औद्योगिक कलाएं (यूरोप और अमेरिका)	17.0	18.0	16.0	17.0	22.0	22.0
भारत (3 वर्ष से अगले वर्ष 31 मार्च तक)	1.4	5.1	19.6	–3.3	27.7	5.1
चीन	–1.7	2.6	2.6	0.04	11.5	–3.7
मिश्र	–0.8	–0.2	–0.1	–0.0	–0.0	?
मुद्रा के रूप में रोकड शेष (अंतर)	80.5	68.0	48.2	64.9	13.8	46.6
विश्व	96.4	93.5	86.3	79.0	75.0	70.0

* ये आंकड़े मि. जोसेफ किचिन ने 'दि रिव्यू आफ इकॅनॉमिक स्टैटिसटिक्स' के प्रारंभिक खण्ड 3, सं. 8 में अगस्त 1921 के लिए पृष्ठ 257 पर दिए हैं। (यदि 1914 से पहले के आंकड़े चाहिए तो उक्त पुस्तक में पृष्ठ 258 पर सारणी देखिए।)

यदि 1917 और 1919 के असामान्य वर्षों को निकाल दिया जाए और आंकड़ों को प्रति व्यक्ति के हिसाब से लिया जाए तो भारत में सोने की खपत बहुत ही मामूली बैठेगी। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भारत में स्वर्ण की खपत औद्योगिक और मुद्रा, दोनों कामों के लिए है। इसके अतिरिक्त तुलना करते समय यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि अवधि की इकाई भारत और अन्य देशों के लिए अलग–अलग हैं। यह ठीक है कि इन दिनों जब सामान्य वस्तुओं के रूप में स्वर्ण का बहुत अधिक मूल्य ह्रास हो चुका है, तब यदि इसका उत्पादन घटता है तो उसके लिए आंसू बहाने की कोई जरूरत नहीं, और यदि इसका उपयोग बढ़ता है तो वह भी कोई स्वागत योग्य बात नहीं। इसलिए यदि भारत में सोने का आयात और उपयोग बढता है तो इस वृद्धि का विरोध करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा। इसलिए आज जैसी परिस्थिति है, उसमें दुनिया के लिए यही बेहतर होगा कि स्वर्ण का उपयोग बढ़े और उत्पादन कम हो। इस सम्बन्ध में तुलना करें जे.आर. एस.एस के जुलाई 1920 के अंक के पृष्ठ 623-24 पर मि0 शिराज के लेख पर प्रो0 कैनन की टिप्पणी से।

सामान्य रूप में रुपये का जो मूल्य ह्रास हुआ है, उसका देश के आंतरिक व्यापार या मूल्य ह्रास के रूप में तत्काल कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जहां तक विदेशी भुगतान का सवाल है, भारत की स्थिति यहां भी उतनी ही मजबूत है; पर इस कारण नहीं जैसा कि मूर्खतावश माना जाता है कि उसका व्यापार संतुलन अनुकूल है अपितु इसका कारण यह है कि भारत के पास कई ऐसी बहुत जरूरी वस्तुएं हैं; जो किसी विदेशी को स्वर्ण की जगह लेनी ही पड़ती हैं।[1] भारत में रुपये का विशिष्ट मूल्य ह्रास तभी होगा जब सामान्य मूल्य ह्रास के अंतर्गत वे वस्तुएं आ जाएंगी जो भारत के विदेश व्यापार का भाग हैं। परन्तु यह अपरिहार्य है कि मूल्य ह्रास का प्रभाव उन वस्तुओं पर भी पड़ेगा जैसा कि नीचे ठीक ही कहा गया है[2]:–

"किसी आधुनिक समुदाय में विभिन्न वस्तुओं की कीमतें एक पूर्ण संगठित प्रणाली का भाग होती हैं जिसके भिन्न–भिन्न भाग एक जटिल व्यापारिक प्रक्रिया के अनुसार एक दूसरे से समायोजित होते रहते हैं। महत्वपूर्ण वस्तुओं की कीमतों में कोई विशेष परिवर्तन आने से इस प्रणाली का संतुलन गड़बड़ा जाता है और व्यापारिक प्रक्रियाएं तुरंत शुरू हो जाती हैं, जिनके अंतर्गत अन्य वस्तुओं की कीमतों के साथ समायोजन की श्रृंखलाएं शुरू हो जाती हैं ताकि वह पुनर्स्थापित हो सके।"

यह सच है कि भारत में आंतरिक व्यापार के लिए उत्पादन और विदेशी व्यापार के लिए उत्पादन के बीच वैसा घनिष्ठ संबंध नहीं है जैसा कि अन्य देशों में होता है। इस स्थिति में इससे यही अंतर आ सकता है कि सामान्य मूल्य ह्रास की गति नरम पड़ जाए ताकि विदेशी व्यापार की वस्तुओं पर इसका बहुत जल्दी असर न पड़े। परन्तु यह इसके प्रभाव को अंततः कीमतें बढने से रोक नहीं सकती; और एक बार जब कीमत बढ जाएगी तो चाहे वह वस्तु कितनी भी जरूरी हो, विदेशी उसे स्वीकार नहीं करेगा। स्वर्ण की मांग जरूर बढ़नी चाहिए जिससे मुद्रा का विशिष्ट मूल्य ह्रास होगा। यह वक्तव्य बैंक आफ इंग्लैंड तथा भारत की अनुमति से भी बहुत समीप से मेल खाता है। बैंक आफ इंग्लैंड के मामले में यह "बड़ी बुराई" अर्थात बैंक नोटों का विशिष्ट मूल्य ह्रास 1809 में सामने आया, निलम्बन घोषित होने के पूरे 13 वर्षों बाद। इसी के बारे में हार्नर को बड़ी शिकायत थी। इसी तरह हम देखते हैं कि भारत के मामले में भी मूल्य ह्रास विभिन्न अंतराल के बाद आया जिसने यह दिखा दिया कि विशिष्ट मूल्य ह्रास को दूर रखने के लिए भी यह जरूरी है कि मुद्रा के सामान्य मूल्य ह्रास पर ध्यान दिया जाए।

1. प्रो. मार्शल का साक्ष्य, आई.सी.सी. 1898 पृष्ठ 11, 793
2. मिशेल, उल्लिखित, पृष्ठ 258

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए जो सिद्धांततः और इतिहास द्वारा भी सिद्ध हो चुके हैं कि रुपये ने काफी समय तक अपना स्वर्ण मूल्य बनाए रखा है, किसी को घबराकर यह नहीं मान लेना चाहिए कि विनिमय मानक एक स्थिर या स्थायी मानक है। इस तथ्य को स्वीकार करने से, ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह बिल्कुल बेमानी नहीं हो जाती। क्योंकि हमारा तो कहना यह है कि दीर्घ अवधि में मुद्रा का सामान्य मूल्य ह्रास, स्वर्ण के रूप में अपना विशिष्ट मूल्य ह्रास लाएगा ही। जब हम यह मान कर चलते हैं; कि यदि हमारे सामने वह स्थिति भी आ जाए जब मुद्रा का विशिष्ट मूल्य ह्रास नहीं हुआ, हम अपने इस मत से पीछे नहीं हट सकते कि सर्वोत्तम मुद्रा प्रणाली वही है जिसमें लेखा की इकाई के सामान्य मुद्रा ह्रास पर रोक लग सके। विनिमय मानक में नियंत्रण लाने वाला ऐसा कोई प्रभावकारी असर नहीं है। इसका स्वर्ण रिजर्व जो मूल्य–ह्रास लाने पर नियंत्रण रखने का साधन है, वास्तव में वही मूल्य ह्रास का प्रत्यक्ष कारण होता है। फिलहाल इस समय मूल्य ह्रास न होना, महज एक उल्लेखनीय और रोचक घटना मात्र ही है। इससे यह समझना कि विनिमय मानक सुरक्षा प्रदान करता है, अपनी पोल खोल देने के समान है क्योंकि देर–सवेर स्वप्नों की दुनिया में रहने वालों को इसका फल भुगतना ही पड़ेगा।

इस बारे में तो किसी भी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता है कि आदिम जातियों, जरायम-पेशा जातियों और अस्पृश्य वर्गों की जो दशा है, वह हिंदू सभ्यता के मूल सिद्धांतों का ही कुफल है।

– भीमराव अम्बेडकर

अध्याय-7

स्वर्ण मानक की ओर वापसी

विनिमय मानक की ओर से जो दावा किया जाता है कि वह रुपये की स्वर्ण से समानता बनाए रखता है, उस दावे के आधार पर हमने इसको परखा है। इस मान के गुणावगुणों का पता लगाने के लिए चैम्बरलेन कमीशन ने यह कसौटी निर्धारित की थी। परंतु क्या इस कसौटी की समता विवाद के परे है? दूसरे शब्दों में मान लीजिए कि रुपये ने स्वर्ण से अपनी समानता बनाए रखी है, जो वास्तव में उसने जितनी बार बनाए रखी है, उतनी ही बार नहीं भी बनाई, तब क्या इसका यह मतलब निकलता है कि एक अच्छी मुद्रा प्रणाली के सभी लक्ष्यों की पूर्ति हो गई है?

विनिमय मान में, "जैसी कि आज यह प्रणाली चलाई जा रही है, स्वर्ण से इसकी समानता रखने के लिए, सिक्कों की ढलाई में जोड़–तोड़ की जाती है।[1] मानो मुद्रा का महत्व यही है कि वह कितना स्वर्ण प्राप्त कर सकती है। परन्तु जो लोग धन का उपयोग करते हैं, उनके लिए महत्वपूर्ण बात यह नहीं होती कि उसका स्वर्ण में कितना मूल्य है अपितु यह होती है कि उस मुद्रा का वस्तुओं में कितना मूल्य है और इन वस्तुओं में स्वर्ण बिल्कुल नगण्य जैसा होता है। इसलिए हर जगह प्रयास यह किया जाता है कि सामान्य तौर पर वस्तुओं के रूप में मुद्रा का मूल्य स्थिर रहे, और ऐसा करना उचित भी है क्योंकि लोगों के कल्याण के लिए स्वर्ण उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि अनेकाकृत प्रत्यक्ष उपयोग वाली वस्तुएं और सेवाएं होती हैं। स्वर्ण के रूप में मुद्रा की स्थिरता का महत्व केवल स्वर्ण के व्यापारियों के लिए होता है परंतु वस्तुओं के रूप में मुद्रा की स्थिरता का प्रभाव सब पर पड़ता है जिसमें सोने के व्यापारी भी शामिल हैं। यहां तक कि *प्रो. केन्स* ने भी 1919 की इंडियन करेंसी कमेटी के सामने अपने साक्ष्य में कहा था[2] :–

"मेरा हमेशा यह लक्ष्य होना चाहिए........ भारतीय कीमतें हमेशा वस्तुओं के संदर्भ

1. फिशर पर्चेजिंग पावर आफ मनी, 1911, पृ. 340
2. प्रश्न 2,690

में स्थिर रहनी चाहिए बजाय इसके कि किसी धातु या विदेशी मुद्रा के संदर्भ में स्थिर रहें। मुझे यह भारत के लिए कहीं अधिक महत्व का लगता है।"

हां यहां यह समझना कुछ कठिन सा लगता है कि उच्च विनिमय दर अपनाने से, जिसका वे समर्थन करते हैं, यह लक्ष्य किस तरह प्राप्त होगा। विनिमय को ऊंचा करना एक व्यर्थ की परियोजना है क्योंकि यह रुपये की क्रय शक्ति के अनुरूप नहीं है। मूल्यों के निर्धारण पर प्रभाव डालने का इसका जो गुण बताया जाता है, वह इसमें है ही नहीं। कीमतों के वर्तमान स्तर पर यह किसी तरह प्रभाव नहीं डाल सकता। न विनिमय को ऊंचा करने से भविष्य से कीमतें बढ़ने पर रोक लग जाएगी। इससे तो, केवल कीमतें मापने का आधार बदल जाता है। भविष्य में नई आधार रेखा को लेकर भी कीमतें उसी तरह आसानी से बढ़ जाएंगी, जिस तरह पहले पुरानी आधार रेखा से बढ़ती थीं। दूसरे शब्दों में मि. केन्स इस बात को अनदेखा कर गए हैं कि विनिमय केवल कीमतों के स्तर का सूचक होता है और इस पर नियंत्रण करने के लिए यह जरूरी है कि कीमतों के स्तर पर नियंत्रण रखा जाए न कि इसे एक नया नाम दे दिया जाए, जिसके वह अनुरूप न हो और जिस पर वह चल न सके जैसा कि 1920 में सिद्ध हो गया था जबकि कानूनी तौर पर रुपये का मूल्य 2 शिलिंग (स्वर्ण) कर दिया गया था जबकि व्यवहार में उसके 1 शिलिंग 4 पैंस स्टर्लिंग भी नहीं मिलते थे। इसका नतीजा यह निकला कि रुपये का विनिमय घट कर उस स्तर पर आ पहुंचा जो उसकी क्रय शक्ति द्वारा निर्धारित हुआ था। परंतु इस प्रश्न के अतिरिक्त भी हमारे पास विनिमय मान के सबसे प्रखर समर्थक की स्वीकृति मौजूद है कि किसी मुद्रा प्रणाली का असली गुण सामान्य तौर पर वस्तुओं के रूप में मूल्य का मान स्थिर रखना होता है।

जब यह तय हो गया कि किसी मुद्रा प्रणाली के बारे में राय बनाने के लिए यह एक उचित कसौटी है, तो हमें यह प्रश्न पूछना चाहिए कि 1893 में टकसाल बन्द होने के बाद भारत में घटनाक्रम किस तरह चला? यह एक मूलभूत प्रश्न है तथापि विनिमय मान के गुणों की प्रशंसा करने वालों में से एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसने इस प्रश्न पर कोई ध्यान दिया हो। प्रो. केन्स, प्रो. केमेरेट अथवा मि. शिराज के पृष्ठ उलटने से भी यह पता नहीं चलेगा कि इस दृष्टि से विनिमय मान के बारे में उनका क्या मत है। चैम्बरलेन कमीशन ने या भारतीय करेंसी पर स्मिथ कमेटी ने भारत में कीमतों की समस्या[1] पर कभी भी कोई ध्यान नहीं दिया और अपने आप को इस बात पर संतुष्ट किए बिना यह समझना सचमुच कठिन है कि कोई भी वैसे उस मान की मजबूती या कमजोरी के बारे में कोई मूल्यवान राय दे सकता है।

1. शायद बाद वाली कमेटी को इस बारे में अपवाद माना जा सकता है; पर उसका उद्देश्य केवल ऊंचे एक्सचेंज के लिए मैदान तैयार करना था।

कीमतों के दृष्टिकोण से विनिमय मान पर विचार करते समय, यह बात ध्यान में रखनी होगी कि भारतीय टकसालों को मुक्त रूप से चांदी के सिक्के डालने के लिए बन्द करने का एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि रुपये का मूल्य ह्रास हो रहा था जिसका नतीजा कीमतें[1] बढ़ने में निकल रहा था। इसलिए टकसालों को बन्द करने का नतीजा यह निकलना चाहिए था कि भारत में कीमतें गिर जाती; क्योंकि प्रो. फिशर[2] की भाषा में कहा जाए तो – धन मुद्रा का जलाशय और मूल्यवान धातु का जलाशय जिस पाइप से जुड़े हुए हैं; टकसाल बन्द होने के कारण वह पाइप बन्द हो गया था या उसने काम करना बन्द कर दिया था। इस तरह मूल्यवान धातुओं में से चांदी धातु का मुद्रा के जलाशय में जाना रुक गया था।[3] दूसरे शब्दों में खानों से नई निकाली गई चांदी टकसालें बन्द होने के कारण मुद्रा नहीं बन सकती थी और प्रचलन में पड़े रुपये की क्रय शक्ति नहीं घटा सकती थी। यदि ऐसी बात है तो टकसाल बन्द करने का प्रभाव कितना निराशाजनक पड़ा? कीमतों की दृष्टि से रूपया एक ऐसी समस्या बन गया था जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। टकसाल बन्द करने के बाद से भारत के इतिहास में कीमतों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई (देखिए अध्याय 6) वास्तव में तो टकसाल बन्द करने से पहले जब चांदी व मूल्यवान धातु के जलाशय को जोड़ने वाला पाइप साबुत था तो कीमतों में जो वृद्धि हुई थी, वह टकसाल बन्द होने के बाद पाइप काट देने के बाद कीमतों में आई वृद्धि के मुकाबले नगण्य थी। इसलिए कीमतों की दृष्टि से टकसाल बन्द करना वरदान की जगह अभिशाप अधिक सिद्ध हुआ है और सही बात यह है कि निरन्तर बढ़ती हुई कीमतों के कारण भारत में जीना असहनीय होता जा रहा है। कहीं भी जनता की कीमतें बढ़ने से उतनी मुसीबतों का सामना नहीं करना पड़ रहा जितना भारत के लोगों को। युद्ध काल में कीमतें इतनी ऊंची पहुंच गई जहां पर सिर चकराने लगता है भोजन और कपड़ा न खरीद पाने के कारण आत्महत्या करने वाले स्त्री–पुरुषों की खबरें काफी अधिक थी। तथापि यह तर्क दिया जा सकता है कि यदि टकसालें बन्द न की जाती तो कीमतों में और भी अधिक वृद्धि होती और भारत केवल चांदी के मान वाला देश बना रहता। निस्संदेह इस राय के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। बात बिल्कुल सच है क्योंकि चांदी को सभी जगह हटाया जा रहा है, इसलिए यह मूल्य के मान के रूप में काम नहीं कर सकती। इस हद तक शुद्ध चांदी के मान के मुकाबले विनिमय मान बेहतर है। किन्तु क्या यह गोल्ड स्टैंडर्ड जितना अच्छा है?

1. देखिए उल्लिखित, अध्याय III
2. परचेजिंग पावर आफ मनी, 1911, पृष्ठ 128

यदि वास्तविक विनिमय दरों की व्याख्या क्रयशक्ति समता के सिद्धांत के अनुसार की जाए, तो इस प्रश्न का उत्तर 'हां' में देना पड़ सकता है। क्योंकि यह तर्क दिया जा सकता है कि यदि रुपये का स्वर्ण मूल्य बरकरार रहा था तो इसका कारण यह था कि रुपये की कीमतें और स्वर्ण की कीमतें बराबर थीं।[1] यह कहा जा सकता है कि विनिमय मान का उद्देश्य इतना ही और वह उसने करके दिखा दिया। यह तथ्य स्वर्ण मान का रिजर्व कभी कम नहीं हुआ, इस बात का प्रमाण है कि भारत में भी कीमतों का सामान्य स्तर वही है जो भारत के बाहर था। ऐसी धारणाओं के आधार पर तो यह कहा जा सकता है कि विनिमय मान स्वर्ण मान जितना अच्छा होता है।

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि यदि भारतीय कीमतें स्वर्ण की कीमतों से अधिक ऊंची नहीं थी तो उन्हें इतना ऊंचा क्यों रखा गया और क्या यह अच्छा न होता कि भारतीय कीमतों को निचले स्तर पर रखा जाता। परंतु हम यह प्रश्न नहीं उठाएंगे। यदि भारतीय कीमतें केवल स्वर्ण की कीमतों जितना ऊंची थी, तो हम इस बात से संतुष्ट हो जाएंगे। अब क्या भारतीय कीमतों में केवल स्वर्ण की कीमतों जितनी वृद्धि हुई थी? संलग्न चार्ट को देखने से इस अद्‌भुत तथ्य का पता चलता है कि भारत में कीमतें न केवल स्वर्ण की कीमतों जितनी बढ़ी, बल्कि स्वर्ण की कीमतों से भी ज्यादा बढ़ीं। यह ठीक है कि विनिमय मान की प्रभावकारिता की जांच करने के लिए भारतीय कीमतों की स्वर्ण की कीमतों से तुलना करते समय यह जरूरी है कि युद्ध की अवधि को ध्यान में न लिया जाए क्योंकि अधिकांश देशों ने स्वर्ण को मूल्य का स्टैंडर्ड मानना बंद कर दिया था। और यदि हम इस अवधि को अपने हिसाब में शामिल कर भी लें, तब भी इसका हमारे निष्कर्ष पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि यद्यपि भारत कोई युद्धरत देश नहीं था, तब भी भारत में कीमतें उन देशों से बहुत कम नहीं थी जहां युद्धकाल में बहुत अधिक मुद्रा प्रसार हुआ था और एक थोड़ी सी अवधि को छोड़ कर वे संयुक्त राष्ट्र अमरीका की स्वर्ण कीमतों से निश्चय ही अधिक थीं।

अब यह स्पष्ट है कि वास्तविक तथ्य हमारी विनिमय मान के पक्ष वाली पूर्व धारणाओं के अनुरूप नहीं है। भारत में कीमतों में स्थानीय वृद्धि, इंग्लैंड की कीमतों के सामान्य स्तर के मुकाबले अधिक थी, इतना स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था कि प्रो. केन्स को भी, जो विनिमय मान के दोषों को बढ़ा–चढ़ा कर नहीं देखते थे, उन्हें

1. तथापि यहां यह नोट करना चाहिए कि न तो प्रो. केन्स ने और न ही प्रो. केमरेर ने एक्सचेंज स्टैंडर्ड के पक्ष मे इस किस्म का कोई दावा किया था। यदि उन्होंने कुछ कहा था तो दोनों ने ही इस धारणा के विरुद्ध तर्क दिया था कि सभी कीमतों में समानता हो सकती है।

CHART VI

COMPARATIVE PRICE LEVELS, INDIAN AND FOREIGN, 1893-1922

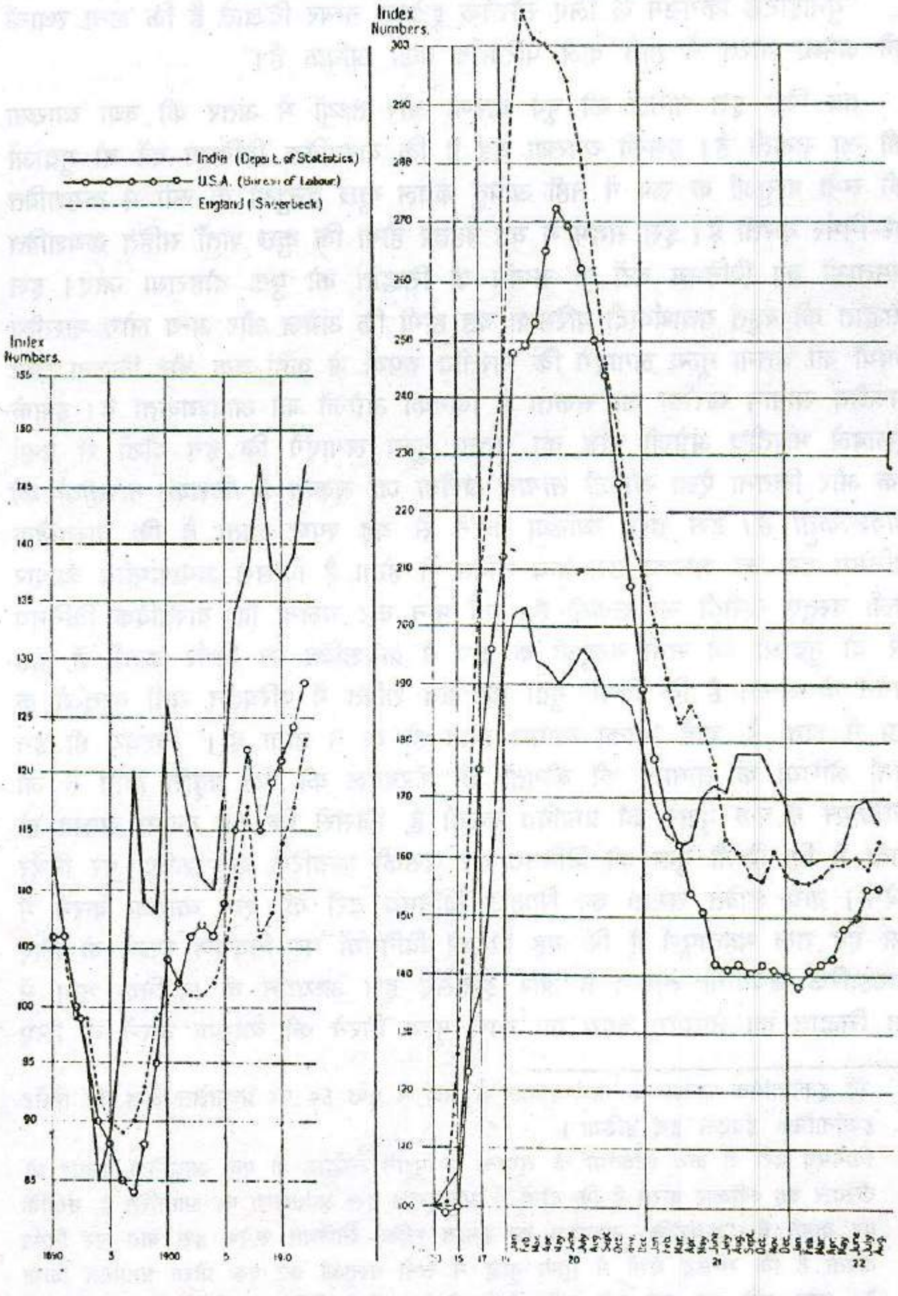

भी अपनी स्वतंत्र जांच से इस बात का विश्वास हो गया कि[1]

"युनाइटिड किंगडम के लिए सॉरबेक इंडेक्स नम्बर दिखाते हैं कि अन्य स्थानों की अपेक्षा भारत में होने वाले परिवर्तन कहीं अधिक हैं।"

तब फिर इस मामले की पूर्व धारणा और तथ्यों में अंतर की क्या व्याख्या की जा सकती है। इसकी व्याख्या यह है कि वास्तविक विनिमय दरें दो मुद्राओं की सभी वस्तुओं के रूप में नहीं अपितु केवल कुछ वस्तुओं के रूप में क्रयशक्ति पर निर्भर करती है। इस संदर्भ में यह बेहतर होगा कि कुछ शर्तों सहित क्रयशक्ति समताओं का विनिमय दरों से सम्बंध के सिद्धांत को पुनः दोहराया जाए। इस सिद्धांत की बहुत यथार्थवादी परिभाषा यह होगी कि अंग्रेज और अन्य लोग भारतीय रुपयों का उतना मूल्य लगाएंगे कि भारतीय रुपयों से कहां तक और कितना ऐसा भारतीय सामान खरीदा जा सकता है जिनकी अंग्रेजों को आवश्यकता है। इसके मुकाबले भारतीय अंग्रेजी पौंड का उतना मूल्य लगाएंगे कि इन पौंडों से कहां तक और कितना ऐसा *अंग्रेजी सामान खरीदा जा सकता है जिसकी भारतीयों को आवश्यकता है।* इस तरह व्याख्या करने से यह स्पष्ट होता है कि वास्तविक विनिमय दरों का सम्बन्ध उस क्रय शक्ति से होता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वाली वस्तुएं खरीदी जा सकती हैं। यह मान कर चलना कि वास्तविक विनिमय दरें दो मुद्राओं की सभी वस्तुओं के रूप में क्रयशक्ति पर निर्भर करती हैं, यह मानने के समान है कि किसी मुद्रा की क्रय शक्ति में परिवर्तन सभी वस्तुओं के रूप में होता है, चाहे उनका व्यापार होता हो या न होता हो।[2] निश्चय ही इन दोनों श्रेणियों के सामानों की कीमतों की फेरबदल की एक प्रवृत्ति होती है जो *दीर्घकाल में* एक दूसरे को प्रभावित करती है; जिससे कि यह करना सम्भव हो जाता है कि किसी मुद्रा की विनिमय दर उसकी आंतरिक क्रय शक्ति पर निर्भर करेगी। क्रय शक्ति समता का सिद्धांत विनिमय दरों की एक व्याख्या करने में उस हद तक महत्वपूर्ण है कि यह विदेशी विनिमयों पर नियंत्रण रखने के लिए व्यावहारिक उपयोगी सामान है और इसलिए इस अध्ययन के प्रारंभिक भाग में इस सिद्धांत का उपयोग रुपये का स्वर्ण मूल्य गिरने की व्याख्या करने के लिए

1. 'दि इकॉनामिक जर्नल' के मार्च 1909 के अंक में पृष्ठ 54 पर प्रकाशित लेख 'दि रिसेंट इकॉनामिक ईवंट्स इन इंडिया'।
2. विनिमय दरों से क्रय शक्तियों के सम्बन्ध के पुराने सिद्धांत के एक आधुनिक पक्षधर प्रो. कैस्वल यह स्वीकार करते हैं कि दोनों में अनुकूलता इस अवधारणा पर आधारित है, क्योंकि वह कहते हैं–"क्रयशक्ति समानता का हमारा गणित निश्चित रूपेण इस बात पर निर्भर करता है कि सम्बद्ध देशों में मूल्य वृद्धि ने सभी वस्तुओं को एक जैसा प्रभावित किया है। परंतु यदि यह शर्त पूरी नहीं होती तो वास्तविक विनिमय दरें हिसाब लगाई गई क्रयशक्ति समताओं से अलग होगी।"–"मनी एंड फारेन एक्सचेंज आफ्टर 1914" लन्दन, 1922, पृष्ठ 154

किया गया था। किन्तु किसी मुद्रा की क्रयशक्ति और उसके विनिमय मूल्य के संबध पर आगे बढ़ने अथवा उसके आधार पर यह तर्क देना कि किसी विशेष समय पर विनिमय दर दो सामान्य मुद्राओं की सामान्य क्रयशक्ति का लगभग सही माप है, यह मान कर चलना है जो सदैव ठीक नहीं हो सकता अर्थात व्यापार वाली वस्तुओं और बिना व्यापार वाली वस्तुओं की कीमतें एक दूसरे की सहानुभूति में बदलती हैं। यह कल्पना बहुत ही व्यापक है और यह कहा जा सकता है कि परिस्थितियों के अनुरूप यह लगभग ठीक होती है। अब जैसा कि प्रो. केमरेर ने बताया है[1]–

> "यद्यपि सम्पूर्ण रूप में भारत के निर्यात और आयात बहुत बड़े होते हैं; पर मुख्यतः भारत के लोग अपनी बनी वस्तुएं का ही इस्तेमाल करते हैं और इन वस्तुओं का भी बड़ा भाग उत्पादन से लेकर खपत तक उस छोटे से क्षेत्र से प्राप्त होता है जहां वे अपना जीवन बिताते हैं। विदेशी व्यापार स्वर्ण और स्वर्ण विनिमय से उनका बहुत दूर का, नाममात्र का सम्पर्क होता है। हां, यदि समय पाकर देश के आयात या निर्यात व्यापार के मूल्य संतुलन में कोई ठोस परिवर्तन आए, तो उनका स्थानीय मूल्यों पर प्रभाव पड़ेगा; परंतु यदि अपवादों को छोड़ दिया जाए तो इन परिवर्तनों का प्रभाव बहुत धीमा होता है और इस लम्बी प्रक्रिया में उसकी गति बहुत घट जाती है।"

इन दोनों के बीच सम्पर्क क्योंकि बहुत ही क्षीण होता है; इसलिए यह स्पष्ट है कि जो भारतीय वस्तुएं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का भाग बनती हैं; उनकी कीमतें कुल मिलाकर सदैव उसके अनुपात में नहीं बदलती जितनी उन वस्तुओं की कीमतें जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का भाग नहीं होती। इसके अतिरिक्त संबंध क्षीण होने के कारण वास्तविक विनिमय दरों के स्तर की अपेक्षा मुद्रा की सामान्य क्रय शक्ति भिन्न हो सकती है; यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि जो भारतीय वस्तुएं मुख्यतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का भाग बनती हैं; उनकी कीमतें पूरी तरह देश में वस्तुओं और सेवाओं से प्रभावित नहीं होती। भारत से होने वाले निर्यातों में गेहूं, खालें, चावल और तिलहन अन्तर्राष्ट्रीय वस्तुएं हैं। युद्ध जैसी असामान्य घटनाओं को छोड़ दिया जाए, तो इन दोनों परिस्थितियों का मिला–जुला प्रभाव यह पड़ता है कि व्यापारिक और गैर-व्यापारिक वस्तुएं एक दूसरे की सहानुभूति में तेजी से नहीं बदलती।'[2]

यद्यपि विनिमय मान बनाए रखने का यह तात्पर्य जरूर होता है कि स्वर्ण के

---

1. उल्लिखित देखें, पृष्ठ 64
2. उक्त कथन पिछली बात को दोहराना मात्र ही है ताकि इस बात की व्याख्या की जा सके कि रुपये का सामान्य मूल्य ह्रास होने पर भी तत्काल उसका विशिष्ट मूल्य ह्रास क्यों नहीं होता।

साथ रुपये का क्रय शक्ति समता बनाए रखे जाती है, परन्तु यह क्रय शक्ति समता सभी वस्तुओं के बारे में दोनों मुद्राओं की क्रय शक्ति समता नहीं होती। इन सब का तात्पर्य यही होता है कि जो वस्तुएं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में शामिल होती है उनके लिए रुपये की क्रय शक्ति स्वर्ण के सम मूल्य पर रखी जाती है। इससे स्वर्ण के रिजर्व के खत्म होने की आवश्यकता अक्सर नहीं आती। स्वर्ण रिजर्व के संरक्षित रखने का तात्पर्य केवल इतना होता है कि जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वस्तुओं की कीमतों का सवाल है, उनमें समानता रहती है। इस तरह व्याख्या करने से यह तथ्य कि रुपये का स्वर्ण मूल्य बनाए रखा जाता है, उसमें इस सम्भावना की गुंजाइश रहती है कि कुल मिलाकर भारतीय कीमतें स्वर्ण की कीमतों से अधिक हों जिससे इस पूर्ववर्ती धारणा का खंडन हो जाता है कि विनिमय मान स्वर्ण मान जितना ही अच्छा होता है।

इस बात को बता दिया जाना चाहिए[1] कि कीमतों में होने वाले सभी परिवर्तनों का प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर लगभग पड़ता है। तथापि वर्तमान आर्थिक संगठन में जो लचीलापन है जिसमें पूंजी और श्रम एक जगह से दूसरी जगह जाता है, मुक्त प्रतियोगिता है, चुनने की छूट है, आविष्कार करने का प्रतिमान है और बौद्धिक क्षमता का उपयोग व व्यापारी की जो कीमतों के आम व अस्थाई करते हैं परिवर्तनों की देखरेख कर लेता है। परंतु जब कीमतों का स्तर सामान्य तौर पर और निरंतर ही एक दिशा में बढ़ता जाता है, तब स्थिति बदल जाती है। तब इस आशा को लेकर व्यवस्था करना कि कीमतों का उतार–चढ़ाव केवल अस्थायी तौर पर है और यह फिर लौट कर पिछले साधारण स्तर पर आ जाएगी। अक्सर असफल हो जाती है। फेरबदल की आशा में अपने पास रखे रहने जो कष्ट सहना पडता है उसकी पूर्ति दूसरी दिशा में होने वाले लाभ से नहीं की जा सकती। संक्षेप में, इस तरह एक ही दिशा में कीमतों के चलने से सामान्य व्यापारिक बुद्धि भ्रमित हो ही जाती है और इससे भविष्य की सारी गणना गड़बड़ा जाती है जिसका परिणाम यह निकलता है कि असीमित रूप में घाटा उठाना पड़ता है और व्यक्ति को इतना जोरदार और उसी के साथ अगणनीय झटका लगता है कि आर्थिक दृष्टि से उसके अपने आर्थिक जीवन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं रह पाता। और अपने अस्तित्व के लिए अपनी बुद्धिमत्ता दूरदर्शिता और शक्ति का उपयोग करके भी वह कुछ नहीं कर पाता। किसी भी मौद्रिक मान में मूल्यों की पूर्ण स्थिरता केवल एक आदर्श की अवस्था होती है। परंतु अस्थिरता के दुष्परिणाम

---

1. आगे की पंक्तियों में जो कुछ लिखा गया है, वह पॉलिटिकल सांइस क्वार्टर्ली, खण्ड XV सं. 1 (मार्च 1900) पृष्ठ 14–17 में दो स्मिथ के लेख 'प्राइस मूवमेंट्स एंड इडिविजुअल वेलफेयर' का संक्षेप है।

इतने खराब होते हैं, कि प्रो. मार्शल को भी, जो यह विश्वास करते थे कि आर्थिक जीवन पर प्रभाव डालने वाले मौद्रिक आधार के हस्तक्षेप करने के विरोध में जो सामान्य पूर्वाग्रह है, वह सचमुच उचित पूर्वाग्रह है, यह कहना पड़ा कि "इस फेरबदल में कमी लाकर समुदायों के आर्थिक कल्याण की रक्षा के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है।[1] मूल्य ह्रासित होने वाला मानक एक बुराई होता है जैसे स्वर्ण का 1896 से हो रहा है। परन्तु यदि किसी मूल्य के मान का सदैव मूल्य *ह्रास* होता रहे जैसा कि विनिमय मान के मामले में हुआ है, और वह भी स्वर्ण मान के मुकाबले में अधिक तेजी से हो, अथवा दूसरे शब्दों में कीमतों में अधिक तेजी से वृद्धि आए, तब क्या उसे मूल्य का बढ़िया मान समझा जा सकता है?

जब इस बात को दृष्टि में रखते हैं तो यह बात विचित्र लगती है कि प्रो. केन्स ने अपने शोध प्रबन्ध 'इंडियन करेंसी एंड फाइनेंस' में यह कहा है कि विनिमय मान में भविष्य के आदर्श मान[2] के सभी गुण विद्यमान हैं इसी विचार का बाद में चैम्बरलेन कमीशन ने भी अनुमोदन किया। यदि क्रय शक्ति की स्थिरता को सामान्यतया वस्तुओं के रूप में मापने को किसी मुद्रा प्रणाली की कसौटी माना जाए तो अर्थशास्त्र के थोड़े से विद्यार्थी, ही प्रो. केन्स से सहमत होंगे। शायद इसे आशावादिता ही कहा जाएगा कि 1920 के प्रो. केन्स स्वर्ण विनिमय मान की जगह स्वर्ण मान को प्राथमिकता देंगे क्योंकि पहले मान में दूसरे मान की अपेक्षा कीमतों में बहुत कम उतार–चढ़ाव होगा।

इस संदर्भ में भारत में विद्यमान इस गलत धारणा की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि भारत एक स्वर्ण मान का देश है। यह तो सभी स्वीकार करेंगे कि किन्हीं दो देशों में मूल्य का वही मान है, इसकी व्यावहारिक कसौटी इन देशों की कीमतों के स्तर में उतार–चढ़ाव की विशेषताएं होगी। यह कसौटी इतनी निश्चित है कि ग्रीन बैक अवधि के लिए विभिन्न देशों के और अमेरिका की कीमतों के स्तर का बड़ी सावधानीपूर्वक और बुद्धिमत्तापूर्वक सर्वेक्षण करने के बाद प्रो. मिशल की निम्नलिखित टिप्पणी थी।[3]

"जब दो देशों में एक सी मौद्रिक प्रणाली हो और उनके आपस में महत्वपूर्ण व्यापारिक संबंध हों तो उनकी कीमतों के स्तर में होने वाले उतार–चढ़ाव जो वहां के सूचक अंकों से ज्ञात होते हैं, आपस में बहुत अधिक मिलते हैं। ये आपस में इतना अधिक मिलते हैं कि फेरबदल की यह सादृश्यता उस समय भी इतनी अधिक नजर आती है जब यह सूचक अंक अलग–अलग प्रकार की वस्तुओं

---

1. तुलना करें–'दि कंटेम्परेरी रिव्यू' के मार्च 1887 अंक में प्रकाशित लेख *'रेमेडीज फार सलक्युएशंस आफ जनरल प्राइसिजी।*
2. तुलना करें उल्लिखित का पृष्ठ 36
3. गोल्ड, प्राइसिस एंड वेजिज अंडर दि ग्रीन बैक स्टैंडर्ड' 1908, पृष्ठ 27

को लेकर अलग–अलग वर्षों के लिए बनाए जाते हैं।"

अब हम यह जानते हैं कि युद्ध से पहले इंग्लैंड एक स्वर्ण मान का देश था; और हम यह भी जानते हैं कि भारत और इंग्लैंड में समकालीन कीमतों के उतार–चढ़ाव में कोई घनिष्ठ समानता नहीं थी। इस दृष्टि से यह कहना केवल भ्रामक होगा कि भारत स्वर्णमान का देश रहा है। दूसरी ओर यह स्वीकार करना अधिक अच्छा है कि भारत को अभी तो स्वर्ण मान वाला देश बनना है जब तक कि हम वह गलती न करें जो प्रो. फिशर ने की थी[1] जब उन्होंने भारत में असाधारण रूप से बढ़ती हुई कीमतों का कारण भारत में स्वर्ण मान की उपस्थिति को बताया था जबकि असलियत यह थी कि भारत में कीमतें स्वर्णमान के न होने की वजह से बढ़ी थी।

वह स्वर्णमान वाला देश कैसे हो सकता है? इसका स्पष्ट साफ उत्तर है स्वर्ण मुद्रा जारी करके। प्रो. केन्स इस विचार की हँसी उड़ाते हैं कि बिना स्वर्ण मुद्रा के स्वर्ण स्टैंडर्ड रखने की बात महज एक मूर्खता है।[2] उनका यह विचार लगता है कि एक मुद्रा और मूल्य का मान दो अलग–अलग चीजें हैं। यहां वह निश्चित रूप से गलती पर हैं। क्योंकि समाज को आवश्यकता होती है विनिमय के माध्यम की, मूल्य के मान की और मूल्य के संचय की ताकि उसका आर्थिक जीवन चलता रहे। ऐसा तर्क देना पक्के तौर पर गलत है कि ये तीनों काम अलग–अलग साधनों द्वारा किए जा सकते हैं। इसके मुकाबले जैसा कि प्रो. डावेन पोर्ट जोर देकर कहते हैं[3]

> "मुद्रा के विभिन्न उपयोग के बीच की प्रक्रिया के केवल विभिन्न पक्षों का जोर बढ़ाकर प्रकट करते हैं। आस्थगित भुगतान विभिन्न पहलुओं पर जोर देते हैं। केवल बीच का आस्थगित भुगतान है। यही बात मान के पहलू की है। जो कुछ भी सामान्य बीच का होता है, वही असल में मान होता है। काम दो नहीं है, अपितु एक है........ स्पष्टतः बीच की क्रयशक्ति का भंडार भी हो सकता है। वस्तु विनिमय के दूसरे आधे भाग को स्थगित रखा जा सकता है। बीच का सामान्य क्रयशक्ति है। बीच के कार्य की एक विशेष सुविधा यह है कि देर तक रोका जा सकता है।"

इस तरह, चूंकि रुपया मुद्रा है, वह मूल्य का मान भी है। यदि हम चाहते हैं कि भारत में स्वर्ण मूल्य का मान बने तो उसे भारत की मुद्रा में भी शामिल करना पड़ेगा। परंतु यह पूछा जा सकता है कि यदि स्वर्ण को भारतीय मुद्रा का

1. 'परचेजिंग पावर' आदि, 1917, पृष्ठ 340
2. उल्लिखित का पृष्ठ 29
3. उल्लिखित का पृष्ठ 253–56: तुलना करें–एफ.ए.बार्बर कृत 'मनी इन इट्स रिलेशन टु ट्रेड', पृष्ठ 27 और सी.एम.वाल्श कृत 'दी फंडामेंटल प्राब्लम इन मानेटरी साइंसिज' पृष्ठ 304

एक भाग बना दिया जाए तो उससे भारत में कीमतों के स्तर में क्या परिवर्तन आएगा? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए जरूरी है कि पहले रुपया मुद्रा की प्रकृति का असली स्वरूप प्रस्तुत किया जाए। अब यहां यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि मूल्य के जिस मान का विस्तार या संकुचन किया जा सकता है, वह ऐसे मान की अपेक्षा अधिक स्थिर होगा जिसका संकुचन या विस्तार नहीं किया जा सकता। रुपया[1] मुद्रा में आसानी से विस्तार होने की क्षमता है परंतु इसमें आसानी से संकुचन की क्षमता नहीं है क्योंकि न तो इसका निर्यात किया जा सकता है और न ही इसे पिघलाया जा सकता है और न ही इच्छा होते ही इसे परिवर्तित किया जा सकता है। माननीय श्री गोखले ने अपने एक भाषण में ऐसी मुद्रा की तुलना निर्यात योग्य मुद्रा से बड़े अच्छे ढंग से इस तरह की थी[2]:–

"अब एक स्वचालित स्वतः समायोजित होने वाली मुद्रा, जैसा कि स्वर्ण के साथ हो सकता है अथवा जैसे 1893 से पहले हमारे यहां चांदी की मुद्रा थी और अब हमारे यहां जैसी कृत्रिम मुद्रा है, तो इन दोनों में अंतर क्या है। अब भारत की जैसी भौगोलिक स्थिति है, व्यापार की मांग पूरी करने के लिए हमें निर्यात के मौसम के छः महीनों में सदैव स्वर्ण या चांदी के सिक्कों की एक निश्चित संख्या में आवश्यकता पड़ेगी। जब निर्यात का मौसम तेजी पर होगा तो वस्तुएं खरीदने के लिए धन हमें देश के अन्दरूनी भागों में भेजना पड़ेगा। यह बात दोनों स्थितियों में लागू रहती है—चाहे आज जैसी कृत्रिम मुद्रा हो अथवा 1893 से पहले की चांदी की मुद्रा हो। परंतु अंतर इस बात में है कि मंदी के मौसम के बाकी छः महीनों में हमारे पास मुद्रा की बहुतायत हो जाती है और स्वतः समायोजित हो जाने वाली स्वचालित मुद्रा की बहुतायत हो जाने पर उसके लिए तीन रास्ते खुले होते हैं—अतिरिक्त सिक्के या तो बैंकों में चले जाते हैं या सरकार के खजाने में वापस आ जाते हैं, अथवा उनका निर्यात कर दिया जाता है, अथवा लोग अपनी जरूरत के कार्यों के लिए उन्हें पिघला देते हैं। परंतु जहां स्वतः समायोजित होने वाली स्वचालित मुद्रा नहीं होती, जहां सिक्का केवल एक कृत्रिम प्रतीक मुद्रा होता है जैसा कि आजकल हमारा रुपया है, इन तीन रास्तों में से दो रास्ते उसके लिए बंद हो जाते हैं। आप बिना भारी हानि उठाए रुपये का निर्यात नहीं कर सकते। आप बिना भारी हानि उठाए रुपये को पिघला नहीं सकते, फलतः फालतू सिक्के बैंकों में या सरकारी खजाने में पहुंचने चाहिएं अथवा लोग उनकी खपत को बाद वाले मामले में उसकी स्थिति जलरुद्ध जमीन जैसी हो जाएगी, जहां निकासी की कोई कुशल व्यवस्था नहीं है और जिससे आर्द्रता को नहीं हटाया जा सकता। इस देश में बैंकिंग

1. प्रांतीय वित्तव्यवस्था के विकास शीर्षक वाले अध्याय में से कोष्ठक वाला भाग नहीं है—सम्पादक।
2. सुप्रीम लोजिस्लेटिक कौंसिल का कार्यवृत्त, खण्ड 50, पृष्ठ 642

की सुविधाएं बहुत अपर्याप्त हैं। इसलिए हमारा धन बैंकों के पास या सरकारी खजाने में तेजी से नहीं लौटता। इसलिए जो अतिरिक्त धन देश के अंदरूनी इलाकों में भेजा जाता है। वह इधर–उधर पानी के छोटे–छोटे तालाबों की तरह पड़ा रहता। जो जमीन को दल–दल में बदल देता है। मेरा विश्वास है कि दो रास्ते बन्द हो जाने के कारण तीसरे रास्ते के जरिए धन की बहुतायत होने से कीमतें बढ़ जाती है।"

यदि स्वर्ण भारतीय मुद्रा का एक भाग होता, तो न केवल यह विस्तार की आवश्यकताएं पूरी कर लेता बल्कि इससे मुद्रा का इतना अधिक संकुचन भी हो सकता जिसका रुपये की पहले ज्ञान तक नहीं था। स्वर्ण, रुपये की अपेक्षा मूल्य का बढ़िया मान इसलिए होता कि पहले वाले का विस्तार भी हो सकता है और संकुचन भी; जबकि दूसरे का केवल विस्तार हो सकता है, संकुचन नहीं। जो कुछ पहले कहा जा चुका है, यह उसी को दूसरी भाषा में कहने के समान है कि भारतीय मौद्रिक मान न तो स्वर्ण मान है और न ही स्वर्ण विनिमय मान अपितु इसमें तो अपरिवर्तनीय रुपया मान के सारे गुण हैं जो कि 'बैंक स्थगन' की अवधि में कागजी पौंड के थे और स्थानीय कीमतें अतिरिक्त रूप से बढना दोनों प्रणालियों की सादृश्यता का अकाट्य प्रमाण है। ये गुण इन तीनों प्रणालियों में हैं। बुलियन रिपोर्ट में इन्हें इन शब्दों में कीमत बढ़ने का कारण बताया गया है[1]:–

"एक ऐसे देश में जिसने ऐसी मुद्रा अपनाई है जिसका दूसरे देशों को निर्यात नहीं हो सकता अथवा इच्छा होते ही जिसे ऐसे सिक्के में नहीं बदला जा सकता जिसका निर्यात हो सके, तो स्थानीय कीमतों में अतिरिक्त बढोतरी का कारण उस देश में अतिरिक्त मुद्रा का प्रचलन होता है।"

इसलिए यदि हम भारत में बढ़ी हुई कीमतों को कुछ कम करना चाहते हैं, तो सबसे जरूरी काम यह करना चाहिए कि स्वर्ण जैसी किसी निर्यात योग्य मुद्रा को भारत की मौद्रिक प्रणाली का एक प्रतिस्थानी बना दिया जाए।

चैम्बरलेन कमीशन ने भारत में स्वर्ण मुद्रा चलाने के विरुद्ध तर्क देने में काफी पटुता दिखाई।[2] इसने जो तर्क पेश किए वे इस प्रकार थे– (1) भारत के लोग स्वर्ण की जमाखोरी शुरू कर देंगे और संकट के समय उसे निकालेंगे नहीं; (2) भारत इतना गरीब देश है कि सोने जैसी महंगी धातु के सिक्कों का रखरखाव नहीं कर सकेगा; (3) भारत के लोग इतने कम सौदे करते हैं कि सोने के सिक्कों के प्रचलन की अनुमति नहीं दी जा सकती; और (4) भारत के लोगों के लिए सर्वोत्तम कागजी मुद्रा है जो रुपये में परिवर्तनीय हो क्योंकि यह भारत के लोगों के लिए

1. प्रो. कैनन का पुनर्मुद्रण, पृष्ठ 17
2. रिपोर्ट, पृष्ठ 15–19। यही तर्क मि. केन्स के ट्रीटिज के अध्याय IV में भी मिलेंगे।

सबसे कम खर्चीली है और स्वर्ण मुद्रा जारी करने से भारत के लोग कागजी मुद्रा और रुपये की मुद्रा दोनों के विरुद्ध हो जाएंगे। जमाखोरी का हौआ खड़ा करना काफ़ी पुरानी बात है और इस तर्क में कुछ दम हो सकता है बशर्ते कि इसके पीछे कोई भी नियम न हो। परन्तु असलियत कुछ और ही है। मुद्रा तो सबसे अधिक बिक्री योग्य वस्तु होती है और किसी भी सुव्यवस्थित मैट्रिक प्रणाली में इस बात की सम्भावना सबसे कम होती है कि लघु अवधि में इसका मूल्य ह्रास हो जाएगा। इसलिए लोग इसे हमेशा जमा रखते हैं और इसे मूल्य के भंडार के रूप में रखते हैं। परंतु मूल्य के भंडार के रूप में रखनेवाला व्यक्ति इस बात की तुलना करता है कि आज इससे वह जितनी उपयोगिताएं ले सकता है, भविष्य में उसके मुकाबले कितनी ले सकता है और यदि आज की उपयोगिता के मुकाबले भविष्य की उपयोगिता बहुत अधिक है और ऐसा करते समय वह अवधि और जोखिम को ध्यान में रखता है, तो वह मुद्रा को अपने पास जमा रखेगा। दूसरी ओर यदि वर्तमान उपयोग भविष्य के उपयोग के मुकाबले अधिक महत्वपूर्ण है, तो वह धन जमा नहीं रखेगा। ऐसी परिस्थिति में यह समझना कठिन है कि भारत के लोगों के लिए स्वर्ण मुद्रा की जमाखोरी पर आपत्ति की जाए। यदि वे सोने की जमाखोरी करते हैं तो इसका मतलब यह है कि या तो वे वर्तमान खरीदारी पर पैसा नहीं लगाना चाहते या फिर उनके पास और कोई घटिया मुद्रा भी है और पहले वे उसे खर्च करना चाहते हैं। दूसरी ओर यदि उन्हें वर्तमान में खरीदारी करनी है और उनके पास स्वर्ण से कोई घटिया मुद्रा नहीं है, तब वे सोने की जमाखोरी नहीं कर सकते। ऐसे मौके आए हैं जब अवसर पड़ने पर भारत से बहुमूल्य धातुओं का निर्यात हुआ है[1] जिससे सिद्ध होता है कि भारत के लोगों की जमाखोरी की आदत कोई ऐसी अज्ञात वस्तु नहीं है जितना अक्सर समझा जाता है और यदि कुछ अवसरों[2] पर उन्होंने निर्यात योग्य मुद्रा की जमाखोरी की जबकि उन्हें उसे दे देना चाहिए था, तो यह लोगों का नहीं अपितु मुद्रा प्रणाली का दोष है जिसमें कुल मुद्रा भंडार के अलग–अलग भाग मूल्य के भंडार के रूप में एक जैसे बढ़िया नहीं हैं। जमाखोरी का तर्क, यदि इसे तर्क माना जाए तो यह तर्क तो किसी भी देश के व्यक्तियों पर लागू हो सकता है, विशेषरूप से केवल भारतवासियों पर नहीं।

भारत में स्वर्ण मुद्रा के विरुद्ध दिया जाने वाला दूसरा तर्क भी पहले तर्क से अधिक जोरदार नहीं है। यदि स्वर्ण मुद्रा प्रचलन से निकल जाती है तो इसका

1. देखिए चैम्बरलेन कमीशन को मि. दलाल द्वारा दिया गया मेमोरेंडम, परिशिष्ट, खण्ड III, सं. XXXIII, पृष्ठ 673.75 इस विषय और इससे सम्बद्ध विषयों के लिए।
2. भारत के लोगों पर 1907-8 के संकट के दौरान यह इलजाम लगाया गया था। तथापि यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इस संकट के समय.भी प्राइवेट खाते से कुछ सोना निर्यात किया गया था।

कारण इसके सिवाय और कुछ नहीं कि दूसरे प्रकार की मुद्रा जरूरत से ज्यादा जारी कर दी गई। सन नब्बे के दशक में जब भारत में स्वर्णमान स्थापित करने पर विचार किया जा रहा था तो कुछ लोग इटली और आस्ट्रियाई साम्राज्य द्वारा स्वर्ण के प्रचलन को प्रोत्साहन देने के व्यर्थ के प्रयासों की चर्चा करते थे। यह एक तथ्य है कि उनका स्वर्ण अन्तर्धान हो जाता था पर ऐसा उनकी गरीबी के कारण नहीं होता था। यह तो उनकी कागजी मुद्रा के कारण होता था। कोई भी देश स्वर्ण मुद्रा चला सकता है बशर्ते कि उसी के साथ वह एक और सस्ती मुद्रा न चला दे।

और फिर यदि सौदे छोटे होने के कारण स्वर्ण के सिक्के प्रचलन में नहीं आएंगे, तो इसका यह मतलब नहीं कि स्वर्ण के सिक्के प्रचलन से निकाल लिए जाएं, बल्कि यह है कि स्थिति का सामना करने के लिए मुद्रा की इकाई छोटी रखी जाए। प्रचलन की कठिनाइयों से सिक्कों की ढलाई की समस्या उठ खड़ी होती है। परंतु सिक्कों की ढलाई की समस्या को इस प्रश्न का निर्णय का अधिकार नहीं होने दिया जा सकता कि मूल्य का मान क्या हो। यदि सावरेन प्रचलन में नहीं चलता तो इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत स्वर्ण मुद्रा न रखे। इसका अर्थ यही है कि प्रचलन की दृष्टि से सावरेन बहुत बड़ी मुद्रा है। यहां मामला यदि कोई है भी तो वह सावरेन सिक्के की इकाई के विरुद्ध दिया जा रहा है न कि स्वर्ण मुद्रा के सिद्धांत के विरुद्ध। यदि सावरेन इतना छोटा नहीं है कि प्रचलन में आ सके तो निष्कर्ष यह निकलता है कि स्वर्ण के प्रचलन को प्रभावकारी बनाने के लिए हम कोई और छोटा सिक्का बनाएं।

स्वर्ण मुद्रा के विरुद्ध चौथा तर्क तो एक तथ्य के रूप में है जिसे न सत्य सिद्ध किया जा सकता है और न ही असत्य। इसके लिए तो प्रमाण देखने पड़ेंगे कि क्या स्वर्ण मुद्रा में वह प्रवृत्ति होती है जो उसकी बताई जाती है। परन्तु क्या हम यह पूछ सकते हैं कि क्या मुद्रा की उस प्रणाली में कोई जोखिम नहीं होती जिसमें कागजी मुद्रा रुपयों में परिवर्तनीय होती है? क्या कागज का रुपये के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा? यदि कमीशन ने इस प्रश्न पर विचार किया भी है जो बहुत सन्देहास्पद है, तो शायद उसे इस आम राय को मानने के लिए प्रेरित किया गया था कि कागजी मुद्रा परिवर्तनीय होती है इसलिए वह रुपये के मूल्य या उसकी क्रयशक्ति पर कोई प्रभाव नहीं डालती। यह राय बनाना गलत था क्योंकि कागजी मुद्रा के जितने भाग को सुरक्षा राशि के अन्दर किया गया, उस हद तक उसकी परिवर्तनीयता उसे लेखे की इकाई के मूल्य को गिरने से नहीं रोक सकती जिसमें वह परिवर्तनीय है क्योंकि प्रतियोगिता के कारण लेखे की उस इकाई की मांग कम हो जाती है जिससे उसके मूल्य में गिरावट आती है। इस तरह यद्यपि कागजी मुद्रा के रूप में कम खर्चीला बैठता है, वह रुपये के मूल्य के लिए खतरा

होता है। यदि रुपया स्वर्ण में मुक्त रूप से परिवर्तनीय होता, तो खतरा सीमित मात्रा में होता। परंतु लेखे की इकाई को परिवर्तनीय कागजी मुद्रा का खतरा उतना ही बढ़ जाता है जितना अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा का होता है जब तक कि उस इकाई को संरक्षित करके अंतिम प्रतिदान की धातु से, उस धातु में मुक्त परिवर्तनीयता करके, उससे नीचे नहीं गिरने दिया जाता।[1] रुपया ऐसी किसी परिवर्तनीयता द्वारा संरक्षित नहीं है और चूकि कमीशन नहीं चाहता था कि, यह इस तरह संरक्षित हो, तो कमीशन को यह समझ लेना चाहिए था कि वह रुपये को सामान्य रूप में वस्तुओं के रूप में और इस तरह स्वर्ण के रूप में सममूल्य में बने रहने की संभावनाओं को कागजी मुद्रा के विस्तार को बढ़ा करके भारी हानि पहुंचा रहा था चाहे वह कागजी मुद्रा पूरी तरह परिवर्तनीय हो, ठीक उसी तरह जैसे वह उसे पूरी तरह अपरिवर्तनीय बना कर कर, रहा था। परन्तु कमीशन मितव्ययता के प्रश्न पर इतना अभिभूत और मूल्य की स्थिरता के विचारों से आत्मसंयम खो बैठा था कि दरअसल उसने एक ऐसे परिवर्तन का सुझाव दे दिया कि भारतीय कागजी मुद्रा 'स्थायी इश्यू प्रणाली' की जगह 'स्थायी आनुपातिक प्रणाली' पर चले।[2] मितव्ययता की खातिर कमीशन ने प्रश्न के इस पहलू की उपेक्षा कर दी, यह इस बात का एक और प्रमाण है कि जहां तक भारतीय मुद्रा की क्रय शक्ति की स्थिरता का प्रश्न है, उसे कमीशन ने वही सरसरी दृष्टि से देखा।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, यदि उसमें कुछ बल है तो स्वर्ण मुद्रा केवल 'भावना' का प्रश्न नहीं है और न ही यह केवल 'महंगा विलास' अपितु एक आवश्यकता है जो भारतीय मूल्य के बनाए रखने के महान हित ने प्रेरित किया और इस तरह कुछ हद तक, चाहे थोड़ा ही सही वह बढती हुई कीमतों में अवांछनीय दुष्परिणामों से भारतीय जनता के कल्याण की रक्षा करता है।

इस तरह हम यह देखते हैं कि भारत सरकार की मूल योजना के प्रारूप से हट कर जिसे फाउलर कमेटी की स्वीकृति प्राप्त थी, चैम्बरलेन कमीशन ने कितनी बड़ी गलती की। परंतु इससे प्रश्न पैदा होता है कि वह आदर्श इतनी निर्दयता से क्यों कुचला गया? यदि फाउलर कमेटी ने प्रस्ताव किया था कि स्वर्ण को भारतीय मुद्रा बनाया जाए, तो फिर भारतीय मुद्रा स्वर्ण को क्यों न बनी रही? यह नहीं कहा जा सकता कि स्वर्ण के प्रवेश के द्वार बन्द कर दिए गए हैं क्योंकि इसे विधिमान्य मुद्रा घोषित किया गया है। प्रो. फिशर के शब्दों में जहां तक कथन का सवाल है भारत के मुद्रा जलाशय में स्वर्ण के आवागमन को चांदी की अपेक्षा कहीं अधिक स्वतंत्रता दी गई है। चांदी के रूप में रुपया इस जलाशय में बहुत

1. इस विषय पर एक सुन्दर विवेचन के लिए देखें 'मनी : इट्स कनेक्शन विद राइजिंग एंड फालिंग प्राइसिज''—ले. प्रो. केनन, तीसरा संस्करण पृष्ठ 47—8
2. रिपोर्ट धारा 112

ही संकीर्ण वाल्व के रास्ते से घुसता है, परंतु उसके बाहर निकलने का कोई निकास द्वार नहीं है। दूसरी ओर स्वर्ण इस जलाशय में एक नल के जरिए प्रवेश करता है जहां से वह अन्दर प्रवेश भी कर सकता है और बाहर निकल भी सकता है। तब भला फिर स्वर्ण भारत के जलाशय में प्रवेश क्यों नहीं करता? इस प्रश्न को ठीक तरह समझ कर ही हम 1898 में प्रस्तावित सुदृढ़ प्रणाली की ओर लौट सकते हैं।

प्रश्न के इस पहलू से संबंधित साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि भारत की मुद्रा प्रणाली में स्वर्ण के प्रवेश न करने की दो व्याख्याएं दी जाती हैं। एक तो है भारत सचिव द्वारा कौंसिल बिलों की बिक्री कहा जाता है कि कौंसिल बिलों की बिक्री का प्रभाव यह होता है कि स्वर्ण के भारत में आने पर रोक लग जाती है। मि. सूबेदार को भारतीय मुद्रा का एक अधिकारी विद्वान माना जाता है। उन्होंने स्मिथ कमेटी के सामने (प्र. 3,502) अपने साक्ष्य में कहा–

> "जो लोग हमारी मुद्रा नीति को चलाते हैं उन्होंने 1905 के बाद से जानबूझ कर ये प्रयास किए कि स्वर्ण को भारत में आने से और प्रचलन में आने से रोका जाए।"

कौंसिल बिलों[1] का इतिहास ईस्ट इंडिया कम्पनी के दिनों से शुरू होता है। भारत सरकार की एक विशेष स्थिति इस बात से पैदा होती है कि यह अपना राजस्व भारत में प्राप्त करती है और इसे भुगतान इंग्लैंड में करने होते हैं। इस तरह इसके लिए वह जरूरी हो जाता है कि भारत से इंग्लैंड को धन प्रेषित किया जाए। ईस्ट इंडिया कम्पनी के दिनों से ही नीति यह रही है कि यह धन इस तरह प्रेषित किया जाए कि सराफों का अंतरण न करना पड़े। ईस्ट इंडिया कम्पनी के डाइरेक्टरों के पास धन प्रेषित करने के तीन तरीके थे–(1) भारत से सराफा इंग्लैंड भेजी जाए; (2) भारत सरकार पर बिलों के बदले इंग्लैंड से धन प्राप्त किया जाए; और (3) इंग्लैंड को माल भेजने के लिए खरीद के लिए भारत में व्यापारियों को पेशगी दे दी जाए और इंग्लैंड में कम्पनी के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को जिनके पास माल गिरवी रखा जाता है, उनका उन्हें पुनर्भुगतान किया जाए। इन तीनों में से अंतिम दो पर अधिक निर्भर रहा जाता था। कुछ समय बाद माल की गिरवी के बदले प्रेषण का तरीका छोड़ दिया गया क्योंकि इससे उधार का "एक दुष्चक्र शुरू हो जाता था जो व्यापार के सामान्य काम–काज में हस्तक्षेप करता था"। इन तीनों विकल्पों[1] में से भारत पर बिलों की बिक्री को ही सबसे उपयुक्त विकल्प समझा गया और जब ब्रिटिश ताज ने कम्पनी से भारत

1. तुलना करें– भारत से होने वाले प्रेषणों की प्रणाली के संबंध में सर हेनरी वाटरफील्ड का मेमोरेंडम, फाउलर कमेटी की रिपोर्ट का परिशिष्ट पृष्ठ 24, कौंसिल बिलों की बिक्री और तार द्वारा अंतरण के बारे में एफ.उब्ल्यू न्यू मार्च का मेमोरेंडम भी देखें। रायल कमीशन ऑन 'इंडियन फाइनेंस एंड करेंसी', की अंतरिम रिपोर्ट का परिशिष्ट, खण्ड 1, सं. VIII पृष्ठ 217

सरकार का कार्य भार सम्भाल लिया तो भारत सचिव अर्थात सेक्रेटरी आफ स्टेट इन कौंसिल ने इसे जारी रखा और इसी से इसका नाम कौंसिल बिल पड़ गया। भारत सचिव के हाथों में कौंसिल बिल में कुछ संशोधन हुए। अब यह बिक्री साप्ताहिक आधार[2] पर की जाती है और इसकी व्यवस्था बैंक आफ इंग्लैंड की मार्फत की जाती है जो हर बुद्धवार को भारत सचिव की ओर से एक विज्ञापन प्रकाशित कराता है कि आगामी बुद्धवार तक बम्बई या कलकत्ता या मद्रास में मांग पर भुगतान किए जाने वाले बिलों के लिए निविदाएं आमंत्रित की जाती हैं। जिस कीमत पर ये टेंडर स्वीकार किए जाते हैं; वे अब पैनी के 1/32 वें भाग तक निर्धारित की गई हैं।[3] कौंसिल बिल एक ही प्रकार का नहीं होता जैसा कि पहले होता था। उसके मुकाबले अब इन बिलों के चार वर्ग होते हैं– (1) सामान्य बिल आफ एक्सचेंज जो हर बुद्धवार को बेचे जाते हैं और जिन्हें "कौंसिल" कहा जाता है; (2) तार द्वारा अंतरण[4] जो बुद्धवार को बेचे जाते हैं और जिन्हें संक्षेप में "ट्रांसफर" कहा जाता है; (3) सामान्य एक्सचेंज बिल जिन्हें बुद्धवार के अतिरिक्त सप्ताह में किसी भी दिन बेचा जाता है। इन्हें "इंटरमीडिएट" कहा जाता है; और (4) तार द्वारा अंतरण जिन्हें बुद्धवार के अतिरिक्त किसी भी दिन बेचा जाता है और जिन्हें "स्पेशल" का नाम दिया गया है। अब भारत सचिव किस तरीके से अपने कौंसिल बिलों की मशीनरी का उपयोग करता है जिससे स्वर्ण को भारत में जाने से रोका जा सके? कहा जाता है कि बिक्री की कीमत और आकार की इस तरह व्यवस्था की जाती है कि स्वर्ण भारत नहीं जा पाता। इस बात की जांच करने से पहले कि इससे फाउलर कमेटी की नीति को किस हद तक असफल कर दिया गया था, आगामी पृष्ठों पर दी गई तालिका–LI और II से इसे समझा जा सकता है।

---

1. एक चौथा विकल्प भी था भारत सरकार लन्दन पर भारत में स्टर्लिंग बिल खरीदती थी और वसूली के लिए उन्हें भारत मंत्री को भेज देती थी। यह विकल्प 1877 में कुछ समय के लिए अपनाया परंतु बाद में इसे छोड़ दिया गया।
2. 22 जनवरी 1862 से, जब पहली बार भारत मंत्री के प्राधिकार के अंतर्गत कौंसिल बिलों की बिक्री शुरू हुई, नवम्बर 1862 तक यह बिक्री मासिक आधार पर की जाती थी। नवंबर 1862 से यह बिक्री पाक्षिक आधार पर की जाने लगी और अगस्त 1876 से इसे साप्ताहिक बना दिया गया।
3. जनवरी से मार्च मार्च 1862 तक न्यूनतम भिन्न एक फार्दिंग होती थी, मार्च 1862 से इसे घटा कर पैनी का 1/8 वां भाग कर दिया गया, जनवरी 1875 से 1/16वां भाग और 1882 में 1/32वां भाग कर दिया गया जो अब तक चल रहा है।
4. पहले–पहल 1876 में लागू।

इन तालिकाओं से दो तथ्य एकदम स्पष्ट हो जाते हैं। एक तो है कौंसिल बिलों की भारी मात्रा जिन्हें भारत सचिव बेचता है। टकसालें बन्द करने से पहले कौंसिल बिलों की बिक्री "होम चार्जेज" के आकार के अनुरूप बहुत घनिष्ठ रूप में चलती थी और वास्तविक रूप से निकाला गया रुपया बजट के अनुमानों से बहुत अधिक भिन्न नहीं होता था। टकसालें बन्द होने के बदले भारत सचिव द्वारा निकाला जाने वाला धन शुद्ध रूप से होम ट्रेंजरी की आवश्यकताओं पर निर्भर नहीं करता था। टकसालें बन्द होने के बाद से भारत सचिव यह चेष्टा करता रहा है[1]–

"(1) वित्तीय वर्ष में भारत सरकार के खजानों से इतना धन निकालना जिसकी बजट में वर्ष भर का काम चलाने के लिए व्यवस्था की गई है।

(2) इतना धन और निकालना जो सिक्के ढालने के लिए चांदी खरीदने के लिए आवश्यक हो।

(3) इतना और धन निकालना जितना अकस्मात किसी बढ़िया मौसम के कारण सरकार बचा सके जो इंग्लैंड में ऋण चुकाने या ऋण से बचने के काम आ सके।

(4) व्यापार की सुविधा के लिए अतिरिक्त बिल और ट्रांसफर बेचना।

(5) भारत पर टेलीग्राफिक ट्रांसफर जारी करना जो उन सावरेनों के भुगतान के लिए हो जिन्हें भारत सचिव ने आस्ट्रेलिया से आते समय या मिस्र से भारत आते समय खरीदा हो।"

इस तरह निकालने का परिणाम यह निकलता है कि कौंसिल भारत का व्यापार संतुलन समायोजित करने में महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं; होम ट्रेजरी का रोकड़ शेष बढ़ा देते हैं और भारतीय धन निधि लन्दन में बंध जाती है।

इन तालिकाओं में जो दूसरी बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए वह यह है कि भारत सचिव किन कीमतों पर यह बिक्री करता है। टकसालें बन्द होने से पहले कौंसिल बिलों की कीमतों पर भारत सचिव का कोई नियंत्रण नहीं होता था; इसलिए उसे साप्ताहिक बिक्री के समय सबसे ऊंची बोली देने वाले की कीमत माननी पड़ती थी। परंतु अब इस बात पर आपत्ति की जाती है कि जब टकसालें

---

1. तुलना करें:– एफ०डब्ल्यु न्यामार्च द्वारा चेम्बरलेन कमीशन को दिये गये ज्ञापन खण्ड I न. VII पृष्ठ 222

तालिका–LI

1893 के पहले व्यापार संतुलन, कौंसिल आहरण और स्वर्ण का आयात

वर्ष	कापास संतुलन व्यापक वस्तुएं निजी लेखा	मूल्यवान धातुओं का निवल आयात		आहरण किए गए कौंसिल बिलों की राशि	बजट अनुमानों के मुकाबले आहरण किए गए बिलों का अधिकतम (+) अथवा कमी(–)	होम चर्चिज	होम ट्रेजरी में नकद रोकड़ शेष	कौंसिल बिलों की न्यूनतम दरें	
		स्वर्ण	चांदी						
(1)	(2) पौंड	(3) पौंड 000,000 में	(4) पौंड 000,000 में	(5) पौंड	(6) पौंड	(7) पौंड	(8) पौंड	(9) शि.	पैं.
1870–71	20,863,000	2.13	.9	—	—	10,031,261	3,305,972	1	10 1/4
1871–72	31,094,000	3.43	6.3	—	—	9,703,235	2,820,091	1	10 3/8
1872–73	23,376,000	2.41	.7	13.939095	–939,095	10,248,605	2,998,44	1	10 3/8
1873–74	21,160,000	1.29	2.3	13.285,678	-214,322	9,310,926	2,013,638	1	9 1/2
1874–75	20,137,000	1.73	4.3	10.841,615	+841,615	9,490,391	2,796,370	1	9 3/4
1875–76	19,204,000	1.40	1.4	12.389,613	–1,910,387	9,155,050	919,899	1	9
1876–77	23,573,000	.18	6.1	12.695,800	–964,200	13,851,296	2,713,967	1	6 3/16
1877–78	23,578,000	.41	12.7	10.134,455	–2,115,545	14,048,350	1,067,657	1	8 5/8
1878–79	23,167,000	.74	3.3	13.948,565	–3,051,435	13,851,296	1,117,925	1	6
1879–80	26,064,000	1.45	6.5	15.261,810	+261,810	14,547,664	2,270,107	1	7
1880–81	21,464,000	3.03	3.2	15.239,677	–1,660,323	14,418,986	4,127,749	1	7 1/2

... अगले पृष्ठ पर जारी

तालिका....जारी

(1)	(2) पौंड	(3) पौंड 000,000	(4) पौंड 000,000	(5) पौंड	(6) पौंड	(7) पौंड	(8) पौंड	(9) शि. पैं.
1881—82	32,855,000	4.02	4.5	18,412,429	+1,212,429	14,399,083	2,620,909	1 $7_{3/8}$
1882—83	31,389,000	4.10	6.1	15,120,521	−221,479	14,101,262	3,429,874	1 7
1883—84	23,611,600	4.44	5.2	17,599,805	+1,299,805	15,030,195	4,113,221	1 $7_{1/4}$
1884—85	20,034,100	3.76	5.8	13,758,909	−2,741,091	14,100,982	2,249,378	1 $6_{3/4}$
1885—86	21,344,200	2.10	8.8	10,292,692	−3,481,008	14,014,733	4,726,585	1 $5_{3/8}$
1886—87	19,844,200	1.58	5.2	12,136,279	−1,195,121	14,409,949	5,280,829	1 $4_{1/8}$
1887—88	18,724,400	2.10	6.5	15,358,577	−891,432	15,389,065	5,900,697	1 $4_{1/8}$
1888—89	20,271,900	1.92	6.3	14,262,859	+262,859	14,983,221	3,259,933	1 4
1889—90	24,557,800	3.18	7.6	15,74,496	+784,596	14,848,923	5,402,873	1 4
1890—91	20,733,800	4.25	10.7	15,969,034	+980,034	15,568,875	3,885,050	1 $4_{5/16}$
1891—92	27,632,400	1.68	6.3	16,093,854	+93,854	15,874,699	4,122,626	1 $3_{1/16}$
1892—93	29,287,300	1.75	8.0	16,532,215	−467,785	16,334,541	12,268,388	1 $2_{5/8}$

तालिका—LII

1893 बाद व्यापार संतुलन, कौंसिल आहरण और स्वर्ण का आयात

वर्ष	व्यापार संतुलन (व्यापारिक वस्तुएं: निजी लेखा)	मूल्यवान धातुओं का निवल आयात		आहरण किए गए कौंसिल बिलों की राशि	बजट अनुमानों के मुकाबले आहरण किए गए बिलों का अधिकता (+) अथवा कमी(−)	होम चर्जिज	होम ट्रेजरी में नकद रोकड़ शेष	कौंसिल बिलों की न्यूनतम दरें	
		स्वर्ण	चांदी						
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	
	पौंड	पौंड 000,000 में	पौंड 000,000 में	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	शि.	पैं.
1893—94	21,660,500	−.39	8.3	9,530,235	−9,169,765	15,826,815	1,300,564	1	1.500
1894—95	25,765,000	−2.7	3.4	16,905,102	−94,898	15,707,367	1,503,124	1	0.000
1895—96	29,963,800	1.5	3.7	17,664,492	+664,492	15,606,370	3,393,798	1	1.000
1896—97	21,333,100	1.4	3.5	15,526,547	−973,453	15,795,836	2,832,354	1	1.781
1897—98	18,847,000	3.2	5.4	9,506,077	−3,493,923	16,198,263	2,534,244	1	2.250
1898—99	29,560,700	4.3	2.6	18,692,377	+2,692,377	16,303,197	3,145,768	1	3.094
1899—1900	25,509,600	6.3	2.4	19,067,022	+2,067,022	16,392,846	3,330,943	1	3.875
1900—01	20,727,400	.5	6.3	13,300,277	−3,139,723	17,200,957	4,091,926	1	3.875
1901—02	28,630,600	1.3	4.8	18,539,071	+2,039,071	17,368,655	6,693,137	1	3.875
1902—03	33,352,600	5.8	4.6	18,499,946	+1,999,946	18,361,821	5,767,787	1	3.875
1903—04	45,424,100	6.6	9.1	23,859,303	+6,859,303	18,146,474	7,294,782	1	3.875

अगले पृष्ठ पर जारी

तालिका....जारी

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)
1904—05	40,548,200	6.5	8.9	24,425,558	+7,925,558	19,463,757	10,262,581	1 3.969
1905—06	39,086,700	.3	10.5	32,166,973	+14,333,973	18,617,465	8,436,519	1 3.938
1906—07	45,506,600	9.9	16.0	33,157,196	+15,357,196	19,208,408	5,606,812	1 3.969
1907—08	31,640,000	11.6	13.0	16,232,062	−1,867,938	18,487,267	5,738,489	1 3.906
1908—09	21,173,300	2.9	8.0	13,915,426	−4,584,574	18,925,159	8,453,715	1 3.906
1909—10	47,213,000	14.5	6.3	27,096,586	+10,896,586	19,122,916	15,809,618	1 3.906
1910—11	53,685,300	16.0	5.8	26,783,303	+11,283,303	19,581,563	18,174,349	1 3.906
1911—12	59,512,900	25.1	3.6	27,058,550	+9,900,250	19,957,657	19,463,723	1 3.937
1912—13	57,020,900	22.6	11.5	25,759,706	+10,259,706	20,279,572	9,789,634	1 3.969
1913—14	43,753,900	15.6	8.7	31,200,827	+10,000,827	20,311,673	3,157,732	1 3.937
1914—15	29,108,500	5.1	5.9	7,748,111	−12,251,889	20,208,598	7,913,236	1 3.937
1915—16	44,026,600	−.7	3.2	20,354,517	+13,354,517	20,109,094	12,803,348	1 3.937
1916—17	60,843,200	8.82	12.5	32,993,095	+29,093,095	21,145,627	11,391,993	1 4.031
1917—18	61,420,000	16.8	12.7	34,880,682	+34,880,682	26,065,057	16,625,416	1 4.156
1918—19	56,540,000	−3.7	45.3	20,946,314	+20,946,314	23,629,495	14,715,827	1 4.906

बंद होने के बाद भारत सचिव को निर्माण का पूर्ण अधिकार मिल गया है, तब वह रुपया सबसे ऊंची बोली देनेवाले को अब भी बेचता रहे। यह जोर देकर कहा जाता है कि अपनी एकाधिकार वाली स्थिति का लाभ उठाते हुए उसे ये बिल 1 शि. $4_{1/8}$ पैंस या 1 शि0 $4_{3/32}$ पैसे पर नहीं बेचने चाहिए क्योंकि 15 रुपये प्रति सावरेन की दर से यह भारत के लिए स्वर्ण आयात करने का अंक बैठता है। व्यवहार में भारत सचिव ने अपनी इस स्थिति का लाभ नहीं उठाया है और स्वर्ण आयात करने के अंक से नीचे की दरों के टेंडर स्वीकार कर लिए हैं। जैसा कि उसके द्वारा बिलों को स्वीकार करने की न्यूनतम दरों से पता चलता है।

यह कहा जाता है कि यदि कौंसिल बिलों की बिक्री करते समय इस बात पर कड़ी नज़र रखती कि उतने ही कौंसिल बिल बेचे जाएं जितने होम ट्रेजरी के लिए जरूरी हैं और यदि वह स्वर्ण आयात करने के अंक से कम कीमतों पर न बेचे जाते तो उससे भारत में स्वर्ण का आयात होने लगता और वह भारतीय मुद्रा माध्यम का एक भाग बन जाता। ऐसी स्थिति में भारत सचिव के कदम से भारतीय सोना लन्दन में बन्द हो जाता है। यहां हमें इस बात से कोई अभिप्राय नहीं कि लन्दन में भारतीय सोने का उपयोग होता है या दुरुपयोग। परंतु जो लोग इंडिया आफिस द्वारा भारतीय निधियों के प्रबन्ध में होने वाले कलंकित कारनामों को न्यायोचित ठहराना चाहते हैं और उन्हें वैज्ञानिक आधार देने के लिए अपनी सेवाएं प्रस्तुत कर रहे हैं, उन्हें यह बात याद दिलाई जा सकती है कि डाउनिंग स्ट्रीट के एक तरफ चलने वाली इस कार्रवाई को, जिसे बागेहॉट के शब्दों में यदि दूसरी तरफ भी चलाया गया तो उसकी जोरदार आलोचना अवश्य होगी। उसे सही सिद्ध करने के लिए उन्होंने जो कुछ कहा है, उससे और ज्यादा चालाकी की जरूरत होगी। ऐसा लगता है कि यह बात दोनों तरफ स्वीकार कर ली गई है कि भारत सचिव के कार्यकलापों से भारत में स्वर्ण का आयात रूकता ही पूरी तरह तो नहीं, पर उतना जरूर जितना इन कार्यकलापों के अंतर्गत आता है। अब जो लोग यह कहते हैं कि फाउलर कमेटी के आदर्शों को बिल्कुल छोड़ दिया गया है, निस्सन्देह उनका विचार ठीक है कि भारत सचिव की कार्रवाई को सीमित कर देने से भारत में स्वर्ण का आयात होने लगेगा। परन्तु इस बात को मानक का क्या औचित्य है कि आयातित स्वर्ण भारत में मुद्रा का एक भाग बन जाएगा? यह मान लेना कि भारत सचिव की वित्तीय कार्रवाइयां बन्द कर देने से स्वर्ण स्वतः ही भारत की मुद्रा बन जाएगा, बहुत ही दरियादिली की बात कही जाएगी। आयातित स्वर्ण भारतीय मुद्रा का भाग बनेगा या नहीं, बिल्कुल भिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

फाउलर कमेटी के आदर्श पूरे न हो पाने का एक और कारण बताया जाता

है भारत में ऐसी टकसाल का न खोला जाना जहां सोने को मुक्त रूप से सिक्कों में ढ़ाला जाता हो। फाउलर कमेटी की सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि ऐसी टकसालें खोली जाएं जहां सोने को मुक्त रूप से सिक्कों में ढ़ाला जाए। यहां तक कहा गया है कि फाउलर कमेटी के आदर्शों पर पानी फेरने के लिए सरकार द्वारा इन सिफारिशों को कार्यान्वित करने की गलती जिम्मेदार है। स्वर्ण मुद्रा के समर्थक सदैव ही इस बात पर रोष प्रगट करते हैं कि ट्रेजरी के उग्र व्यवहार के कारण ही सरकार ने 1900 में प्रस्ताव को त्याग देने पर अपनी सहमति दे दी थी। सन् 1911 में सर वी थैकरसे ने सुप्रीम लैजिस्लेटिव कौंसिल में एक प्रस्ताव पेश किया था जिसमें सरकार से अनुरोध किया गया था कि यदि ट्रेजरी सहमति दे दे, तो वह सावरेन ढ़ालने के लिए स्वर्ण टकसाल खोलने की वांछनीयता पर विचार करें, और यदि ऐसा नहीं हो सकता तो, वह सोने का अन्य सिक्का ढालने पर विचार करें। कौंसिल की एक स्वर से उठाई गई इस आवाज को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने भारत सचिव से पुनः आग्रह किया कि वह ट्रेजरी से इसे स्वीकृति देने को कहे।[1] इस मौके पर ट्रेजरी ने भारत सचिव[2] के सामने दो विकल्प रखे—(1) रायल मिंट (शाही टकसालों को भारत में एक शाखा केवल सोने के सावरेन ढालने के लिए खोले जो पूरी तरह इसके नियंत्रण में हो; अथवा (2) बम्बई की टकसाल का नियंत्रण पूरी तरह इसे हस्तांतरित कर दिया जाए। भारत सरकार को इन दोनों में से कोई भी विकल्प स्वीकार्य नहीं था; और भारतीय भावनाओं का आदर करते हुए भारत सचिव ने भारतीय टकसाल से दस रुपये का स्वर्ण का सिक्का ढालने की अनुमति दे दी। भारत सरकार ने इस हल को ट्रेजरी के सुझाव से बेहतर समझा परंतु यह इच्छा प्रगट की कि चैम्बरलेन कमीशन जो उस समय काम कर रहा था, इस पर नए सिरे से विचार करे। कमीशन ने स्वर्ण टकसाल खोलने की अनुमति तो नहीं दी परन्तु उसकी स्थापना में उसे कोई आपत्ति नहीं दिखाई दी बशर्ते कि वह केवल सावरेन का सिक्का जारी करे, और भारतीय जनमत चाहे कि वह सिक्का ढाला जाए और भारत सरकार सिक्का ढालने का व्यय उठाने को तैयार हो।[3] कमीशन के इस विचार के कारण प्रस्ताव आगे नहीं बढ़ा और स्थिति वही हो गई जो 1900 में थी। बाद में युद्ध शुरू होने के कारण सरकार को विवश हो कर रायल मिन्ट की एक शाखा के रूप में सोने के सिक्के ढालने के लिए बम्बई टकसाल खोलनी पड़ी। परन्तु 1919 में इसे फिर बन्द कर दिया गया। 1919 के करेंसी कमीशन ने इसे पुनः खोलने की सिफारिश की[1] और इस योजना का इतना जोरदार स्वागत हुआ कि सुप्रीम कौंसिल के एक माननीय सदस्य ने सरकार को

1. देखें कामन्स पेपर 495, 1913 का; पृष्ठ 57
2. वही पृष्ठ 64
3. रिपोर्ट धारा 69-71

इस बात का प्रलोभन दिया कि बजट अनुमानों में "मिन्ट" मद के अंतर्गत वह अधिक व्यवस्था रखी जाएगी ताकि सरकार उसका लागत व्यय उठा सके। तथापि सरकार ने इस पेशकश को नामंजूर कर दिया। इस तरह अब भारत ही एकमात्र ऐसा अनूठा देश बन गया जहां 1853-93 के बीच स्वर्ण के कानूनी सिक्का न होने के बावजूद स्वर्ण टकसाल थी और 1893 से यद्यपि स्वर्ण कानूनी सिक्का है परन्तु कोई स्वर्ण टकसाल नहीं है। यह कल्पना करना कठिन है कि फाउलर कमेटी के आदर्श को पूरा करने के लिए केवल मुद्रा टकसाल क्या कर सकती है; परंतु स्वर्ण टकसाल खोलने की सबसे बड़े समर्थक साक्षी (मि. बेव) की चेम्बरलेन कमीशन के सामने दी गई गवाही के इस उद्धरण से यह समझने में मदद मिलेगी कि स्वर्ण टकसाल से क्या अपेक्षा की जा सकती है।

"स्वर्ण टकसाल से आप जिस मुख्य लाभ की अपेक्षा करते हैं कि आप प्रचलन में स्वर्ण के सिक्के बढ़ा देंगे—? यह कई प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति होगी।" क्या और भी कोई लाभ है?—एक लाभ यह है कि देश में मीट्रिक तंत्र की स्थापना हो जाएगी और इस तंत्र का एक आवश्यक भाग समझता हूं कि एक टकसाल होनी चाहिए जहां जनता की मांग पर मुद्रा ढाली जा सके।

"मैं वास्तव में आपके कारण को समझना चाहता हूं कि यह आवश्यक क्यों है। क्या मेरा यह समझना ठीक है कि आप उचित मुद्रा प्रणाली के लिए जरूरी समझते हैं कि स्वर्ण की मुद्रा हो।

और क्या स्वर्ण की मुद्रा के लिए जरूरी है कि स्वर्ण टकसाल हो? हां, मौके पर, भारत में ही होनी चाहिए .... इससे एक तरह से विदेशी विनिमय की प्रबन्ध व्यवस्था भारत सचिव के हाथों में नहीं रहेगी, क्योंकि एक टकसाल होगी जहां जाकर जनता हमेशा अपने सोने को सिक्कों में बदलवा सकेगी ऐसा उस हालत में होगा जब भारत सचिव कोई ऐसा कदम उठाए जिसे जनता पसन्द न करती हो। यह एक ऐसा परिचय है, एक अतिरिक्त सुरक्षा कवच है कि जनता अपना सोना देकर तत्काल धन हासिल कर ले।"

1. कमीशन ने सिफारिश की कि यदि भारत में स्वर्ण टकसाल की स्थापना न की जाए, तो सरकार को 1906 में वापस ली गई अधिसूचना पुनः जारी कर देनी चाहिए ताकि उचित शर्तों पर परिशोधित स्वर्ण लिया जाए। रिपोर्ट, धारा 72
2. रिपोर्ट, पैरा 67

यहां पर भी यह मान कर चलना कि सोने की टकसाल का होना इस बात की गारंटी है कि सोने की मुद्रा होगी। परंतु यह मानना भी इसी प्रकार ही निर्मूल है जैसे कि यदि सोने का मुक्त रूप से आयात होने दिया गया तो उसी से वह स्वर्ण मुद्रा का एक भाग बन जाएगा। दूसरी ओर, ऐसे कई उदाहरण है जब टकसालें खुली थीं, तब भी न तो सोने के सिक्के बनाए जाते थे और न ही स्वर्ण मुद्रा थी। लन्दन की रॉयल मिंट में सिक्कों की ढलाई के इतिहास में से कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। बैंक स्थगन अवधि 1797-1821 और पिछले महायुद्ध की अवधि 1914-18 इस दृष्टि से काफी प्रकाश डालते हैं। दोनों अवधियों में टकसालें खुली थीं। परंतु सोने के कुल कितने सिक्के बने? सारी 'सस्पेंशन' अवधि में नहीं के बराबर सोने के सिक्के बनाए गए। सन् 1807, 1812 और 1814-16 के बीच में एक भी सोने का सिक्का नहीं बनवाया गया।[1] पिछले महायुद्ध में भी 1915 के बाद स्वर्ण सिक्के बनने में गिरावट आई और 1917 के बाद से तो वे बनने कतई बन्द हो गए।[2] ये उदाहरण हैं पूर्ण तथा यह बताते हैं कि यद्यपि टकसाल एक उपयोगी संस्था होती है, तथापि टकसाल में कोई ऐसा जादू नहीं होता कि वह सोने को आकृष्ट करे। ऊपर जो उदाहरण दिए गए हैं; उनसे यह निस्सन्देह सिद्ध हो जाता है कि स्वर्ण के सिक्कों का प्रचलन कई बातों पर निर्भर करता है और उनमें ऐसी टकसाल के होने या न होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता जहां मुक्त रूप से सिक्के बनवाए जा सकते हैं।

अब यह राजकीय अर्थशास्त्र का सुस्थापित सिद्धांत है कि जब दो प्रकार के माध्यम मुद्रा के रूप में उपयोग में लाए जाते हैं; तब बुरा माध्यम अच्छे माध्यम को प्रचलन से निकाल देता है। अब यदि इस सिद्धांत को भारत की स्थिति में लागू करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि जब तक रुपये असीमित मात्रा में जारी किए जाते हैं; तब तक भारत में स्वर्ण का प्रचलन नहीं हो सकता। जो लोग स्वर्ण मुद्रा जारी करने पर बराबर जोर देते हैं; उन्होंने इस महत्वपूर्ण सिद्धांत को इतनी पूरी तरह अनदेखा कर दिया है कि उन्होंने असीमित मात्रा में रुपये जारी करने के विरोध में अंगुली तक नहीं उठाई। मि. वेब, इंडिया आफिस के अनाचारों के घोर विरोधी तथा इस विचारधारा के निष्ठावान समर्थक है कि यदि भारत सचिव को अपनी धन निकालने की मात्रा कम करने पर विवश कर दिया जाए तो भारत में स्वर्ण जाएगा और वहां मुद्रा का एक भाग बन जाएगा। उन्होंने चैम्बरलेन कमीशन को सिफारिश की कि—

1. देखें जी. आर. पोर्टर ऑफ दी नेशन (प्रथम सं.) पृष्ठ 568
2. देखें :- रिपोर्ट ऑफ दि डिप्टीमास्टर ऑफ दि रायल मिंट 1921

"कौंसिल ड्राफ्टों को बिक्री केवल होम चार्जिज की आवश्यकता पूरी करने तक की सीमा पर रहे इसे कड़ाई से पालन कराया जाए। और किसी भी परिस्थिति में आवंटन राशि 1 शि. $4_{1/8}$ पैंस से 1 शि. $4_{3/32}$ पैंस से अर्थात भारत में स्वर्ण आयात के बिन्दु के बराबर नीचे न जाने दिया जाए। एक दफा लन्दन में होम चार्जिज के लिए आवश्यक धन ले लेने के बाद *कौंसिल ड्राफ्ट की आगे बिक्री रोक देनी चाहिए। केवल नए प्रतीक सिक्के बनाने के लिए धातु खरीदने की अनुमति होनी चाहिए और इसके बारे में जनता को अधिसूचना जारी करके बता देना चाहिए।* कौंसिल ड्राफ्ट की ऐसी विशेष बिक्री स्वर्ण आयात के धातु बिन्दु से नीचे कभी नहीं की जानी चाहिए।"

और फिर सर वी. थैकरसे ने 22 मार्च 1912 को लैजिस्लेटिव कौंसिल में अपना एक प्रस्ताव पेश कर के सरकार से भारत में स्वर्ण सिक्के ढालने की टकसाल खोलने के लिए अपने भाषण में कहा—

"एक मुद्दे पर मैं अपनी एक बात साफ कर देना चाहता हूं। *मैं यह सुझाव नहीं दे रहा कि सरकार रुपये ढालने का अधिकार छोड़ दे या जब जनता रुपयों की मांग करे तो वे देने से इंकार कर दें। मैं* गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व को भी नहीं छूना चाहता। यह हमारी मुद्रा का निर्णायक गारंटी के रूप में बना ही रहना चाहिए। मेरा प्रस्ताव वर्तमान व्यवस्था में किसी भी तरह हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। यह तो केवल उसका पूरक है......। भारत सरकार को अपनी क्षमता के अनुसार अधिकतम सीमा तक स्वर्ण इकट्ठा करने दो परंतु जिस बेशी सोने का वह समावेश नहीं कर सकती, उसके सिक्के बना जाएं जांय और जनता चाहे तो उसे दे देने जाएं। हमारे बढ़ते हुए व्यापार और संतुलन को हमारे पक्ष में होने के कारण साधारण समय में भी सोने का आयात किया जाता रहेगा *और यदि भारत में ढालने की सुविधाएं दी जाए तो वह प्रचलन में भी आजमाएगा।*"[1]

निस्सन्देह ये स्वर्ण मुद्रा को प्रोत्साहन देने के तरीके नहीं हैं. वास्तव में ये उसके बिल्कुल विपरीत हैं। जब तक रुपये के सिक्के बनाए जाते रहेंगे, स्वर्ण हमारी मुद्रा का भाग नहीं बनेगा। एक ओर हम इन बातों के विरोध में आवाज उठाते हैं कि भारत सचिव भारी मात्रा में धन निकालता है जिसके फलस्वरूप भारतीय निधि लन्दन में अंतरित हो जाती है और भारत सचिव उसकी व्यवस्था गलत ढंग से चलाता है और दूसरी ओर उस रुपयों के और अधिक प्रतीक सिक्के बनाने की अनुमति दी जाती है। इससे न केवल मुद्रा के मूलभूत सिद्धांत के बारे में अज्ञानता प्रगट होती है अपितु इससे पता चलता है कि वे इस बात को समझने

1. एस. एल. सी. पी. खण्ड 2, पृष्ठ 637–38

में पूरी तरह असफल रहे हैं कि यह सारी मुसीबत शुरू होने का उद्गम कहां है। यह सच है कि भारत सरकार भारत सचिव को कोई विशेष कदम उठाने के लिए बाध्य नहीं कर सकती[1] और वह अक्सर वार्षिक बजट के उपबंधों की अवहेलना कर देता है। परन्तु सवाल बना रहता है। यह कैसे हुआ कि 1893 के बाद वह इतना अधिक निकाल सका जितना पहले कभी नहीं निकाला गया था? यह अवश्य याद रखना चाहिए कि भारत सचिव लन्दन में निधियों के साथ जो कुछ भी करता है, अपने निकाले गए धन की अदायगी उसे भारत में अवश्य करनी पड़ती है। 1893 से पहले वह कम निकालता था क्योंकि उसके भुगतान के साधन कम थे; 1893 के बाद उसने अधिक निकाला क्योंकि उसके भुगतान के साधन अधिक थे। और उसके भुगतान के साधन अधिक क्यों हो गए? केवल इसलिए कि वह रुपये के सिक्के ढालने में समर्थ है। रकम निकालने की सीमा यह होती है कि उनकी मांग कितनी है और रुपये ढालने उसकी क्षमता कितनी है। इसलिए भारत सचिव पर यह आरोप लगाना मूर्खता होगी कि वह भारत के हितों से विश्वासघात करता है जबकि उसी के साथ-साथ उसे रुपये ढालने की अनुमति दी जा रही, जिसके कारण वह भारत के हितों से विश्वासघात कर सकता है। यदि स्वर्ण मुद्रा की आवश्यकता है और इसलिए आवश्यकता है क्योंकि रुपया मूल्य का बुरा मान है, तब जरूरी यह नहीं है कि भारत सचिव द्वारा निकालने पर सीमा लगा दी जाए अथवा स्वर्ण टकसाल खोल दी जाए। इसके लिए तो छोटा सा कानून बना कर रुपयों का ढालना बन्द कर देना चाहिए। केवल तभी स्वर्ण को कानूनी मुद्रा बनाया जा सकेगा जिसका रुपये से एक उपयुक्त अनुपात हो और तभी वह भारतीय मुद्रा का भाग बन सकेगा।

रुपये के सिक्के बनाना बन्द करना इसका पर्याप्त उपाय हैं, इसका बहुत अच्छी परिपुष्टि भारतीय मुद्रा के इतिहास की 1898-1902 की एक विस्तृत घटना से मिलता है। स्वर्ण को कानूनी मुद्रा बनाए जाने के डेढ़ वर्ष की थोड़ी सी अवधि के बाद ही, जब भारत में कोई स्वर्ण टकसाल भी नहीं थी, तब भी माननीय श्री सी.ई. डॉकिन्स ने मार्च 1901 में अपने बजट भाषण में कहा था-

"अंततोगत्वा भारत स्वर्ण मुद्रा के अपने संक्रमण काल से निकल आया है जिसके लिए वह वर्षों से संघर्ष कर रहा था, उसने स्वर्ण मान और एक स्वर्ण

1. भारत सचिव की कानूनी स्थिति के बारे में और किस सीमा तक उसे भारत सरकार द्वारा पास किए गए किसी कानून के उपबन्धों से बांधा जा सकता है। इसकी बड़ी अच्छी व्याख्या सर जेम्स वेस्टलैंड ने इंडियन पेपर करेंसी (एमंडमेंट) विधेयक पर बोलते हुए अपने भाषण में की थी। बाद में यही विधेयक 1898 का अधिनियम II बना। उक्त अधिनियम की विशिष्ट शब्दावली से भी तुलना कीजिए।

2. वित्तीय वक्तव्य 1900-1, पृष्ठ 14

मुद्रा की स्थापना कर दी है और व्यावहारिक रूप से विनिमय स्थिर हो गया है जिससे व्यक्तियों को भी और सरकारी वित्त को भी राहत मिली है।"[2]

स्वर्ण के बारे में उत्साह इतना अधिक था कि मि. डाकिन्स ने यह भी कहा कि[1]

"......स्वर्ण से.......हम लगभग अभिभूत हो गए है......" तब मुद्रा की स्थिति में जो परिवर्तन आया, उसे तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने बड़े सजीव ढंग से इन शब्दों में व्यक्त किया[2]

"मि. डाकिन्स ने......सफलतापूर्वक एक नए युग का उद्‌घाटन किया है, जिसके अंतर्गत भारत में सावरेन कानूनी सिक्का बन गया है और भारत में विनिमय में स्थिरता आ गई है जो रूढ़ि क्रुद्ध ढंग का हो सकता है। यह बड़ा परिवर्तन बुरी-बुरी भविष्यवाणियों के बावजूद किया गया, और विशेष कर इस भविष्यवाणी के बाद कि हो सकता है कि भारत में सोना आए ही नहीं, और यदि आ भी गया तो हमारे हाथों में नहीं रह सकेगा और हमारी अंगुलियों से इतनी तेजी से फिसल जाएगा, कि आवश्यक सप्लाई बनाए रखने के लिए भी हमें वह उधार लेना पड़ेगा। वास्तविकता यह है कि हम लगभग उस पौराणिक राजा की स्थिति में है जिसने प्रार्थना की थी कि जिस चीज को भी वह छुए, वह सोने की हो जाए और बाद में वह यह देख कर भौंचक्का रह गया कि उसका भोजन भी उसी धातु में बदल गया था जो हजम ही नहीं हो सकती थी। हमें वास्तव में इतना अधिक सोना मिल गया है कि हम सोने के बदले रूपये दे रहे हैं और रुपयों के बदले सोना अर्थात हम पूर्ण परिवर्तनीयता की ऐसी सुखदायी स्थिति में आ गए हैं जिसे विशेषतः एक वर्ष पहले भी असम्भव कह कर उसका मजाक उड़ाते।"

उदाहरण के लिए 1900-1 की स्थिति की तुलना 1910-11 की वर्तमान स्थिति से कीजिए। उस वर्ष मुद्रा की जैसी स्थिति थी, उसके बारे में माननीय सर जेम्स (अब लार्ड) मेस्टन ने कहा था–

"हम मुद्रा नीति के कई परिवर्तनों में से गुजरे हैं जिनमें से बहुत से गलत भी थे परन्तु मौटे तौर पर हमारे कदम और उद्देश्य गलत नहीं हैं और अपने आदर्श की ओर निरंतर पहुंचने में हमने किसी मूलभूत चीज को छोड़ा नहीं है। फाउलर कमेटी के दिनों से हम वास्तविक और बिना किसी व्यवघात के प्रगति करते रहे हैं। अंततः इस आदर्श तक पहुंचने के लिए हमें अभी भी एक बड़ा कदम उठाना है। हमने भारत को दुनिया के स्वर्ण देशों से जोड़ दिया है। हम स्वर्ण विनिमय मान तक पहुंच गए हैं जिसे हम बराबर विकसित कर रहे हैं और

1. वित्तीय वक्तव्य, 1900–01, पृष्ठ 19
2. उल्लिखित, पृष्ठ 167
3. फाइनेंशियल स्टेटमेंट, 1910-11, पृष्ठ 346

निरंतर सुधार कर रहे हैं। अगला और निर्णायक कदम संचयी स्वर्ण मुद्रा होगा और मुझे पूरी आशा है कि कुछ समय बाद यह आ जाएगी[3]--------"

एक क्षण के लिए वक्त की हल्की टिप्पणियों को छोड़ते हुए, सच्चाई यह है कि 1900 में भारत में स्वर्ण मुद्रा थी। परंतु 1910 के अंत में स्थिति यह थी, यह स्वर्ण मुद्रा नहीं चल रही थी। ऐसा क्या हुआ जिससे यह अंतर आया? और कुछ नहीं सिवाय इसके कि 1893-1900 के बीच रुपये नहीं ढाले गए थे परंतु 1900-10 के बीच भारी मात्रा में रुपये ढाले गए। पहली अवधि में रुपये बनाने का प्रलोभन वास्तव में काफी अधिक था। विनिमय काफी स्थिर नहीं था और सरकार को "होम चार्जिज" चुकाने के लिए काफी बड़ी मात्रा में रुपयों की आवश्यकता थी। सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल के एक माननीय सदस्य[1] ने तो पूछ ही लिया था –

"क्या इस बात पर कोई आपत्ति है कि सरकार अपनी ओर से टकसालें चलाए? यह देखते हुए कि चांदी की कीमतें कम है और सर्राफे और रुपये की कीमतों में भारी अंतर है, तब क्या सरकार स्वयं अपने लिए रुपये नहीं बनाएगी ताकि उससे होने वाले पर्याप्त मुनाफे से वर्तमान घाटे को काफी कुछ पूरा किया जा सके? मुझे तो राजस्व प्राप्ति का एक वैध स्रोत लगता है जिससे हम अपनी वित्तीय स्थिति काफी कुछ सुधार सकेंगे।"

परंतु सर जेम्स वेस्टलैंड[2] ने, जो उस समय भारत के वित्त के मुखिया थे, उत्तर दिया– "मुझे घोर एक्सीलैसी काउंसिल के व्यापारिक सदस्यों में से एक द्वारा रखे गए प्रस्ताव को देख कर सचमुच थोड़ा आश्चर्य हुआ कि हम आजकल की कम कीमत पर चांदी खरीद कर इसके सिक्के ढाल कर रुपये की बढ़ी हुई कीमत पर बेचें..... मैं निश्चित रूप से इस प्रलोभन में फंसने वाला नहीं। इसके बाद फिर 1898 जब मि. लिंडसे के कुछ अनुयायियों ने इच्छा प्रगट की कि मीट्रिक कठिनाइयों पर काबू पाने के लिए, सरकार को सिक्के ढालने चाहिए, तब सर जेम्स वेस्टलैंड[3] ने निम्नलिखित टिप्पणी की–

".......... हमारे विचार में सिल्वर स्टैंडर्ड अब भूतकाल की चीज बन चुकी[3] है। यह तो मामला 'वेस्टीजिया नला रिट्रोसेम' का है अब हमारे सम्मुख केवल यही समस्या है कि गोल्ड स्टैंडर्ड को पुनः सर्वोत्तम ढंग से कैसे प्राप्त किया जाए। हम मुक्त टकसालों की स्थिति पर वापस नहीं लौट सकते। उस स्थिति तक वापस जाने के केवल दो रास्ते हैं। या तो हम सामान्यतया जनता के

1. यह सदस्य और कोई नहीं, माननीय फजुलभाई विशराम थे जो बम्बई के माने हुए चित्रकार थे। उनका भाषण के लिए देखें वित्तीय वक्तव्य, 1894–95, पृष्ठ 96
2. वित्तीय वक्तव्य, 1894-95 पृष्ठ 123
3. वित्तीय वक्तव्य, 1898-99 पृष्ठ 169

लिए टकसालें खोल सकते हैं और या हम स्वयं अपने लिए उनमें सिक्के ढाल सकते हैं। दोनों ही हालतों का तात्पर्य यह निकलेगा कि रूपयों का मूल्य कम हो कर चांदी के मूल्य के पास पहुँच जाएगा। यदि टकसालें जनता के लिए खोल दी गईं तो यह गिरावट तेजी से उठ जाएगी। यदि टकसालों में केवल सरकार ने सिक्के ढालने शुरु किये, तो यह गिरावट कम तेजी से आएगी, परन्तु आएगी जरुर।"

माननीय सी.ई. डाकिन्स ने भी सरकार द्वारा सिक्के ढालने की इस परियोजना की उतनी ही जोरदार निन्दा की। जब उनको प्रलोभन दिया गया कि क्योंकि सिक्के ढालने से लाभ होगा और उन्हें इस पर मौन सम्मति दे देनी चाहिए, तब उन्होंने उत्तर दिया[1]–

"मैं सोचता हूं कि मुझे अपने माननीय मित्र से प्रार्थना करनी चाहिए कि चांदी पर होने वाले लाभ को किसी की आंख के सामने भले ही वह बहुत पुण्यात्मा सरकार क्यों नहीं विशेष रूप से बार–बार न धूम रखें। यदि एक बार ऐसे लाभ हमारे कार्यकलापों का भाग बन गए, तो फिर तो स्थिरता को दूर से ही नमस्कार करना पड़ेगा।"

सरकार के इस संकल्प का कि वह सिक्के नहीं ढ़लेगी, एक और उदाहरण उन कारणों की जांच से मिलता है कि सरकार ने अनिश्चित मात्रा में निश्चित दरों पर कौंसिल बिलों की बिक्री की जिम्मेदारी कभी भी क्यों नहीं सम्भाली। चैम्बरलेन कमीशन ने तर्क दिया था कि सरकार यह जिम्मेदारी इसलिए नहीं सम्भाल सकती क्योंकि वह निश्चित दर की बात नहीं मान सकती और हो सकता है कि वे उसे सममूल्य से भी कम दर पर बेचने पड़ें। यह बात सच है जहां इस अपराध को स्वीकार करना है कि बहुत अधिक मात्रा में रुपये बनाने से सरकार की स्थिति निर्बल हो गई है। परन्तु यह स्पष्टीकरण सरकार ने 1900 में उस समय नहीं दी जब उसे पहले पहल वह जिम्मेदारी सम्भालने के लिए दी गई थी। सरकार यह पूरी तरह जानती थी कि ये बिल अनिश्चित रूप से बेचते रहने का मतलब यह होगा कि रुपये अनिश्चित काल तक ढाले जाते रहें। उन्होंने यह जिम्मेदारी उठाने से इसलिए इंकार कर दिया क्योंकि वह रुपये ढालना नहीं चाहती थी। इसी मूल कारण को माननीय मि. डाकिन्स[2] ने उन लोगों को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर याद दिला दिया जो सरकार को ऐसी जिम्मेदारी उठाने को कहते थे–

"इसके परिणामस्वरूप सरकार का चांदी के सिक्कों का रिजर्व तेजी से उस

1. वित्तीय वक्तव्य, 1894–95, पृष्ठ 173
2. तुलना करें उनका बजट भाषण, वित्तीय वक्तव्य, 1910-1, पृष्ठ 7

बिन्दु के पास आ पहुंचा जहां असीमित मात्रा में (कौंसिल बिलों का) अंतरण करना असम्भव हो गया। इसलिए भारत सचिव ने फैसला किया कि क्रमशः दरें बढा कर इनकी मांग को सीमित कर दिया जाए; इस तरह बहुत जरूरी मांगों को पूरा कर दिया जाएं और कम जरूरी मांगों को छोड़ दिया जाए और जिन लोगों की मांग बहुत जरूरी नहीं, उन्हें चेतावनी दे दी जाए कि वे भारत को स्वर्ण भेज दें। और कोई व्यावहारिक रास्ता नहीं था। भारत सचिव का यह दायित्व माना गया कि वह 1 शि. $4\frac{5}{32}$ पैसे पर भुगतान बंटता रहे। परंतु मुझे नहीं लगता कि उसका कोई ठोस दायित्व है; और मुझे इस बात पर आश्चर्य होता है कि जो लोग यह मानते हैं कि यह दायित्व विद्यमान है (और जो इसी स्थिति को अच्छी तरह समझता है) वो यह कैसे मानते हैं कि हमारी मुद्रा की स्थिरता पर रुपयों के रिजर्व के तेजी से कम होने का प्रभाव पड़ेगा (और जिसे रूपयों के अधिक सिक्के ढाले बिना बढ़ाया नहीं जा सकता)।

और जब स्वर्ण मुद्रा वाले स्वर्ण मान का आदर्श प्राप्त किया ही जाने वाला था, तभी सर एडवर्ड लॉ को भारत का वित्त मंत्री बना दिया गया और एक निर्दयी डाकू की तरह नई मुद्रा के सारे ढांचे को तहस–नहस करके रख दिया। उसका यह कदम अत्यंत मूर्खतापूर्ण और मनमाना था। उसके 28 जून 1900 के कार्यवृत्त ने सारा घटनाक्रम[1] ही बदल दिया। उस कार्यवृत्त में निम्नलिखित महत्वपूर्ण पैरा था :–

"15. इन बातों के परिणामस्वरूप, मेरे विचार में यह स्वीकार कर लिया जाना चाहिए कि मुद्रा के रिजर्व में सोने की जितनी मात्रा रखी जा सकती है, उनका नियमन उन्हीं नियमों द्वारा किया जाना चाहिए जो इस बारे में मार्गदर्शन करेंगे कि वह राशि कितनी होनी चाहिए कि जिसके आधार पर सरकारी सिक्यूरिटियों में लगाया गया अनुपात आराम से बढ़ाया जा सके। प्रचलन में नोटों की संख्या बढ़ाने तक या वर्तमान शर्तों में कोई परिवर्तन करने तक, मेरे विचार में करेंसी रिजर्व में अधिकतम 7,000,000 पौंड स्वर्ण के रूप में आराम से रखे जा सकते हैं। तथापि मैं अपने आप को हर हालत में इस आंकड़े से बांध कर नहीं रखना चाहूंगा, क्योंकि यह राशि अपनी ही इच्छा से निर्धारित की गई है और विशेषतौर पर मैं कोई ऐसी सार्वजनिक घोषणा करके सरकार के हाथ नहीं बांधना चाहूंगा क्योंकि हो सकता है कि किन्हीं अनदेखी घटनाओं के फलस्वरूप बाद में इसमें कमी करना वांछनीय हो जाए।"

---

1. इस कार्यवृत्त की एक प्रति के लिए तथा तत्सम्बन्धी पत्राचार के लिए 'इनटेरिम रिपोर्ट आफ दी चैम्बरलेन कमीशन' का परिशिष्ट V देखें। Ed. 7070, 1913 का)

इस कार्यवृत्त की रूपरेखा, संशोधित रूप से भारत में मुद्रा प्रणाली का आधार यह बनाया गया है कि मुद्रा रिजर्व के लिए अधिकतम कितना स्वर्ण रखा जाए। परंतु इस कार्यवृत्त के लेखक ने शायद अपने से कभी एक क्षण के लिए भी यह प्रश्न नहीं पूछा कि स्वर्ण मान डंडे और स्वर्ण मुद्रा के आदर्श का क्या होगा? क्या वह स्वर्णमान को पूर्णता तक पहुँचाना चाहता था, या इसे समाप्त करना चाहता था और इसलिए स्वर्ण रखने की एक सीमा बांधना चाहता था। इस कार्यवृत्त की नीति को अमल में लाने से पहले भारतीय मुद्रा प्रणाली लगभग बैंक चार्टर एक्ट 1844 के मुताबिक चल रही थी जिसको रुपये सीमित मात्रा में जारी किए जाते थे और स्वर्ण असीमित मात्रा में। इस कार्यवृत्त में यह प्रस्ताव किया गया था कि स्वर्ण जारी करने की मात्रा सीमित हो और सिक्कों की असीमित यह बैंक सस्पेंशन अवधि की प्रणाली का बिल्कुल उल्टा था। उस कार्यवृत्त की यही महत्वपूर्ण बात थी जिसमें जानबूझ कर भारतीय मुद्रा स्वर्ण की जगह रुपयों को दी गई थी और इस तरह 1893 से हम जिस आदर्श की दिशा में चल रहे थे और 1900 तक जिसे लगभग प्राप्त कर लिया गया था, उसे कतई छोड़ दिया गया।

यदि सर एडवर्ड लॉ ने यह समझ लिया होता कि इसका अर्थ स्वर्णमान को छोड़ देना होगा, तो शायद वह कार्यवृत्त लिखते नहीं। परंतु ऐसी कौन सी बातें थीं जिनकी वजह से उसके स्वर्ण मान और स्वर्ण मुद्रा की नीति को छोड़ दिया और मुद्रा के रुपये अंश की जगह उसके स्वर्ण अंश पर सीमा लागू कर दी। इन बातों का उल्लेख भारत सरकार के दिनांक 6 सितम्बर 1900 के प्रेषण सं. 302 में किया गया है। इसमें कहा गया है—

" 2. पिछले दिसम्बर से स्वर्ण की प्राप्तियां आती रहीं और बढ़ती रहीं। जून 18 के प्रेषण में जो सीमाएं दी गई थीं लगभग आठ महीने तक करेंसी रिजर्व में सोना उससे बढ़ा रहा और चांदी घटी रही। जनवरी के मध्य तक भारत में करेंसी रिजर्व में सोने का स्टाक बढ़ कर 5,000,000 पौंड हो गया। इस प्रेषण में दिए गए प्रस्ताव को तत्काल अमल में ले आया गया। इसके बाद हमने बड़े जिला खजानों को सावरेन भेज दिए गए और उन्हें यह निर्देश दिए गए कि जिन्हें भी इच्छा हो, उन्हें मिलने वाली अदायगी के रूप में या रुपयों के बदले उन्हें सावरेन दे दिए जाएं, और मार्च में हमने डाकघरों से कहा कि प्रेसिडेंसी शहरों में और रंगून में सभी मनी आर्डरों का भुगतान सावरेनों में किया जाए; और हमने सभी प्रेसिडेंसी बैंकों से भी अनुरोध किया कि जहां तक सम्भव हो, प्रेसिडेंसी शहरों और रंगून में सरकारी लेखें में सावरेन में भुगतान किया जाए। ये सब कदम उठा लिए गए, इस आशा में इतने नहीं कि इससे निकट भविष्य में हम अपने पास पड़े फालतू सोने से छुटकारा पा लेंगे अपितु इस आशा में कि इससे लोग स्वर्ण के आदी हो जाएंगे और इस तरह वह समय जल्दी आ जाएगा कि जब स्वर्ण के सिक्के प्रचलन में

पर्याप्त मात्रा में आ जाएंगे और ऐसा करके भविष्य के वर्षों में हमें उन कठिनाइयों से छुटकारा मिल जाएगा जो हम स्वर्ण का भंडार बढ़ने और रुपयों का भंडार कम होने के कारण अनुभव कर रहे थे।

" 3. इन कठिनाइयों का सामना करने के लिए और यदि सम्भव हो तो इतने रुपये प्राप्त करने के लिए, जिससे हम नोट लाने वालों और स्वर्ण के निवेदिका देने वालों को रुपयों के सिक्के दे सकें, हमने अतिरिक्त रुपये ढालने शुरू कर दिए......

* * * * *

" 14. यहां हम बताना चाहते हैं कि हमने पैरा 2 में बताए गए उपायों के परिणाम को बड़े ध्यान से देखा है। स्वर्ण काफी बड़ी मात्रा में जारी किया गया; पर बहुत सारा हमारे पास मुद्रा विभाग और प्रेसिडेंसी बैंकों के जरिए वापस आ गया। महानियंत्रक ने अनुमान लगाया कि जून के अंत में, उस समय तक जारी लगभग 20 लाख सिक्कों में से 12½ लाख प्रचलन में थे। परंतु इस गणना में कई अनिश्चित आंकड़े हैं। हम अभी भी यह कहने की स्थिति में नहीं हैं कि स्वर्ण का उपयोग मुद्रा के रूप में किसी बड़ी सीमा तक होने लगा है।

" 15. यह बहुत ही वांछनीय है कि हम इस बारे में आश्वस्त हों कि हम रुपयों की जनता की मांग पूरी कर सकते हैं जो कि करेंसी नोट और स्वर्ण प्रस्तुत करने से पता चलती है। इसलिए हम महामान्यवर से जोरदार अनुरोध करते हैं कि (रूपयों के) और सिक्के ढालने की अनुमति तत्काल दी जाए।

* * * * * *

"17. परन्तु हम नहीं चाहते कि हमारे प्रस्ताव अभी बताए गए तर्कों के अधीन समझे जाएं। हम तो मुख्यतः व्यावहारिक दृष्टि से यह आवश्यक समझते हैं कि हम अपना दायित्व पूरा कर सकें, यद्यपि उसे पूरा करने के लिए हम कानूनन बाध्य नहीं हैं परन्तु यदि बहुत असुविधा न हो तो इसे पूरा करना वांछनीय समझते हैं। स्वर्ण के जो भी निविदा देने वाला हो और नोट लाएं, और जो सावरेन के मुकाबले रुपये को प्राथमिकता देते हैं; उन सबको रुपये दे सके।"

यहां रुपये ढालने के लिए जो तर्क दिए गए हैं; वे बड़े हास्यास्पद हैं। पहले-पहल तो यही बात कभी सुनी नहीं गई कि जो सरकार स्वर्णमान की और स्वर्ण मुद्रा की स्थापना करना चाहती थी, वह इसी बात से घबरा जाए कि इसके पास सोने की मात्रा बढ़ गई है जबकि उसे तो इस बात से बहुत खुश होना चाहिए था कि उसका विचार तेजी से मूर्त रूप ले रहा है। इसके मनोवैज्ञानिक पहलू को छोड़ भी दिया जाए तो भी, जैसा कि सरकार के अपने वक्तव्य से स्पष्ट

है, सरकार ने दो कारणों से रुपयों के सिक्के ढालने शुरू किए– (1) सरकार ने अपने आप इसे अपना दायित्व समझा कि जो कोई मांगेगा, उसे रुपया दे देगी, और (2) लोग सोना नहीं चाहते। इन तर्कों के पीछे कितना जोर है? जहां तक पहला तर्क है, यह समझना कठिन है कि सरकार ने इसे स्वयं ही अपना दायित्व क्यों समझा कि रुपये दे। ऋणी का दायित्व यह होता है कि देश की वैध मुद्रा में अदायगी करे। स्वर्ण को वैध मुद्रा बना दिया गया था और सरकार बिना किसी संकोच या शर्म के उसमें अदायगी कर सकती थी। दूसरे इस बात का क्या प्रमाण है कि लोग सोना नहीं चाहते। यह कहा जाता है कि सरकार ने जिस सोने में भुगतान किया, वह सरकार के पास वापस लौट आया और यह इस बात का प्रमाण है कि लोग इसे नहीं चाहते। किन्तु यह एक भ्रम है। भारत जैसे देश में सरकारी देयराशि लोगों के व्यय का एक बड़ा भाग होती है और यदि लोग इसकी अदायगी स्वर्ण में करते हैं–सरकार को स्वर्ण की वापसी का यही मतलब है–तो यह तो इस धारणा का समर्थन करता है कि लोग मुद्रा के रूप में स्वर्ण का उपयोग करना चाहते हैं। परंतु यदि यह सच है कि लोग सोना नहीं चाहते तो इस तथ्य की क्या व्याख्या हो सकती है कि लोगों की मांग पर भी सरकार सोना देने से मना करती है? इसके लिए बराबर इंकार करना क्या इस बात का प्रमाण नहीं है कि उसकी मांग बराबर रहती है। इस ढंग की व्याख्या में कोई संगति नहीं है। तथ्य यह है कि एक बात का इतना भ्रामक समर्थन करना सरकार इसलिए चाहती है कि लोगों का ध्यान इस सच्चाई से हट जाए कि सरकार इसलिए रुपये के सिक्के ढालना चाहती है इसलिए नहीं कि लोग सोना नहीं चाहते बल्कि सरकार चांदी के अतिरिक्त सिक्के ढालने से होने वाले लाभ से स्वर्ण का रिजर्व बनाना चाहती है। सरकार का यह निहित उद्देश्य सर एडवर्ड लॉ के कार्यवृत्त से बिल्कुल साफ पता चल जाता है। यह तर्क कि लोग सोना नहीं चाहते आदि–आदि केवल सही प्रयोजन को छुपाना था, कार्यवृत्त के निम्नलिखित भाग से स्पष्ट पता चल जाता है जिसमें लेखक ने तर्क दिया है कि–

"16. यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि वर्तमान स्थिति में करेंसी रिजर्व में अधिकतम 7,000,000 पौंड की राशि को स्वर्ण में रखा जा सकता है, उन दस करोड़ रुपयों के अतिरिक्त जिनका निवेश पहले किया जा चुका है, तो इस रिजर्व में चालाकी से जोड़–तोड़ करके भी जो सहायता प्राप्त की जा सकती है, तो इससे भी इस राशि को स्वर्ण में प्राप्त करने में सफलता नहीं मिलेगी जो कि स्थिर विनिमय को बनाए रखने के लिए रखना उपयोगी समझा जाता है। अभी तक किसी भी प्राधिकारी ने यह स्पष्ट नहीं किया कि इस प्रयोजन के लिए कितनी निश्चित राशि की आवश्यकता पड़ेगी, परंतु इस बारे में आम सहमति है और मैं भी इससे सहमत हूं कि काफी बड़ी रकम की जरूरत पड़ेगी। इतनी बड़ी राशि प्राप्त करने का सबसे त्वरित तरीका

है कि स्वर्ण के रूप में उधार लेना। परंतु करेंसी कमीशन इस तरीके का उग्र विरोधी था। इसलिए यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है कि "स्वर्ण का आवश्यक भंडार कैसे प्राप्त किया जाएगा?"

"17. मैं इस कठिन समस्या का कोई बना बनाया हल नहीं सुझा सकता, परंतु मैं कुछ सुझाव देना चाहता हूँ और मुझे विश्वास है कि यदि उन्हें स्वीकार कर लिया गया तो कठिनाई का काफी कुछ हल हो सकेगा। मेरा प्रस्ताव है कि एक विशेष 'गोल्ड एक्सचेंज फंड' बनाया जाए जो वैसे तो स्वतंत्र हो परंतु विनिमय प्रयोजन की असाधारण परिस्थितियों में उसका उपयोग करेंसी रिजर्व के स्वर्ण साधनों के साथ मिलकर किया जा सके। इस कोष की स्थापना उस लाभ में से की जाए जो 7,000,000 पौंड से अधिक की रकम के मूल्य के स्वर्ण को रूपयों में ढालने से होगा।"

क्या अभी भी इस बारे में कोई सन्देह है कि रूपयों के सिक्के ढालने का सच्चा कारण क्या था। जो लेखक यह कहते हैं कि रूपये के सिक्के इसलिए ढाले जा रहे हैं कि लोग सोना पसन्द नहीं करते तो यह कहा जा सकता है कि उन्होंने भारत में विनिमय मान की उत्पत्ति का इतिहास ध्यान से नहीं पढ़ा।

परंतु क्या यह सर एडवर्ड ला की दुष्ट बुद्धि थी जिसमें एक सुदृढ़ मुद्रा प्रणाली को रुपये के सिक्के ढालने की अपनी विनाशकारी नीति से कमजोर बना दिया? सरकार के विरोधी और उसके समर्थक सभी इस बात से सहमत हैं[1] कि यह काम फाउलर कमेटी के सिफारिशों से हट कर था। तथापि भारतीय मुद्रा के बारे में जितना भी सरकारी या गैर–सरकारी साहित्य उपलब्ध है, उसमें यह कहीं स्पष्ट नहीं किया गया कि सरकार फाउलर कमेटी की सिफारिशों से सही–सही कितना हटी है। फाउलर कमेटी की सिफारिशें क्या थी? यह आमतौर पर बताया जाता है (और भारत सरकार को इससे शर्म आनी चाहिए) कि फाउलर कमेटी ने कहा था इसे दोहराया गया है।

"हम ब्रिटिश सावरेन को भारत में एक वैध मुद्रा और चालू सिक्का बनाने के पक्ष में हैं। हमारा यह भी विचार है कि उसी के साथ भारतीय टकसालों को भी बिना किसी सीमा के सोने के सिक्के ढालने की छूट होनी चाहिए......जैसा कि हम स्वर्ण मान की स्थापना करना चाहते हैं और ऐसी मुद्रा चाहते हैं जो स्वर्ण के मुक्त आगम और निर्णय के सिद्धांत पर आधारित हो इसलिए हम इन उपायों को अपनाने की सिफारिश करते हैं।

---

1. यहां तक कि चैम्बरलेन कमीशन ने भी कहा था कि सरकार फाउलर कमेटी के आदर्शों से हट गई है।

यह सच है। परन्तु जो लोग सरकार पर आरोप लगाते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि उसी कमेटी ने यह सिफारिश भी की थी–

"रुपयों के और सिक्के ढालने का एकमात्र अधिकार भारत सरकार के पास ही रहना चाहिए, और चाहे रुपयों का वर्तमान भंडार कुछ समय के लिए पर्याप्त हो, अंततः ऐसे विनिमय बनाने की आवश्यकता पड़ेगी ही कि कितने अतिरिक्त सिक्के ढाले जाएं। सरकार को स्वर्ण के बदले रुपये देते रहने चाहिए, परंतु रूपये के नए सिक्के तब तक नहीं ढाले जाने चाहिए जब तक कि मुद्रा में सोने का अनुपात जनता की आवश्यकताओं से बढ़ न जाए। हम यह भी सिफारिश करते हैं कि रुपये के सिक्के ढालने से जो मुनाफा हो, न तो उसे राजस्व में डाला जाए और न ही सरकार के सामान्य शेष बाकी या बकाया के एक भाग के रूप में रखा जाए; अपितु इसे स्वर्ण के रूप में, एक विशेष रिजर्व में रखा जाए जो कि कागजी मुद्रा रिजर्व या सामान्य खजाना बकाया से कतई अलग रखा जाए (और जब कभी विनिमय मूल्यवान धातु (स्पीशि) बिन्दु से नीचे गिर जाए तो विदेशी अदायगियां करने के लिए उसे मुक्त रूप से उपलब्ध कराया जाए)।

जब कमेटी की दोनों सिफारिशें एक साथ ली जाएं, तो फिर अन्तर ही कहां रहा है। सरकार ने बिल्कुल वही किया है जिसकी समिति ने सिफारिश की थी। यह विचित्र लगता है कि भारत सरकार या चैम्बरलेन कमीशन ने एक क्षण के लिए यह मान लिया था कि इन सिफारिशों से थोड़ा–सा हटा गया था क्योंकि सर एडवर्ड ला ने जो कार्यवृत्त भारत मंत्री को भेजा था, उसकी शुरूआत ही जिस बात से होती है, उससे पता चलता है कि सरकार ईमानदारी से फाउलर कमेटी की सिफारिशो पर चल रही थी। उसमें कहा गया है कि–

"अपने 24 अगस्त 1899 के डेस्पेच सं. 301 में हमने इंडियन करेंसी कमेटी (अर्थात फाउलर कमेटी) के पैरा 60 के संदर्भ में, जिसमें लिखा था कि रुपये के सिक्के ढालने से जो लाभ हो, उसे एक विशेष रिजर्व के रूप में स्वर्ण में रखा जाए, वह पैरा हमारी नजरों से ओझल नहीं है; परंतु अतिरिक्त रुपयों के लिए सिक्के ढालने की कुछ समय तक आवश्यकता पैदा होने की आशा नहीं; और इस बारे में आसानी से निर्णय कुछ समय के लिए रोका जा सकता है।

सर एडवर्ड ने जो कुछ किया, वह यह था कि मौका पड़ने पर सिफारिश को अमल में ले आए। इस दृष्टि से भारत सरकार को बुरा भला कहने का कोई मतलब नहीं–उस स्थिति में जब रुपये के सिक्के ढालने के कारण स्वर्ण मुद्रा सहित स्वर्णमान अपनाना असफल हो गया हो। परन्तु, यद्यपि भारत सरकार ने अपनी अज्ञानतावश इसका दोष अपने सिर पर ले लिया है, वास्तव में दोष उस पर लगाना

ठीक नहीं कहा जा सकता। यदि रूपये के सिक्के ढालने से यह परियोजना असफल रह गई, तो यह प्रश्न निश्चित रूप से फाउलर कमेटी को सौंप देना चाहिए। इस कमेटी ने रुपये के सिक्के ढालने की अनुमति क्यों दी? इस बात का कोई सीधा उत्तर नहीं है, तथापि अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा लगता है कि कमेटी ने पहले, भारत सरकार की इच्छा को देखते हुए यह फैसला किया था कि स्वर्ण मुद्रा सहित स्वर्णमान होना चाहिए। परन्तु फिर उन्हें इस प्रश्न से चिंता हो गई कि उन्होंने जो आदर्श खाका तैयार किया है क्या उसमें रुपये का स्वर्ण मूल्य बनाए रखने की पर्याप्त व्यवस्था की गई है। भारत सरकार के विरोधियों की राय में या तो रूपये को एक परिवर्तनीय बैंक नोट बना दिया जाना चाहिए था या शिलिंग के रूप में एक सीमित वैध मुद्रा। कमेटी ने इन दोनों मांगों को अनावश्यक बताते हुए रद्द कर दिया। कमेटी ने रुपये की शिलिंग का दर्जा देने से क्यों इंकार किया, इसका तर्क इस प्रकार है[1]:–

> "यह सच है कि युनाइटिड किंगडम में चांदी की मुद्रा की निश्चित सीमा 40 शिलिंग है......और उससे आगे, कर्ज की अदायगी के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता...........जब कि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि 40 शिलिंग की सीमा द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है कि चांदी के सिक्के गौण ढंग की मुद्रा है। तथापि इन प्रतीक सिक्कों को उनके अंकित मूल्य पर बनाए रखने के लिए, मूल महत्वपूर्ण बात उस राशि की वह अनुविहित सीमा नहीं है जहां तक वह वैध मुद्रा है अपितु यह है कि उसे कुल कितनी रकम तक जारी किया जा सकता है। यदि यह बाद वाली पाबन्दी पर्याप्त है तो इस बात का कोई जरूरी कारण नहीं है कि इन प्रतीक सिक्कों को कानूनी मुद्रा बनाने के लिए कोई सीमा लागू की जाए।"

परिवर्तनीयता की आवश्यकता के बारे में कमेटी ने कहा[2]:–

> "युनाइटिड किंगडम के बाहर दो और ऐसे मुख्य उदाहरण हैं जहां स्वर्णमान और स्वर्ण मुद्रा है जो चांदी के सिक्कों को असीमित मात्रा में आने देते हैं। ये देश हैं फ्रांस और संयुक्त राज्य अमरीका फ्रांस में 5 फ्रांक का सिक्का एक असीमित मुद्रा (टेंडर) होता है और व्यावहारिक दृष्टि से स्वर्ण के समकक्ष होता है। यही बात अमरीका चांदी के डालर पर लागू होती है........अमरीका और फ्रांस दोनों में टकसालों में असीमित वैध मुद्रा वाले चांदी के सिक्कों का ढालना बन्द कर दिया गया है। इनमें से किसी भी देश में चांदी के सिक्कों को कानूनन सोने में परिवर्तित नहीं किया जा सकता; दोनों ही देशों

1. रिपोर्ट, पैरा 56
2. रिपोर्ट पैरा 57-60

में ये आंतरिक कामकाज के लिए स्वर्ण के सिक्कों के समकक्ष होते हैं। जहां तक बहुमूल्य धातु का प्रश्न है, अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों के लिए फ्रांस और संयुक्त राज्य अमरीका दोनों अंततोगत्वा भुगतान के अंतर्राष्ट्रीय माध्यम अर्थात स्वर्ण पर निर्भर करते है। अन्त में, यह उनका अपना स्वर्ण ही होता है जो विदेशी विनिमय की मार्फत, आंतरिक कार्यों के लिए उनकी मुद्रा का उसके अंकित मूल्य पर बनाए रखने में मदद देता है।

"भारत में मुद्रा का प्रश्न वैसा ही है जैसा हमने पिछले पैरे में देखा है। इसलिए इस देश के लिए, जहां की स्थिति फ्रांस और अमरीका जैसी है, हम किसी अलग नीति की सिफारिश नहीं करना चाहते और इसलिए भारत सरकार पर कोई ऐसा कानूनी दायित्व नहीं सौंपना चाहते कि उसे रुपये के बदले सोना देना पड़े अथवा दूसरे शब्दों में धारकों की मांग पर भारत सरकार को सोना देना पड़े। भारत सरकार पर ऐसा दायित्व थोपने का अर्थ होगा कि एक क्षण के नोटिस पर ही भारत सरकार को इतने सोने की व्यवस्था करनी पड़ेगी जिसे पहले से नहीं बताया जा सकता, और यह देयता ऐसी है जिसे हमारी राय में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।"

यद्यपि कमेटी अपनी दी गई राय पर पूरा विश्वास था, तथापि वह उन लोगों की बात से भी काफी प्रभावित थी जो भारी संख्या में रूपयों का प्रचलन देखते हुए, इस पर सन्देह करते थे।

"कि भारतीय टकसालों में चांदी का सिक्का न ढालने मात्र से ही क्या व्यवहारतः; रुपया मुद्रा पर इतनी पाबन्दी लग जाएगी कि वह स्थायी रूप से रुपये को स्वर्ण में एक निश्चित दर पर परिवर्तनीय बना देगी।"

कमेटी इन सन्देहों से इतनी अधिक हिल गई थी कि उसने यह स्वीकार किया कि[1]

"जिन शक्तियों का रुपये के स्वर्ण मूल्य पर प्रभाव पड़ता है, वे इतनी जटिल हैं और उनका काम करने का तरीका इतना अस्पष्ट या दुरूह है कि हम पक्के तौर पर यह कहने की स्थिति में नहीं हैं कि चांदी के लिए टकसालें बन्द कर देने मात्र से, मांग की दृष्टि से रुपयों पर सीमा लग जाएगी जिससे रुपया स्थायी रूप से एक निश्चित दर पर स्वर्ण में परिवर्तनीय बन जाएगा।"

कमेटी का विचार था ऐसी आकस्मिक स्थिति से बचने के लिए जब कभी

1. रिपोर्ट, पैरा 58
2. रिपोर्ट, पैरा 70

रुपया विशेष बिन्दु से नीचे गिरे, भारत सरकार को विदेशी भुगतान के लिए रुपयों को स्वर्ण में बदलने का दायित्व स्वीकार कर लेना चाहिए। इतना सरल उपाय ढूंढ लेने के बाद अगला प्रश्न यह था कि भारत सरकार को स्वर्ण रिजर्व कहां से मिलेंगे? ऐसा स्वर्ण रिजर्व बनाने का एक तरीका था उधार लेना। परन्तु किसी कारणवश कमेटी को यह उपाय रुचिकर नहीं लगा। इसका कारण शायद यह है कि कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में एक जगह इस काम के लिए भारत सरकार की भर्त्सना की थी[2]।

"अपने पास उपलब्ध साधनों को प्रयोग में लाओ, जबर्दस्त कृत संकल्प मितव्ययता करो और अपने स्वर्ण दायित्वो को बढ़ने से रोको।" अथवा इसलिए कि उधार लेना एक दुश्चक्र होता है–

"स्वर्ण मान स्टैंडर्ड की स्थापना या उसके रखरखाव के लिए।"[1]

इसलिए कमेटी उधार लेने के प्रस्ताव के पक्ष में नहीं थी। परंतु यदि उधार लेकर स्वर्ण रिजर्व नहीं बनाया जाना था तो फिर और कौन से तरीके से बनाया जाता? लगता है कि कमेटी रिजर्व बनाने के किसी वैकल्पिक साधन को ढूंढने की समस्या के कारण काफ़ी परेशान थी कि अचानक इसके एक सदस्य को उस क्षण एक तरीका सूझा जब उसकी बुद्धि पूरी तरह काम नहीं कर रही थी, और उसने यह प्रस्ताव किया कि भला सरकार को रुपये ढालने की अनुमति क्यों न दी जाए? यदि इसकी अनुमति दे दी गई तो सरकार बिना उधार लिए आसानी से स्वर्ण रिजर्व बना सकेगी और फिर विदेशों में अदायगी के लिए परिवर्तनीयता के लिए अपना दायित्व पूरा कर सकेगी। यह प्रस्ताव इतना निर्दोष लगता था कि कमेटी ने इसका हार्दिक स्वागत करते हुए इसे अपना लिया और इस रिपोर्ट का एक भाग बना दिया और राहत की सांस ली जिसका बिना शंका के इसे लिखने की जोरदार भाषा से पता चलता है।

कमेटी ने सरकार को रुपये ढालने की अनुमति देने के जो कारण बताए थे, वे ठीक भी हो सकते हैं और नहीं भी। परन्तु सच्चाई यह है कि कमेटी यह नहीं समझ सकी कि इस सिफारिश में क्या चीज फंसी है। सबसे पहली बात तो यह है कि यदि रुपये के सिक्कों का ढालना जारी रहा तो स्वर्णमान और मुद्रा का क्या होगा? जब हम देखते हैं कि कमेटी एक ओर तो स्वर्णमान और मुद्रा के आदर्श की बात करती है और दूसरी ओर रुपये ढालने की बात तो ऐसी दशा में इस प्रकार की कमेटी के प्रति बहुत आदर क्या सम्भव है, जितना कि बजट का बैंक आफ इंग्लैंड के डाइरेक्टरों के प्रति था जिन्होंने 25 मार्च 1819 को निम्नलिखित कुख्यात प्रस्ताव पास किया था :–

---

1. देखें कैम्पबेल हालैंड एंड म्योर रिपोर्ट में पृष्ठ 27 पर *रिजर्वेशस टु दी रिपोर्ट।*

"कोर्ट एक परामर्श का उल्लेख किए बिना यहां रह सकती जिस पर कुछ लोगों ने बहुत जोर दिया है कि विनिमय को अनुकूल बनाने के लिए बैंक को केवल जारी की जाने वाली मुद्रा घटा देनी चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप बहुमूल्य धातु आने लगेगी। कोर्ट के विचार में यह घोषणा करना उसका कर्त्तव्य है कि इस भावुक विचार के पीछे उसे कोई मजबूत आधार नजर नहीं आता।"

यदि डाइरेक्टरों की राय मूर्खता का एक नमूना था तो क्या फाउलर कमेटी की राय उससे किसी भी दशा में कम है? क्या उन दोनों के बीच में कोई अंतर है? इस प्रस्ताव में जो भावनाएं व्यक्त की गई हैं, जो फाउलर कमेटी की सिफारिशों से भिन्न नहीं हैं उन पर टिप्पणी करते हुए बाजैट ने कहा कि कुछ ऐसी लंघूकारी परिस्थितियां हैं, जिनके कारण हम बैंक के डाइरेक्टरों को उनकी मूर्खता के लिए माफ़ करने पर मजबूर हैं। ये डाइरेक्टर उस समय के रहने वाले थे जब आर्थिक युक्तियुक्तता बहुत भ्रामक होती थी। न ही वे सोने को भारी मात्रा में आने के इच्छुक थे, क्योंकि कागजी मुद्रा से पूरी तरह संतुष्ट थे। परंतु इन दोनों स्थितियों में फाउलर कमेटी की मूर्खता को माफ़ नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपनी सिफारिशें ऐसे समय की थी जब बैंक डाइरेक्टरों के कथन के उल्टा ही यह उस समय का स्वयं सिद्ध नियम था। इसके अतिरिक्त यह नहीं कहा जा सकता कि वे भारतीय मुद्रा में सोने के भारी मात्रा में आगमन के इच्छुक नहीं थे। दूसरी ओर यही वह बात थी जो वे चाहते थे। फलतः उन्हें अपने शब्द सोच–विचार कर बोलने चाहिए थे और ऐसी किसी चीज की अनुमति नहीं देनी चाहिए थी जो उनके मुख्य उद्देश्य के अनुरूप न होती। ग्रेशम नियम के मूल सिद्धांत पर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण कमेटी ने न केवल स्वयं को मूर्ख बनाया अपितु रिपोर्ट के पहले भाग में जो उद्देश्य उन्होंने अपने सामने रखा था, उसे भी हटा दिया।

दूसरे, क्या यह जरूरी था कि सरकार को रुपये के सिक्के ढालने की अनुमति दी जाती? वह समस्या भला किस प्रकार की थी जिसके बारे में कमेटी को फैसला करना था? आइए हम इसे दोबारा बता दें। हर्शल कमेटी ने भारत सरकार के प्रस्तावों का संशोधन करके 1892 में इसे देते हुए एक उपबन्ध की व्यवस्था की थी, जिसके अंतर्गत टकसालें जनता के लिए तो बन्द कर दी गई थी परंतु सरकार के लिए रुपये ढालने के लिए वह खुली रहनी थी। यह ऐसा उपबन्ध था जो यह प्रकट करता है कि इतने लम्बे चौड़े सर्वेक्षण के बाद भी कमेटी इस रहस्य के प्रति कतई अनजान रही कि जिन मुद्रा प्रणालियों की उसने जांच की थी, उसमें मुद्रा ने बिना सोने के या थोड़े से सोने के होते हुए भी स्वर्ण से समानता क्यों बनाए रखी। यदि इसने यह समझ लिया होता कि जारी किए गए सिक्कों की सीमा के कारण ही यह समानता बनी रही थी, तो शायद वह उपबंध न जोड़ती जो जोड़ा गया था। यह उपबन्ध चाहे कितना भी हानिकारक क्यों न हो, कमेटी को उसके

इस अविवेकपूर्ण कार्य के लिए क्षमा अवश्य करना पड़ेगा क्योंकि वह इस बात से डरती थी कि टकसाल बन्द होने के कारण मुद्रा में अचानक संकुचन आ जाएगा, और चूंकि इसने सोने को सामान्य वैध मुद्रा नहीं बनाया है, इसलिए इसे आवश्यकता पड़ने पर मुद्रा जोड़ने के लिए आवश्यक व्यवस्था करनी पड़ेगी और उसने सोचा कि उसका सर्वोत्तम तरीका यही होगा कि सरकार को रूपये के सिक्के ढालने की शक्ति मिले। सरकार के सौभाग्य से उसे कुछ समय अर्थात 1898 तक नए सिक्के शामिल करने की आवश्यकता नहीं पड़ी और इसलिए इस शक्ति का उपयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी। परन्तु जब ऐसी आवश्यकता पड़ी, तो जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सरकार ने उस शक्ति का उपयोग करने से मना कर दिया और यह विचार अपनाया कि भारतीय मुद्रा में वृद्धि करने के लिए रुपये के सिक्के ढालने के बजाय, सोने को बड़ी मात्रा को आने देना चाहिए। सरकार मि. लिंडसे की घोर विरोधी थी जो उस समय आंदोलन कर रहे थे कि सरकार को विवश किया जाए कि वह रुपये के सिक्के ढाल कर मुद्रा में आवश्यक वृद्धि करे जो सुरक्षित और किफायती था। फाउलर कमेटी इसलिए गठित की गई थी कि एक ओर भारत सरकार और दूसरी ओर मि. लिंडसे के विवाद में निर्णय दे जिसमें सरकार स्वर्ण के सिक्के बना कर और मि. लिंडसे चांदी के सिक्के बना कर मुद्रा में वृद्धि करना चाहते थे। यदि सरकार इस बात के लिए उत्सुक होती कि सोना अधिक मंगाने की जगह अधिक रुपये बना कर मुद्रा में वृद्धि की जाए, तो फाउलर कमेटी नियुक्त करने की आवश्यकता ही न पड़ती। उसे यह शक्ति हर्शल कमेटी ने पहले से ही दे दी थी। यह तो चूंकि सरकार उस गलत दी गई शक्ति का उपयोग नहीं करना चाहती थी, इसलिए नई कमेटी को अपील करना आवश्यक हो गया। कमेटी के सामने तात्कालिक समस्या यह थी कि मुद्रा की कमी के कष्टों से बचाने के लिए मुद्रा का विस्तार कैसे किया जाए। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट के एक भाग में इसके लिए सुझाव दिया कि स्वर्ण को वैध मुद्रा बना दिया जाए ताकि कोई भी ऋणी जिसे रुपये नहीं मिल रहे, ऋणदाताओं को अपनी अदायगी सोने में करने का विकल्प मिलना चाहिए। यदि सोने को सामान्य रूप से विनिमय का माध्यम बनने दिया जाए, तो क्या चांदी के सिक्के ढालने का प्रस्ताव बेकार का नहीं था जिसकी कोई जरूरत नहीं थी?

तीसरे, क्या गोल्ड रिजर्व बनाने के तरीके के रूप में रुपये के सिक्के बनाने के प्रस्ताव को रुपये का मूल्य बनाए रखने के लिए युक्तियुक्त समझा जा सकता है। रुपये का मूल्य बनाए रखने की एक आवश्यक शर्त यह है कि वे सीमित मात्रा में जारी किए जाएं। कमेटी ने विद्वतापूर्वक इस बात की चर्चा की कि जारी करने की मात्रा की सीमा बांध देने से शिलिंग किस प्रकार मूल्य को बनाए रख रहा है। परन्तु क्या यह समझा गया कि शिलिंग की मात्रा पर किस तरह सीमा

बांध कर रखी जाती है। यदि यह सच है कि शिलिंग का मूल्य बनाए रखने के लिए वैध मुद्रा की सीमा नहीं, अपितु उसकी कुल मात्रा की सीमा बांधनी होती है, तो फिर शिलिंग असीमित मात्रा में जारी क्यों नहीं किया जाता? शिलिंग के सिक्के ढालना उसी तरह लाभकारी है जैसे रुपये के सिक्के ढालना। ब्रिटिश सरकार इसे असीमित मात्रा में क्यों नहीं ढालती? केवल इसलिए कि शिलिंग असीमित मात्रा में नहीं दिया जा सकता? यदि सरकार अपने चान्सलर आफ इक्सचेकर कबीना के मंत्रियों और ढेर सारे अफसरों और बाबुओं को अदा कर सकती जो बदले में अपने फुटकर दुकानदारों, दूधवालों, शराबवालों और कसाइयों को शिलिंग में अदायगी कर सकते, तो शिलिंग अधिक मात्रा में जारी करने से कोई मना नहीं कर सकता। परंतु यह इसलिए है कि कोई भी शिलिंग में असीमित मात्रा में अदायगी नहीं कर सकता, इसलिए वे किसी के पास भी असीमित मात्रा में नहीं रहेंगे। या यों कहिए कि वैध मुद्रा पर सीमा होने के कारण कोई थोक मंडी नहीं है, इसलिए आवश्यकता से अधिक शिलिंग जारी करने से सरकार स्वयं ही रुक जाती है। इसलिए कमेटी का यह तर्क देना गलत था कि वैध मुद्रा पर सीमा लगाने का शिलिंग का मूल्य बनाए रखने से कोई संबंध नहीं। दूसरी ओर, यदि किसी प्रतीक (टोकन) सिक्के का मूल्य बनाए रखने की मुख्य शर्त है जारी किए गए सिक्कों की मात्रा की सीमा तो ऐसी सीमा को प्रभावकारी बनाने का एक तरीका है वैध मुद्रा की सीमा बांध देना।

परिवर्तनीयता के बारे में भी उसके तर्क उतने ही भ्रामक थे। यह कहना कि एक चीज फ्रांस और अमरीका के लिए पर्याप्त है तो वह भारत के लिए भी पर्याप्त होगीं तो यह तो ऐसा है कि एक अन्धा दूसरे अन्धे का नेतृत्व करे। यह तर्क देना बिल्कुल गलत था कि परिवर्तनीयता की जगह स्वर्ण ही–

> "विदेशी विनिमय की मार्फत आंतरिक उद्देश्यों के लिए समूची मुद्रा को अंकित मूल्य पर बनाए रखता है।"

बात बिल्कुल उल्टी है। फ्रांस और अमरीका को अपनी मुद्रा की रक्षा के लिए परिवर्तनीयता की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि चांदी के फ्रांक और चांदी के डालर पूर्णतः सीमित मात्रा में होते थे। स्वर्ण के अधिक मात्रा में आगमन से रक्षित होने की जगह जारी की गई मात्रा की सीमा होने के कारण न केवल उनका मूल्य बना रहा अपितु, उन देशों में जितना भी सोना था, उसे भी वहीं रहने की अनुमति हो गई। अब कमेटी को लम्बे टेढे–मेढे रास्तों व निरर्थक खोज करने की जगह चाहिए यह था कि वह इस बात पर जोर देती कि जब तक जरूरत से ज्यादा मुद्रा जारी करने की सीमा बांधने के अन्य तरीके हैं, तब तक न तो इस बात की जरूरत है कि रुपये के संदर्भ में न तो मुद्रा की अथवा परिवर्तनीयता की सीमा बांधी जाए।

वैध मुद्रा या परिवर्तनीयता की सीमा इसीलिए आवश्यक होती है कि वे जारी की गई मुद्रा की मात्रा की सीमा बांधने का एक साधन होती हैं और यदि जारी की गई मुद्रा की सीमा अन्य तरीकों से बांधी जा सकती हो तो परिवर्तनीयता या वैध मुद्रा की सीमा बांधने का उद्देश्य पूरा हो जाता। अब क्या टकसालें बंद करने से क्या रुपयों की पर्याप्त सीमा न बंध जाती? और यदि टकसालें बन्द करने से जारी किए गए रूपयों की सीमा नहीं बंध जाती तो फिर भला और किस चीज से बंध सकती? क्या टकसालें बन्द करना वैसी ही बात नहीं है कि जैसा निश्चित संख्या में कागजी मुद्रा जारी करने के नियमन करने का सर्वविदित सिद्धांत होता है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ऐसा ही होता है। ऐसी स्थिति में एक ही प्रश्न बचा रहता है कि वर्तमान में रुपयों की प्रचलन मात्रा उस न्यूनतम वैध मुद्रा की मात्रा से स्पष्ट रूप से कम है जो किसी भी समय आंतरिक प्रचलन के लिए जरूरी हो सकता है। भारत सरकार ने यह पहले से ही भांप लिया था कि प्रचलन में रुपयों की मात्रा इस न्यूनतम से अधिक थी और इसीलिए उसने इस बारे में आवश्यक व्यवस्था की थी। 3 मार्च 1898 के अपने प्रेषण में सरकार ने अपनी योजना की रूपरेखा बताते हुए कहा था—

"9......हम जानते हैं कि असफलता का (रुपये का विनिमय मूल्य बनाए रखने में) एक मुख्य कारण यह था कि टकसालें बन्द करने से पहले ही हमारे यहां रूपयों का प्रचलन इतना अधिक बढ़ा दिया गया था कि उससे व्यापार की सभी मांगे पूरी तरह, बल्कि पूरी तरह से भी ज्यादा पूरी हो जाती और सोने के रूप में उसे और बढ़ाने की कोई गुंजाइश नहीं रह गई थी।..... दो देशों के बीच विनिमय की निश्चित दर की आवश्यक शर्त यह होती है कि जब दूसरे देश के मुकाबले एक देश की मुद्रा के फालतू हो जाती है, तो उसे आधिक्य को किसी एक समय कम करने के लिए फालतू सिक्कों को प्रचलन से हटाया जा सकता है; और इसलिए हम चाहते हैं कि एक ऐसी स्थिति पर पहुंचे, जब हमारे प्रचलन का माध्यम...........केवल चांदी के सिक्कों का न बना हो जिनका देश के बाहर कोई मूल्य नहीं होता, बल्कि उसमें थोड़ा—सा भाग स्वर्ण का भी होना चाहिए जिसका अन्यत्र भी सिक्के के रूप में प्रयोग किया जा सकता है, और इस तरह वह स्वाभाविक रूप से वहां पहुंच जाएगा जहां उसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। आजकल हमारी रुपये की कुल मुद्रा 120 करोड़ रुपये की है जिसमें हमें प्रचलन में दस करोड़ रूपये की आरक्षित कागजी मुद्रा और जोड़ देनी चाहिए।

"10......यह सही—सही बताना कठिन है और केवल वास्तविक अनुभव से इसकी पुष्टि की जा सकती है कि रुपये का आधिक्य कम करने के लिए रुपयों का प्रचलन कितना घटाया जाना चाहिए। ......परंतु कुछ बातों से आभास

होता है कि इस राशि की आसानी से व्यवस्था की जा सकती है। उदाहरण के लिए लगभग 24 करोड़ रुपये की कागजी नोट प्रचलन में हैं जिसमें हमारे खजानों में पड़ी रकम भी शामिल है। यदि हम यह कल्पना कर सके कि वर्तमान में प्रचलन में जो मुद्रा कागजी नोटों की शक्ल में है, उसे अचानक 16,000,000 पौंड स्वर्ण में बदल दिया जाए, तब यह असंभव लगता है कि भारतीय व्यापार, वास्तविक प्रचलन की राशि कुछ भाग के बिना, चल सकेगा; दूसरे शब्दों में यह सम्भव नहीं होगा कि सोने के सिक्कों की वह राशि देश से बाहर चली जाए जब तक कि रुपये का मूल्य विवश होकर इस बिन्दु तक न आ जाए जिससे निर्यात की धारा रूक जाएगी। यदि यही बात है तो वह बाहरी सीमा 24 करोड़ रुपये की है जिसे सोने के सिक्कों में बदला जाना चाहिए ताकि 16 पैंस की स्थायी विनिमय दर लागू की जा सके, और उसके साथ उसी तुलनात्मक मूल्य पर सोना भी सक्रिय या गैर–सक्रिय ढंग से प्रचलन में हो; और इस बात की संभावना अधिक है कि वास्तव में वांछित राशि की मात्रा उससे कम ही हो।

"11. प्रचलन की मात्रा उस तरीके से कम की जा सकती है जिस तरह 1893 में की गई थी, अर्थात कौंसिल बिलों को वापस करना बन्द कर दिया जाए, जब तक कि, उदाहरण के लिए, हमारे पास अपने सामान्य संतुलन की अपेक्षा 20 करोड़ रुपये और जमा न हो जाएं। परन्तु हमारा विश्वास है कि यह प्रक्रिया महंगी भी होगी और गैर–प्रभावकारी भी। एक तो 20 करोड़ रुपये स्थायी रूप से बन्द करके रख देने का अर्थ यह होगा कि उसके ब्याज से हाथ धो बैठेंगे या जब निकालना बंद कर रखा होगा तब इंग्लैंड से उधार लिए जाने वाले सोने के ब्याज की हानि होगी। और दूसरी बात यह है कि यह 20 करोड़ रुपये के चांदी के सिक्कों को जमा करके रखने से विनिमय बाजार के सिर पर हमेशा एक खतरा मंडराता रहेगा और उससे रूपये के भविष्य पर से पूरी तरह विश्वास हट जाएगा। हमें न केवल प्रचलन से वह वापस ले लेनी चाहिए जो तरीका हम अपनाते हैं, उससे हमारी यह इच्छा स्पष्ट परिलक्षित होनी चाहिए कि यह राशि सिक्के के रूप में चलानी बन्द हो जाए और उसकी जगह, सिक्के के रूप में सोना ले ले। इसलिए हमारा प्रस्ताव यह है कि वर्तमान सिक्कों को पिघला दिया जाए, परंतु उससे पहले (उधार लेकर) सोने का एक रिजर्व बना लें जो दो काम करे एक व्यावहारिक दृष्टि से चांदी का स्थान ले ले, और दूसरे हमारे कदमों पर विश्वास जमा दे।"

जिस समय कमेटी ने यह रिपोर्ट दी उस समय प्रचलन में रुपयों का आधिक्य नहीं था जो इस बात से सिद्ध हो जाता है कि विनिमय की दर बढ़ रही थी और

सोना आ रहा था। इसलिए यह बात असंदिग्ध है कि टकसालें बन्द करने से प्रभावकारी रूप से सीमा लग गई थी, और इस बात को कमेटी ने भी स्वीकार कर लिया।[1] परन्तु मान लीजिए कि टकसालें बंद करने से प्रचलन में रुपयों की मात्रा पर प्रभावकारी ढंग से सीमा नहीं लगती, तब क्या उपाय हो सकता था? तब क्या स्वर्ण रिजर्व की योजना से विदेशी भुगतान के लिए परिवर्तनीयता सुनिश्चित करके इस उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती, उस दशा में जब कि स्वर्ण रिजर्व को रुपये के अधिक सिक्के ढाल कर प्राप्त किया जा सकता था? यदि रुपयों पर सीमा लगा कर उनका मूल्य बनाए रखा जा सकता है, जैसा कि शिलिंग के मूल्य की दशा में हुआ, तब क्या स्वर्ण रिजर्व बनाने के लिए रुपये के सिक्कों की मात्रा में बढ़ोतरी करने की अनुमति देने से, उनकी सीमा बंध जाती जबकि कमेटी को यह अंदेशा था कि यदि रुपयों की संख्या फालतू नहीं थी, तब भी उसकी प्रचुरता जरूरी थी?

फाउलर कमेटी की रिपोर्ट पढ़ते समय क्षोभ हुए बिना नहीं रह सकता। रुपये बनाने की अनुमति देना हर प्रकार से शरारतपूर्ण था। यह सच्चे स्वर्णमान का विनाश करने वाला था; मुद्रा की तंगी होने पर राहत दिलाने के लिए इसकी जरूरत नहीं थी और यह निश्चित रूप से रुपये का मूल्य घटाने वाली थी। यदि यह स्वर्णमान और मुद्रा की उत्सुक थी, जो यह सचमुच थी भी, तो इसे रुपये के सिक्के बनाना कतई बन्द कर देना चाहिए था और उस अधिसूचना को दबा देना चाहिए था जिसमें सरकार को सोने के बदले रुपये देने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। ऐसा न कर सकने के कारण, इसने न केवल देश को एक मजबूत प्रणाली से वंचित कर दिया बल्कि वास्तव में तो अनजाने में इसने कागजी मुद्रा सहित समूची भारतीय मुद्रा को एक अपरिवर्तनीय रुपये के आधार पर रख दिया। हर्शल कमेटी ने जो एक घातक उपबन्ध जोड़ दिया था, बहुत ही कम लोग उसे समझ पाए थे और फाउलर कमेटी ने भी बिना किसी पछतावे के जिसे अपना लिया था, वह उपबन्ध था कि सरकार हमेशा सोने के बदले रुपये देने को तैयार रहेगी। परन्तु इसका प्रतिलोभ उपबन्ध न होने के कारण, कि सरकार सोने के बदले रुपये देगी, सरकार को यह अधिकार मिल गया कि वह असीमित वैध मुद्रा के रूप में अपरिवर्तनीय रुपया उसी तरह जारी कर सकेगी जैसा कि बैंक आफ इंगलैंड को बैंक प्रतिबन्ध से यह अधिकार मिल गया था कि अपरिवर्तनीय नोट असीमित मात्रा में जारी कर दे। सही दिशा में पहला कदम यह होता कि इस रिपोर्ट को रद्द कर दिया जाता और ऊपर दिए गए प्रेषण में बताए गए सुरक्षित और मजबूत भारत सरकार के प्रस्तावों की ओर तेजी से लौटा जाता। पहली शर्त यह है कि रुपये के सिक्के ढालना बन्द कर दिया न कि टकसालों को केवल जनता के लिए बन्द कर दिया जाए। रुपयों के

1. रिपोर्ट, पैरा 17

एक भाग को पिघलाना आवश्यक होगा या नहीं, इस बात पर निर्भर करता है कि हम रुपये का कितना स्वर्ण मूल्य चाहते हैं। एक बार जब रुपये का संकुचन पूरा हो जाता है और नए सिक्के ढालना बन्द कर दिया जाता है तब भारत इस स्थिति में आ जाएगा कि भारत में एक प्रभावकारी स्वर्ण मान हो जो सोने को मुक्त आगमन तथा निर्गम पर निर्भर हो। इस बात की कोई आवश्यकता नहीं होगी कि रुपये को वैध मुद्रा बना कर रख दिया जाए और उसकी परिवर्तनीयता की व्यवस्था की जाए। क्योंकि इसकी मात्रा सीमित होगी ता इसी के बल पर इसका मूल्य बराबर बना रहेगा बशर्ते कि प्रचलन में मुद्रा की मात्रा इतनी घटा दी जाए कि वह न्यूनतम मांग से हमेशा कम हो।

रुपया मुद्रा की वर्तमान प्रणाली के समर्थक इसकी प्रारम्भ के समय से ही कहते आ रहे हैं कि यह मुद्रा मितव्ययी और सुरक्षित है। सोने और जिन्सों दोनों को लेकर इसके सुरक्षित होने के दावे की जांच की गई और ऐसा करते समय इस अध्याय और पिछले अध्यायों में उसका विश्लेषण किया गया जिसमें यह दिखाया गया है कि सुरक्षित मुद्रा बनने के लिए इसे कई और बातें पूरी करनी पड़ेंगी। अब हम यह जायजा लेने की कोशिश करते हैं कि क्या यह मितव्ययी है, क्योंकि यदि यह वास्तव में मितव्ययी हो तो इसे इसके विरोधियों को जवाब देने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इसलिए हमें इस बात की कड़ी जांच करनी चाहिए कि रुपया मुद्रा के कारण कितनी मितव्ययता हुई।

केमेरेर का कथन है[1]–

"एक परिवर्तनीय मुद्रा अपने महत्व की सार्थकता इस बात से सिद्ध करती है कि इससे मूल्यवान धातुओं के उपयोग में मितव्ययता होती है और समुदाय के लिए बचत करना सम्भव हो जाता है। यदि मूल मुद्रा की जगह कागजी मुद्रा या प्रतीक मुद्रा का उपयोग किया जाता है तो इससे मूल्यवान धातुओं की मांग इतनी कम हो जाती है जितनी धातु जारी की गई प्रतीक मुद्रा बनाने में लगती है और उस मूल मुद्रा में लगती है जो प्रतिदान निधि के लिए आवश्यक होती है। बहुमूल्य धातुओं में मितव्ययता का अर्थ यह होता है कि बाजार में मुद्रा की अधिक आपूर्ति हो जाती है। यह आपूर्ति विदेशों में जाती है और कलाओं में लगती है और देश की गैर मुद्रा सम्पदा को उतनी राशि में बढ़ा देती है मितव्ययी धातु के बदले मिला सोना समुदाय के लिए सही लाभ होता है।

1. *मनी एंड क्रेडिट इंस्ट्रुमेंट्स इन रिलेशन टु प्राइसिज*, पृष्ठ 63

केमेरेर का कहना है कि इसी प्रकार का लाभ अपरिवर्तनीय मुद्रा के उपयोग से भी जुड़ा होता है, अपितु उससे भी ज्यादा बड़े पैमाने पर जुड़ा होता है क्योंकि प्रतिदान निधि के लिए तो मूल मुद्रा की आवश्यकता ही नहीं होती जैसी कि परिवर्तनीय मुद्रा में होती है। ऐसे विचारों के कारण ही प्रो. केन्स ने राय दी कि भारतीय मुद्रा प्रणाली मितव्ययिता का एक शानदार नमूना है और दूसरे अधिक प्रगतिशील देशों को इस उदाहरण से लाभ उठाना चाहिए। इसे आधार पर हम इस दुखद निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेंगे कि प्रो. केमेरेर या प्रो. केन्स यह भी सिफारिश कर देंगे कि अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा सबसे अधिक मितव्ययी होती है, इसलिए देश को इसे बिना किसी पछतावे के अपना लेना चाहिए। यहां हमारा तात्पर्य तो यह पता लगाना है कि क्या रूपया मुद्रा वास्तव में मितव्ययी है। जब हम रूपये के अस्तित्व में आने की प्रक्रिया का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करते हैं तो इस तर्क को गंभीरतापूर्वक लेना कठिन हो जाता है कि भारतीय मुद्रा मितव्ययी है। सबसे पहले तो भारत सचिव को लंदन में कौंसिल बिलों के लिए सोना देना पड़ता है या भारत में भारत सरकार को करों की अदायगी या अन्य मदों के लिए सोना देना पड़ता है। इस सोने से भारत सचिव चांदी खरीदता है और रूपये के सिक्के बनाता है। चूंकि चांदी की कीमत अनुपात से नीचे होती है, इसलिए रूपये की लागत कीमत और सोने में इसकी बिक्री कीमत में अंतर होता है। इसमें जितना अंतर होता है यह सही है कि वह तो प्राप्ति होती है। परन्तु सिक्के ढालने से होने वाले इसे प्राप्ति या लाभ से समाज का कोई कल्याण नहीं होता। यह तो जमाखौरी होती है और उस दृष्टि से यह सम्पदा का फालतू अव्यावहारिक रूप होता है। यदि इस लाभ का उपयोग समाज के किसी वर्तमान काम या उद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता; तो फिर रुपये के सिक्के ढालने का क्या लाभ? इसलिए यह बात स्पष्ट है कि जब तक यह लाभ भारत के राजस्व स्रोतों से अलग रखा जाता है, तब तक रुपये के सिक्के बनाने में नाम को भी मितव्ययता नहीं होती। एक दूसरी दृष्टि से तो भारत की मुद्रा समाज के लिए एक फालतू की परिसम्पदा है। धातु की मुद्रा मूल रूप से एक पूंजीगत सामान होता है जो एक सामाजिक निवेश का रूप लेता है। फलतः यह देखना आवश्यक होता है कि मुद्रा का पूंजीगत मूल्य बना रहे यह बड़ी प्रसन्नतादायक स्थिति है कि भारत सरकार कागजी मुद्रा रिजर्व के संदर्भ में समस्या के इस पहलू से अनजान नहीं है और अभी हाल में इसका पूंजीगत मूल्य बनाए रखने के लिए इसने एक मूल्य ह्रास निधि बनाई है।[1] अब जो बातें कागजी मुद्रा पर लागू होती हैं वे रुपया मुद्रा पर भी लागू होने चाहिए। क्या रुपया मुद्रा ने अपना पूजीगत मूल्य बनाए रखा है? इसका स्वर्ण भाग, जिसे स्वर्ण मान रिजर्व

1. तुलना करें— इंडियन पेपर करेंसी (एमेंडमेंट) बिल पर वित्त मंत्री मि. हेली का भाषण, दिनांक 16 सितम्बर 1920, एस एल सी पी खंड LIX पृष्ठ 308-09।

कहा जाता है, उसका निवेश, ब्याज कमाने वाली प्रतिभूतियों में किया जाता है। ब्याज निस्संदेह प्राप्ति का एक अतिरिक्त स्रोत होता है। परंतु क्या इन सिक्यूरिटियों ने अपना पूंजीगत मूल्य बनाए रखा है? कतई नहीं। अब मुद्रा के रुपये वाले आधे भाग को लीजिए। क्या रुपये में लगी धातु ने अपना पूंजीगत मूल्य बनाए रखा है? कई विनोदप्रिय अर्थशास्त्रियों ने ढेर सारे चार्ट और आकृतियां बनाई है जिनमें काली रेखा जो रुपये का अंकित मूल्य दिखाती है; ऊपर की ओर जाती हैं और लाल रेखा जो रुपये का धातु मूल्य दिखाती है; वह चांदी का स्वर्ण मूल्य घटने के कारण नीचे को गई हुई है। परन्तु उसका मतलब क्या होता है? सीधा सादा यह है कि रुपया अर्थ जाने वाली परिसम्पदा है और भविष्य किसी तिथि पर इसका वह मूल्य नहीं होगा जो इसके निर्माण के समय समाज को देना पड़ा था। एक पागलची ने जब सुअर भूनने के लिए अपना मकान जला दिया, उसमें उससे ज्यादा मितव्ययता दिखाई थी जितनी भारतीय रुपये की मुद्रा में है। हो सकता है कि चीनी का मकान बिल्कुल टूटी–फूटी हालत में हो और रहने लायक न हो। परन्तु स्वर्णमान को चांदी धन में बदलने की बात के बारे में यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि हम जानते हैं कि स्वर्ण की अपेक्षा चांदी में निवेश घटिया किस्म का होता है। इस दृष्टि से मुद्रा कतई मितव्ययी नहीं है। ऐसा लगता इसलिए है कि लोग केवल रुपये को देखते हैं। परंतु रुपया मुद्रा की लागत में स्वर्ण मान रिजर्व की लागत जोड़ देने के बाद भी क्या ऐसा कहा जा सकता है कि यदि भारत में रुपया मुद्रा की जगह स्वर्ण मुद्रा होती तो भारत को अधिक स्वर्ण की आवश्यकता पड़ती। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि रुपये जारी करने की एक निश्चित सीमा रखने पर स्वर्ण रिजर्व रखने की आवश्यकता नहीं रह जाती, तब चांदी के सिक्कों के निर्माण को बन्द करने का एकमात्र परिणाम यह निकलेगा कि सोना आजकल जिसका एक भाग विक्षेप निधि में रहता है और दूसरा रुपया मुद्रा को प्रेषित कर दिया जाता है, बिना इस विनाशकारी और अपव्ययी प्रक्रिया को शिकार बने सीधा प्रचलन में आ जाएगा।

एक मामले में जितने सोने की आवश्यकता होगी, दूसरे मामले में उससे अधिक की जरूरत नहीं पड़ेगी। इसलिए हम निर्भय होकर कह सकते हैं; जिसे कोई चुनौती भी नहीं देगा कि रुपये के सिक्के ढालना पूरी तरह बन्द कर देने से भारतीय मुद्रा सचमुच में किफायती हो जाएगी, कीमतें स्थिर हो जाएंगी, और विनिमय इस तरह सुरक्षित हो जाएगा, जैसा उसे वास्तव में होना चाहिए; और रुपया यद्यपि अपरिवर्तनीय होगा परंतु वह कोई समस्या नहीं बना रहेगा जैसा कि 1873 से बना हुआ है।

परंतु उस सबसे क्या देश को लाभ होगा? किसी भी हालत में नहीं। प्रो0 कैनन[1] ने 1797 के कागजी पौंड़ की तुलना 1914 के कागजी पौंड से करते हुए जो नीतिगत नियम निकाला, उसे इस प्रकार कह दिया।

"इन दिनों निस्संदेह यह काम किसी को सौंपने का प्रयोग जो किसी समुदाय को भी किसी संस्था को नहीं सौंपना चाहिए अर्थात बिना सीमा के मुद्रा बनाने का काम बैंक आफ इंग्लैंड को सौंपा गया था उसकी तुलना अच्छी तरह आजकल यह काम सरकार को सौंपने या पूरी तरह सरकारी नियंत्रण वाले स्टेट बैंक को सौंपने से की जा सकती है। 1914-18 के अपेक्षाकृत संक्षिप्त युद्ध के दौरान मुद्राऐं जिन पर लिखा था "स्वेच्छा से सिक्के में परिवर्तनीय नहीं जिससे निष्कर्ष किया जाता है सरकारी और सरकारी बैंकों द्वारा इतनी अधिक मात्रा में मुद्रा जारी की गई कि उसके मुकाबले 13 वर्षों में जारी की गई मुद्रा में 100 प्रतिशत की वृद्धि बिल्कुल तुच्छ लगती है यद्यपि 1810 में सर्राफा कमेटी ने उसकी जोरदार शिकायत की थी।"

एक समय था जब यह कहा जा सकता था कि यह भर्त्सना भारत सरकार पर लागू की जा सकती। ऐसी सरकारें थोड़ी सी ही होंगी जो एक समय भारत सरकार की तरह मुद्रा के प्रबन्ध से अपना वास्ता न रखना चाहती हों। जब भारत सरकार ने 1861 में पहले-पहल कागजी मुद्रा जारी की थी, तब उसकी चिन्ता स्वागत योग्य थी। एक निर्धन सरकार, जो गदर के भारी बोझ के कारण धराशायी हो चुकी थी उसे तो कागजी मुद्रा की परियोजना का लाभ के स्रोत के रूप में स्वागत करना चाहिए था। परंतु उसमें इतनी अधिक उत्तरदायित्व की भावना थी कि सरकार ने इस बात से सन्तुष्ट होने से इन्कार कर दिया कि परिवर्तनीयता के कारण जरूरत से ज्यादा मुद्रा जारी करने पर रोक लग जाएगी। भारत की वित्तीय स्थिति सुधारने के लिए 1860 में तंगहाल वित्तकार मि0 विल्सन ने कागजी मुद्रा की जो योजना तैयार की थी, उसे रद्द करने का एक प्रमुख कारण, उनके उत्तराधिकारी मि. लैंग ने बहुत अच्छे ढंग से बताया था और आजकल की उत्तेजनापूर्ण वित्तीय स्थिति में उसे दोहराना उपयुक्त प्रतीत होता है। उन्होंने कहा[2]-

"एक और भी महत्वपूर्ण कारण था कि उन्होंने (मि. लैंग) ने सोचा कि सर चार्ल्स वुड का सिद्धांत सबसे ठोस था। सभी पक्ष इस बात पर सहमत थे कि कागजी मुद्रा जो धातु की मुद्रा की जगह लेगी, ठीक उसी के जैसी होनी चाहिए। परंतु जैसा कि मि. विल्सन का प्रस्ताव था कि यह दो तिहाई सिक्यूरिटियों और एक तिहाई मूल्यवान धातुओं के बदले जारी की जानी चाहिए,

1. पेपर पाउंड आफ 1741-1821 इंट्रोडक्शन पृष्ठ XXXIX
2. पेपर करेंसी बिल पर उनका भाषण 16 फरवरी 1811, एस एल सी पी खंड VII पृष्ठ 66-67।

तो उससे यह समरूपता रहना सुनिश्चित नहीं हो सकेगी और इस बात का भारी जोखिम बना रहेगा कि तेजी और सट्टेबाजी के मौकों पर प्रचलन अनावश्यक रूप से बढ़ जाएगा। उनका विचार था कि यह मुद्दा बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि हम यह देखें कि पिछले तीन वर्षों में भारत में क्या हुआ है तो हम देखेंगे कि मजदूर का वेतन और वस्तुओं की कीमतें काफी बढ़ गई है। इसे हमें इस बात की चेतावनी समझना चाहिए कि पहले से ही यह जो प्रक्रिया तेजी से चल रही है, यदि हम कृत्रिम मुद्रा स्फीति द्वारा इस प्रक्रिया को और तेज कर दें, तो उसके क्या परिणाम निकलेंगे। यदि आपने कागजी मुद्रा के प्रचलन की मात्रा को बढ़ाकर अस्वाभाविक रूप से कीमतों को बढ़ाया तो आप इस बात का पर्याप्त जोखिम उठाएंगे कि वाणिज्य के स्वस्थ कार्यकलापों में बहुत उत्तेजनापूर्ण तेजी पैदा हो जाएगी और फिर निश्चित रूप से उसकी प्रतिक्रिया होगी। यदि हम उसी तरह चलते रहे जिस तरह पिछले दो या तीन वर्षों से चल रहे हैं, तो इसका परिणाम यह होगा कि दूसरे देशों की प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप भारत की बनी कई वस्तुओं को मंडी से निकल जाना पड़ेगा और इसलिए उनका विचार था कि सरकार को ऐसा कम उठाने से पहले सावधानी बरतनी चाहिए जिससे आगे बढ़ने की प्रवृत्ति अनावश्यक तेज गति से न बढ़ने लगे। और यह कागजी मुद्रा प्रणाली के फलस्वरूप हो सकता है क्योंकि उसके पीछे अधिकांश तथा सिक्यूरिटियां होती हैं; बहुमूल्य धातु नहीं। यदि मजदूरी की दरों में और रहन–सहन के खर्च में सामान्य वृद्धि के कारण वर्तमान वेतनमान और फौज के वेतन भत्ते पर्याप्त न रहे[1] तो ऐसी प्रगति से हम ऐसे बिन्दु पर भी पहुंच सकते हैं जो सरकार के लिए भारी परेशानी पैदा करने वाला हो सकता है। इस कारण से उन्होंने सोचा कि सर्वोत्तम तरीका यही होगा कि हम उसी सिद्धांत पर डटे रहें जिसे इंग्लैंड ने कागजी मुद्रा के बारे में अपनाया है और जैसा कि सर चार्ल्स वुड के प्रेषण में दिया गया है''

सरकार न केवल इस बात के लिए उत्सुक थी कि इसे परिवर्तनीय बनाने के साथ–साथ इसे जारी करने की भी सीमा होनी चाहिए; परंतु वह नोट जारी करने का कानूनी अधिकार सभहालना भी नहीं चाहती थी। भारत सरकार ने 27 अप्रैल 1859[2] को भारत सचिव को भेजे गए अपने एक प्रेषण में कहा कि–

''हमारा विश्वास है कि मांग पर नोटों की परिवर्तनीयता जरूरत से ज्यादा नोट जारी करने के विरूद्ध पर्याप्त गारंटी नहीं होगी। जब एक बार कागजी मुद्रा पर लोगों का विश्वास जम जाएगा तब यदि पूरी शक्ति केवल भारत सरकार

1. यहां पर यह बात नोट की जानी चाहिए कि इंग्लैंड में बैंक सस्पेंशन अवधि के दौरान सेना और नौसेना में स्वर्ण में वेतन बांटा जाता था ताकि कहीं उनमें असंतोष न पैदा हो जाए।
2. इसकी एक प्रति के लिए देखिए कामन्स पेपर 183, (1860 का) पृष्ठ 1

के हाथों में दे दी गई, तो कठिनाई के समय सरकार को बहुत प्रलोभन हो जाएगा कि इस विश्वास का खतरनाक रूप से लाभ उठाया जाए। हमारे विचार से कानूनन प्रतिबंध लगाना आवश्यक होगा चाहे वह जारी की जाने वाली पूर्ण राशि पर हो अथवा भारत में पड़े रोकड़ शेष से सम्बद्ध हो। हमारे विचार में यह कानून (ब्रिटिश) पार्लेमेंट द्वारा पास किया जाना चाहिए न कि लेजिस्लेटिव कौंसिल आफ इंडिया द्वारा।"

1876 में रुपया मुद्रा के बारे में सरकार का दृष्टिकोण भी उतना ही सन्तुलित था। यहां पर यह याद किया जा सकता है कि बंगाल चैम्बर आफ कामर्स ने भारत सरकार से अनुरोध किया था कि चांदी के सिक्के मुक्त रूप से बनाने के लिए टकसालों को बन्द कर दिया जाए और उन्हें सोने के सिक्के मुक्त रूप से बनाने के लिए भी नहीं खोला जाना चाहिए। व्यावहारिक दृष्टि से इसका मतलब था कि सरकार रुपया मुद्रा की व्यवस्था का भार सम्भाल ले। सरकार ने इसका उत्तार कड़ी दुत्कार के रूप में दिया। उसकी घोषणा थी[1]–

"8——–चैम्बर ने सरकार को ऐसा कदम उठाने के लिए निमंत्रित किया है जिससे रुपये का मूल्य अनिश्चित ढंग से बढ़ जाए और इसके लिए दीर्घकालीन सुस्थापित सभी व्यक्तियों के वे अधिकार स्थगित कर दिये जाएं जिसके अंतर्गत वे सरकारी देखरेख में एक सी शर्तों पर वे चांदी की धातु देकर वैध मुद्रा ढलवा सकते थे और उसकी जगह वे अस्थायी रूप से सरकार को अपने विवेक से सिक्के ढालने की प्रणाली को देना चाहते थे ———।

* * * * *

11. मुद्रा की एक ठोस प्रणाली के लिए यह जरूरी है कि वह स्वतः चालित हो। कोई व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का एक समूह यह पता नहीं लगा सकता कि किसी विशेष समय पर समूचे समुदाय के हित के लिए मुद्रा में कमी करनी चाहिए या वृद्धि, और इसका पता तो और भी कम चलता है कि ठीक कितनी मुद्रा बढ़ाने या घटाने की आवश्यकता पड़ेगी। कोई भी सरकार जो अपनी मुद्रा को मजबूत स्थिति में रखना चाहती है, वह ऐसा असम्भव कार्य करने की कोशिश करेगी, अथवा समुदाय को थोड़े समय के लिए भी मूल्य के निश्चित धातु स्टैंडर्ड के बिना रखना चाहेगी तो उसे उचित नहीं कहा जाएगा। "सिक्का बनाने की मुक्त प्रणाली" के अंतर्गत बिना सरकारी हस्तक्षेप के ये चीजें अपना नियमन खुद कर लेती है।"

1. चांदी के मूल्य ह्रास से सम्बन्धित भारत सरकार प्रस्ताव, दिनांक 22 सितम्बर 1870, कामन्स पेपर 449–1892 का।

अब इसकी तुलना सरकार की बाद की घोषणाओं से कीजिए जो क्रमशः कागजी मुद्रा और रुपया मुद्रा की व्यवस्था करने वाले सिद्धांतों के बारे में की गई। युद्ध के दौरान जब सरकार कागजी मुद्रा बढ़ा कर जारी करने लगी, तो सुप्रीम लैजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों ने बताया कि भारत में कीमतों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। परन्तु स्वर्गीय सर विलियम मेयेर ने, जिनके हाथ में युद्ध के दौरान भारतीय वित्त की पतवार थी, इंडियन पेपर करेंसी (एमेंडमेंट) बिल दिनांक 5 सितम्बर 1917 पर भाषण देते हुए निम्नलिखित उत्तर दिया[1]–

"युद्ध से पहले प्रचलन में नोटों की संख्या 60 करोड़ थी जो अब लगभग एक सौ करोड़ है। परन्तु माननीय मि. सरमा मुद्रास्फीति के विचार से कांपने लगे। परंतु मैं उन्हें याद दिलाना चाहूंगा कि अर्थशास्त्रियों में एक स्वीकृत (!) मत यह होता है कि कागजी मुद्रा की कृत्रिम मुद्रा स्फीति तभी होती है जब नोटों का प्रचलन पूरी तरह पृष्ठांकित न हो। अब हमने अपने प्रचलन के नोटों का एक–एक रुपया –––– सिक्यूरिटियों से पृष्ठांकित कर रखा है। "{फिर मुद्रा स्फीति कैसे हो सकती है।}

रुपया मुद्रा के बारे में भी सरकार दृष्टिकोण में आया परिवर्तन उतना ही ध्यान देने योग्य है। 1908 में जब रुपये का विनिमय मूल्य उसके रूप मूल्य से गिर गया, तब सरकार को याद दिलाया गया कि ऐसा रुपये के जरूरत से ज्यादा सिक्के ढालने के कारण हुआ है। परंतु यद्यपि 1876 में सरकार इसे सम्भव नहीं मानती थी कि वाणिज्य व्यापार की आवश्यकताओं को देखते हुए मुद्रा को इस तरह बढ़ाया या घटाया जा सकता है फिर 1908 में सरकार ने इसका बिल्कुल उल्टा विचार प्रस्तुत कर दिया। वित्तमंत्री माननीय मि. बेकर ने अपने उत्तर में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किया[2]–

"सबसे पहली बात तो यह है कि इस अवधि में हमने जितने भी नए सिक्के बनाए हैं; वे केवल व्यापार की मांग को पूरा करने के लिए बनाए गए हैं। प्रचलन में एक भी रुपया ऐसा नहीं डाला गया जो हमें केवल इन मांगों को पूरा करने योग्य न बनाता हो ––––"

अब यदि यह बात खतरनाक है कि किसी सरकार को मुद्रा की व्यवस्था करने को शक्ति सौंपी जाए तो भारत सरकार को यह सौंपना कितना खतरनाक है जो अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए इस प्रकार के सिद्धान्तों का सहारा लेना चाहता है। इन दिनों कोई भी इतना अनभिज्ञ नहीं है जो यह मानता हो कि ऐसी

1. एस.एल.सी.पी खंड LVI, पृष्ठ 229
2. तुलना करें–फाइनेंशियल स्टेटमैन फार 1908–9, पृष्ठ 229

सूक्तियां ठोस हैं। यदि सुरक्षा पर्याप्त है तो परिवर्तनीयता की आवश्यकता ही क्या है? यदि मुद्रा केवल व्यापार की मांग को पूरा करने के लिए जारी की जाती है, तब फिर जरूरत से अधिक जारी किए जाने की आशंका क्यों होती है? इस सिद्धांत पर चलने वाली सरकार बिना किसी पछतावे के अनिश्चित मात्रा में मुद्रा बढ़ाती जाएगी। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा हुआ है जब ऐसे अधकचरे सिद्धांतों के आधार पर मुद्रा की व्यवस्था करने से कितना विनाश हुआ।[1] यह देश का सौभाग्य है कि, देश की कागजी मुद्रा जिसका आधार 1920 में सरकार द्वारा बदल दिया गया, या यों भी कहा जा सकता है कि गलत ढंग से छेड़छाड़ की गई, परंतु अभी भी वह ऐसी मुद्राओं 295 से दूर थी जिनका वित्तमंत्री द्वारा व्यक्त सिद्धांत द्वारा नियमन किया जाता है। टकसाल बन्द होने के बाद से ही भारतीय मुद्रा, देशवासियों के कल्याण के लिए सबसे बड़ा खतरा बन गई है विशेष कर उस सिद्धांत के कारण जिसके आधार पर यह जारी की जाती है। यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि इस सिद्धांत को प्रो. केन्स[2], मि. शिराज[3] और चैम्बरलेन कमीशन[4] जैसे प्रतिष्ठित विद्वानों आदि का समर्थन प्राप्त है, तथापि सरकार को भारतीय मुद्रा की व्यवस्था करने की शक्ति से वंचित नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह सिद्धांत अनिवार्यतः युक्ति संगत नहीं है। यह तर्क दोषपूर्ण है कि रुपयों का आधिक्य हो ही नहीं सकता क्योंकि वे व्यापार की मांग पर जारी किए जाते हैं, परन्तु यह तर्क मुद्रा के विशिष्ट गुणों के कारण ठहर नहीं सकता। धन की चाहत इसलिए कही जाती है क्योंकि मुद्रा में क्रय शक्ति होती है। यह निस्सन्देह सच है परंतु इससे इस बात की ठीक से व्याख्या नहीं होती कि लोग हर समय मुद्रा की इतनी मांग क्यों करते रहते हैं, हालांकि उनको यह पता होता है कि मुद्रा का मूल्य इतना अस्थिर होता है। वास्तव में यदि क्रयशक्ति ही एकमात्र कारण होता तो खरीद के लिए मुद्रा की इतनी इच्छा न होती। इस इच्छा का कारण इस तथ्य से समझ आता है कि अन्य वस्तुओं के मुकाबले मुद्रा का एक और विशिष्ट लाभ यह होता है कि इसमें, मेजर के शब्दों में, विक्रय योग्य होने का अधिकतम गुण होता है। किसी सौदे में खरीदना आसान होता है, बजाय किसी सौदे में बेचने के, यह इसी बात को दूसरी तरह कहने के समान है कि हर व्यक्ति अपने साधन सर्वाधिक बिक्री योग्य धन अर्थात मुद्रा के रूप में रखना चाहता है। इस दृष्टि से यह कहना बिल्कुल सत्य है कि मांग से ज्यादा मुद्रा जारी नहीं की जा सकती। परन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि किसी विशेष समय पर केवल मुद्रा की आवश्यकताओं के लिए अधिक मुद्रा जारी नहीं की सकती। सारे धन की आवश्यकता व्यापार या सेवाओं

1. तुलना करे–ई.आर.ए. सेलिगमेन, करेंसी इनफलेमेशन एंड पब्लिक डेटस, न्यूयार्क 1922
2. पूर्वोक्त पुस्तक पृष्ठ 111
3. पूर्वोक्त पुस्तक पृष्ठ 39
4. पूर्वोक्त पुस्तक पैरा 66

के लिए होती है, परन्तु सारा धन मुद्रा में नहीं रखा जाता। वास्तव में सभी वस्तुओं का धन से विनिमय किया जा सकता है क्योंकि यह माना जाता है कि धन के साथ यह विकल्प हमेशा रहता है कि उसे गैर-मौद्रिक कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। रुपये के मामले में उपयोग के विकल्प नहीं होते। फलतः यद्यपि रुपया व्यापार की मांग पर जारी किया जाता है, परंतु चाहे इसकी जरूरत हो या न हो, यह मुद्रा के रूप में बना रहता है और इस तरह इसका मूल्य ह्रास होने लगता है। इस मूल्य ह्रास की सम्भावना से वे लोग भी इंकार नहीं करते जो यह कहते हैं कि रुपये केवल व्यापार की मांग पर जारी किए जाते हैं; नहीं तो भला वे इस बात के लिए इतने उत्सुक क्यों होते कि देश का स्वर्ण रिजर्व बढ़ा दिया जाए। परन्तु रुपया मुद्रा को खतरा सिर्फ सरकार की अविवेकपूर्ण नीति की संभावना से नहीं है। सरकार के अतिरिक्त, भारत में ऐसे राजनेता हैं, जो अपने देशवासियों के कल्याण में रुचि लेते हैं, उन्होंने सरकार की कई अवसरों पर भर्त्सना की है कि वह रुपये के सिक्के ढालने से होने वाले लाभ का उपयोग देश की नैतिक और भौतिक प्रगति के लिए क्यों नहीं करती।[1] और 1907 में रुपये ढालने से होने वाले लाभ का उपयोग तो वास्तव में रेलों के विस्तार में किया गया। ऐसे कार्यों के लिए मुद्रा का गलत ढंग से उपयोग करने के जो अवश्यम्भावी परिणाम निकलेंगे, उससे हर व्यक्ति भयाक्रांत और निराश हो जाएगा। क्या अब समय नहीं आ गया है कि खतरे और प्रलोभन के इस स्रोत को दूर करने के लिए सरकार को रुपया मुद्रा की व्यवस्था करने से वंचित कर दिया जाए? परंतु ऐसा करने के उपाय क्या हैं? यदि इसकी प्रबंध व्यवस्था को दूर करना वांछनीय है, तो परिवर्तनीयता एक अपर्याप्त कदम होगा; क्योंकि परिवर्तनीय होने से तो रुपया फिर भी एक व्यवस्था की जाने वाली मुद्रा बना रहेगा। केवल रुपया मुद्रा ढालना पूर्णतया बन्द कर देने से ही भारतीय मुद्रा की प्रबंध व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप रोका जा सकेगा; और इसलिए हमें इस बात की मांग अवश्य करनी चाहिए।

चाहे यह बात सनक से भरी हुई लगे, परन्तु *सुरक्षा अपरिवर्तनीय रुपये* में ही है जिसके जारी किए जाने की एक निश्चित सीमा हो।

1. स्वर्गीय श्री गोखले जैसे सयंत और गंभीर राजनेता ने इस दिशा में पहल की थी। तुलना करें – 1907-8 के फाइनेंशियल स्टेटमेंट मे उनका भाषण, पृष्ठ 203-4; और वही भूल प्रो. वी.जी. काले ने अपनी पुस्तक करेंसी रिफार्म इन इंडिया 1919, पृष्ठ 65 पर दोहराई है।

सभ्यता एक वरदान है। वह मानव व प्रकृति, कला के कौशल के ज्ञान का संचित भंडार है। वह एक नैतिक संहिता है, जो अपने साथियों के प्रति मानव के आचरण को विनियमित करती है। वह एक सामाजिक संहिता है, जो प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा पालन किए जाने वाले नियमों-विनियमों की व्यवस्था करती है। वह एक नागरिक संहिता है, जो शासक तथा शासित के अधिकारों तथा कर्तव्यों का प्रावधान करती है।

- भीमराव अम्बेडकर

विविध आलेख
वक्तव्य, साक्ष्य, समीक्षाएं
और
भूमिकाएं आदि

सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निर्माण के आमूल परिवर्तनवादी कार्यक्रम के बिना अस्पृश्य कभी भी अपनी दशा में सुधार नहीं कर सकते।

— भीमराव अम्बेडकर

टिप्पणी

शाही भारतीय मुद्रा तथा वित्त संबंधी आयोग (रॉयल कमीशन ऑन इंडियन करेंसी एंड फायनेंस) ने वित्त व्यवस्था की जांच और भारतीय मुद्रा के सुधार के लिए उपाय सुझाने हेतु सन् 1924-25 में भारत का दौरा किया। आयोग में निम्न सदस्य थे :-

ई. हिल्टन यंग, — अध्यक्ष
आर.एन. मुकर्जी
नॉरकौट वारेन
आर.ए. मेन्ट
एम.बी. दादाभाई
हेनर। स्ट्राकोश्च
अलेक्स आर. मुरे
पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास
जे.सी. कोयाजी
डब्ल्यू. ई. प्रेस्टन
जी.एच. बैक्सटर }
ए. आयंगर } — सचिव

आयोग द्वारा जारी की गई प्रश्नावली के उत्तर में डा० अम्बेडकर ने अपने विचार एक वक्तव्य में प्रस्तुत किए। आयोग के समक्ष उनके वक्तव्य और साक्ष्य को प्रश्नावली समेत यहां पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है।

अस्पृश्यों का त्रास ही हिंदुओं का अपराध है। हिंदुओं की धार्मिक मनोवृत्ति में क्रांति के लिए अस्पृश्यों को कितना इंतजार करना पड़ेगा? इसका उत्तर तो वही दें, जो भविष्यवाणी करने की योग्यता रखते हैं।

— भीमराव अम्बेडकर

1

साक्ष्य पर वक्तव्य*

भारतीय मुद्रा संबंधी आयोग के समक्ष डा. बी.आर. अम्बेडकर बार-एट-लॉ द्वारा प्रस्तुतः-

1. आयोग (कमीशन) द्वारा जारी प्रश्नावली के उत्तर में मैं अपने विचारों के विषय में निम्नलिखित वक्तव्य देता हूं। मैं, आयोग द्वारा जारी प्रश्नावली के प्रश्न सं. 4 से आरंभ करूंगा क्योंकि मेरा विश्वास है कि इसी मुख्य मामले के संबंध में आयोग को अपना निश्चित निर्णय देने के लिए कहा गया है।

2. मेरा यह दृढ मत है कि स्वर्ण विनिमय मान को जारी रखने का भारत को कोई लाभ नहीं हो सकता। इसके निम्नलिखित कारण हैं:—

    (1) *इसमें स्वर्णमान वाली स्वाभाविक स्थिरता नहीं है*—एक विशुद्ध स्वर्णमान इसलिए स्थिर होता है क्योंकि परिसंचरण व प्रचलन में जो सोना होता है उसका मूल्य इतना अधिक होता है और नए सोने की ओर अतिरिक्त आपूर्ति इतनी कम होती है कि उससे मानक की स्थिरता पर पर्याप्त प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु विनिमय मान के मामले में नई वृद्धियां, जारीकर्ता की इच्छा पर निर्भर होती हैं और उन्हें इतना बढाया जा सकता है कि उससे मानक की स्थिरता को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया जा सकता है।

    (2) निर्गम केवल विवेक पर आधारित है और इसमें इस विवेक का ठीक प्रकार संचालन करने के लिए कोई प्रक्रिया नहीं है—कभी—कभी यह कहा जाता है कि स्वर्णमान एक कठोर मान होता है जो मानव जाति के परिवर्तनशील मामलों को प्रकृति के चक्र से बांधे रखता है, इसके ऊपर मानवीय क्रिया का कोई नियंत्रण नहीं हो सकता और यह कि विनिमय मान इस उदासीनता से बच निकलने का साधन उपलब्ध कराता है। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि यह एक

---

* भारतीय मुद्रा तथा वित्त संबंधी शाही आयोग का प्रतिवेदन, खंड II, संलग्नक—29, ब्रिटिश सम्राट का लेखन सामग्री कार्यालय, 1926. पृष्ठ 235—39

विवेकाधीन मुद्रा होती है, परन्तु यह ऐसी तभी होती है जब मुद्रा को ऐसे साधन जुटाए जाएं जो इस विवेक को समुचित रूप में प्रयोग करने के योग्य बना सकें। कोई ऐसा नियंत्रक होना चाहिए जिसके द्वारा जारीकर्ता के विवेक को नियंत्रित किया जाए। इस दृष्टि से विनिमय मान परिवर्तनीय मान की अपेक्षा घटिया होता है। इसमें परिवर्तनीय मान तथा विनिमय मान एक समान होते हैं, क्योंकि ये दोनों ही मुद्रा के जारी करने में विवेक के प्रयोग की अनुमति देते हैं। परन्तु परिवर्तनीय मान, विनिमय मान से श्रेष्ठ होता है क्योंकि पहले में जारीकर्ता का विवेक नियंत्रित होता है जबकि बाद वाले अर्थात विनिमय मान में जारीकर्ता का विवेक अनियंत्रित होता है। यह सच है कि विनिमय मान में, विदेशी मुद्रा द्वारा विनियमन होता है। परन्तु ऐसा नियंत्रण, यद्यपि किसी प्रकार का नियंत्रण न होने से बेहतर होता है, और यह लक्ष्य तक पहुंचने का केवल एक ढीला तथा अप्रत्यक्ष तरीका है तथा इस तक पहुंचने की समस्त परिस्थितियों में इस पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।

3. *यह मितव्ययी होता है। परन्तु इसी कारण ही यह असुरक्षित है* – अनेक लेखक विनिमय मान पर आसक्त हैं, क्योंकि यह सोने के प्रयोग में कुछ मात्रा में किफायत लाता है। किन्तु क्या इसकी योजना सुरक्षित है? मुद्रा की कोई भी योजना तभी अच्छी व स्वस्थ होती है जब यह किफायती तथा सुरक्षित हो। यदि वह किफायती नहीं है तो भी चलेगी, परन्तु यदि वह सुरक्षित नहीं है तो निश्चय ही नहीं चलेगी। अब मैं यह निवेदन करता हूं कि यह प्रस्ताव कि *मुद्रा के रूप में सोने को किफायती बनाना, उसके मूल्य के मानक के रूप में उसकी उपयोगिता को कम करना है*, इतना ही सीधा–सादा तथा स्वयं सिद्ध है जितना यह प्रस्ताव कि एक माध्यम के रूप में कागज की मुद्रा या रुपये का प्रयोग सोने के प्रयोग की अपेक्षा अधिक किफायती होता है। सोने को मुद्रा से बाहर निकालने का क्या अर्थ है? इसका सीधा सा अर्थ यह है कि सोने के प्रयोग में किफायत करके, आप उससे सीधे उनकी आपूर्ति को बढ़ाते हैं और उसकी आपूर्ति को बढ़ाकर आप उसके मूल्य को और कम करते हैं अर्थात सोने के प्रयोग में इस मितव्ययता के कारण सोना एक अवमूल्यन वाली वस्तु हो जाती है और इसलिए इस दृष्टि से वह मूल्य के एक मानक के रूप में कार्य करने के अयोग्य हो जाती है। *अतएव आप के दोनों कार्य सोने में किफायत तथा उसका एक मानक के रूप में प्रयोग भी एक साथ नहीं कर सकते।* यदि आप सोने में किफायत करना चाहते हैं तो फिर आपको सोने को

मूल्य के मानक के रूप में जोड़ना पड़ेगा, दूसरे शब्दों में विनिमय मान की मितव्ययता उसकी सुरक्षा के साथ असंगत होती है।

3. अतएव, स्वर्णमान तथा विनिमय मान के बीच कभी भी कोई विकल्प नहीं हो सकता। यदि हम स्वर्णमान को नहीं चाहते तो हमें प्रो. फिशर का क्षतिपूरक मान या प्रो. जेकेन्स का तालिकाबद्ध मान अपना लेना चाहिए। चुनाव वास्तव में उन दोनों में से एक तथा स्वर्णमान में से करना है। इसमें संदेह नहीं, कि क्षतिपूरक मान का तालिकाबद्ध मान, स्वर्णमान की अपेक्षा बेहतर होगा। परन्तु उनको व्यवहार्य बनाए जाने से पहले मानव जाति को अपेक्षाकृत और दार्शनिक न होना पड़ेगा और जब तक ऐसा नहीं होता मेरे विचार से तब तक स्वर्णमान को ही केवल एकमात्र मुद्रा प्रणाली के रूप में स्वीकार कर लिया जाना चाहिए जो कि "धोखेबाजी से रहित" तथा सुस्पष्ट है।

4. अगला महत्वपूर्ण प्रश्न स्वर्ण निधि के संबंध में है। निधि के स्थान, संरचना आदि जैसे मामलों पर विचार विमर्श करने से पहले इस बात का निश्चय करना आवश्यक है कि हम उसे चाहते हैं या नहीं। वह प्रश्न अपने क्रम से एक और दूसरे प्रश्न पर निर्भर करता है जो उस तरीके से संबंधित है, जिसमें स्वर्णमान का प्रारंभ कराना है। इस संबंध में मैं यह कहना चाहता हूं कि यहां अनेक लोग ऐसे हैं जो यह समझते हैं कि स्वर्णमान की शुरूआत का अर्थ केवल मात्र एक टकसाल का शुरू करना और सोने के सिक्के जारी करना है, इससे अधिक भ्रांतिपूरक और कुछ नहीं हो सकता। स्वर्णमान का अर्थ सोने की टकसाल को आरंभ करना नहीं है बल्कि ऐसी व्यवस्था करना है जिससे सोना व्यवहार में आने लगेगा। क्योंकि मुद्रा मानक होती है। अब सोने को प्रचलन में लाने के लिए, यह आवश्यक है कि और दूसरी प्रकार की मुद्रा की मात्रा सीमित होनी चाहिए। मुद्रा को दो तरीकों से सीमित किया जा सकता है। एक तरीका उसे परिवर्तनीय बनाना है और दूसरा उसके निर्गम को सकारात्मक सीमा को निर्धारित करना है। यदि आप परिवर्तनीयता को, सीमा लगाने के एक तरीके के रूप में अपनाना चाहते हैं तो फिर स्वर्णनिधि को बनाए रखने का औचित्य है। यदि आप निर्गम की स्थिरता को सीमा लगाने के लिए तरीके के रूप में अपनाना चाहते हैं तो स्वर्णनिधि को बनाए रखने का कोई औचित्य नहीं है। इन दो प्रणालियों में से मैं निर्गम प्रणाली की स्थिरता को वरीयता देता हूं। इसके लिए मेरे विचार में दो कारण हैं:-

(1) विनिमय मान का दोष यह है कि यह प्रबंधन पर निर्भर होता है। अब, परिवर्तनीय प्रणाली भी प्रबंधित प्रणाली होती है। इसलिए परिवर्तनीय प्रणाली को अपनाकर हम प्रबंध के उस दोष से छुटकारा नहीं पा जाते

तो वास्तव में वर्तमान प्रणाली के विनाश का कारण है। इसके अतिरिक्त एक प्रबन्धित मुद्रा से उस समय पूर्णतया बचना चाहिए, जब प्रबन्ध सरकार के हाथों में हो। जब प्रबन्ध बैंक के हाथ में हो तब कुप्रबंध का अवसर कम होता है। क्योंकि असावधानी पूर्ण निर्गम, या कुप्रबंध का दुष्प्रभाव सीधे निर्गमकर्ता की सम्पत्ति पर पड़ता है। परन्तु कुप्रबंध का अवसर उस समय अपेक्षाकृत अधिक होता है जब इसे सरकार द्वारा जारी किया जाता है क्योंकि सरकारी मुद्रा का निगम ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्राधिकृत तथा संचालित होता है जिनके ऊपर गलत निर्णय या कुप्रबंध होने पर निजी क्षति होने का कोई दायित्व नहीं होता।

(2) प्रबंध के अलग रखने के अतिरिक्त एक स्थिर निर्गम प्रणाली मुद्रा में सोने के और अधिक व्यापक प्रयोग की व्यवस्था करेगी। सोने का प्रयोग एक महत्वपूर्ण मामला है। सोने के मूल्यह्रास के कारण मूल्यों में होने वाली लगातार वृद्धि से समूचा विश्व पीड़ित है। इसलिए ऐसी कोई भी बात जिससे सोने के मूल्य में वृद्धि हो अच्छी व लाभदायक होगी और यदि सोने के मूल्य में वृद्धि करनी है, तो मुद्रा के रूप में सोने का और अधिक व्यापक मात्रा में प्रयोग होना चाहिए। इसके अलावा, वर्तमान समय में सोने की किफायत करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि समग्र संसार में मुद्रा इतनी अधिक मात्रा में है कि हम सोने की जितनी कम किफायत करेंगे उतना ही अधिक अच्छा होगा। इस दृष्टि से, विनिमय मान जो किसी समय एक वरदान था, अब एक अभिशाप बन गया है। कुछ समय तक यह बहुत उपयोगी रहा। 1873 से सोने के उत्पादन में गिरावट आई थी और विनिमय मान से प्रभावित अर्थव्यवस्था वास्तव में बहुत स्वागत के योग्य थी क्योंकि उससे संकुचन की अवधि के दौरान मुद्रा के प्रसार करने में संसार के देशों को सहायता मिली थी और उससे उसने अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य प्रणाली की स्थिरता को बनाए रखने में सहायता की थी। यह काम उसने मूल्यों में तेजी से होने वाली गिरावट को रोककर किया था। यदि उन सब देशों में भी जिन्होंने अपना आधार सोने को बनाया था, सोने को मुद्रा के रूप में अपना लिया होता, तो मूल्यों में तुरन्त गिरावट अवश्य आती। परन्तु 1910 के बाद स्थिति में परिवर्तन हो गया और सोने के उत्पादन में वृद्धि हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके बाद, विनिमयमान के निरन्तर बने रहने से मूल्यों की वृद्धि को रोकने में देशों को न कोई सहायता मिली बल्कि वह मूल्यों की वृद्धि का प्रत्यक्ष कारण बन गई। स्वर्ण के प्रयोग में मितव्ययता के कारण सोना व्यर्थ हो गया। युद्ध के दौरान अभूतपूर्व पैमाने

पर कागज की मुद्रा के प्रयोग के कारण, सोने के मूल्य में और भी अधिक गिरावट आ गई थी, यह सब, वास्तव में मुद्रा के रूप में सोने के प्रयोग में उसकी किफायत के कारण हुआ था। फलतः जैसा कि प्रो. केनन ने कहा है, "आसन्न भविष्य में सोना एक ऐसी वस्तु नहीं होगा जिसके प्रयोग के लिए यह वांछनीय हो कि उसके प्रयोग पर या तो प्रतिबंध लगाया जाए या किफायत की जाए। पिछली शताब्दी के अंतिम वर्षों से, इसका उत्पादन इतनी अधिक मात्रा में किया गया है कि वह अपनी क्रयशक्ति को बनाए रखने में समर्थ नहीं रह सका और इस प्रकार यह उस समय तक मूल्य का स्थिर मानक नहीं हो सकता जब तक वह लगातार ऐसे वर्तमान धारकों का पता न लगा ले जो बड़े विशाल भंडार को रखने को इच्छुक हों या ऐसे नए धारकों को न ढूंढ ले जो सोने के नए भंडार रखने के लिए उत्सुक हों। युद्ध के पहले, यूरोप में विभिन्न केन्द्रीय बैंकों ने नई आपूर्ति के एक बहुत बड़े हिस्से को ले लिया था और सामान्य मूल्यों की वास्तविक वृद्धि को रोक दिया था यह उसी प्रकार हुआ जैसे उसे अन्यथा होना चाहिए था हालांकि यह बहुत गंभीर मामला था।" उस मांग के अभाव में अगली सबसे अच्छी बात भारत तथा पूर्व के देशों में स्वर्ण मुद्रा को आरंभ करने की होगी। स्वर्ण मुद्रा के इस प्रवेश को स्थिर निर्गम प्रणाली अपनाने से अच्छी तरह प्राप्त किया जा सकता है बजाय परिवर्तनीय प्रणाली के क्योंकि पहली प्रणाली से वास्तविक मुद्रा में सोने के प्रयोग के लिए बाद वाली प्रणाली की अपेक्षा अधिक गुंजाइश होगी।

5. इस समस्या के समाधान के लिए चूंकि मेरा यह विचार है, अतः मैं, आवश्यक रुपये, स्वर्णमान निधि के उन्मूलन के पक्ष में हूं, क्योंकि इस रिजर्व का मुद्रा की स्थिरता को बनाए रखने के लिए कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है। मेरा ऐसा विचार क्यों है कि स्वर्णमान निधि का उन्मूलन होना चाहिए, इसका भी एक और कारण है। स्वर्णमान निधि एक लिहाज से विलक्षण है, उदाहरणार्थ, परिसम्पत्तियां अर्थात निधि और देयताएं अर्थात रुपये इस तथ्य के कारण खतरनाक रूप में सहसम्बन्धित हैं कि रुपये की मुद्रा में वृद्धि के बिना निधि में वृद्धि नहीं हो सकती। यह अशुभ स्थिति इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि निधि का निर्माण रुपये के सिक्के बनाने के लाभ से होता है। इसका मूल चूंकि वह होता है इसलिए यह स्पष्ट है कि निधि में वृद्धि केवल, रुपये के सिक्के की मात्रा में वृद्धि के परिणामस्वरूप ही हो सकती है। प्रो. केनन का कहना है "स्वर्णमान को समझने वाले प्रशासकों तथा विधायकों का प्रतिशत बहुत ही कम है, परन्तु इसके उस प्रतिशत से जो स्वर्ण विनिमय प्रणाली

को समझते हैं दस से 20 गुना रहने की संभावना है। स्वर्ण विनिमय प्रणाली की अज्ञानता या भ्रष्टाचार से विकृत होने की संभावना बहुत अधिक होती है और वह साधारण मान के इस प्रकार विकृत होने की संभावना की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। दुर्भाग्य से भारत में मुद्रा प्रणाली के इतिहास में ऐसी विकृति का प्रचुर प्रमाण है। हमारे यहां पहले से ही मूर्ख प्रशासक हुए हैं जो इस विचार से ग्रस्त रहे थे कि निधि का होना बहुत ही आवश्यक होता है और इसलिए केवल निधि को बढ़ाने के लिहाज से ही किसी अन्य बात पर ध्यान दिए बिना मुद्रा प्रचालन करते गए। देश में ऐसे असंख्य मूर्ख व्यापारियों की भी कमी नहीं जिन्होंने मुद्रा के विषय में कभी किसी और बात की जानकारी किए बिना, विनिमय मान की केवल मात्र इस आधार पर निन्दा की कि सरकार उनको निधि का प्रयोग करने की अनुमति नहीं दे रही है, जैसे कि व्यापार में धूम मचाना व उसे बढाना, मुद्रा निधि का समुचित कार्य हो। इसी प्रकार हमारे बीच में ऐसे मूर्ख राजनीतिज्ञ भी है, जो उन लोगों के मित्र के रूप में अपने आपको विज्ञापित करना चाहते हैं जो इस निधि का उपयोग जनता को शिक्षित करने के लिए करना चाहते हैं। इन तीनों में से कोई भी वरदान का रूप धारण कर आसानी से विपत्ति ला सकता है और यह सब मुद्रा के सिद्धांत से अनभिज्ञ होने के कारण है। इसलिए एक ऐसी मुद्रा प्रणाली का आरंभ करना बहुत बेहतर होगा जो विनिमय मान को समाप्त कर देगा, और साथ ही स्वर्णमान निधि को भी, जिसको बनाए रखना किसी भी दिन अनिष्ट का कारण बन सकता है।

6. अतएव, भारतीय मुद्रा के सुधार के लिए मेरी योजना की निम्नलिखित आवश्यकताएं हैं:-

    1. टकसालों को सरकार के लिए भी उसी प्रकार पूर्णतया बंद कर दिया जाए जिस प्रकार वे जनता के लिए बंद हैं और रुपये के सिक्कों को बनाना बंद कर दिया जाए।
    2. सोने के एक उपयुक्त सिक्के के बनाने के लिए सोने की एक टकसाल खोली जाए।
    3. सोने के सिक्के तथा रुपये के बीच एक अनुपात निश्चित किया जाए।
    4. रुपया सोने में परिवर्तनीय न हो, और सोना रुपए में परिवर्तनीय नहीं होना चाहिए, परन्तु दोनों कानून द्वारा निश्चित अनुपात पर अप्रतिबंधित वैध मुद्रा के रूप में चलन में रहें।

7. यदि निधि की इस विद्यमान राशि की आवश्यकता मुद्रा के लिए नहीं है तो इसका क्या उपयोग होता है? इसके संबंधों में यह चाहूंगा कि इसका उपयोग सरकार द्वारा,

साधारण राजस्व की अतिरिक्त राशि के रूप में किसी भी ऐसे सार्वजनिक कार्य के लिए किया जाए जो आवश्यक प्रतीत होता हो। परन्तु सुधरी हुई मुद्रा में दुर्बलता के कुछ स्रोत रहेंगे। जिन्हें पहचानना बुद्धिमानी का काम होगा। फावलर समिति के विपरीत, मेरा यह दृढ मत है कि यदि रुपये की मुद्रा को एक बार प्रभावी रूप में सीमित कर दिया जाए तो यह अपने मूल्य को बनाए रखेगी और इसके लिए किसी निधि की आवश्यकता नहीं होगी। परन्तु यह ऐसा अवसर है कि रुपये की मुद्रा की प्रचलित वर्तमान मात्रा इतनी अधिक है कि जब व्यापार में मन्दी होगी तो यह फालतू हो सकती है और इसकी अधिकता के कारण इसके मूल्य में गिरावट हो सकती है। ऐसी आकस्मिकता से बचने के लिए मेरा यह प्रस्ताव है कि सरकार को चाहिए कि वह स्वर्णमान निधि का कुछ हिस्सा रुपये की मुद्रा को बड़ी मात्रा में कम करने के लिए प्रयोग करे ताकि घेराबंदी के समय में भी यह तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमित रहे। मुद्रा में दुर्बलता का द्वितीय स्रोत कागज की मुद्रा की निधि की विलक्षण संरचना से उत्पन्न होता है। वह दुर्बलता "सृजित प्रतिभूति" के प्रचलन व विद्यमानता में निहित होती है। मैं यह चाहूंगा कि कागज की मुद्रा निधि के इस भाग को यथासंभव शीघ्र से शीघ्र समाप्त कर दिया जाए। क्योंकि, जब तक यह नहीं किया जाता तब तक कागज की मुद्रा को सुरक्षित रूप में उतना मूल्य सापेक्ष नहीं बनाया जा सकता, जितना कि इसे होना चाहिए। अतएव मैं यह सिफारिश करूंगा कि स्वर्णमान निधि की शेष राशि का उपयोग, कागज की मुद्रा निधि में "सृजित प्रतिभूतियों" के रद्द करने में लिया जाए।

8. परिवर्तन के रूप तथा प्रकृति व स्वरूप के संबंध में अपने विचार प्रकट करने के बाद, अब मैं अगले महत्वपूर्ण प्रश्न अर्थात "सोने तथा रुपये के बीच अनुपात" के संबंध में चर्चा करूंगा। युद्ध के परिणामस्वरूप, स्वर्णमान वाला कोई एक ऐसा भी देश नहीं है जो अपने सोने की युद्ध से पूर्व की सममूल्यता को बरकरार बनाए रख सका हो। उनमें से कुछ ने इसमें इतनी अधिक गलती की है कि अब किसी निश्चित मात्रा में इस तक पहुंचना उनकी क्षमता के बाहर है। परन्तु यह कार्य कितना ही असंभव तथा अनुचित हो, युद्ध से पूर्व की सममूल्यता को पुनः प्राप्त करने की उत्कंठा विश्वव्यापी प्रतीत होती है। किन्तु भारत तथा अन्य देशों के बीच अन्तर है। दूसरे देशों को युद्ध से पूर्व की सममूल्यता पर अभी पहुंचना है। इसके विपरीत भारत, युद्ध से पूर्व की सममूल्यता से ऊपर पहुंच गया है। इस अन्तर के परिणामस्वरूप, भारत तथा अन्य देशों के समक्ष अलग-अलग समस्याएं हैं। यूरोप के देशों में मुद्रा अपस्फीति की एक समस्या है अर्थात मूल्य वृद्धि है, दूसरे शब्दों में कीमतों में गिरावट लाने की है। भारत में मुद्रा स्फीति करने की समस्या है अर्थात उसके मूल्य घटाने की है, दूसरे शब्दों में कीमतों में वृद्धि करने की है क्योंकि शिलिंग 6 पैंस सोने से 1 शि. 4 पैंस में परिवर्तन का यही अर्थ है और कुछ

नहीं। क्या युद्ध से पूर्व की सममूल्यता पर वापिस पहुंचने के लिएं मुद्रा को बढाना चाहिए? कुछ लोगों का यह विचार है कि युद्ध से पूर्व की समानता की पुनः स्थापना न्याय प्रदान करेगी और हमें प्राचीन मूल्य का वह स्तर भी प्रदान करेगी जिसके हम बहुत दिनों से अभ्यस्त थे। ये दोनों विचार भ्रामक हैं। प्रथम युद्ध से पूर्व की व समानता की पुनःस्थापना, युद्ध से पूर्व के मूल्य स्तर की पुनः स्थापना नहीं है। क्योंकि यह बात याद रखने योग्य है कि यदि क्रय शक्ति के रूप में मापा जाए तो 1925 में 1 शि. 4 पैंस सोना 1914 के 1 शि. 4 पैंस सोने के समान नहीं हैं। विनिमय के उसी अनुपात का अर्थ वास्तव में क्रयशक्ति का वही स्तर नहीं है। दो मुद्राओं के बीच अनुपात तो वही रह सकता है, यद्यपि उनकी अलग–अलग मात्रा में बहुत बडा परिवर्तन हो चुका होता है, बशर्ते कि मात्रा विभिन्नता समान तथा उसी अर्थ में हो। यह वास्तव में युद्ध से पूर्व की सममूल्यता की नाममात्र की पुनः स्थापना का परिणाम है। यदि युद्ध से पूर्व की समानता को पुनःस्थापित करने का अर्थ, युद्ध से पूर्व के मूल्यों के स्तर को पुनः स्थापित करना है तो उस अनुपात को 1 शि. 6 पैंस से 1 शि. 4 पैंस की दिशा में कम करने के बजाए, 2 शि. सोने की दिशा में बढाना चाहिए। दूसरे शब्दों में मुद्रा की आगे और अपस्फीति होनी चाहिए। द्वितीय युद्ध से पूर्व की समानता की पुनःस्थापना चाहे नाममात्र की हो, पर वह अनुचित होगी। आस्थगित भुगतान के एक मानक के रूप में मुद्रा को धन सम्बन्धी संविदाओं में गड़बड़ नहीं करनी चाहिए। यदि, इस समय विद्यमान सभी ऋणों को युद्ध से पहले, 1914 में संकुचित कर दिया जाता, तो आदर्श न्याय के लिए युद्ध से पूर्व के अनुपात को पुनः स्थापित करने की स्पष्टतः आवश्यकता होती। इसके विपरीत, यदि सभी विद्यमान संविदाएं 1925 में की जाती तो न्याय के लिए यह अपेक्षित होता कि हम 1925 के अनुपात को रखें। इस सम्बंध में दो बातों को ध्यान में रखना चाहिए। विद्यमान संविदाओं में वे संविदाएं शामिल हैं जो मूल्य हृास तथा मूल्य वृद्धि से पहले प्रत्येक अवस्था में की गई और सबको ठीक प्रकार से निपटाने के लिए यह अपेक्षित होगा कि प्रत्येक पर अलग–अलग कार्रवाई की जाए यह ऐसा कार्य है जो उसकी जटिलता तथा विशालता के कारण असंभव है। इसमें संदेह नहीं कि विद्यमान संविदाओं की अवधि अलग–अलग है। परन्तु उनमें से अधिकांश हाल की अर्थात बहुत नवीन हैं और संभवतः एक वर्ष से अधिक की नहीं हैं। जिससे यह कहा जा सकता है कि कुछ संविदात्मक दायित्वों का गुरूत्व केन्द्र हमैशा वर्तमान के निकट होता है। ये दो तथ्य बताने के बाद, सबसे उत्तम समाधान यह होगा कि 1 शि. 4 पैंस तथा उत्पन्न किया जाए और यह देखा जाए कि यह 1 शि. 6 पैंस के दूर है। यह तत्वतः प्रो. फिशर का भी मत है। उनका यह कहना है कि "मुद्रा के उचित मान की समस्या, पीछे नहीं बल्कि आगे देखती है। *इसे अपना प्रारंभ इस*

समय प्रचलित व्यापार से करना चाहिए, युद्ध से पूर्व के काल्पनिक अंकित मूल्यों से नहीं। कोई व्यक्ति यूनान तथा रोम के मुद्रा मानों पर लौटने या चांदी के मूल पाउंड को पुनःस्थापित करने के संबंध में भी कह सकता है।" संक्षेप में, मुद्रा के मामलों में, वास्तविक मुद्रा सामान्य होती है और इसलिए वह उचित है।

9. रुपये के मूल्य में वृद्धि तथा ह्रास का व्यापार तथा उद्योग पर पड़ने वाले प्रभाव का जहां तक सम्बन्ध है, उसके विषय में जिस बात की प्रायः तलाश की जाती है वह यह है कि निम्न विनिमय व्यापार तथा उद्योग को आनुतोषिक प्रदान करता है। परन्तु यह महत्वपूर्ण बात नहीं है। इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि मान लीजिए कि निम्न विनिमय से लाभ प्राप्त होता है, तो यह लाभ कहां से आता है? अधिकांश व्यापारी ऐसा कहते हैं कि यह निर्यात व्यापार के लिए लाभ है और बहुत से लोगों का इसमें यह अंधाधुंध विश्वास था कि यह कहा जा सकता है कि यह सबके लिए सामान्यतः एक विश्वास की वस्तु हो गयी थी कि निम्न विनिमय समूचे राष्ट्र के लिए लाभ का स्रोत है। अब यदि यह महसूस करें कि निम्न विनिमय का अर्थ आंतरिक मूल्यों का अधिक होना है तो यह बात एकदम स्पष्ट हो जाएगी कि यह लाभ राष्ट्र के लिए बाहर से आने वाला कोई लाभ नहीं है, बल्कि यह देश के अंदर, दूसरे वर्ग की कीमत पर, एक वर्ग से प्राप्त होने वाला लाभ है। जो वर्ग हानि उठाता है, वह निर्धन श्रमिक वर्ग होता है जो धनी या व्यापारी वर्ग को आनुतोषिक प्रदान करता है। निर्धन से धनी के हाथों में सम्पदा या धन का ऐसा हस्तांतरण, कभी–कभी देश के सामान्य हित में नहीं होता। अतएव, मैं उच्च व अधिक मूल्यों तथा निम्न व कम विनिमय का प्रबल विरोधी हूं और किसी भी अच्छी न्यायसंगत व नेक सरकार को, देश में निर्धन वर्ग की इस प्रकार गुप्त रूप में जेब काटने का काम नहीं करना चाहिए।

10. अब मैं भारत में मुद्रा बाजार की मौसमी आवश्यकताओं के लिए व्यवस्था करने के प्रश्न पर आता हूं। मुद्रा प्रणाली को स्थिर तथा मूल्य सापेक्ष व लचकदार होना चाहिए और यही कारण है कि अनेक देशों में मुद्रा धातु तथा कागज का मिश्रण होता है। उसमें पहला उसे दृढता तथा स्थिरता प्रदान करने के लिए होता है और दूसरा लचक प्रदान करने के लिए होता है। दुर्भाग्यवश, भारत में कागज की मुद्रा की योजना उसे लचक प्रदान करने के लिए नहीं है। इंग्लैंड में इसी प्रकार की कागज की मुद्रा के विकास द्वारा उपयोगी बनाया जाता है, इस निक्षेप मुद्रा को अच्छे वाणिज्यिक कागज के प्रति जारी किया जाता है। अनेक प्रकार के कारणों से, निक्षेप मुद्रा, भारत में अपनी जड़ जमाने में असफल रही है और इसके फलस्वरूप, भारत की कागज की मुद्रा की अनम्यता में कोई कमी नहीं आई है। इसलिए हमें अपनी कागज की मुद्रा की निधि को बढ़ाने के लिए और अधिक प्रावधान करना चाहिए जिससे उत्तम वाणिज्यिक कागज को, मौसमी मांगों की आवश्यकता के अनुरूप मुद्रा में परिवर्तित करना संभव हो सके।

स्पृश्यों तथा अस्पृश्यों के बीच एकता कानून के बल पर नहीं लाई जा सकती।... केवल प्रेम ही उन्हें एकता के सूत्र में पिरो सकता है।

— भीमराव अम्बेडकर

2

आयोग द्वारा भारत में साक्षियों को परिचालित ज्ञापन* की प्रतिः

निम्नलिखित ज्ञापन में, वे मुख्य प्रश्न दिए गए हैं जो शाही आयोग भारतीय मुद्रा तथा वित्त के विचारणीय विषय के अंतर्गत उसके विचारार्थ सामने आएंगे। इस ज्ञापन को इसलिए प्रकाशित किया जाता है ताकि इच्छुक साक्षियों को अपने साक्ष्य को तैयार करने में सहायता मिल सके। इसे विस्तारपूर्ण नहीं माना जाना चाहिए और न इसकी यह मंशा है कि प्रत्येक साक्षी इसमें उठाए गए सभी प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास अवश्य करे।

(1) क्या रुपये या अन्य प्रकार के स्थिरता सम्बंधी उपायों से भारतीय मुद्रा तथा विनिमय की समस्याओं का समाधान करने के लिए यह उपयुक्त समय है? आंतरिक मूल्यों में तथा विदेशी विनिमय में स्थिरता का तुलनात्मक महत्व क्या है?

रुपये के मूल्य में वृद्धि तथा ह्रास का और स्थिर उच्च या निम्न मूल्य वाले रुपये का व्यापार तथा उद्योग पर (कृषि सहित) व राष्ट्रीय वित्त पर क्या प्रभाव पड़ता है?

(2) यदि रुपया स्थिर हो तो उसमें किस मानक तथा किस दर पर स्थिरता होनी चाहिए।

स्थिरता के सम्बन्ध में कोई निर्णय कब से लागू होना चाहिए?

(3) यदि चुनी गई दर में, वर्तमान दर से पर्याप्त अंतर हो तो संक्रमण काल को कैसे पूरा किया जाए?

(4) चुनी गई दर पर रुपये को बनाए रखने के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए? क्या युद्ध से पहले प्रचलित स्वर्ण विनिमय मान प्रणाली को जारी रखा जाना चाहिए और यदि उसमें कोई रूपांतर किया जाए तो वह क्या हो?

एक स्वर्णमान निधि की संरचना, आकार, स्थान तथा काम क्या होना चाहिए?

---

* भारतीय मुद्रा तथा वित्त पर रॉयल आयोग की रिपोर्ट, खण्ड 3, परिशिष्ट ए, पृ 612

(5) नोट जारी करने के नियंत्रण का प्रभार किस पर होना चाहिए और उसके लिए क्या सिद्धांत हों। क्या नियंत्रण या प्रबंध, इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया को हस्तांतरित कर दिया जाना चाहिए और यदि ऐसा किया जाए, तो हस्तांतरण की सामान्य शर्तें क्या होनी चाहिए?

(6) भारत में सोने की टकसाल लगाने के संबंध में तथा मुद्रा के रूप में सोने के प्रयोग के संबंध में क्या नीति होनी चाहिए?

क्या रुपये के बदले सोना देने की जिम्मेदारी लेनी चाहिए?

(7) भारत सरकार के प्रेषण के कार्यों को किस तरीके से किया जाना चाहिए?

क्या उनका प्रबंध इम्पीरियल बैंक द्वारा किया जाना चाहिए।

(8) यदि मुद्रा की, कोई मौसमी मांग हो तो उसको पूरा करने के लिए और अधिक मूल्य सापेक्षता या लचक प्राप्त करने के लिए क्या उपाय वांछनीय है? यदि हुंडियों के बदले मुद्रा जारी करनी है, तो उसको जारी करने के संबंध में क्या शर्तें निर्धारित की जानी चाहिएं?

(9) क्या चांदी की खरीद के लिए वर्तमान प्रचलित तरीके में कोई परिवर्तन किया जाना चाहिए?

टिप्पणी :- उपर्युक्त प्रश्नों को भारत में साक्षियों में परिचालित किया गया था। भारत में प्राप्त मौखिक तथा लिखित साक्ष्य के परिणाम प्राप्त होते ही, इसमें निपटाए गए विभिन्न मामलों पर दिया जाने वाला सापेक्ष बल और स्पष्ट हो गया है और तदनुसार संलग्न ज्ञापन तथा अध्यक्ष द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों की पूरक सूची को साक्षियों की सूचना के लिए तैयार किया गया है।

3

साक्ष्य*

भारतीय मुद्रा और वित्त के संबंध में 15 दिसम्बर, 1925 को शाही आयोग के समक्ष साक्ष्य

(डा. बी आर अम्बेडकर, बैरिस्टर–एट–लॉ, को बुलाया गया और उनके बयान लिए गए)

6047 (अध्यक्ष) डा. अम्बेडकर, आप बैरिस्टर-एट-लॉ हैं और आपने आयोग को एक ज्ञापन देने का कष्ट किया है। इस ज्ञापन में आपने भारतीय मुद्रा प्रणाली के संबंध में अपनी सिफारिशें विस्तृत रूप में दी हैं। मेरा विचार है, आपको सामाजिक तथा राजनीति विज्ञान संस्थान के एक प्रतिनिधि के रूप में भी नामित किया गया है? –हां

6048 दूसरे ज्ञापन में जिसकी राय बताई गई है?
— हां, वैसा ही है।

6049 मैं समझता हूं कि आप इन प्रश्नों के गहरे विद्यार्थी हैं मैं दो वर्ष पहले था, परन्तु जब से मैं वकालत कर रहा हूं, वास्तव में, मुद्रा में हाल में हुए नवीनतम विकास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सका हूं और इसलिए शायद मेरे तथ्य और आंकड़े सम्भवतः कभी-कभी दिशातीत हो सकते हैं, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से किसी भी प्रश्न का समुचित उत्तर दे सकूंगा ऐसा मेरा मानना है।

6050 आप राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं?
मैं दो वर्ष तक सिडेन साइंस कालेज में प्रोफेसर था और मैंने "रुपये की समस्या" पर एक पुस्तक लिखी है।

6051 आपने अपने ज्ञापन के दौरान, इस विषय में जो कुछ व्यक्तिगत योगदान दिए हैं, उनको स्पष्ट करने के लिए मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहूंगा।

---

* भारतीय मुद्रा तथा वित्त पर रॉयल आयोग की रिपोर्ट, खण्ड 4, साक्ष्य की कार्यवाही, पृष्ठ 313-22

पैरा 2 के उप पैरा (1) में आप इस वक्तव्य से आरंभ करते हैं: "एक विशुद्ध स्वर्णमान" इसलिए स्थिर होता है, क्योंकि वितरण व प्रचलन में सोने का मूल्य बहुत अधिक होता है। आदि आदि। इस सम्बन्ध में, "एक विशुद्ध स्वर्णमान" के रूप में आप किस चीज का उल्लेख कर रहे हैं? एक विशुद्ध स्वर्णमान का अर्थ मूल्य के मानक के रूप में एक स्वर्णमुद्रा है।

6052 एक मुद्रा जिसमें सोना है? –अधिकांश

6053 जिसकी कमी किसी प्रकार की सांकेतिक मुद्रा के द्वारा पूरी की जाती है?

–सांकेतिक मुद्रा के किसी रूप द्वारा, हां।

6054 अनुभव पर आधारित अपने मत से क्या आप कोई ऐसा उदाहरण बता सकते हैं, जिसमें एक देश के पास स्वर्णमान प्रणाली हो जिसमें बहुत बड़े अनुपात में सोने के सिक्कों का प्रचलन हो? – एक उदाहरण के रूप में मैं जर्मनी जैसे देश को बता सकता हूँ और इंग्लैंड में मुद्रा के निक्षेप को छोड़कर, मुझे इंग्लैंड का नाम भी लेना चाहिए।

6055 उन दोनों मामलों में, हमें यह मानना चाहिए कि परिसंचारी माध्यम का वास्तविक अनुपात, जिसमें सोना शामिल था, तुलनात्मक रूप में कम था? –क्या मैं एक बात कह सकता हूं? मैं वहां इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि आपूर्ति में नई वृद्धि, परिसंचरण में वर्तमान मात्रा की तुलना में इतनी कम है कि नवीन आपूर्ति से मूल्य के स्तर में अधिक अंतर नहीं पड़ता। मैं वास्तव में उस पैराग्राफ में यही बात कहना चाहता हूं परन्तु जब आपके पास ऐसी मुद्रा हो जो जारीकर्ता की इच्छा द्वारा नियंत्रित की जाती है, तो जारीकर्ता वर्तमान स्टॉक में इतनी अधिक मात्रा में नई आपूर्ति जोड सकता है कि वह एक बार स्थापित मूल्य के स्तर में गडबड उत्पन्न कर सकता है।

6056 मैं समझता हूं कि वहां पर निर्दिष्ट नवीन स्थितियां नियमित प्रसार द्वारा आवश्यक बनाई गई मुद्रा की वृद्धि हैं? – नहीं, जब मैं स्वर्ण आपूर्ति में नवीन वृद्धि की बात करता हूं तो उस समय मैं केवल खानों के उत्पादनों के सम्बन्ध में ही कहता हूं।

6057 तब आप वहां इस विशेषता पर ही विचार कर रहे हैं कि संसार में सोने की मात्रा में वार्षिक वृद्धि बहुत ही कम होती हैं? – इससे मूल्य स्तर में किसी पर्याप्त सीमा तक कोई उथल-पुथल नहीं होती।

6058 वह मुद्रा के किसी रूप के बीच वहां भेद करने का कार्य किस रूप में करता है, जहां आंतरिक यूनिट की स्थिरता सोने से संबंधित होती है?

–मैं ठीक प्रकार से समझने में असमर्थ हूँ।

6059 विश्व की स्वर्शा आपूर्ति में जिसका आप जिक्र करते हैं कम आनुपातिक वार्षिक वृद्धि की परिस्थितियां, स्थिरता के इस मामले के सम्बन्ध में ऐसी परिसंचरण वाले सोने पर आधारित मुद्रा तथा स्वर्ण विनिमय मान पर आधारित मुद्रा के बीच, किस प्रकार अंतर करती है? यह आपके पैराग्राफ का दूसरा भाग है?

—वहां पर मैं यह कहता हूं कि जब आप किसी निश्चित मूल्य स्तर से आरंभ करते हैं और यदि नवीन मुद्रा का आपका निर्गम पूर्णतया निर्गम कर्ता की इच्छा पर निर्भर है, तब यह विद्यमान स्टाक में मुद्रा की इतनी मात्रा को बढा सकता है कि वह मूल्य स्तर को पर्याप्त मात्रा में अस्तव्यस्त कर सकता है। उसे ऐसा करने से कोई चीज नहीं रोक सकती। उदाहरणार्थ मैं एक दृष्टान्त दे सकता हूं मान लिया, एक सरकार, दिवालिया सरकार है और वह अपने कुछ विभागों की वित्तीय सहायता देना चाहता है, तो वह किसी भी प्रकार की सांकेतिक मुद्रा, बहुत आसानी से जारी कर सकती है और उसे मुद्रा की विद्यमान मात्रा में शामिल कर सकती है जैसा कि युद्ध में लिप्त प्रायः सभी देशों ने किया है।

6060 अब हम एक ऐसे देश की कल्पना करें जिसके पास सोने की कुछ राशि की मुद्रा प्रचलन में है, जिसकी कमी को प्रचलन में नोटों द्वारा पूरा किया जाता है, मैं समझता हूं, उस बात के सम्बन्ध में वह एक प्रस्ताव है जिसकी ओर आप अग्रसर हो रहे हैं?

— हां, एक तरीके से।

6061 और, दूसरी ओर, स्वर्ण विनिमय मान पर आधारित एक मुद्रा। क्या आप इस बिन्दु पर आयोग को सहायता देकर अपनी संस्तुति को विचारपूर्वक बताएंगे? इस बात की संभावना क्यों है कि वास्तव में जो मुद्रास्फीति है, वह उस समय अधिक असंभव होती है जब आपके पास परिसंचरण में सोना होता है, इसकी अपेक्षा जब आपके पास विशुद्ध विनिमय मान होता है वह यह है। तथ्य यह है कि आप अपनी कागज की मुद्रा को, प्रचलन में कागज सहित स्वर्ण मुद्रा के अंतर्गत सोमे में परिवर्तित करने का दायित्व से कागज की मुद्रा को सीमा में रखते हैं। आप अपने परिसंचरण, में केवल उतनी ही कागज की मुद्रा शामिल कर सकते हैं जितनी परिवर्तनीयता के लिए आपकी निधि अनुमति देगी, उससे अधिक नहीं। परन्तु जहां पर स्वर्ण विनिमय मान के अंतर्गत जैसा कि भारत में हम रख चुके हैं आपके ऊपर, अपने परिसंचरित माध्यम को सोने में परिवर्तित करने का दायित्व नहीं है, आप अपनी इच्छानुसार जितना चाहें जारी कर सकते हैं।

6062 कल्पना कीजिए (मैं कल्पना से आरंभ करता हूं) कि आपको अपनी आंतरिक मुद्रा को, एक विनिमय मान के अंतर्गत सोने में या एक विदेशी मुद्रा, सोने के बराबर परिवर्तित करने के एक दायित्व को स्वीकार करना है, आपके मत में, इन प्रणालियों की मुद्रा स्फीति को रोकने की क्षमता का जहां तक सम्बन्ध है, क्या वह उन्हें उसी समान स्थिति में रखेगा? यह इस बात पर निर्भर करता है, कि आप किस प्रकार की परिवर्तनीयता को स्वीकार करते हैं।

6063 मैं मुद्रा प्राधिकारी द्वारा, वह चाहे जो हो, आंतरिक मुद्रा को प्रस्तुत करने पर सोने में परिवर्तित करने के कानूनी दायित्व या स्वर्णमान वाले देश में, विदेशी मुद्रा में सोने को प्राप्त करने के साधन को स्वीकार करने की कल्पना कर रहा हूं? यदि आपका दायित्व यह है कि आप बिना किसी संशय के टेंडर पर सोने का भुगतान स्वीकार करें, तब मेरा विचार है कि वह पर्याप्त होगा। ऐसा कहने का मेरा अभिप्राय यह है कि परिवर्तनीयता अन्तर्आत्मा के समान है और यह विभिन्न मात्रा व श्रेणी की हो सकती है, और मुद्रा की मात्रा को नियंत्रित करने की इसकी क्षमता इस बात पर निर्भर करेगी कि आपके पास किस प्रकार की परिवर्तनीयता है। यदि आपकी परिवर्तनीयता केवल विदेशी मुद्रा के लिए है तो मेरा निवेदन यह है कि वह मुद्रा के जारी करने पर एक पर्याप्त प्रतिबंध नहीं होगा।

6064 यदि दायित्व वैसा है जैसा कि आपने अभी बताया है, तो आंतरिक या देशी मुद्रा को अंतर्राष्ट्रीय भुगतान के साधन के रूप में या तो सोने का या सोने पर आधारित विदेशी मुद्रा में परिवर्तित करने का, है तो आपकी राय में मुद्रा की स्फीति के इस खतरे को जिससे हम निपट रहे हैं, रोकने का पर्याप्त साधन क्यों नहीं है? क्योंकि एक विदेशी मुद्रा, वास्तव में आंतरिक मुद्रा स्फीति का सूचक नहीं होता। उदाहरणार्थ, भारत में हमने स्वयं के अनुभव से यह पाया और इस बात का पता मेरा विचार है, प्रोफेसर कीन्स ने लगाया है कि यद्यपि एक लम्बे समय रुपये का अनुपात 1 शि. 4 पैंस में रहा, पर भारत में मूल्य स्तर तथा इंग्लैंड में मूल्य स्तर बहुत अलग-अलग थे। विनिमय के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि उसका एक देश के समूचे मूल्य स्तर के साथ पूर्णतया सामंजस्य है। विनिमय का प्रभाव केवल ऐसी वस्तुओं पर पडता है जिनका प्रवेश अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में होता है और वास्तव में, प्रत्येक चीज इस बात पर निर्भर करेगी कि उस माल की मात्रा क्या है और उसका अनुपात क्या है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रवेश करता है और उस माल का क्या है जिसने प्रवेश नहीं किया। यदि देश की स्थिति ऐसी है कि उसका आंतरिक विदेशी व्यापार की अपेक्षा अधिक बडा है, वास्तव में यदि उसका विदेशी व्यापार नगण्य होता है.......।

6065 आंतरिक व्यापार के विदेशी व्यापार की तुलना में अधिक बडा होने से आपका क्या अभिप्राय है?— मेरा अभिप्राय यह है कि एक देश का समस्त माल या समस्त लेन-देन विदेश व्यापार के उद्देश्य के लिए नहीं होते। वास्तव में, एक देश के पास बहुत कम विदेश व्यापार हो सकता है और इसके फलस्वरूप उस माल के मूल्य का प्रभाव जो विदेश व्यापार में शामिल होता है हो सकता है उस माल के मूल्य पर न पड़े जो विदेश व्यापार में शामिल नहीं होता। उनके बीच हो सकता है बहुत निकट सम्बन्ध न हों।

6066 इस प्रश्न का मैं कुछ सामान्यीकरण करता हूं और इसे इस रूप में रखता हूं: क्या आप के पास परिसंचरण में सोने तथा नोटों वाला स्वर्णमान है, या क्या आपके पास एक ऐसा विनिमय मान है जिसके द्वारा आंतरिक मुद्रा को विदेशी मुद्रा में परिवर्तित किया जाता है क्या दोनों मामलों में आंतरिक मुद्रा की मात्रा, निधि तथा बकाया आंतरिक सांकेतिक मुद्रा के बीच कुछ अनुपात की रक्षा द्वारा नियंत्रित होती है और क्या इस बात को सुनिश्चित करना, एक मामले में, अन्य मामले की अपेक्षा इस उपयुक्त सम्बन्ध को बनाए रखने को सुनिश्चित करना आसान है? मैं विनिमय अनुपात की अपेक्षा, मूल्यों के विषय में अधिक सोचता रहा हूं। मैं बिल्कुल यह मानता हूं, कि दो मुद्राओं के बीच विनिमय अनुपात एक समान रह सकता है और फिर भी दो देशों में आंतरिक मूल्य स्तर अलग-अलग हो सकता है।

6067 कौन से देश? कोई भी दो देश उदाहरण के लिए इंग्लैंड तथा भारत को लीजिए, यदि पाउण्ड को सोने के समकक्ष माना जाए तो सोने तथा रुपये की बीच या पाउण्ड तथा रुपये के बीच अनुपात वही रह सकता है, वास्तव में यह बहुत लम्बे समय तक वही रहा, परन्तु यदि दो देशों में मूल्य के स्तर को ध्यान में रखा जाए तो उनमें अंतर मिलता है, यद्यपि मैं यह स्वीकार करता हू कि कुछ समय के बाद आंतरिक मूल्य स्तर अपने अधिकार पर दृढ रहेगा और विदेशी मुद्रा के अनुपात को अपने समकक्ष ले जाएगा।

6068 मैं सोचता हूं, आप असली मुद्रा की बात से थोड़ा सा आगे जा रहे हैं जो मैंने अपने प्रश्न में उठाया था, यद्यपि उसमें संदेह नहीं कि आप उन मामलों का उल्लेख कर रहे हैं, जो बहुत ही प्रासंगिक हैं। अब मैं इसे दूसरे दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता हूं। वास्तव में, यदि हम ऐसे देशों पर विचार करते हैं, जिनमें एक मुद्रा प्रणाली भारत में कभी विद्यमान मुद्रा प्रणाली की अपेक्षा उसके अधिक अनुरूप रही जिसकी आपने सिफारिश की है और क्या उन देशों ने, आवश्यकतावश उस समय मुद्रा को बढाने में कभी थोड़ी भी कठिनाई महसूस की है, जब उन्होंने ऐसा करने की आवश्यकता महसूस की हो? युद्ध में स्वर्णमान

वाले देशो में क्या हुआ, मैं उसका उदाहरण देता हूं? नहीं, जैसा मैं कहता हूं, स्वयं सोने में स्फीति हो सकती है। जैसा हमें पता चला है, ऐसा अमेरिका में हुआ, वहां, उस समय अत्यधिक मात्रा में सोना प्रचलन व वितरण में आने के कारण उसमें स्फीति हो गया। क्या मैं इस बात को इस प्रकार रख सकता हूं कि विदेशी मुद्रा के उद्देश्य के लिए परिवर्तनीयता, अपर्याप्त होती है, इसी बात की ओर मैं ध्यान आकर्षित कर रहा हूं। परिवर्तनीयता को यदि प्रभावशाली होना है, तो वह ऐसी होनी चाहिए कि कोई उस पर उंगली न उठा सके और उस पर शंका न कर सके, यह परिवर्तनीयता सब कार्यों के लिए होनी चाहिए यद्यपि, मैं ऐसा कहता भी हूं पर मैं परिवर्तनीय मुद्रा के पक्ष में नहीं हूँ, जैसा कि आपको मेरे ज्ञापन से दिखाई देगा।

6069 यह संभव है कि आंतरिक तथा बाह्य परिवर्तनीयता में, परिवर्तनीयता के विश्लेषण में कुछ भ्रांति उत्पन्न हो सकती है। आवश्यक बात क्या है, क्या एक स्वस्थ मुद्रा प्रणाली में, अब यह बात नहीं है कि सोने को विश्व के अंतर्राष्ट्रीय भुगतान के रूप में एक समय सोने को प्रकट रूप में सबसे अधिक स्वीकार किया जाना है कि आंतरिक मुद्रा की इकाई एक निश्चित स्वर्ण मूल्य के साथ स्थिर रूप में संबंधित होनी चाहिए। मैं इसे बिल्कुल स्वीकार नहीं करता। यह अंतर्राष्ट्रीय व कार्यों के लिए स्थिर हो सकती है, यह आंतरिक कार्य के लिए स्थिर नहीं हो सकती।

6070 मैं नहीं सोचता, कि मैंने अपना प्रश्न बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है? मैं समझता हूं कि आप सिफारिशों में जो चाहते हैं वह यह है कि देश में प्रयोग होने वाली मुद्रा की इकाई का स्वर्ण मूल्य के साथ स्थिर सम्बन्ध होना चाहिए? — मैं वास्तव में सोने के प्रयोग के अधिक पक्ष में हूं। मैं ऐसी किसी प्रकार की प्रणाली के विरुद्ध हूं जो वर्तमान परिस्थितियों में सोने में किफायत करेगी। क्योंकि, मेरा विचार है कि सोने की मितव्ययता का मूल्य की सुरक्षा के साथ मेल नहीं खाता। मेरा दृष्टिकोण, दूसरे लोगों के दृष्टिकोण से बहुत अलग है। अपने दृष्टिकोण में मैं जंगली हो सकता हूँ।

6071 बिल्कुल नहीं, आपका वास्तविक विचार क्या है, हमें उसकी जांच करनी चाहिए। आपकी आदर्श मुद्रा प्रणाली क्या है, जिसे एक देश को अपनी मुद्रा व्यवस्थित करने के लिए करना चाहिए? क्या वह यह नहीं कि सोने के संबंध में आंतरिक यूनिट स्थिर होनी चाहिए? — जी हां, यह स्थिर होनी चाहिए'' सोने के संबंध में नहीं, बल्कि वस्तुओं के रूप में स्थिर होनी चाहिए।

6072 आप किस विधि से यह सिफारिश करते हैं कि भारत की मुद्रा स्थिर होनी चाहिए, अर्थात किस संबंध में, और दूसरे किस विधि द्वारा? — यह सोने की अपेक्षा, वस्तुओं के संबंध में अधिक स्थिर होनी चाहिए

जिसका प्रयोग केवल आंतरिक व्यापार के लिए किया जाता है। और मैं यह कहता हूं कि यह काम, रुपये के सिक्के को पूर्णतया बंद करके और सोने का प्रयोग निर्धारित करके किया जाना चाहिए।

6073 यदि हम सोने को, आंतरिक मुद्रा के लिए प्रेषण के मानक के रूप में अस्वीकार करते हैं, तो फिर हमें प्रेषण के अन्य कौन-से मानक को अपनाना चाहिए? — वह मैं वहां पर मैं बता चुका हूं कि हमें या तो प्रोफेसर फिशर के क्षतिपूरक मानक को अपनाना चाहिए या प्रो. जेवोन्स के तालिकाबद्ध मान को अपनाना चाहिए। यदि आप सोने का प्रयोग नहीं करना चाहते और सोने की किफायत करना चाहते हैं तो फिर मेरा निवेदन यह है कि आपको उन दोनों में से एक या दूसरे को अपना लेना चाहिए।

6074 मुझे इस बात का यकीन नहीं है कि मुझे प्रोफेसर फिशर के मानक की बहुत घनिष्ट जानकारी है। परन्तु क्या ये दोनों एक ही प्रकार के प्रस्ताव है? —प्रो. फिशर के क्षतिपूरक मानक को छोडकर वे बिल्कुल समान हैं— वे वास्तव में, मुझे क्या कहना चाहिए, मेरा मतलब है एक पदक के दोनों छोर कहिए। फिशर, उदाहरणार्थ, किसी इन्डेक्स नम्बर के अनुसार सोने की यूनिट में धातु को बदल देगा और प्रो. जेवोन्स किसी इंडेक्स नम्बर के अनुसार अपेक्षाकृत अधिक या कम यूनिटों को देने की अनुमति प्रदान करेगा। परन्तु मेरा विचार है कि वे दोनों बहुत अधिक जटिल है। मेरा व्यक्तिगत विश्वास यह है वास्तव में सब व्यावहारिक कार्यों के लिए स्वर्णमान पर्याप्त होता है।

6075 व्यावहारिक रूप में क्या संभव है पुनः इस बात पर विचार करते समय, आपकी राय यह है कि भारत की मुद्रा यूनिट के मूल्य का निर्धारण सोने की कुछ मात्रा के लिहाज से होना चाहिए? —नहीं, मेरा निवेदन यह है कि भारत को मुद्रा के रूप में सोना रखना चाहिए। सोना केवल प्रेषण की एक यूनिट के रूप में कार्य न करे।

6076 मैं उससे आगे चलता हूं और आपसे एक दूसरा प्रश्न पूछता हूं। मैं अब आपके द्वारा प्रस्तुत सुझाव व दृष्टिकोण पर विचार करता हूं। मैं समझता हूं आपका वह दृष्टिकोण आपके ज्ञापन के पैराग्राफ 4, उप पैरा (2), में भलीभांति व्यक्त किया गया है उसमें आपने यह कहा है कि "सोने के अवमूल्यन के कारण मूल्यों में लगातार वृद्धि से समूचे विश्व को हानि उठानी पड़ रही है। इसलिए, सोने के मूल्य वृद्धि कराने वाला कोई भी कार्य उत्तम होगा। और, यदि सोने के मूल्य में वृद्धि करनी है तो सोने को मुद्रा के रूप में और अधिक प्रयोग किया जाना चाहिए।" यदि मैं उस राय की सही शक्ति को समझता हूं तो वह यह है कि स्वर्ण विनिमय मान का झुकाव सोने के प्रयोग में किफायत करने की ओर है और विवेकपूर्ण तथा वांछनीय क्या है, वह यह नहीं कि सोने

के प्रयोग में किफायत की जाए और इसलिए यह कि क्या स्वर्ण विनिमय मान खराब चीज है? –हां।

6077 और क्या वह उस दृष्टिकोण पर आधारित है जिसे आप विश्व में सोने की मांग तथा आपूर्ति के बीच भावी सम्बंध मानते हैं? –हां।

6078 आपका यह मत है कि सोने की भावी आपूर्ति, उसकी मांग के परिप्रेक्ष्य में बढ़ने की संभावना है? –नहीं, बढेगी नहीं, यह अधिक रहेगी, क्योंकि दूसरे लोग सोने का प्रयोग नहीं कर रहे हैं, वे कागज का प्रयोग कर रहे हैं, वे सोने का प्रयोग करने की स्थिति में नहीं है, इसलिए, यदि चाहे सोने का प्रयोग न भी किया जाए, पर फिर भी इसकी मात्रा अधिक रहेगी।

6079 सर्वप्रथम, उसके संबंध में एक प्रारंभिक प्रश्न है। क्या इसमें आप यहां भारत का हित सोच रहे हैं या आप उस सेवा के बारे में सोच रहे हैं, जो भारत शेष संसार को प्रदान कर सकता है? मेरे ध्यान में दोनों बाते हैं।

6080 आपका विचार है कि उस काम को करके भारत एक ही समय में अपना निजी हित साधन करेगा और साथ ही साथ शेष संसार का भी हित करेगा। क्या आप इस असामान्य मत से सहमत हैं कि स्वर्ण मुद्रा एक खर्चीली प्रणाली है? –हां, यह है।

6081 इसलिए इसमें होने वाले खर्च से भारत को क्या हानि होने की संभावना है सबसे पहले, हमें उस पर विचार करना है। उस खर्च की तुलना में भारत को होने वाले लाभ क्या हैं? –वह यह है कि आपको अपेक्षाकृत अधिक स्थिर मानक प्राप्त होता है जिसे प्रोफेसर केनन में धोखेबाजी से रहित और सन्तुष्टि से पूर्ण कहते हैं।

6082 अब जहां तक इसके भविष्य का संबंध है, इस विवादित विषय की शक्ति क्या समस्त संसार में सोने की आपूर्ति के संबंध में आपके पूर्वानुमान के पूर्ण होने पर निर्भर होगी? –हां।

6083 क्या आप इस बात से सहमत होंगे कि मान लिया जाए इसके विपरीत, विश्व की सोने की आपूर्ति में सापेक्ष ह्रास व कमी हो जाए तो क्या उस समय, सोने के प्रयोग में किफायत करना, अन्य देशों की तरह भारत के लिए भी लाभदायक होगा? –मेरा उत्तर यह है कि हमें एक अनिश्चित संकुचन से डरना नहीं चाहिए। हमारे पास मुद्रा को बढाने की विधिया हमेशा रही हैं। अनिश्चित प्रसार जो हमेशा संभव होता है, हमें उसके प्रति सतर्क रहना चाहिए।

6084 यदि आपने भारतीय मुद्रा को स्वर्णमान के साथ निश्चित रूप से बांध दिया है, और कहीं विश्व की सोने की आपूर्ति में सापेक्ष ह्रास व कमी है, तब उसके फलस्वरूप मूल्यों में जो सामान्य गिरावट आएगी, क्या वह भारत में भी महसूस होगी? –हां, परन्तु उसकी रक्षा हमारी कागज की मुद्रा को बढाकर या अन्य था, कागज की मुद्रा में हेर-फेर करके की जा सकती है।

6085 क्या वह बलिदान उस स्वर्ण मुद्रा प्रणाली की यथार्थ विशेषता नहीं है, जिसके लिए आपने स्वयं उस प्रणाली का चयन किया है? –नहीं, मैं सोने को मुद्रा केवल इसलिए बना रहा हूं क्योंकि मैं अनिश्चित प्रसार की संभावनाओं से बचना चाहता हूं। जैसे मैं कहता हूं, आपको हमेशा एक अनिश्चित संकुचन के प्रति सतर्क रहना चाहिए मूल्यों की गिरावट सदैव रोकी जा सकती है।

6086 अब मुझे आपसे एक प्रश्न पूछना है जैसी कि आपने यह राय बना ली है कि कोई भी चीज जो सोने का मूल्य बढाने की ओर प्रवृत्त होगी, वह अच्छाई के लिए होगी। क्या आप कोई सांख्यिकी अनुमान लगा सकते हैं कि आने वाले वर्षों के दौरान, सोने की आपूर्ति तथा सोने की मांग के बीच सम्बन्ध का भविष्य क्या होगा? अपने कुछ अन्वेषणों में मैंने 1923 में किए थे, जब मैं पुस्तक लिख रहा था, तब मुझे कुछ ऐसे लेख पढने का अवसर मिला जो "हारवर्ड बिजनेस बैरोमीटर सिरीज" में प्रकाशित हुए थे उसका मुझ पर यह प्रभाव पड़ा कि सोने के उत्पादन में किसी प्रकार की गिरावट आने की संभावना नहीं है। और इसके अलावा, मेरा तर्क यह है कि विश्व के देश इतने अधिक कागज का प्रयोग कर रहे हैं कि जो भी स्वर्ण आपूर्ति हमारे पास है, वह वास्तव में बहुत अधिक है। इसलिए वे देश जो सोने की किफायत करने से बच सकते हैं, वे उसे अपने निजी लाभ के लिए करें और शेष विश्व के लाभ के लिए कर सकते हैं।

6087 मुझे पूरा विश्वास नहीं होता कि मैंने आपके बाद वाला उत्तर समझ लिया – जो मैं कहता हूं वह यह है कि यद्यपि सोने के उत्पादन को, भौतिक रूप में, खानों से नहीं बढाया जा सकता, फिर भी, आधुनिक समय में सोने की वैकल्पिक वस्तु का प्रयोग इतने बडे पैमाने पर होता है कि वर्तमान परिसंचरण में सोने की मात्रा, खानों से उसमें और नई वृद्धि आमद हुए बिना भी विश्व के लेन-देन की लम्बी अवधि के लिए काफी व्यापक प्रतीत हो सकती है।

6088 क्या आपके पास और आंकड़े नहीं हैं जिन्हें आप, सोने की भावी आपूर्ति के अनुमान के संबंध में आयोग के समक्ष प्रस्तुत कर सकें? –नहीं, मैंने कोई अनुमान नहीं बनाया है।

6089 वास्तव में, आयोग के विचार के लिए यह एक बहुत महत्वपूर्ण मामला है। अतएव, मैं आपके समक्ष एक, या दो ऐसे अनुमान प्रस्तुत करता हूं, जो मुझे अन्य स्रोतों से प्राप्त हुए हैं। ये ऐसे अनुमान हैं जो कुछ वर्षों की अवधि के लिए सोने की मांग और उसकी आपूर्ति के सम्बन्ध की गति के सामान्य स्वर्ण मूल्यों पर प्रभाव के संबंध में हैं। वे ऐसे पूर्वानुमान हैं जो उनके विशेषज्ञों द्वारा विभिन्न तारीखों पर लगाए गए हैं। वे पूर्वानुमान वर्ष 1930 से संबंधित हैं। मूल्यों पर स्वर्ण की आपूर्ति के प्रभाव को मापने का है। प्रभाव को मापने का कार्य 1913 के परिप्रेक्ष्य में 100 को मानक के रूप मानकर 1930 में मूल्यों के सामान्य स्तर का पूर्वानुमान लगाने का प्रयत्न करके किया जाता है और इस प्रकार देखना है कि इस संबंध में विश्व का भविष्य क्या है। मेरे पास यहां, सर जेम्स विल्सन द्वारा, 1921 में किया गया अनुमान है। उसने यह अनुमान लगाया है कि इन कारकों का परिणाम यह होगा कि 1930 में सामान्य मूल्य स्तर 115 पर स्थिर होगा। वह काफी बड़ी मात्रा में गिरावट है वर्तमान आंकड़े लगभग 158 के लगभग हैं। फिर यहां वह अनुमान है, जिसका उल्लेख आपने भी किया हारवर्ड बिज़नेस बैरोमीटर ने 1922 में किया है। जिसमें यह अनुमान लगाया गया है कि 1930 में सामान्य मूल्य स्तर, 150 के लगभग होना चाहिए। और वह उस अंक पर स्थिर रहना चाहिए। फिर प्रो. ग्रेगरी ने निकट पूर्व, मई 1925 में, अनुमान लगाया। उसका अनुमान है कि सामान्य मूल्य स्तर 1930 में लगभग 162 होगा और वह उससे भी बढना चाहिए। इसलिए वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसका मत अधिकांश आपके मत के अनुसार है। और, अंत में, एक प्रसिद्ध विशेषज्ञ, मि. जोसफ किचन है। उसने जुलाई 1925 में यह भविष्यवाणी की थी कि 1930 में सामान्य मूल्य स्तर 120 के अंक द्वारा अभिव्यक्त किया जाना चाहिए और वह उस अंक पर गिरना चाहिए स्थिति का पूर्वानुमान लगाने के लिए इन चार प्रयासों में से तीन का पूर्वानुमान यह है कि उस समय मूल्यों में गिरावट आ जाएगी, दो का विश्वास यह है कि मूल्य उस निम्न स्तर पर स्थिर हो जाएंगे, एक की किचन का यह विश्वास है कि इस समय की अपेक्षा मूल्य अधिक होंगे और उनमें वृद्धि होती रहेगी। मैं इसे इस प्रकार कहूंगा स्थिति का अनुमान लगाने के लिए किए गए इन अत्यंत सावधानीपूर्ण प्रयासों की दृष्टि से क्या हमें इस बात में शिक्षा नहीं मिलती कि हमें बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता है इस बात को मानने के लिए कि मूल्यों में स्थिरता लाने के लिए सोने के प्रयोग में किफायत करना व्यर्थ है। मैं मूल्यों को बढने की अपेक्षा मूल्यों की गिरावट के पक्ष में हूं और यदि वे मूल्यों में गिरावट होती है और वह गिरावट भी तेजी से होती है तो मुझे प्रसन्नता होती है। मेरा विचार है कि मूल्यों में वृद्धि न होकर यदि उनमें गिरावट होती है तो यह राष्ट्र के लिए अच्छा तथा हितकर होता है। इसलिए वास्तव में ये अनुमान मुझे अपना प्रस्ताव रखने से नहीं रोकते।

6090 फिर भी, आपके विचारों का आधार कुछ अलग है? विचारों का जितना महत्व है मैं उन्हीं विचारों को उतना ही मानता हूं – मैं उनका खंडन करने की स्थिति में नहीं हूं क्योंकि मैंने कभी कोई अनुमान नहीं बनाया। परन्तु जैसे-तैसे मेरा यह विश्वास है कि सोने की वर्तमान राशि पहले ही इतनी अधिक है और उस मुद्रा को किसी भी मुद्रा को, प्रयोग करने की संसार के देशों की क्षमता इतनी कम है कि सोने की आपूर्ति, दीर्घकाल तक, अधिक बने रहने की संभावना है, और मेरा विचार में, ऐसी स्थिति में, मूल्यों में गिरावट आने का कोई अवसर नहीं है।

6091 फिर, आगे एक और प्रश्न है। मैं प्रस्तावना के रूप में कहूंगा आप यहां 'विनिमय मान का विषय' पर चर्चा कर रहे हैं? – हां।

6092 पैरा-5 में आपने कहा है, "स्वर्णमान निधि एक रूप में, विलक्षण है, अर्थात यह परिसम्पत्ति, अर्थात निधि तथा दायित्व, अर्थात रुपये का सह–संबंध खतरनाक रूप में इस तथ्य के कारण है कि रुपये की मुद्रा में वृद्धि के बिना निधि में वृद्धि नहीं हो सकती।" आप कृपया इसे थोड़ा-सा और स्पष्ट कीजिए। आपको यह दिखाने के लिए मेरे विचार से कौन–से ऐसे बिन्दु है जिनको विस्तार चाहिए, मैं एक आलोचक द्वारा किए जा सकने वाले ये सम्भावित प्रश्न प्रस्तुत करूंगा। क्या कोई आलोचक यह नहीं कह सकता, कि आप यह कहते हैं कि रुपये की मुद्रा में वृद्धि हुए बिना, निधि में वृद्धि नहीं हो सकती। और यह आलोचक कह सकता है कि यह क्यों होना चाहिए? वह यह कहेगा कि यदि रुपये की मुद्रा में वृद्धि निधि में वृद्धि के बिना नहीं हो सकती तो क्या वह सबसे मनचाही स्थिति नहीं होगी? क्या आपने मेरी बात समझली है? –इसे मैं इस प्रकार समझाउंगा: उदाहरणार्थ, बैंक निर्गम होते हैं और बैंक की निधियां होती हैं, यदि आप बैंक की निधियों की बैंक के निर्गमों के साथ तुलना करें और भारत सरकार की मुद्रा तथा स्वर्णमान निधि की तुलना रुपया निर्गम से करें तो आप यह देखेंगे कि जब बैंक निर्गम सीमित होते हैं तो निधि में वृद्धि होती है और इसकी विलोम स्थिति भी होती है। परन्तु उदाहरणार्थ यहां आप, अपनी निधि को कम किए बिना भी, रुपये की मुद्रा को कम नहीं कर सकते।

6093 मेरा तर्क है, मैं कहता हूं, ठीक है परन्तु इसे दूसरे दृष्टिकोण से देखिए। फिर भी, वह ही समता है, जो बात मुझे अपील करती है, वह यह है कि आप अपनी रुपये की मुद्रा को कम किए बिना अपनी निधि को कम नहीं कर सकते और मैं यही बात पूरी करना चाहता हूं। यह बिल्कुल सच है। मैं उसे स्वीकार करता हूं। परन्तु मेरा यह निवेदन है। एक निधि का, वास्तव में, क्या उपयोग है? मान लिया आपके पास

बहुत विशाल निधि है और आपके पास रुपये का विशाल परिसंचरण भी है। क्या इस तथ्य का कि आपके पास अपने भंडार किसी सेफ में, विशाल निधि है, किसी रूप में, रुपये के मूल्य पर प्रभाव पड़ता है? नहीं, पडता। रुपये के मूल्य केवल उसकी मात्रा तथा परिसंचरण की मात्रा से प्रभावित होगा। इसके मूल्य का निधि से बिल्कुल कोई संबंध नहीं होता है। पृष्ठाधार का पूर्णतया मुद्रा के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पडता, इसमें संदेह नहीं कि इसका प्रभाव उस समय पड़ता है जब वह असंगठित हो। उसके फलस्वरूप उस मुद्रा में विश्वास हो सकता है, परन्तु मेरा यह निवेदन है कि जब मुद्रा ऐसी स्थिति में आ जाती है कि लोगों को उसमें कुछ विश्वास करना पड़े, तो मेरा कहना यह है कि वह मुद्रा पूर्णतया स्फीत होती है।

6094 क्या यह निःसंदेह इस प्रस्ताव को स्वीकार करना है कि मुद्रा के मूल्य का निश्चय अंततः व्यापार के संदर्भ में उसकी कुछ मात्रा द्वारा किया जाएगा? —जो मैं कहता हूं वह यह है कि यह सम्बन्ध अंततः खतरनाक रूप में परस्पर सम्बद्ध है, और मुझे यकीन है कि आप रुपये के सिक्के अनिश्चित रूप में लगातार केवल इसलिए नहीं ढाल सकते, क्योंकि यहां स्वर्णनिधि होती है। यदि आप ऐतिहासिक रूप में, इस मामले की तह में जाएं तो मेरा निवेदन यह है कि वास्तव में ऐसी बात रही है। भारत के इतिहास में जिन लोगों को मुद्रा कार्य करना पडा है, उन्हें इस विचार द्वारा कि उनके पास कुछ निधि होनी चाहिए इतना अधिक मुग्ध कर दिया गया था कि उसके लिए रुपये के सिक्के बनाना आरम्भ कर दिया गया था। भारत में, 1895 तथा 1898 में जब फावलर समिति की रिपोर्ट को लागू किया गया और सुधार आरंभ किए गए तब एक बात भारत में रुपये के सिक्के बनाना भी। परिसंचरण में रुपये की मात्रा को देखकर सर एडवर्ड लॉ इतना अधिक अभिभूत हुआ कि उसने यह महसूस किया कि इसके लिए कुछ निधि होनी चाहिए। इस आधार पर ही, उसने सैक्रेटरी ऑफ स्टेट के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि सरकार को रुपये का सिक्का बनाने की अनुमति होनी चाहिए। यदि वह समुचित रूप में इस बात को जानता है कि यदि रुपये की मात्रा सीमित व प्रतिबंधित रहेगी तो रुपयों का मूल्य बना रहेगा, तो फिर वह निश्चय ही मुद्रा में लगातार वृद्धि न करता। मैं केवल वही सिफारिश कर रहा हूं जो भारत सरकार ने सेक्रेट्री ऑफ स्टेट को 1893 में की थी।

6095 तत्कालिक बात की ओर ध्यान देने के लिए इन स्थितियों के अधीन निधि का कार्य स्थिरता को बनाए रखना है। क्या ऐसा नहीं है? —मेरा विचार है कि वहां एक निधि नहीं होनी चाहिए। मुद्रा कुछ-कुछ एक ऐसी वस्तु के समान है, जो अपने मूल्य को केवल आपूर्ति तथा मांग के नियम के कारण बनाए रखती है।

6096 क्या आप इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हैं कि निधि का कार्य स्थिरता को बनाए रखना है?

—हां, मैं करता हूं। मैं मेरे विचार से इसमें निधि का कोई कार्य नहीं है। सच बात तो यह है कि जब मुद्रा सीमित होती है तो निधि अपने आपको बनाए रखती है। वह मुद्रा का रख-रखाव नहीं करती।

6097 आइए, अब हम मुद्रा के सुधार के लिए आपके व्यावहारिक प्रस्ताव पर विचार करें। आपका कहना है:— "भारतीय मुद्रा के सुधार के लिए मेरी योजना की आवश्यकताएं निम्नलिखित हैं:— (1) टकसाल जिस प्रकार जनता के लिए बंद हैं उन्हें उसी प्रकार से सरकार के लिए पूर्णतया बंद करके रुपये का सिक्का बनाना बंद कर दिया जाए। (2) स्वर्ण के एक उपयुक्त सिक्के का निर्माण करने के लिए सोने की टकसाल खोली जाए (3) सोने के सिक्के तथा रुपये के बीच एक अनुपात निर्धारित कीजिए। (4) रुपया स्वर्ण में परिवर्तनीय और सोना रुपये में परिवर्तनीय नहीं होना चाहिए, बल्कि दोनों, विधि द्वारा निर्धारित अनुपात पर असीमित वैद्य मुद्रा के रूप में वितरित व प्रचलित हों।" एक व्यावहारिक मनुष्य के लिए प्रश्न उत्पन्न होता है, कि सोने के सिक्के तथा रुपये के बीच आप अनुपात किस प्रकार बनाकर रखेंगे, और देश के व्यापार के संतुलन के अनुसार गिरावट की तुलना में बट्टा काटने या अधिमूल्य देने के लिए किसी व्यक्ति को आप किस प्रकार रोकेंगे? अच्छा है रुपया अपने मूल्य को इस कारण बनाकर रखेगा कि उसकी मात्रा सीमित होगी, रुपये का और कोई निर्गम जारी नहीं किया जाएगा।

6098 उसे अधिमूल्य की ओर जाने से रोकने के लिए क्या है? —वह अधिमूल्य की ओर एकदम नहीं जा सकता क्योंकि उसके पास सोने में अनुकल्प है। रुपये सोने में परिवर्तनीय नहीं हैं। रुपया बट्टे की ओर नहीं जा सकता क्योंकि उसकी मात्रा सीमित है। रुपये के और सिक्के नहीं बनाने हैं। रुपया अधिमूल्य की ओर नहीं जा सकता क्योंकि मुद्रा के रूप में कार्य करने वाले सोने के सिक्के का विकल्प है।

6099 फिर आपका यह कहना है:— "किन्तु यहां ठीक यह मौका है कि रुपये की मुद्रा की वर्तमान मात्रा इतनी विशाल है कि जब व्यापार में मंदी होती है तो वह फालतू हो सकता है। और अत्यधिक होने के कारण, उसके मूल्य में क्षति हो सकती है। ऐसी संभावना के बचाव के रूप में, मेरा यह प्रस्ताव है कि सरकार को स्वर्णमान निधि के एक भाग का प्रयोग रुपये की मुद्रा को प्रचुर मात्रा में कम करने के लिए करना चाहिए ताकि भारी अवमूल्यन के दौरान भी वह समय की आवश्यकता के अनुकूल सीमित रह सके।" वह कार्य किस प्रकार होगा? —आप केवल रुपयों को वापिस कर लें और पुनः जारी न करें कुछ सीमा तक रुपया वापस करने प्रक्रिया से लगा।

6100 ताकि रुपया, उस समय तक, सोने में परिवर्तनीय नहीं होगा? वह सोने में कभी भी उस समय तक परिवर्तनीय नहीं होगा जब तक वह अपनी सीमा पर नहीं पहुंचता जिससे वह कभी भी, यहां तक कि मन्दी के समय में भी अधिक नहीं होगा। रुपया खोने से परिवर्तनीय नहीं होगा और स्वर्ण रुपये में परिवर्तनीय नहीं होगा। जैसे कि अभी है, मुझे इस बात का अधिक डर नहीं है कि रुपये में बट्टा होगा। बल्कि इसमें बट्टा हो भी सकता है और इसलिए मैंने उसके बचाव का प्रस्ताव रखा है।

6101 फिर अनुपात के प्रश्न पर आकर, आप कहते हैं, "यूरोपीय देशों में मुद्रा अस्फीति की एक समस्या है अर्थात् मुद्रा के मूल्य में वृद्धि करने की समस्या है, दूसरे शब्दों में, मूल्यों में गिरावट लाने की समस्या है। भारत में, समस्या मुद्रा की स्फीति करने अर्थात् मूल्यह्रास करने, की एक समस्या है। दूसरे शब्दों में, मूल्यों में वृद्धि करने की समस्या है। 1 शि. 6 पैंस सोने से 1 शि. 4 पैंस में परिवर्तन का यह अर्थ है, और कुछ नहीं। क्या मुद्रा की स्थिति युद्ध से पूर्व की समानता पर पुनः वापिस पहुंचने के लिए उसमें स्फीति करनी चाहिए? फिर आप यह बताते हैं कि युद्ध से पूर्व ही समानता की पुनःस्थापना युद्ध से पूर्व के मूल्य स्तर की पुनःस्थापना नहीं है क्योंकि अब सोने के मूल्य में परिवर्तन है? —हां।

6102 इसके अलावा आगे आप यह बताते हैं कि इस संबंध में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए। वर्तमान ठेकों में वे शामिल हैं जो पूर्ववर्ती अवमूल्यन तथा मूल्यवृद्धि के प्रत्येक स्तर पर लिए गए और इन सबके साथ ठीक प्रकार से निपटने के लिए इस बात की आवश्यकता होगी कि प्रत्येक का निपटारा किया जाए। यह कार्य इसकी जटिलता तथा विशालता के कारण असंभव है।" मैं यह समझता हूं कि जिस मत पर आप बल देते हैं, वह यह है कि हम रुपये के मूल्य में एक बहुत बड़े उतार-चढाव के दौर से गुजर रहे हैं और कि प्रत्येक स्तर पर ठेके किए गए हैं तथा किसी ऐसे निश्चित अनुपात को निर्धारित करना असंभव है जो उन समस्त ठेकों के बीच न्याय करेगा जो विभिन्न स्तरों पर किए गए हैं? —हां।

6103 फिर आप यह कहते हैं कि बहुत बड़ी संख्या में ठेके हाल की तारीख में किए गए हैं? —हां मेरी सूचना वास्तव में, प्रो. केनन द्वारा "स्टेटिस्टिकल जरनल" में प्रकाशित उसके एक लेख में दी गई एक छोटी टिप्पणी पर आधारित है।

6104 क्या कोई ऐसे आंकड़े उपलब्ध हैं जिससे हमें ठेकों की सही संख्या का सही अनुपात मिल सके? —मेरे विचार से यह एक अनुमान है यदि किसी काम को समझा जाय यह एक सहज बुद्धि का प्रश्न है।

6105 फिर आप यह कहते हैं कि यह कहा जा सकता है कि कुल संविदात्मक दायित्वों का गुरूत्व केन्द्र हमेशा वर्तमान के निकट होता है। "उन परिसरों के कारण आप निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं– कि इन दो तथ्यों के आधार पर सबसे उत्तम समाधान 1 शि. 4 पैंस तथा 1 शि. 6 पैंस के बीच एक औसत निकालना होगा और यह कहना होगा कि यह 1 शि. 4 पैंस की अपेक्षा 1 शि. 6 पैंस के अपेक्षाकृत अधिक निकट है। मुझे यह यकीन नहीं है कि मैं उसे बिल्कुल समझता हूं। आपके तर्क के रुख के कारण मुझे यह कल्पना करनी पड़ रही है कि आप अंततोगत्वा 1 शि. 6 पैंस की दर के समर्थक निकलेंगे? –मैं कहता हूं कि यह 1 शि. 6 पैंस के अपेक्षाकृत अधिक निकट तथा 1 शि. 4 पैंस से कुछ दूर हो सकता है।

6106 आप किस अनुपात का सुझाव देंगे? –यह कहना मुश्किल है वास्तव में मेरा विचार यह है कि 1 शि. 6 पैंस ठीक उतना ही अच्छा होगा। यह किसी पर बहुत तकलीफ नहीं डालेगा।

6107 फिर, जहां तक रुपये के बढ़ते तथा गिरते अनुपात का प्रश्न है, आपकी राय संक्षेप में पैरा 9 में दी गई है। आपका कहना है, "अब यदि यह महसूस किया जाता है कि निम्न विनिमय का अर्थ, आंतरिक मूल्य का अधिक होना है तो यह बात एकदम स्पष्ट हो जाएगी कि यह लाभ देश में एक वर्ग को दूसरे वर्ग की कीमत पर होने वाला लाभ नहीं है।" कौन सा वर्ग लाभान्वित होता है और कौन सा हानि उठाता है? व्यापारी वर्ग लाभान्वित होता है। श्रमिक वर्ग को लाभ नहीं होता। उत्पादन के समस्त कारकों के मूल्य में परिवर्तन नहीं होता। मजदूरी में मूल्यों की तरह तेजी से परिवर्तन नहीं होता और इन वर्गों को हानि उठानी पड़ती है।

6108 मुद्रा की मौसमी मांगों को पूरा करने के लिए उसे लचीलापन प्रदान करने के लिए मुद्रा की व्यवस्था करने के विषय में जहां तक महत्वपूर्ण प्रावधानों का संबंध है क्या आपके पास उनके लिए सैद्धांतिक या व्यावहारिक दृष्टिकोण से कोई सुझाव है? जैसा मैंने बहुत संक्षेप में संकेत दिया है, यदि हम मौसमी कार्यों के लिए अपनी मुद्रा को लचीला बनाना चाहते हैं तो हमें किसी प्रकार यह देखना चाहिए कि वाणिज्यिक कागज को जिसने व्यापार के लेन-देन व सौदों में वृद्धि की है, मुद्रा में परिवर्तित कर दिया जाए ताकि वाणिज्यिक कागज को सरकारी बोर्डों की अपेक्षा, मुद्रा के निर्गम के लिए अधिक आधार बनाया जाए। मेरे विचार से प्रस्तावों को जर्मन इम्पीरियल बैंक में अपनाए तो वह भारत के लिए अच्छा होगा। उन्होंने निःसंदेह, थोड़े बदलाव के साथ कम या ज्यादा इंगलिश बैंकिंग एक्ट, 1894 को अपनाया है ताकि वह मौसमी मांग के अनुकूल हो सके।

6109 क्या वह प्रावधान विस्तार के लिए है?–
इस समय, कुछ विनियमों के अंतर्गत कागज के निर्गमों के विस्तार के लिए है।

6110 क्या वह प्रावधान न्यासीय निर्गम के विस्तार के लिए है? –बिल्कुल ठीक।

6111 क्या यह अनुपाती कर के भुगतान के लिए बदले में है– हां, मेरे विचार से यह दोनों के लिए पर्याप्त सुरक्षा है।

6112 (प्रोफेसर कोयाजी), आपके मत के अनुसार स्वर्णमान का मुख्य गुण यह है कि क्या यह कुछ उतार-चढाव पर कुछ निश्चित प्रतिबंध लगाता है?– बिल्कुल ठीक

6113 परन्तु, वास्तव में, कुछ ऐसी चीजें हैं, उदाहरणार्थ टकसालों से प्रावधान इस बात पर आधारित नहीं कि एक देश को कितनी मुद्रा की आवश्यकता है?

–हां, मैं यह कह सकता हूं कि मैं स्वर्णमान के पक्ष में केवल इसलिए हूं क्योंकि क्षतिपूरक, प्रणाली व्यवहार्य नहीं है। यदि वह प्रणाली व्यवहार्य होती, तो मैं स्वर्णमान को एकदम अस्वीकार कर देता। मेरा इससे बिल्कुल प्रेम नहीं है।

6114 स्वर्णमान व्यापार प्रक्रिया के नतीजों में भी सुधार नहीं लाता। –नहीं।

6115 तब तो केवल एक बात है। पैरा 5 में आप यह कहते हैं, "मैं. वास्तव में, स्वर्णमान निधि के उन्मूलन के पक्ष में हूं, क्योंकि मुद्रा की स्थिरता को बनाए रखने के लिए उसका कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है।" अनुरूपता द्वारा, कागज की मुद्रा की निधि का भी उन्मूलन क्यों नहीं करते, क्योंकि कागज का मूल्य उसकी सीमाओं पर निर्भर होता है? –बिल्कुल ठीक

6116 क्या आप उसका उन्मूलन करेंगे? –नहीं, इस कारण क्योंकि हम कागज की मुद्रा को जारी करने पर कोई निश्चित सीमा नहीं लगा रहे हैं। जिस योजना के अंतर्गत मैं स्वर्णमान का उन्मूलन करने के लिए कहता हूं, उसमें मैं रुपये के जारी करने पर एक निश्चित सीमा रख रहा हूं, कागज की मुद्रा के मामले में, हमने सरकार को अपना विवेक प्रयोग करने की अनुमति दी है।

6117 क्या आपके विचार से वह संभव है? –मैं आपको इसका कारण बताऊंगा। क्योंकि सीमित आय तथा उस प्रकार की चीजों से जनसंख्या की वृद्धि

के साथ-साथ रुपये के प्रयोग की अपेक्षाकृत अधिक गुंजाइश है? क्या आप यह कहते हैं कि यह हमेशा-हमेशा के लिए है? हम सोने के सिक्के बना रहे होंगे और उस समय तक रुपये के नहीं बनाएंगे जब तक यह संभावना न हो जाए कि प्रचलन में सोने की मात्रा रुपये की मात्रा से दस गुणा होगी। क्या वह देश के लिए सुविधाजनक होगा? – मेरे विचार से वह होगा। मैं तो बल्कि यह कहूंगा कि हम सोने का प्रयोग करने के बजाए सोने द्वारा समर्थित नोटों का प्रयोग करते हैं। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि हाथों-हाथ सोने का प्रयोग करना चाहिए।

6118 (सर नारकोट वारेन) आपके ज्ञापन के पैरा 8 के बाद वाले भाग से क्या मैं यह समझूं कि आपका सुझाव 1 शि. 4 पैंस की अपेक्षा 1 शि. 6 पैंस की दर की ओर अधिक है।

– मैं 1 शि. 6 पैंस के पक्ष में प्रायुक्ति को स्वीकार करता हूं।

6119 (सर एलेक्जेंडर मुरे) डा. अम्बेडकर यहां एक बात है, जिसका उल्लेख आपने अध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत कुछ प्रश्नों के उत्तर में किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपका सुझाव यह है कि भारत सरकार किसी प्रकार रुपये के सिक्के बनाने के लिए केवल इसलिए तैयार हो गई थी ताकि वे रुपये के बुलियन मूल्य तथा सांकेतिक मूल्य के बीच लाभ कमा सकें। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप वास्तव में किस चीज की ओर संकेत कर रहे हैं?

– मैं इस चीज का उल्लेख कर रहा हूं, यह एक थोड़ी ऐतिहासिक बात है। उदाहरणार्थ, जब भारत सरकार ने फाउल समिति द्वारा सुझाए गए सुधारों की शुरूआत की तो उन्होंने यह महसूस किया कि, रुपये के विशाल परिसंचरण के लिए उनके पास कोई निधि नहीं है। और फाउलर समिति ने अपनी रिपोर्ट के पैरा 60 में यह सुझाव दिया कि यदि सरकार रुपये के सिक्के बनाती है और लाभों को अपने लिए रखती है तो उस लाभ का उपयोग एक निधि के रूप में किया जाना चाहिए। सर एडवर्ड लॉ, ने भी जो 1901 में उस समय दृश्य पटल पर आया था जब रुपये के सिक्कों की ढलाई आरंभ हुई थी यह महसूस किया कि रुपये की मात्रा इतनी विशाल हो गई है कि निधि की कुछ मात्रा का होना आवश्यक है और मेरा विचार है कि वह रुपये के सिक्के केवल इसलिए ढालता चला गया क्योंकि उसने यह महसूस किया कि निधि की आवश्यकता है और निधि को रुपये के सिक्के बनाने के अलावा किसी और प्रकार से नहीं बनाया जा सकता।

6120 क्या आप केवल ऐसा सोचते हैं? –नहीं, मेरी बात तो यह है; मैंने उस विज्ञप्ति को बहुत ध्यानपूर्वक पढा है और मैं यह महसूस करता हूं कि सर एडवर्ड लॉ ने वहां यह स्पष्ट कर दिया था कि रुपये के सिक्के का निर्माण अधिमूल्य पर इसलिए किया गया था क्योंकि लोग सोने या किसी अन्य वस्तु का मुद्रा में प्रयोग नहीं करना चाहते थे, फिर मैं इस बात को समझ सकता था कि रुपये के सिक्के का निर्माण लोगों की मांग के उत्तर में किया गया। परन्तु विज्ञप्ति में इस संबंध में कोई भी बात नहीं मिली। वह केवल यह कहता है कि जब हमने सुधारों की शुरूआत की तब हमने फाउलर समिति की रिपोर्ट के पैरा 60 का ध्यान नहीं रखा।

6121 परन्तु, मेरा विचार है कि उस विज्ञप्ति में जिसका आप उल्लेख कर रहे हैं, उसने यह कहा कि अनुमानतः 70 लाख या लगभग उसी के समान एक स्वर्णनिधि होनी चाहिए। इसके विपरीत आप यह कहते हैं कि वह रुपये जारी कर रहा था?

–बिल्कुल ऐसा ही है। स्वर्णमान निधि को सोने में रखा जाता है। मैं यह कहता हूं कि किसी प्रकार की निधि की आवश्यकता नहीं थी।

6122 डाक्टर अम्बेडकर, आप यहां एक सामान्य बयान देते हैं, "दुर्भाग्यवश, भारत में मुद्रा प्रणाली के इतिहास में ऐसी विकृति के प्रचुर प्रमाण हैं। हमारे यहां पहले ही मूर्ख प्रशासक थे जो इस विचार से अभिभूत थे कि आरक्षित निधि का होना बहुत ही आवश्यक बात है और वे किसी और बात को ध्यान में रखे बिना, मुद्रा जारी करते रहें, परन्तु केवल आरक्षित निधि को बढाने के लिए उन्होंने ऐसा किया" और आप उसे अब अध्यक्ष के सामने दोहरा रहे हैं? –स्वयं प्रोफेसर केनन ने अपनी पुस्तक में जो बात कही है, उसकी तुलना में मैंने बहुत नम्र बात कही।

6123 परन्तु क्या वह बात नहीं है जो 1895 में वास्तव में, बम्बई के एक सुप्रसिद्ध फाइनेंसियर द्वारा सुझाई गई थी और उसे उस समय वित्त सदस्य द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था? –उसका पता मुझे विज्ञप्ति से चलता है।

6124 जरा ठहरिए। अपनी पुस्तक में क्या अपने वास्तव में, बम्बई के उस फाइनेंसियर का नाम दिया है, जिसने इस बात का सुझाव दिया था और भारत सरकार के उस वित्त मंत्री का नाम भी दिया है जिसने इसे अस्वीकार कर दिया था? –हां।

6125 फिर, अपनी पुस्तक में आपने एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ का नाम भी दिया है जिसने अभी हाल में, 1907-08 में उसी बात का सुझाव दिया है और उसे भारत सरकार द्वारा पुनः अस्वीकार कर दिया गया है और 1919 के, हाल ही के एक दूसरे प्रसिद्ध अर्थशास्त्री का उल्लेख किया है। फिर, आप अध्यक्ष के समक्ष बयान को क्यों दोहराते हैं कि भारत सरकार के प्रशासकों ने इस सुझाव को छोड़ा या अस्वीकार नहीं किया है जबकि वास्तव में, आप यह जानते हैं कि इस सुझाव को जब सुप्रसिद्ध वित्त विशेषज्ञों (फाइनेंशियरों) द्वारा प्रस्तुत किया गया तभी भारत के प्रशासकों ने इसे बार-बार अस्वीकार कर दिया? –इसके लिए मेरा उत्तर यह है कि यदि आप प्रत्येक वित्त मंत्री द्वारा बजट में दिए गए भाषणों को किसी प्रकार पढ़ें। उदाहरणार्थ, अब मैं उस सज्जन का नाम भूल गया हूं, जिसने एडवर्ड लॉ से पहले यह बात कही थी। मेरा ख्याल है कि मैं उदाहरण दे सकता हूं।

6126 सर जेम्स वेस्टलैंड तथा सर क्लिंटन डॉकिन्स/

–परन्तु वे उससे कभी सहमत नहीं हुए।

6127 नहीं, इसका सुझाव वैस्टलैंड को एक भारतीय द्वारा दिया गया था। उसने उस सुझाव को अस्वीकार कर दिया गया फिर डॉकिन्स को दिया उसने भी इसे अस्वीकार कर दिया था?

–आपकी व्याख्या का मैं उचित सम्मान करता हूं, सर एडवर्ड लॉ ने कहा कि इतना स्वर्णमान होना चाहिए जो सब रुपयों तथा नोटों के पीछे समर्थन के लिए पर्याप्त हो। मैं इस बात से इनकार नहीं करता। परन्तु मैं केवल सीधे यह कहता हूं, कि अन्य फाइनेंशियरों ने यह कहा कि किसी प्रकार की आरक्षित निधि की आवश्यकता नहीं है और रुपया स्वयं को अपने आप बनाए रखेगा। और सर एडवर्ड लॉ ने यह कहा कि आरक्षित निधि और रुपये के सिक्कों की आवश्यकता है, क्योंकि वह आरक्षित निधि चाहता था। वास्तव में, प्रस्तावों को अस्वीकार करने के लिए वैस्टलैंड तथा डॉकिन्स के प्रशिक्षण तथा विचारों का मैंने पर्याप्त सम्मान किया है। मैं यह, कहता हूं कि वे सही थे और एडवर्ड लॉ निश्चय ही गलत था।

6128 सर एडवर्ड लॉ ने यह नहीं कहा, उसने रुपयों के सिक्के का निर्माण आरक्षित निधि को प्रदान करने के लिए किया था। उसने यह कहा कि उसे इस निर्गम के प्रति पृष्ठाधार के रूप में मानना चाहिए। परन्तु आप ही इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि उसने रुपये के सिक्के का निर्माण अन्य कार्यों के लिए किया? –यह बात वह विज्ञप्ति में कहता है। फाउलर समिति के समक्ष, स्वर्णमान रखने के बहुत सारे प्रस्ताव थे

और सहमति ने यह देखा कि वे बहुत खर्चीले हैं, परन्तु उसने हल्का सा यह संकेत यिा कि यदि आरक्षित निधि की आवश्यकता है तो उसे सिक्कों का निर्माण करके तैयार किया जा सकता है। सर एडवर्ड लॉ से पहले जो दो सज्जन हुए उनके विचार से यह आवश्यक नहीं था परन्तु सर एडवर्ड लॉ ने कहा कि आवश्यक है और उसने रुपयों के सिक्के बनाए। मैं एक सामान्य आरोप नहीं लगा रहा हूं। मैंने जहां उचित समझा वहां उसकी प्रशंसा भी की है। मैं आपको भी उसका संदर्भ बता सकता हूं।

6129 मैं आपके समस्त संदर्भों व उल्लेखों को सत्यापित कर सकता हूं। आप वहां क्या तलाशना चाहते हैं? —यद्यपि फाउलर समिति की यह सिफारिश थी कि भारत सरकार रुपये के सिक्के बनाकर स्वर्ण निधि की व्यवस्था कर सकती है, परन्तु वैस्टलैंड तथा डॉकिन्स ने उस प्रस्ताव की ओर ध्यान देने से इनकार कर दिया क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास था कि स्वर्ण निधि का होना आवश्यक नहीं है और चूंकि रुपये की मात्रा सीमित थी, अतः यह अपने आपको बनाए रख सका। परन्तु एडवर्ड लॉ जब वित्त मंत्री बना तब उसने महसूस किया कि आरक्षित निधि का होना आवश्यक है।

6130 फाउलर समिति की रिपोर्ट आने से पहले वैस्टलैंड वित्त सदस्य था। मेरा विचार है कि जब सिफारिशों को लागू किया गया तब वह बाहर था और फाउलर समिति ने रिपोर्ट दी तब डॉकिन्स आफिस का सदस्य था। परन्तु दोनों ने भारतीय राजनीतिज्ञों द्वारा प्रस्तुत सुझावों को अस्वीकार कर दिया था?

—उस बात पर कोई मतभेद नहीं है।

6131 इसमें अंतर केवल यह है कि आप सर एडवर्ड लॉ पर आरोप लगा रहे हैं कि उसने एक आरक्षित निधि का निर्माण करने के लिए रुपये के सिक्के बनाए। मैं यह कहता हूं कि उसने ऐसा नहीं किया कि उसने वास्तविक विज्ञप्ति में यह कहा कि यहां उस समय स्वर्णनिधि है, मेरे विचार से वह 70 लाख है। यदि ऐसा है तो हमारे मत में अंतर है।

6132 इससे किसी को क्या कल्पनीय लाभ हो सकता है मुझे नहीं दिखाई देता फिर क्यों कोई व्यर्थ में निधि को बढ़ाएगा।

—बिल्कुल ठीक और लोगों को एक बड़ा भ्रम है कि एक आरक्षित निधि की आवश्यकता है और एक आरक्षित निधि के बिना मुद्रा कार्य नहीं कर सकती। मेरे विचार से यह एक सामान्य अंध विश्वास है। इसमें ऐसी ही बात है।

6133 (एलेक्जेंडर मुरे) मैं आपको संदर्भ बताऊंगा आपकी पुस्तक "रूपये की समस्या (दि प्राब्लम आफ दि रुपी) के पृष्ठ 276 से 278 तक? —हां, जब सुधारों को लाया गया तब वैस्टलैंड वहां था, पृष्ठ 276।

6135 यह कौन सी तारीख थी? –वह सुधारों को शुरू करने के बाद 1898-99 का बजट भाषण है।

6136 यह 1994-95 में था– नहीं; डॉकिन्स का उल्लेख अगले पृष्ठ पर है। मेरा संदर्भ पृष्ठ 276 पर 1898-99 के लिए वित्तीय विवरण से है। फिर सर एडवर्ड लॉ से संबंधित पैराग्राफ पृष्ठ 278 पर है।

6137 मैं आपकी बात मैं सुधार करता हूं क्या इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे? आपने कहा कि आपका 1988-89 के बजट भाषण से है। आपने जो संदर्भ दिया है वह वास्तव में 1894-95 के भाषण से है। वह 1899 में वित्त मंत्री भी था।

6138 उसने 1894-95 में इसे अस्वीकार कर दिया? –मेरा अभिप्राय यह है कि हर्शल समिति तथा फाउलर समिति के बीच कोई अंतर नहीं था और यदि आप यह सोचते हैं कि मैंने इस सज्जन के विरुद्ध कोई बहुत घटिया आरोप लगाया है तो इसके लिए मुझे खेद है।

6139 (सर एलेक्जेंडर मुरे)–मैं केवल आपके बयान के पैराग्राफ 5 में आपने जो कहा है, उसका उद्धरण दे रहा हूं। मैं यह कहता हूं कि उससे किसी भी व्यक्ति के उस जाल में फंसने का खतरा है।

6140 (अध्यक्ष) और आप यह कहते हैं कि अपनी पुस्तक में आपने इन प्रसिद्ध राज नायकों का समर्थन किया है? –हां।

6141 (सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास) पैरा 8 में विश्व के विभिन्न देशों के संबंध में आपने कहा है कि "वे युद्ध से पूर्व की सममूल्यता पर लौटने के लिए लालायित है।" और आप यह कहते हैं कि ऐसा सार्वभौमिक प्रतीत होता है। इसके बाद आप यह कहते हैं, "लेकिन भारत तथा अन्य देशों के बीच केवल यह अंतर है। अन्य देशों को अभी युद्ध से पूर्व की सममूल्यता पर पहुंचना है। इसके विपरीत, भारत वास्तव में युद्ध के पूर्व की सममूल्यता से भी आगे पहुंच गया है।" जिन अन्य देशों का आप उल्लेख करते हैं, उनकी मुद्रा का युद्ध के दौरान अत्यधिक अवमूल्यन हुआ था –बिल्कुल।

6142 क्या सम्पन्न देश नहीं? –मेरे विचार से वे देश भी जो अपनी पुरानी सममूल्यता के बहुत निकट हैं, परन्तु उस पर वापस जाने में कठिनाई महसूस करते हैं।

6143 उदाहरणार्थ, आपके दिमाग में कौन से देश हैं? –मैं जिनेवा सम्मेलन के विषय में बात कर रहा हूं, जिसका मेरे दिमाग पर कोई असर नहीं है, परन्तु मैं इटली जैसे देश के विषय में सोचता हूं। फ्रांस एक समय युद्ध से पूर्व की सममूल्यता के निकट था।

6144 अब संभवतः फ्रांस की स्थिति सबसे खराब है, अतएव आप भारत तथा उन अन्य देशों के बीच अंतर के विषय में कह रहे हैं। जिन देशों की मुद्रा युद्ध के दौरान गंभीर रूप से विस्थापित हो गई थी और जो उसे अब तक ठीक नहीं कर सके? –मेरा तर्क यह है कि यदि हम चाहें एक दूरी तक वापस जाने की स्थिति में थे, परन्तु यह बात बुद्धिमता पूर्ण या उचित नहीं होगी कि हम उस पर वापस जाने की स्थिति में होते हुए भी उस पर पुनः वापस जाएं।

6145 मैं उस पर बाद में आऊंगा मैं आपको केवल यह बताने का प्रयास कर रहा हूं कि यह कहा जा सकता है कि भारत तथा अन्य देशों के बीच आप जो तुलना कर रहे हैं वह जहां तक मुद्रा की समस्याओं तथा स्थितियों का संबध है उसकी दृष्टि से टिक नहीं सकती। जहां तक ऐसा हो सकने का संबंध है, मेरा अभिप्राय इन दोनों के बीच अंतर से है कि चाहे वे (अवमूल्यन मुद्रा वाले देश) चाहते भी हों फिर भी वे वापस नहीं जा सके। क्या ऐसा करना चाहिए और क्या हम वैसा कर सकते हैं। बहुत अच्छा आपने इस बात को इतने स्पष्ट रूप से रख दिया है कि मैं भी इस तरह नहीं रख सकता था।

६१४६. इसलिए यदि आप भारत की तुलना उन देशों के साथ करते हैं जो युद्ध से पूर्व की मूल्य साम्यता पर वापस पहुंच गए तो क्या आपको उन देशों का पता चलेगा जो युद्ध से पूर्व की स्थिति पर वापस गए हैं? –हां उदाहरणार्थ इंग्लैंड, परन्तु इंग्लैंड में भी उस समय एक प्रबल राय थी कि उन्हें वापस उस स्थिति पर नहीं जाना चाहिए।

6147 मेरा अभिप्राय है कि इस प्रबल राय के बावजूद आप यह कहते हैं कि उन्होंने स्वर्ण युद्ध से पूर्व की मूल्य साम्यता से सामंजस्य स्थापित कर लिया है और अब आपको उस स्थिति पर जाने के विषय में अधिक शिकायत सुनाई नहीं देती? –मैं नहीं बता सकता।

6148 मैं देखता हूं। आप जानते नहीं जब तक यह न कहा जा सके कि जो वापस गए उन्होंने गलती की, तब तक भारत में उनके विरुद्ध कोई बात विशेष रूप से आपत्तिजनक नहीं हो सकती जो युद्ध से पूर्व की साम्यावस्था पर वापस जाना चाहते हैं–नहीं, मैं वह बात नहीं कहता। मैं वास्तव में, यह प्रश्न उठा रहा हूं कि क्या यह उचित है?

6149 अब इसके औचित्य के सम्बन्ध में लेख से नीचे में आप कहते हैं कि यह दृष्टिकोण गलत है, आप कहते हैं कि ये दोनों दृष्टिकोण भ्रामक हैं। आप कहते हैं कि युद्ध से पूर्व की मूल्य साम्यता की पुनःस्थापना युद्ध से पूर्व के मूल्य स्तर की पुनःस्थापना नहीं है। अब क्या आपका यह विचार है कि विनिमय का प्रयोग, मूल्य स्तर को प्राप्त करने के लिए किया जाना चाहिए? –नहीं

6150 तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई बहुत भ्रामक नहीं है? –नहीं, मैं यह कहता हूं यद्यपि आप हमेशा यह नहीं कह सकते कि विनिमय तथा मूल्य स्तर साथ-साथ चलते हैं, फिर भी––––

6151 क्षमा कीजिए, मेरा प्रश्न था, क्या आप यह सुझाव देते हैं, कि क्या विनिमय का प्रयोग मूल्य स्तर का समायोजन करने के लिए एक लीवर के रूप में किया जाना चाहिए? –नहीं, मैं वह बात नहीं कहता।

6152 इसलिए, उस दृष्टि से अनुपात का परिवर्तन मूल्यों के समायोजन के लिए एक लीवर के रूप में, उपयुक्त या वांछनीय नहीं था?

–हां यह उपयुक्त नहीं था।

6153 किसी भी देश ने यह नहीं किया है, जब तक आप यह न दिखा सकें कि यह एक अपवाद के रूप में, भारत के मामले में, विशेष रूप से उचित था? –परन्तु यह सब देशों में हुआ है।

6154 कौन से देश? –समस्त देश

6155 क्या मैं अपने प्रश्न को और स्पष्ट करूं?

–मेरे विचार से आपने प्रश्न को बहुत स्पष्ट रूप में नहीं रखा।

6156 मैं कभी-कभी अपने प्रश्नों को अधिक स्पष्ट रूप में नहीं रख पाता, मैं स्वीकार करता हूं। कौन से ऐसे देश हैं जो युद्ध से पूर्व की मूल्य साम्यता को प्राप्ति कर सके हैं और जो अपने आंतरिक मूल्यों के स्तर का समायोजन करने के लिए स्वेच्छापूर्वक पिछली स्थिति में गए हैं? –नहीं– वास्तव में, उन्होंने वैसा नहीं किया।

6157 अतएव, भ्रम कहां है? –भ्रम इस अर्थ में है, ऐसा करने में कुछ लोग यह कल्पना करते हैं कि वे पुराने मूल्य स्तर पर वापस जा रहे हैं। यह एक भ्रम है, क्योंकि 1 शि. 4 पैंस जो 1914 में था वह 1925 में वही 1 शि. 4 पैंस नहीं है।

6158 परन्तु मेरा अभिप्राय उन लोगों से जो 1 शि. 4 पैंस के लिए मांग मूल्य के प्रश्न पर बिल्कुल नहीं करते, क्या वे उस भ्रम को नहीं पालेंगे? –नहीं।

6159 फिर नीचे आप दूसरा तर्क देते हैं। मैं समझता हूं यदि युद्ध से पूर्व की मूल्य साम्यता की पुनःस्थापना करने का अर्थ युद्ध से पूर्व के मूल्य स्तर की पुनःस्थापना करने से है, तब अनुपात 1 शि. 6 पैंस से 1 शि. 4 पैंस की दिशा में कम होने के बजाए, 2 शि. स्वर्ण की दिशा में बढना चाहिए। "फिर आप यह कहते है, "युद्ध से पूर्व की मूल्य–साम्यता चाहे नाममात्र की भी हो, पर वह अनुचित होगी।" नाममात्र की भी शब्दों से आपका क्या अभिप्राय है? –मूल्य स्तर को देखे बिना।

6160 मेरा विचार था कि आप स्वयं ही सहमत थे– मान लिया, अब 1925 में 1914 की तुलना में 1 शि. 4 पैंस अनुपात है तो वह केवल नाममात्र का परिवर्तन होगा क्योंकि मूल्यों में तो निश्चय ही परिवर्तन हुआ है।

6161 जो लोग यह बताते हैं जो युद्ध से पूर्व की दर 1 शि. 4 पैंस थी उनके संबंध में नाममात्रता कहां है? –आप 1 शि. 6 पैंस से 1 शि. 4 पैंस में निश्चितता परिवर्तन के संबंध में पूछ रहे हैं। मैं जो कुछ हम वास्तव में वहां देखते हैं, अपनी प्रारंभिक बात को लेता हूं। जैसाकि मैंने अपने उस बयान के अंत में कहा है। मैं कहता हूं, "संक्षेप में मुद्रा के मामले में, वास्तविक की सामान्य है।" इसलिए मैं सामान्य के रूप में 1 शि. 6 पैंस से आरंभ करता हूं।

6162 अब, मान लिया, आज, जब हम इस पर विचार-विमर्श कर रहे हैं, विनिमय 1 शि. 8 पैंस है, मैं यह मानता हूं कि आप 1 शि. 8 पैंस के लिए उसी आधार की पुष्टि होने का आग्रह करेंगे। जिस आधार की आपने 1 शि. 6 पैंस के लिए पुष्टि की थी? –हां।

6163 इसलिए, विनिमय 1 शि. 6 पैंस तक गया या नहीं, पर आधार इस बात का ध्यान रखें बिना भी प्रबल होगा कि दूसरे देशों ने क्या किया है, और आगे इस बात का ध्यान रखे बिना कि उस बिन्दु पर कैसे पहुंचा गया? –क्या मैं इसको अपने तरीके से स्पष्ट कर सकता हूं?

6164 हां, यदि आप चाहें तो जिस तरीके से मैंने इस समस्या को लिया है वह यह है। आज हमारे पास 1 शि. 6 पैंस हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हमें अपने मूल्यों को बढ़ाना पड़ेगा। मुद्रा की मात्रा को बढाए बिना हम निश्चय ही 1 शि. 4 पैंस स्वर्ण तक नहीं पहुंच सकते। इसलिए मेरे मस्तिष्क में पूरा प्रश्न यह है कि आज हमारे यहां जो कीमतें हैं क्या हम उन्हें बढाएं, ताकि हम 1 शि. 4 पैंस पर वापस जा सकें? श्रमिक समाज का एक सदस्य होने के नाते, मैं यह महसूस करता हूं कि कीमतों का गिरना बेहतर होता है। इस विषय में मेरा दृष्टिकोण यही है।

6165 मैं इसे दूसरे तरीके से लेता हूं। आप कहते हैं, जैसा कि आपने प्रस्तुत किया, कि श्रमिक वर्ग समाज का सदस्य होने के नाते, इसका अर्थ यह हुआ कि श्रमिक वर्ग की दृष्टि से यह अवांछनीय है? –हां, और मैं इससे भी आगे जा सकता हूं और यह कहता हूं कि राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी बढती हुई कीमतों की अपेक्षा गिरती हुई कीमतें बेहतर होती हैं।

6166 अब मेरा ख्याल है आपने दिए जा रहे उन तर्कों को सुन लिया होगा कि एक उच्च विनिमय एक ऐसा विनिमय जो उस बिन्दु से उच्चतर स्थिति में लाया गया है जिस पर वह 15 या 20 वर्ष की अवधि तक रहा है, उत्पादक के हित में अवांछनीय होता है। इस संबंध में आप क्या कहेंगे? –इस सबका अर्थ लाभ में कमी होना है। मैं तो इसमें एक

अन्तर करना चाहता हूं– मुझे पता नहीं, लोग इसे कितना पसंद करेंगे – उद्योग की मन्दी तथा लाभों की मन्दी के बीच अन्तर है। मेरा विचार है कि इस अंतर की बात प्रोफेसर मार्शल द्वारा स्वर्ण तथा रजत आयोग के समक्ष अपनी गवाही के दौरान कही गई थी। लाभ की मन्दी हो सकती है, अर्थात उद्यम वाले वर्ग को हो सकता है वह सब न मिले जो उन्हें तब मिलता जब कीमतों में वृद्धि होती, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि ऐसा हो।

6167 मुझे क्षमा कीजिए, क्या मैं उत्पादक से उसका संबंध नहीं बता सकता? यदि आप महसूस न करें तो हम बाद में निवेश पर आएंगे। परन्तु उत्पादक के संबध में आपका क्या विचार है? उसके मामले में, जितना अधिक विनिमय होगा, उतनी ही कम संख्या उसको उपलब्ध रुपयों की होगी? इसका उसके लिए बिल्कुल कोई महत्व नहीं है, क्योंकि वह इसे खर्च कर देता है। उसके उत्पादन की लागत में भी गिरावट आती है, अतएव, उसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। यदि उसे 15 रुपये मिले और यदि 15 रुपये से उसने किसी वस्तु की कुछ मात्रा खरीदी, और यदि अबसे पांच वर्ष बाद उसके पास दस रुपये हों और उन दस रुपयों में वह उतनी ही मात्रा खरीदे जितनी पहले पंद्रह रुपये में खरीदी गई थी। परिवर्तन केवल गणकों का परिवर्तन है।

6168 समायोजन कब पूरा होता है? परन्तु क्या तब तक अव्यवस्था होती है? –हां।

6169 अब हम वर्तमान समय में इस पर दृष्टिपात करें। आप सोचते हैं कि औसत भारतीय किसान मुश्किल से ही किसी मजदूर को लगाता है और वह अपने हाथों से ही खेती करता है? –मैं समझता हूं कि किसान कुछ मामलों में मजदूर को लगाता है।

6170 साधारण प्रक्रिया में, पूर्ण होने वाले समायोजन के लिए, आप यह आशा करेंगे कि जो मजदूरी वह अपने मजदूरों को देता है वह भी कम होगी? –हां, मेरा अभिप्राय है कि यदि वह उतनी ही राशि में लाभ प्राप्त करना चाहता है, तो मैं कहूंगा हां।

6171 बहुत अच्छा यदि किसान के मजदूर की मजदूरी में कमी नहीं हुई है तो क्या आप यह स्वीकार करेंगे कि उस सीमा तक, किसान को कम लाभ हुआ है? –कम लाभ, हां मैं उसे स्वीकार करता हूं।

6172 और उन मामलों में जहां पर किसान केवल अपना गुजारा ही कर सकता है, वहां पर वह हानि उठाता है? –नहीं, उसे लाभ नहीं होता, परन्तु उसे हानि भी नहीं होती। लाभ कुछ और चीज होती है वह अतिरिक्त होता है।

6173 जहां पर एक किसान या एक जिले में कृषकों का एक वर्ग अपना गुजारा पर्याप्त रूप में कर लेता है, उनको उतनी ही हानि होगी जितनी उस अनुपात में मजदूरी कम नहीं हुई थी। —मुझे मालूम नहीं, आप लाभ की परिभाषा कैसे देते हैं। मैं लाभ की परिभाषा अतिरिक्त लाभ के रूप में देता हूं।

6174 क्या उत्पादन के समस्त खर्चों का भुगतान करने के बाद? —हां।

6175 यदि सन 1921 में एक किसान अपना गुजारा भर ही करता था और जहां तक उसके उत्पादन का संबंध है 1924 में जब विनिमय, 1 शि. 6 पैं. पर स्थिर किया गया, और उसकी मजदूरों की मजदूरी में भी कमी नहीं हुई तो क्या उसे निश्चित रूप में हानि होगी? —उसे अपने लाभ के कुछ भाग की हानि होगी।

6176 क्या उसे बहुत कम बचत होगी? —मैं "लाभ" शब्द पर जोर दूंगा।

6177 क्या उसे कम लाभ होगा? —हां लाभ में मन्दी होगी।

6178 उस सीमा तक वास्तव में उत्पादक हानि उठाने वाला होगा? —यदि आप यह सोचते हैं कि उस लाभ पर उसका वैद्य अधिकार है तब, आपका यह कहना ठीक होगा कि उसे हानि है, परन्तु यदि वह केवल एक अन्तरीय लाभ था तब वह हानि नहीं।

6179 1 शि. 4 पैं. के रूप में यह केवल अन्तरीय लाभ था? —हां।

6180 क्या वह 25 या 23 वर्ष तक चलेगा? —मैं यह कहता हूं कि यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि आप उसकी परिभाषा कैसे करते हैं?

6181 आप इसकी परिभाषा स्वयं कैसे करेंगे? जब तक वह उत्पादन में किए गए अपने खर्च को पुनः प्राप्त करने के योग्य है, तब तक, उसे हानि नहीं होगी।

6182 और क्या आप उस परीक्षण को प्रत्येक व्यक्ति पर लागू करेंगे? —मैं यह कहूंगा कि वह अपना गुजारा कर रहा है।

6183 क्या आप यह सोचते हैं कि वह अधिकतम सी होगी जिसे औसत नागरिक, अपनी निजी सुविधा के लिए लागू करना चाहेगा? —मुझे डर है, मैं इस संबंध में कोई राय नहीं दे सकता।

6184 आप पैराग्राफ 8 में यह कहते हैं, "इस संबंध में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए," और उससे नीचे आप यह कहते हैं," वर्तमान ठेके निःसंदेह विभिन्न अवस्थाओं के हैं।" वहां आपके विचार में किस प्रकार के ठेके हैं? —उदाहरणार्थ लीस तथा अन्य ठेके भी, जैसे भवन निर्माण के ठेके आदि।

6185 वे विनिमय के प्रश्न को साथ किस प्रकार आते हैं? –वे ठीक उसी प्रकार से धन सम्बन्धी ठेके हैं, वे सब के धन के ठेके है।

6186 तब क्या आपका अभिप्राय प्रत्येक ठेके से है? –हां।

6187 यदि एक व्यक्ति एक घर मुफास्सेल ग्रामीण स्थान में, 4000 रुपये में बना रहा है तो वह भी इसके अंतर्गत आएगा? –निःसंदेह, यह रुपये का निवेश है।

6188 आपके मन में वह प्रत्येक चीज है, जिसमें देश में रुपये का निवेश शामिल है? –हां, उसमें क्रय शक्ति होती है।

6189 फिर आप कहते हैं, इन दो तथ्यों को मानकर सबसे उत्तम समाधान, 1 शि. 4 पैंस तथा 1 शि. 6 पैं. के बजाए आपने एक औसत का उल्लेख "क्यों" किया? –मैं ऐसा इसलिए कहता हूं क्योंकि 1925 में, कुछ ऐसे ठेके हो सकते हैं जो उस समय किए गए जब अनुपात 1 शि. 4 पैं. था। हो सकता है कि कुछ ठेके अब भी जारी हों, जो उस समय किए गए थे जब क्रय शक्ति 1 शि. 4 पैं. की दर पर थी, और इसलिए, इन सबको न्याय प्रदान करने के लिए, मेरे विचार से, सबसे अच्छा तरीका है जिससे इसे किया जा सकता है।

6190 1914 से पहले किए गए ऋणों के रूप में ठेके के संबंध में क्या बात है? –मैं नहीं समझता कि इस समय अधिक विद्यमान होंगे।

6191 क्या आप सोचते हैं कि किसानों द्वारा बोने वालों को देय इन सब ऋणों का भुगतान एक निश्चित अवधि के अन्दर किया जाता है? –मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि कोई भी वाणिज्यिक संविदा पांच वर्ष से अधिक तक नहीं बढता और उनका अनुपात बहुत ही कम होता है। इसके संबंध में कोई सांख्यिकीय सूचना उपलब्ध नहीं है। प्रोफेसर फिशर ने उस संबंध में अपनी पुस्तक में कुछ गणना की है। वह उसमें लिखता है कि ब्याज की दर मूल्यों से अलग होती है। जिससे ब्याज की दर तथा मूल्यों की वृद्धि तथा गिरावट के साथ कुछ संबंध होता है। फिर वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अधिकांश संविदाएं वाणिज्यिक दृष्टि से बहुत ही नवीन है।

6192 आपका अभिप्राय भारत के संबंध में है? –मेरा अभिप्राय सामान्य रूप से है। मैं भारत के विषय में विशेष नहीं जानता, भारत में कुछ विलक्षण बात हो सकती है। परन्तु मुझे मालूम नहीं कि ऐसा क्यों होना चाहिए।

6193 क्या आप यह सोचते हैं कि भारत में स्थिति अलग हो सकती है? –मुझे तब तक ऐसा नहीं सोचना चाहिए, जब तक उसके संबंध में ऐसा कोई प्रमाण न मिले कि वह ऐसा था।

6194 आप सोचते हैं कि भारत में समस्याएं वैसी ही हैं जैसी पश्चिमी देशों में हैं? मुझे ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता कि वे वैसी क्यों नहीं हैं।

6195 यदि उन्हें दूसरे भिन्न रूप में स्वीकार कर लिया जाएगा तो क्या उससे आपको आश्चर्य होगा? –उससे मुझे आश्चर्य होगा।

6196 मूल्य स्तरों के समायोजन के विषय में क्या आप यह सोचते हैं कि समायोजन अब पूर्ण होने वाला है यह 1 शि. 4 पैंस से 1 शि. 6 पैंस की विनिमय दर में गड़बड़ होने के कारण है? –उसमें कुछ गड़बड़ होगी। यदि हम 1 शि. 4 पैंस से 1 शि. 6 पैंस तक वापस गए तो वह मजदूरी पाने वालों के लिए हानिकारक होगा।

6197 निम्न से उच्च दर 1 शि. 4 पैंस से 1 शि. 6 पैंस तक की दर में गड़बड़––––? –यह श्रमिक वर्ग के लिए अनुकूल रही है।

6198 क्या वह समायोजन पूर्ण है, या उसका अब भी कोई कुसमायोजन है? –मैं नहीं कह सकता, यह मामला सांख्यिकीय अन्वेषण का है जो मैंने नहीं किया है? परन्तु मैं समझता हूं कि विनिमय दीर्घकाल से 1 शि. 6 पैंस पर स्थिर रहा है।

6199 आपके विचार से यह कितने समय से स्थिर रहा है? –मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता, परन्तु इसमें निश्चित रूप में स्थिरता के चिन्ह दिखाई देते हैं।

6200 कितने समय से क्या आपका कुछ अंदाजा है? कुछ गवाहों ने छह महीने बताए हैं, कुछ ने आठ महीने....? –मेरा विचार है लगभग इसके आस-पास ही समय होगा।

6201 क्या आपके विचार से इस स्थिरता का निर्णय करने के लिए छह या आठ महीने की अवधि पर्याप्त होती है? –मैं कहता हूं कि इसे उचित महत्व दिया जाना चाहिए और इसलिए आपको एक औसत का पता लगाना चाहिए।

6202 परन्तु मेरा विचार है, अपनी मौखिक पूछताछ के दौरान आपने यह कहा है कि आप 1 शि. 6 पैंस पर सहमत होने के लिए तैयार है? –हां क्योंकि राष्ट्रीय दृष्टि से यह बेहतर है, इसमें स्फीति नहीं होगी। यही मैं कहता हूं। यहां तक कि यदि 1 शि. 6 पैंस के बाद भी समायोजन की प्रक्रिया पूरी नहीं हुई जिससे हम यह कह सकें कि 1 शि. 6 पैंस वास्तव में वह स्तर है जिसकी आवश्यकता है.। मैं यह कहता हूं कि हमें इसे उसी पर स्थापित करना चाहिए।

6203 यहां पर उद्योगों में समायोजन के संबंध में क्या आपका कोई विचार है क्या हमें आप कोई राय दे सकते हैं? –कुछ भी नहीं।

6204 (श्री प्रेस्टन) : आपके द्वारा सर एलेक्जेंडर मुरे को दिए गए कुछ उत्तरों के विषय में यदि कोई गलतफहमी हो तो यदि हम रिकार्ड पर कुछ वास्तविक तथ्यों को रखें तो अच्छा होगा। एलेक्जेंडर मुरे को ये उत्तर उस अभागी आरक्षित निधि स्वर्णमान निधि के संबंध में दिए थे। स्वर्णमान निधि 1901 में अस्तित्व में आई और यह 1900 में पहले अप्रैल से अर्जित लाभ का परिणाम था। निधि में शेष आज 40 मिलियन पाउंड है, क्या ऐसा नहीं है?

–हां, मेरे विचार से यह उसके लगभग है।

6204ए वित्त मंत्री ने जब गत वर्ष मुद्रा के संबंध में अपनी रिपोर्ट दी थी तो उन्होंने निम्नलिखित विवरण दिया था "जैसाकि विवरण से पता चलेगा, खरीदे गए बाण्ड तथा स्टॉक, अगले कुछ वर्षों के दौरान पुनः भुगतान के लिए देय है। इस समय आरक्षित निधि (रिजर्व) की जमा में जो राशि है, उसमें 27,449, 950 सिक्का ढलाई का लाभ है और शेष निधि (रिजर्व) में रखी प्रतिभूतियों पर संचित ब्याज है।" आप यह कहते हैं कि इस निधि में उस समय तक वृद्धि नहीं हो सकती जब तक रुपये को सिक्के और अधिक न हो। गत तीन वर्षों में निवेश पर ब्याज द्वारा एक तिहाई वृद्धि कैसे हुई है।

6205 फिर यदि उस आरक्षित निधि पर ब्याज की उसमें जोड़ते चले जाएं तो आप उस निधि को एक उपयोगी कार्य के लिए बढ़ा रहे हैं और यह इसमें इन तरीकों को अपनाए बिना कर रहे हैं जिनकी आप प्रबल रूप में निन्दा करते हैं। – हां निःसंदेह।

6206 उस निधि की उपयोगिता के संबंध में केवल एक और बात। इस बात की आपको जानकारी होगी कि 1908 में विश्व की मन्दी की अवधि के दौरान, यदि वह उसी निधि के लिए नहीं होता तो हम अपनी बाह्य मूल्य साम्यता को बनाकर कभी नहीं रख सकते थे। क्या आप इसे स्वीकार करते हैं? – हां।

6207 धन्यवाद? – यद्यपि, निःसंदेह किसी चीज की जांच की गई है जिसको मुझे अपवादस्वरूप समझना चाहिए – ऐसा कहने में मेरा अभिप्राय यह है कि मैं निवेश द्वारा स्वर्णमान निधि को बढाने के पक्ष में हूं। यदि एक आरक्षित निधि का निवेश किया जाता है, तो वह कोई आरक्षित निधि बिल्कुल नहीं है।

6208 (सर रेजिनाल्ड मांट) मैं समझता हूं आपकी मुख्य मांग आंतरिक मूल्यों की स्थिरता है? –बिल्कुल।

6209 और आप यह मानते हैं कि उस स्थिरता को फिर स्वर्ण मूल्य के साथ जोड़ा जाएगा, क्या नहीं जोड़ा जाएगा। वे स्वर्ण मूल्यों के साथ अलग-अलग होंगी? –हां।

6210 फिर आंतरिक मूल्यों को, स्वर्ण मूल्यों के साथ जोड़ा जाएगा, क्या नहीं जोड़ा जाएगा? –वे स्वर्ण मूल्य के साथ-साथ अलग-अलग होंगे? हां।

6211 अब स्वर्ण मुद्रा रहित, एक स्वर्ण विनिमय मान की कुछ लोगों द्वारा उसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर सिफारिश की गई है, परन्तु मैं समझता हूं कि आप यह मानते हैं कि इससे उस उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होगी। –मेरा विचार है कि जहां तक भारत का सम्बंध है, उसने इसे प्राप्त नहीं किया है।

6212 जो कुछ अतीत में किया जा चुका है, मैं उसके बारे में नहीं कह रहा था, हमें यह बताया गया है कि यदि एक स्वर्ण विनिमय मान स्वतः ही बनाया जाता तो क्या वह उन उद्देश्यों को प्राप्त कर सकता था? –मैं नहीं जानता, कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं जिनका यह दृष्टिकोण है, परन्तु मैं यह नहीं देख सकता कि इसे किस प्रकार माना जा सकता है।

6213 मैं यह चाहता हूं कि आप समझाएं कि स्वर्ण मुद्रा उसे क्यों प्राप्त कर लेगी और स्वर्ण विनिमय मान उसे क्यों प्राप्त नहीं करेगा? –मेरा प्रथम आधार यह है कि विनिमय मान सोने का अवमूल्यन करता है और इसलिए मूल्य के मान के रूप में उसे बेकार बना देता है। स्वर्ण विनिमय मान से सोने की मितव्ययता के कारण सोने की प्रचुरता हो जाती है।

6214 क्या आपको इसे दूसरे रूप में नहीं रखना चाहिए और यह कहना चाहिए कि यदि हम यहां स्वर्ण मुद्रा की शुरूआत करेंगे तो इससे हम सोने के मूल्य में वृद्धि करेंगे? क्या वह उसे प्रस्तुत करने का अपेक्षाकृत अधिक सही तरीका नहीं होगा? –हां, आप उसे इस तरीके से प्रस्तुत कर सकते हैं। अतएव वर्तमान परिस्थितियों में, सोना मूल्य का एक बेहतर मान होगा। मेरा अगला निवेदन यह है कि क्या विनिमय मान द्वारा हम वास्तव में, मितव्ययता को लागू कर रहे हैं?

6215 मैं मितव्ययता का प्रश्न नहीं उठा रहा था। मैं आपके इस निर्णय के कारण का पता लगाने का प्रयत्न कर रहा था कि और कोई चीज नहीं, बल्कि स्वर्ण मुद्रा ही, आंतरिक मूल्यों को सोने के साथ जोड़ कर रखने

के आपके उद्देश्य को लागू करेंगी? –अधिक स्थिर होंगे अपेक्षाकृत अन्य उपायों के, मैंने यह कहा था। यदि हमने स्वर्णमान को अपनाया तो हमारा कीमत विनिमय मान के अंतर्गत की कीमतें की स्थिरता की अपेक्षा, अधिक स्थिर होंगी। मैंने यह नहीं कहा कि स्वर्णमान के अंतर्गत वे पूर्णतया स्थिर होंगी क्यों स्वर्ण स्वयं में मूल्य का पूर्ण तथा स्थिर मान नहीं है। किन्तु वह विनिमय मान की अपेक्षा निश्चय ही अधिक स्थिर होगा।

6216 केवल इसलिए कि हम अपेक्षाकृत अधिक ही सोने का प्रयोग कर रहे होंगे? –हां।

6217 दोनों में भिन्नता होने के लिए आपका यही एकमात्र कारण है? –हां।

6218 (सर माणोकजी दादाभाई) आपने सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास को जो उत्तर दिए हैं उनके सम्बन्ध में मैं एक कदम और आगे बढ़ता हूं।: पैराग्राफ 8 में आप कहते, "इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान संविदाओं का समय अलग-अलग है, परन्तु उनमें से अधिकांश बहुत हाल ही की तारीख हैं और संभवतः एक वर्ष से अधिक की नहीं हैं। जिससे यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण संविदात्मक दायित्वों का गुरूत्व केन्द्र हमेशा वर्तमान के निकट होता है।" जब आप इस मामले का उल्लेख कर रहे हैं तो मैं समझता हूं कि आप किसी निश्चित सांख्यिकी के बिना ही बता रहे हैं? –हां, मैं केवल यह कहता हूं कि प्रोफेसर फिशर द्वारा की गई एक गणना रही है।

6219 आपने इसका उल्लेख एक प्रकार से सामान्यीकरण के रूप में किया है? –हां, मैंने कहा है कि मेरे पास कोई निश्चित सूचना नहीं है।

6220 जब आप यह कहते हैं कि सम्पूर्ण संविदात्मक दायित्व का गुरूत्व केन्द्र वर्तमान के निकट है, तो यह कोई बहुत निश्चित अवधि नहीं है। क्या वह गुरूत्व केन्द्र, बारह महीने की परिधि के अंतर्गत नहीं आएगा? – हां, उसके लगभग ही होगा। क्योंकि मैंने एक वर्ष का कहा है।

6221 इसलिए, यदि कोई अनुपात, बारह महीने पहले था, तो आपके तर्क के अनुसार, हमारा उसे 1 शि. 6 पैंस के रूप में लेना उचित होगा? – बिल्कुल, ठीक।

6222 इसलिए आपका भी उसे मानना उतना ही औचित्य होगा? –हां।

6223 फिर जब आप इस मामले पर चर्चा कर रहे हैं और जब आपने 1 शि.

6 पैंस अनुपात के पक्ष में अपनी इच्छा प्रकट की तो मैं समझता हूं कि आपकी अपनी राय प्रोफेसर फिशर की उक्ति पर आधारित है? —हां।

6224 अब प्रोफेसर फिशर की उक्ति हमारे सामने है, उसमें प्रयुक्त शब्द इस प्रकार है—"रुपये के ठीक मान की समस्या, पीछे के बजाय आगे की ओर देखती है, उसे इस समय चालू व्यापार से प्रारंभ करना चाहिए, युद्ध व्यापार से प्रारंभ करना चाहिए युद्ध से पूर्व के काल्पनिक अंकित मूल्य से नहीं?"

—बिल्कुल।

6225 क्या आप यह नहीं समझते कि अब प्रोफेसर फिशर ने वह बात कही थी तो उसके समक्ष केवल यूरोप की स्थिति थी? —हां परन्तु वह बात प्रायः किसी भी देश पर लागू होगी। यह एक सामान्य बात है।

6226 मेरा प्रश्न यह है कि जब उसने वह बात कही थी तब क्या उसकी दृष्टि में उस समय केवल यूरोप की स्थिति नहीं थी? मैं नहीं कह सकता।

6227 (अध्यक्ष) साक्षी ने उत्तर दिया है कि उसके विचार से वह हर परिस्थिति में लागू होगा?

—हां, यह एक सामान्य बात है।

6228 (सर माणोकजी दादाभाई) क्या इन अभिव्यक्त शब्दों द्वारा वह निष्कर्ष उचित ठहरता है? —मेरे विचार से यह उचित है।

6228ए आपके विचार से यह है? "वह आगे कहता है, वह केवल युद्ध का ही उल्लेख नहीं करता, वह कहता है, "कोई मूल रजत पाउंड को पुनःस्थापित करने या ग्रीस तथा रोम के मुद्रा-मानों पर लौटने के विषय में भी बात कर सकता है।"

6229 अब आप भली-भांति जानते हैं कि 1 शि. 6 पैंस का यह अनुपात भारत में केवल पिछले 16 महीने से लगातार रहा है। यदि, भारतीय परिस्थितियों में इस अवधि को 16 महीने मानते हैं तो उस समय आप क्या कहेंगे जब आप युद्ध से पूर्व के किसी काल्पनिक सममूल्य के विषय में सोचते हैं? क्या आप यह सोचते हैं कि भारत में 16 महीने की अवधि से निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई बड़ा भारी अंतर पड़ेगा? वह युद्ध से पूर्व के काल्पनिक सममूल्य का उल्लेख कर रहा है, इसमें अपेक्षाकृत अधिक लम्बा समय लगता है? —नहीं, नहीं। वह केवल पीछे 1914 का

उल्लेख कर रहा है, उस सममूल्यता का उल्लेख कर रहा है जो 1914 में विद्यमान थी। मैं कहता हूं, यदि सूचना के अनुसार, 1 शि. 6 पैंस 16 महीने तक अस्तित्व में रहा है, तो मैं कहता हूं कि इसकी पुष्टि होनी चाहिए।

6230 हां। किन्तु, यदि उससे पहले, कुछ वर्षों के संक्षिप्त अंतराल के साथ, यह समान रूप में, 20 वर्ष तक 1 शि. 4 पैंस पर बनी रही। आप उन सब विचारों को उठाकर किनारे रख देंगे? –हां, क्योंकि जो संविदाएं 20 वर्ष पहले की गई थीं, उनमें से अब कोई भी अस्तित्व में नहीं है। और इसलिए हमें उसके विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

6231 यह आपका तर्क है? और आप, देश की कृषि तथा उद्योगों दोनों पर पड़ने वाले इसके आर्थिक प्रभाव को भी एक किनारे रख देंगे? – मैं कहता हूं, वे बहुत अच्छे होंगे। अनुपात को 1 शि. 6 पैंस पर लाने के लाभ में कुछ मन्दी आ सकती है, परन्तु उद्योग में मन्दी नहीं होगी।

6232 हां। इसलिए आप उन कारकों को अधिक महत्व नहीं देते। आप सोचते हैं कि कुल मिलाकर यह देश के हित में होगा? – हां।

6233 मैं आपके समक्ष एक दूसरा, थोडा सा काल्पनिक प्रश्न रखूंगा। हमें अपनी रिपोर्ट को लिखने में छह महीने का समय लगेगा। अगले 6 महीने में यदि अनुपात 1 शि. 8 पैंस हो जाता है, तो मेरा विचार है कि आपके मतानुसार यदि उसे अपनी गणना का आधार बनाएं तो क्या आपका ऐसा करना उचित होगा?

– मैं पुनः यह कहूंगा, कि आपको एक औसत निकालना चाहिए।

6234 1 शि. 8 पैंस तथा 1 शि. 6 पैंस के बीच या 1 शि. 4 पैंस के बीच?

–1 शि. 8 पैंस तथा 1 शि. 6 पैंस के बीच।

6235 और आप समझते हैं कि वह एक स्वस्थ वित्तीय नीति होगी? –मैं नहीं जानता। आपको किसी प्रकार का औसत निकालना होगा। आप अलग-अलग संविदा के साथ न्याय नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, यदि आप अमेरिका के स्वतंत्रता युद्ध का उदाहरण लें और उस समय तो आर्थिक उतार-चढ़ाव आया उसको देखें तो उस स्थिति में अमरीकावासी जो कुछ कर सके वह निःसंदेह इसी प्रकार का कार्य था। –औसत निकालना तथा उसके आधार पर समस्त संविदाओं को भंग करना। वे अलग-अलग संविदा के साथ न्याय नहीं कर सके। यह असंभव है।

6236 (सर हैनरी स्ट्राकोश)। डा. अम्बेडकर, मैं आपके कुछ बयानों का जिक्र करना चाहता हूं जो आपने स्वर्ण विनिमय मान की शुरूआत करने की अवांछनीयता के संबंध में दिए थे। अपनी गवाही की दौरान एक समय आपने यह कहा कि विनिमय में परिवर्तनीयता से मुद्रा का निर्गम सीमित नहीं होगा और इसलिए उससे आंतरिक मूल्यों में स्थिरता नहीं आएगी। यह आपने एक आपत्ति की थी। और फिर एक और बिन्दु पर आपने यह कहा था कि स्वर्ण विनिमय मान एक वांछनीय मान नहीं है क्योंकि इसके अंतर्गत मूल्य, एक पूर्ण स्वर्ण मान के अंतर्गत मूल्यों की अपेक्षा कम स्थिर होंगे? —हां।

6237 अब आप आर्थिक मामलों के विद्यार्थी हैं और इसमें संदेह नहीं कि आपने जिनेवा सम्मेलन की कार्यवाही को समझा होगा? —हां, यह मैंने उस समय किया, जब मैं लंदन में था। कदाचित, हाल में नहीं किया है। परन्तु मैं यह जानता हूं कि स्वर्ण विनिमय मान प्रस्तावित किया गया था।

6238 आपको याद होगा कि जिनेवा सम्मेलन, एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन था। उसने एकमत से एक प्रस्ताव अपनाया था। उसमें स्वर्ण विनिमय मान को अपनाने के लिए देशों को आदेश दिया गया था। ऐसा इस विस्तार से किया ताकि वे सोने की क्रय शक्ति को स्थिर कर सकें और उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए केन्द्रीय बैंकों के सहयोग की सिफारिश की थी? —मैं नहीं समझता कि उन्होंने ऐसा सोने की क्रय शक्ति को स्थिर करने के विचार से किया था, उन्होंने ऐसा अपनी निजी मुद्रा को स्थिर करने के लिए किया था।

6239 उन्होंने यह बात निश्चित रूप में कही थी कि यह स्वर्ण की क्रय शक्ति को स्थिर करने के लिए है। कुछ भी हो, आप यह समझ लें कि वह ऐसा ही है। अब वह एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था है और उन्होंने वह निष्कर्ष निकाला है और प्रकट रूप में वे आपके इस विचार से सहमत नहीं कि स्वर्ण विनिमय मान, आंतरिक रूप में उतने बडे परिमाण में स्थिरता उत्पन्न नहीं करता जितने परिमाण में स्वर्णमान करता है? —ओह नहीं। मेरा निवेदन यह है कि हम स्वर्ण विनिमय मान की तुलना, एक विशुद्ध अपरिवर्तनीय मान के साथ कर रहे हैं। युद्ध में लिप्त देशों के पास युद्ध के दौरान एक पूर्णतया अपरिवर्तनीय मुद्रा थी और निश्चय ही अपरिवर्तनीय मुद्रा, विनिमय मान की अपेक्षा खराब होती है क्योंकि इसमें परिवर्तनीयता होती है। जैसा कि पैरा 2 के उप पैरा (2) में मैंने स्वयं

कहा है। वे स्वर्ण मान की तुलना स्वर्ण विनिमय मान के साथ नहीं कर रहे थे। वे स्वर्ण विनिमय मान की तुलना, कागज की मुद्रा के साथ कर रहे थे जो उनके पास थी।

6240 परन्तु मेरा निवेदन है कि उन्होंने तुलना बिल्कुल नहीं की। उन्होंने सिफारिश की थी? –परन्तु उस समय विद्यमान परिस्थितियों के संदर्भ में ही की थी मुझे उसे उस प्रकार सीमित करना चाहिए।

6241 कुछ भी हो, वह एक तथ्य है। अब, उससे बिल्कुल अलग बात यह है कि मुझे बिल्कुल निश्चय नहीं कि आप किस कारण यह सोचते हैं, स्वयं सोने की क्रय-शक्ति में परिवर्तन के अलावा, स्वर्ण विनिमय मान, स्वर्णमान के समान स्थिर क्यों नहीं होना चाहिए। यह बात मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आती और आपके उत्तर देने से पहले, मैं केवल उस बात को स्पष्ट करना चाहूंगा कि मैं स्वर्ण विनिमय मान से क्या समझता हूं। एक स्वर्ण विनिमय मान वह मान है, जहां पर देश के अंदर एक ऐसी मुद्रा का परिसंचरण है जो आंतरिक रूप में देश परिवर्तनीय नहीं है, परन्तु जो बाह्य रूप में, मुक्त रूप में परिवर्तनीय है और आप इस मुद्रा को निर्यात खरीद के लिए सोने में परिवर्तनीय बना सकते हैं। अब, उस मान को लेकर, मुझे बहुत प्रसन्नता होती यदि आप हमें यह बताएंगे कि ऐसे मान में स्थिरता को बनाए रखने की योग्यता स्वर्णमान की अपेक्षा कम क्यों होती है? महोदय, मैं आपके प्रश्न को समझ गया और इस विषय में मेरा उत्तर यह है। परिवर्तनीयता, मुद्रा की मात्रा को देश की आवश्यकताओं तक सीमित करने का एक साधन है जिस परिवर्तनीयता का अभिप्राय केवल बाह्य कार्यों के लिए होता है, उसमें उस मुद्रा की मात्रा को सीमित करने की पर्याप्त क्षमता नहीं होती। फलतः, ऐसी मुद्रा पर आप आंतरिक मूल्यों को स्थिर नहीं रख सकते।

6242 आप यह क्यों कहते हैं कि उसमें आंतरिक कार्यों के लिए परिवर्तनीयता की अपेक्षा कम क्षमता होती है? –क्योंकि प्रभावी होने के लिए परिवर्तनीयता, पूर्ण होनी चाहिए।

6243 परन्तु क्या यह पूर्ण है? –नहीं है।

6244 परन्तु प्रकट रूप में यह पूर्ण है। इसमें अंतर केवल यह है कि एक मामले में आप अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा को अंतर्राष्ट्रीय कार्य के लिए परिवर्तित करते हैं और दूसरे मामले में, आप उसे या तो अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा के लिए बदलते हैं जिसका प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय रूप में होता है या अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा

के लिए करते हैं जिसका देश के अंतर परिसंचरण है। —नहीं, नहीं, बात यह है। जब आपका दायित्व, परिवर्तनीयता के लिए, अपूर्ण हो जैसा कि विनिमय मान के मामले में है तो बिना किसी भय के अपेक्षाकृत अधिक मुद्रा को जारी करने की संभावना होती है।

6245 परन्तु आपने अभी कहा कि परिवर्तन करने का दायित्व दोनों मामलों में निर्गम को सीमित कर देता है? —हां, परन्तु परिवर्तन करना, परिवर्तनीयता के साधन की क्षमता पर निर्भर होता है। यदि आपकी परिवर्तनीयता सम्पूर्ण है, अर्थात यदि निर्गमकर्ता के समक्ष जब भी उसकी मुद्रा प्रस्तुत की जाती है तो वह उसे बदलने के लिए बाध्य है तब परिवर्तनीयता सम्पूर्ण होती है।

6246 परन्तु मेरा प्रस्ताव यह था कि स्वर्ण विनिमय मान निर्गम करने वाले प्राधिकारी को आंतरिक सांकेतिक मुद्रा को बाह्य कार्यों के लिए सोने में बदलने के लिए बाध्य करता है? —और सब कार्यों के लिए नहीं।

6247 अब मैं यह जानना चाहता हूं कि आंतरिक कार्यों के लिए सांकेतिक मुद्रा की क्रयशक्ति की स्थिरता में वृद्धि क्यों होनी चाहिए? —क्योंकि सिद्धांत यह है कि कोई भी वस्तु, तथा इसमें मुद्रा भी शामिल, अपने आपको इस तथ्य द्वारा बनाकर रखती है कि उसकी मात्रा, आपूर्ति सीमित होती है। यह राजनीतिक अर्थनीति की प्रथम प्रारंभिक प्रतिज्ञप्ति है, कि कोई भी वस्तु अपने आपको इस तथ्य के कारण बनाकर रखती है कि उसकी आपूर्ति सीमित होती है। यदि प्रदत्त वस्तु सीमित नहीं है तो उसका अवमूल्यन होना अवश्यंभावी है।

6248 फिर क्या आप यह सोचते हैं कि स्वर्णमुद्रा वाले आपके स्वर्णमान में परिसंचरण में सोने के सिक्के के अलावा और कोई चीज नहीं होगी, —नहीं। मैं कहता हूं कि रुपया परिसंचरण में होगा।

6249 और कोई बैंक नोट नहीं? —हां, बैंक नोट होंगे। क्यों नहीं होंगे?

6250 तब, मैं यह नहीं समझता कि आप दूसरे मामले की अपेक्षा एक मामले में आंतरिक निर्गम को अधिक प्रभावी रूप में किस प्रकार सीमित कर रहे हैं? —क्योंकि मैं यह कह रहा हूं कि टकसाल को बंद कर दिया जाएगा।

6251 बैंक नोटों के निर्गम के विषय में क्या होगा? —वे आवृत हैं। जारी किया गया आवृत नोट, मुद्रा में वृद्धि नहीं है। मान लिया आप सोने की कुछ मात्रा बैंक में जमा करते हैं और आप उसे आवृत्त करने के लिए एक निश्चित मात्रा में मुद्रा जारी करते हैं तो वह मुद्रा, में वृद्धि नहीं है।

6252 तो आप ऐसे नोट रखना चाहते हैं जो 100 प्रतिशत स्वर्ण से आवृत्त हों? —मैं शत-प्रतिशत सोना नहीं कहता।

6253 तब आप इसे सीमित कैसे करेंगे? —मेरा अभिप्राय यह है कि परिवर्तनीयता सीमाकरण की एक विधि है। मेरे पास कागज की मुद्रा होगी जो पूर्णतया परिवर्तनीय होती है और न केवल बाह्य व्यापार के लिए परिवर्तनीय होगी जिससे कि यह अपने मूल्य का रख-रखाव कर सकेगी यह सीमा के अन्दर होगा। इसलिए वह इस तथ्य के कारण अपने मूल्य को बनाए रखेगी। कागजी मुद्रा परिवर्तनीय होने के कारण अपना मूल्य बनाए रखेगी।

6254 और मुद्रा की मौसमी आवश्यकता का प्रबंध आप कैसे करेंगे? —हां, मैं कहता हूं कि आप मुद्रा के न्यासीय भाग का प्रसार कर सकते हैं ताकि मौसमी मांग के दौरान कागज के प्रति जारी करने की अनुमति मिल जाए।

6255 क्या आप उसे यहां जारीकर्ता के विवेक पर नहीं रखेंगे? —हां, परन्तु यहां पर यह परिवर्तनीयता ही विवेक को नियंत्रित करती है। परिवर्तनीयता एक साधन है जिसके द्वारा जारीकर्ता की इच्छा नियंत्रित होती है। इसमें कोई खतरा नहीं होगा। यद्यपि मैं यह स्वीकार करता हूं कि स्वर्णमान के अंतर्गत भी सोना निबंधित रूप में बाहर जा सकता है और देश में केवल कागजों के नोटों की बाढ़ आ सकती है।

6256 क्या आप यह कहेंगे कि दो निर्धारित स्वर्ण बिन्दुओं पर एक अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा में परिवर्तन करने का दायित्व मुद्रा की स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त होती है। क्योंकि यदि आप आंतरिक रूप में मुद्रा अधिक जारी कर देते हैं तो क्या आपके रुपये का सोने के परिप्रेक्ष्य में अवमूल्यन हो जाएगा? —हां, मैं इसे स्वीकार करता हूं, परन्तु यह बहुत दिन बाद होगा। ऐसा होने से पहले, बहुत बडा अंतराल होगा और कुछ देशों में हो सकता है ऐसा न भी हो।

6257 यूरोप तथा अन्य देशों में युद्ध से पहले स्वर्णमान कैसे काम करता था? —यह परिवर्तनीयता के आधार पर काम करता था, परिवर्तनीयता केवल बाह्य कार्यों के लिए ही नहीं थी।

6258 परन्तु क्या उस मान को केन्द्रीय बैंकों द्वारा मुख्य रूप से सफल नहीं किया गया जो सोने में परिवर्तन नहीं कर रहे थे किन्तु विदेशी मुद्रा को रख रहे थे और क्या केवल अंतिम उपाय के रूप में सोने का प्रवाह

एक केन्द्र से दूसरे की ओर जा रहा था? – परन्तु परिवर्तनीयता की दृष्टि से उनकी व्यवस्था पूर्ण तथा अबाध थी।

6259 आप यह भी जानते हैं कि यूरोप महाद्वीप पर अनेक बडे देशों के पास पूर्णतया स्थिर मुद्रा थी, उनके पास व्यावहारिक रूप में परिसंचरण के लिए सोना नहीं था? – हां ऐसा ही था।

6260 (अध्यक्ष) डाक्टर अम्बेडकर, आज आपने हमें अत्यंत सहायता व सहयोग दिया है, इसके लिए हम आपके बहुत आभारी हैं।

(गवाह चला जाता है)

4

भारतीय मुद्रा की वर्तमान समस्या—1*

2 शिलिंग बनाम 1 शिलिंग 4 पैंस का अनुपात

यूरोप का महान युद्ध, हमारी स्मृति में सबसे असाधारण घटना थी। इस घोर विपदा के दौरान, उसके प्रभाव से ऐसी कोई चीज अछूती नहीं बची जो अस्त-व्यस्त न हुई हो। परन्तु जितनी चीजों पर इसका प्रभाव पड़ा उनमें इतना भारी आघात किसी को नहीं पहुंचा, जितना मुद्रा प्रणाली को पहुंचा था। आज यह पता चलता है कि जर्मन मार्क आस्ट्रियन क्राउन, रूस का रूबल, फ्रांस का फ्रैंक, तथा इटली का लीरा विश्व की गणना की उल्लेखनीय कुछ मुख्य इकाइयों ने अपना आधार खो दिया और उन्होंने अपनी मूल सममूल्यता से दूर तक एक लम्बी चौड़ी यात्रा की है। यहां तक कि ब्रिटेन का पाउंड भी इसका शिकार बना और रुपया जो कभी भी युद्ध की चपेट में नहीं आया था उन बंधनों से बच निकला जिनका प्रबंध उसके संरक्षकों द्वारा उसे स्थिर रखने के लिए किया गया था।

युद्ध के बन्द होने के बाद किए गए पुनर्निर्माण की अवधि में, ऐसे लोगों का पता लगाना स्वाभाविक था जो मुद्रा की युद्ध से पूर्व की स्थिति पर लौटने के इच्छुक हों। इस सार्वभौमिक मांग की सहानुभूति में भारत में उसके पक्ष में एक निश्चित कार्यक्रम वाली एक दल का उदय हुआ है। इस दल की राय में भारतीय मुद्रा रुपये के प्रति १ शि. ४ पैंस के अनुपात पर स्थिर होनी चाहिए। यह अनुपात भारतीय मुद्रा का युद्ध से पूर्व था। भारत सरकार इस मांग के विरुद्ध प्रतीत होती है, इस कारण से नहीं कि वह अनुपात अच्छा नहीं है, बल्कि, इस कारण है कि उसकी राय में वह अनुपात अधिक अच्छा नहीं है। वह यह चाहती है, बल्कि उसका लक्ष्य यह है कि भारतीय मुद्रा के लिए २ शिलिंग का अनुपात रखा जाए। जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि यूरोप में अनेक सरकारें, ऐसा बुद्धिमानीपूर्ण कार्य करने के अलावा, वास्तव में इस बात के लिए आभार प्रकट करेंगी, यदि वे अपनी मुद्राओं के युद्ध से पूर्व के अनुपातों को पुनःस्थापित कर सके। अभी तक वे उनसे दूर हैं। इसके विपरीत भारतीय मुद्रा अपने युद्ध से पूर्व के अनुपात पर पहले ही पहुंच

* दि सर्वेंट ऑफ इंडिया–1 अप्रैल, 1925

गई हैं। इस दृष्टि से, चूंकि भारत सरकार युद्ध से पूर्व की स्थिति पर लौटने से संतुष्ट न होने की प्रवृत्ति, एक शरारती बच्चे की प्रवृत्ति जैसी प्रतीत होती है जो हमेशा और अधिक मांगता रहता है।

इस विवाद को ही मैं अपने इस लेख का विषय बनाना चाहता हूं। सर्वप्रथम इस बात को समझ लेना आवश्यक है कि इस विवाद में दो अलग-अलग प्रश्न निहित हैं (1) क्या हमें अपने विनिमय को स्थिर करना चाहिए और (2) वह अनुपात क्या हो, जिस पर हम स्थिर करें। ये दो अलग-अलग प्रश्न हैं। परन्तु जब कोई इस बात का अध्ययन करता है कि दो पक्षों को क्या कहना है तो उसे पता चलता है कि न तो सरकार ने और न उसके विरोधियों ने ही इस बात को स्पष्ट किया है कि क्या उनका लक्ष्य हमारी गणना की इकाई के मूल्य को बदलना है अर्थात उसका नया मूल्य रखना है या उसको उसके वर्तमान मूल्य पर स्थिर करना है। मुझे भय है कि जब तक इन दो प्रश्नों को पूर्णतया पृथक नहीं किया जाएगा, तब तक हमारी मुद्रा के पुनर्वास की दिशा में बहुत कम प्रगति हो सकती है। क्योंकि उस मुद्रा के मूल्य को केवल बदलने का ही लक्ष्य नहीं है कि जो लोग मुद्रा के मूल्य को बदलना चाहते हैं वे अंत में, जब वांछित मूल्य प्राप्त हो जाए तो उसके बाद उसे स्थिर करना चाहते हैं। परन्तु जहां तक संक्रमण काल का संबंध है, उसके विषय में यह कहना है कि हम उसको स्थिर कर रहे हैं जबकि हम मुद्रा के मूल्य को बदल रहे हैं यह एक भ्रम फैलाने वाली बात है क्योंकि दूसरी अवस्था में एक सुविचारित नीति शामिल है, जबकि पहली अवस्था का अभिप्राय उसे स्थायी रखने की सुविचारित नीति है।

इन दो अलग-अलग प्रश्नों का विवेचन आरंभ करने से पहले, मेरे विचार से, यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि हम इस बात को ठीक-ठीक समझ लें कि विनिमय अनुपात कैसे निर्धारित किया जाता है। क्योंकि जब तक हम इसे पूर्णरूप से नहीं समझते तब तक हम इस विवाद में से उत्पन्न होने वाले दो प्रश्नों के अर्थ तथा आशय को ठीक-ठीक समझदारी से कभी भी नहीं समझ सकते। इसे सरल भाषा में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है। गणना की इकाइयों या दो मुद्राओं के बीच विनिमय के अनुपात का अर्थ दूसरे के रूप में एक का मूल्य होता है। जब, गणना की एक इकाई, गणना की दूसरी इकाई के रूप में मूल्य होती है वह उस समय तक स्वयं अपने लिए नहीं होती जब तक उसे एक कलाकृति के रूप में न चाहा गया हो बल्कि उसके लिए होती है जिसे वह खरीदती है। इसलिए ठोस रूप में विषय की शुरूआत करने के लिए, हम कह सकते हैं कि अंग्रेज भारतीय रुपये का मूल्य उतना ही मानेगा जितना जहां तक वह रुपये भारतीय माल से खरीद सकेगा। दूसरी तरफ, भारतीय, ब्रिटिश पाउंड का उतना ही मूल्य लगाएंगे जैसे वे जितने पाउंडों से ब्रिटिश माल खरीदा जा सकेगा। अतएव,

इससे यह बात समझ में आती है कि यदि भारत में रुपये की क्रय-शक्ति बढ़ती है, जबकि इंग्लैंड में पाउंड की क्रय-शक्ति गिरती है। (अर्थात, भारतीय मूल्य स्तर, ब्रिटिश मूल्य स्तर के सापेक्ष गिरता है) तो पाउंड के मूल्य के बराबर थोड़े से ही रुपये होंगे। दूसरे शब्दों में, जब भारत में रुपये में मूल्य गिरेगा तो पाउंड के रूप में रुपये का विनिमय मूल्य बढेगा। दूसरी ओर, यदि भारत में रुपये की क्रय-शक्ति गिरती है, जबकि इंग्लैंड में पाउंड की क्रय-शक्ति बढती है या स्थिर रहती है अथवा कम तेजी से गिरती है। अर्थात यदि भारतीय मूल्य स्तर की तुलना में बढता है तो रुपये के मूल्य के बराबर अपेक्षाकृत पाउंड कम होंगे। दूसरे शब्दों में, जब भारत में रुपये में कीमतें गिरेंगी तो रुपये के विनिमय मूल्य में पाउंड के सन्दर्भ में बढोत्तरी होगी। इसके विपरीत यदि भारत में रुपए की क्रय शक्ति घटती है जबकि इंग्लैंड में पाउन्ड की क्रय शक्ति बढती है या वह यथास्थिति रहती है या कम जल्दी से गिरती है (अर्थात यदि भारतीय मूल्यों का स्तर अंग्रेजी मूल्यों के स्तर के सम्बन्ध में बढ़ता है) थोड़े से पाउंड ही से काम चल जाएगा। रुपये के संदर्भ में दूसरे शब्दों में जब-जब भारत में रुपए का मूल्य बढ़ेगा तो रुपए का विनिमय मूल्य गिर जाएगा। इससे हम एक सामान्य तर्क के रुपये यह निर्धारित कर सकते हैं कि गणना की दो इकाइयों का विनिमय अनुपात के साथ सममूल्य पर होता है। संक्षेप में, यह क्रय-शक्ति की सममूल्यता का सिद्धांत है जो गणना की दो इकाइयों या दो मुद्राओं के बीच एक विशेष विनिमय अनुपात के एक स्पष्टीकरण के रूप में है। मैं इस सिद्धांत की एक मजबूत पकड़ पर बल देता हूं क्योंकि मैं देखता हूं कि हमारे कुछ प्रबुद्ध लोगों का यह मत प्रतीत होता है कि एक विशेष विनिमय अनुपात, व्यापार के संतुलन का परिणाम होता है। इस दृष्टिकोण को एक प्रकार से समझना कठिन है। क्योंकि वास्तव में, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में, जिसमें निर्यात-आयात के लिए भुगतान करता है, बिना भुगतान के शेष जैसी कोई चीज कभी भी नहीं छोड़ी जाती। यह सच है कि व्यापार के खर्च के एक भाग का भुगतान रुपये मुद्रा द्वारा किया जाता है, परन्तु इसका कोई कारण नहीं कि रुपये द्वारा चुकाए गए भाग को शेष क्यों कहा जाए। इस सबका अभिप्राय यह है कि मुद्रा का प्रवेश अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में, अन्य वस्तुओं के प्रवेश की तरह ही होता है। उसमें मुद्रा के संबंध में कोई विलक्षण बात नहीं है। उस सीमा तक, विभिन्नता में कोई ऐसी विलक्षण बात नहीं है जिस तक मुद्रा अंतर्राष्ट्रीय सौदों में प्रवेश करता है। जिस सीमा तक मुद्रा एक देश के व्यापार के लेन-देन में प्रवेश करता है, वह एक सापेक्ष मूल्य के उसी नियम द्वारा नियंत्रित होता है जैसा किसी अन्य वस्तु के मामले में होता है। जो वस्तु सापेक्ष रूप में सबसे सस्ती होती है, उसकी प्रवृत्ति प्रायः देश के बाहर जाने की होती है। एक समय यह छुरी-कांटा हो सकता है, दूसरे समय, संतरे हो सकते हैं और तीसरे समय पर धन हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति छुरी-कांटे या संतरे के रूप में

व्यापार के संतुलन के विषय में कहता है, जैसा एक व्यक्ति भली-भांति कह सकता है, जबकि एक सामान्य संतुलन की एक अवस्था के बाद, वे उनमें से पहले की अपेक्षा अधिक बाहर जा सकती हैं। सामान्य संतुलन की एक अवस्था के बाद, जब पहले की अपेक्षा, और अधिक धन देश से बाहर जाता है तो धन के रूप में व्यापार के संतुलन के विषय में कहने में न तो कोई तुक है और न कोई कारण है। तथापि, यह व्यवहार व प्रथा क्षम्य है, क्योंकि यह वाणिज्यवादी दिनों का हानि रहित अवशेष है। परन्तु यह विचार बिल्कुल बेतुका तथा मूर्खतापूर्ण है कि गणना की एक इकाई के विनिमय अनुपात का निर्धारण उसकी क्रय-शक्ति द्वारा नहीं बल्कि व्यापार के संतुलन द्वारा किया जाता है। यह दृष्टिकोण कार्यक्रम का विशुद्ध व्युत्क्रमण है। यह सच है कि विनिमय में गिरावट के साथ-साथ एक प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन और अनुकूल व्यापार सन्तुलन के कारण विनिमय मूल्य में वृद्धि होती है। परन्तु इस अर्थ में कि वस्तुओं के निर्यात में गिरावट आ रही है, परन्तु वस्तुओं के आयात में वृद्धि हो रही है, व्यापार के प्रतिकूल संतुलन का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि एक विशेष देश एक ऐसा बाजार बन गया है जिसमें से यदि वस्तुओं की खरीद की जाएं तो अच्छा है परन्तु उसमें वस्तुएं बेची जाएं तो वह बुरा है। इसी प्रकार इस अर्थ में कि वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि हो रही है, परन्तु वस्तुओं के आयात में गिरावट आ रही है, व्यापार के अनुकूल संतुलन का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि एक विशेष देश एक ऐसा बाजार बन गया है, जिसमें से यदि वस्तुएं खरीदी जाएं तो अच्छा है परन्तु यदि उसमें वस्तुएं बेची जाएं तो बुरा है। अब एक बाजार जो वस्तुओं को बेचने के लिए तो अच्छा होता है और यदि उसमें से वस्तुएं खरीदी जाएं तो बुरा होता है (व्यापार के प्रतिकूल संतुलन के साथ विनिमय मूल्य में गिरावट के मामले का प्रतीक है) जब उस बाजार में स्तर का मूल्य नियंत्रण, बाहर के मूल्य नियंत्रण के स्तर की अपेक्षा नीचा होता है। यह केवल इस बात को दूसरे तरीके से कहता है कि निम्न मूल्यों का अभिप्राय उच्च विनिमय मूल्य तथा व्यापार का एक अनुकूल संतुलन है और उच्चतर मूल्यों का अभिप्राय निम्न विनिमय मूल्य तथा व्यापार का प्रतिकूल संतुलन है। इस प्रकार व्यापार का संतुलन विनिमय मूल्य में परिवर्तन का परिणाम होता है इसके विपरीत नहीं और विनिमय मूल्य में विनिमय, मूल्य स्तर में परिवर्तन अर्थात गणना की इकाइयों की क्रय-शक्ति में परिवर्तन का परिणाम है यह सबसे मौलिक तथ्य है और यद्यपि कुछ लोग शिशु को आहार देने के समान, इस विषयान्तर पर अप्रसन्न हो सकते हैं, पर मेरे विचार से यह आवश्यक है। क्योंकि बहुत से लोग विनिमय के स्थिरीकरण तथा इच्छानुसार अनुपात पर विनिमय को स्थिर करने के संबंध में निराशाजनक अनापशनाप बातें करते हैं जैसे कि इसका मूल्यों के प्रश्न से कोई संबंध न हो। इसके विपरीत, विनिमय में परिवर्तन, अन्ततोगत्वा मूल्य स्तर में परिवर्तन है और उसका लोगों के आर्थिक कल्याण पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता

है। फिर यह याद करके कि विनिमय को नियंत्रित करना मुद्रा की क्रय-शक्ति को नियंत्रित करने के समान ही है, हम आगे इस विवाद से उत्पन्न होने वाले दो प्रश्नों पर चर्चा करते हैं।

प्रथम, क्या हमें गणना की अपनी इकाई के विनिमय मूल्य को स्थिर करना चाहिए। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है विदेशी विनिमय मूल्य में एक देश की मुद्रा की दूसरे देश की मुद्रा के साथ तुलना की जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि दो मुद्राओं के विनिमय केवल उन व्यापारियों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं जो उसी देश में खरीद तथा बिक्री का काम नहीं करते। फिर, उनके लिए इस बात का भी कोई महत्व नहीं कि विनिमय मूल्य क्या है, अर्थात रुपये का मूल्य 1 शि. है या 2 शि. बशर्ते कि यह आंकड़ा हमेशा वही हो और वह पहले से ज्ञात हो। निश्चित विनिमय मूल्य में केवल परिवर्तन या उतार-चढ़ाव का ही व्यापारियों के लिए कोई महत्व होता है। वह विनिमय की इस अपरिवर्तनीयता को ही चाहता है, इस अपरिवर्तनीयता को सुनिश्चित करना स्थिरीकरण की समस्या है। वर्तमान परिस्थितियों में, क्या अपने व्यापारियों को हम विनिमय अनुपात की इस अपरिवर्तनीयता की गारंटी दे सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए क्रय-शक्ति की समानता की मूल धारणा को विनिमय अनुपात के एक स्पष्टीकरण के रूप में याद करना चाहिए। इस सिद्धांत से, यह स्पष्ट है कि यदि आप विनिमय को स्थिर करना चाहते हैं तो आपको सम्बंधित दो मुद्राओं की क्रय-शक्ति को नियंत्रित करना चाहिए ताकि उनकी गति गहराई में तथा दिशा में एक समान हो। इसलिए विनिमय को स्थिर करने के लिए हमारे पास नियंत्रण करने वाला कोई यंत्र होना चाहिए जो उसी दिशा में, दो मुद्राओं में समानुपाती परिवर्तनों को लाने वाले एक सामान्य नियामक के रूप में कार्य करेगा। अब तक, एक ऐसे अच्छे यंत्र का पता लगा लिया गया था और वह एक सामान्य स्वर्णमान था। उस मानक को संयुक्त राज्य को छोड़कर, समस्त संसार में नष्ट कर दिया गया। इसके फलस्वरूप, स्वर्णमान के आधार पर स्वयंचालित स्थिर विनिमय संयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़कर अन्य देशों में इस समय असंभव है।

जहां तक उन देशों का सम्बन्ध है जिनका आधार कागज की मुद्रा है, विनिमय की स्थिरता केवल दो शर्तों पर प्राप्त की जा सकती है। (1) चूंकि हम अन्य देशों की मुद्रा को नियंत्रित नहीं कर सकते, अतः हमें उनकी मुद्रा की सहानुभूति में अपनी मुद्रा से काम चलाने के लिए तैयार रहना चाहिए और जब वे अपनी मुद्रा का मूल्य बढाने के लिए तैयार रहना चाहिए। (2) अपनी समूची मुद्रा से काम चलाए बिना, हमें विदेशी विनिमय को एक निश्चित अनुपात पर बेचने तथा खरीदने के लिए तैयार रहना चाहिए। विनिमय की अपरिवर्तनीयता को प्राप्त करने के लिए मेरे विचार से, इन दोनों परियोजनाओं को हानिकारक तथा

खतरनाक मानकर अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि और कोई चीज नहीं केवल स्थिरीकरण ही अंतर्राष्ट्रीय बाजार के पुनरुद्धार को तथा उन स्थानों पर पूंजी की गतिशीलता को बढ़ायेगा जहां पर इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। उसके कारण युद्ध से पूर्व के संगठन का एक सबसे महत्वपूर्ण भाग पुनःस्थापित किया जाएगा और उससे अनिश्चितता समाप्त हो जाएगी। जिन बाजारों को अपने लिए बन्द समझकर छोड़ दिया गया था, उनको पुनः पोषित किया जाएगा जिससे व्यापार तथा उद्योग को प्रोत्साहन मिलेगा। परन्तु इसमें संदेह नहीं, कि इससे जो लाभ प्राप्त होगा वह उसमें हुए लागत के अनुरूप नहीं होगा। हमारे बाह्य लेन-देन हमारे आंतरिक लेन-देन की तुलना में अत्यल्प हैं। बाह्य सममूल्यता को सुरक्षित रखने के लिए अपने मूल्य-स्तर में निरंतर परिवर्तन द्वारा आंतरिक व्यवस्था को बिगाड़ना उस उपलब्धि का बहुत बड़ा मूल्य है जो कि बिल्कुल नगण्य है। क्योंकि हमारे व्यापारियों को यह याद रखना चाहिए कि यद्यपि स्थिरता एक बहुत बड़ा सुविधा है, फिर भी, उसके न होने से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को जारी रहने पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं लग जाता, हमारी अपनी मुद्रा के इतिहास में इसका एक उदाहरण है। 1872-1892 के बीच, दो पूर्ण दशाब्दियों के दौरान, भारतीय मुद्रा में सबसे अधिक घट-बढ़ हुई। फिर, जैसा इस समय है, हमारे व्यापारियों ने विनिमय की अस्थिरता के विरुद्ध शोर मचाया, क्योंकि वह व्यापार के लिए बाधक थी। परन्तु हमारा इतिहास यह दर्शाता है कि यहां तक कि अस्थिर विनिमय के अंतर्गत भी उन्होंने उन्नति की और वे फूले-फले यह आशा की जा सकती है कि उनके पुत्र भी अपने सहज ज्ञान से यह जान लेंगे कि वह कार्य कैसे किया जाता है। यदि यह दृढ़ीकरण करने में असफल हो जाएगा तो कोई भी हमारे मूल्य-स्तर की संचलन की सिफारिश करेगा भले ही इसमें हमारी मुद्रा का प्रबंध का मामला भी शामिल हो, क्या यूरोपीय देशों की सरकारें ऐसी निर्धन स्थिति में नहीं थी। जैसा कि है, उनके मूल्य-स्तर की सहानुभूति में, अपने मूल्य-स्तर को उनके मूल्य स्तर के बराबर लाने की स्वीकृति देकर हम अपने कल्याण को दिवालिया सरकारों तथा उनके निराश मंत्रियों के भरोसे छोड देंगे। एक मुद्रा जिसकी विज्ञान द्वारा अनुमोदित आधार पर व्यवस्था की गई है निःसंदेह सर्वोत्तम कार्य करेगी। एक ऐसी मुद्रा के साथ उसके सम्बद्ध होना जिसकी व्यवस्था केवल व्यापार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की जाती है, सहन किया जा सकता है। परन्तु एक ऐसे भागीदार के साथ हाथ मिलाना हमारी मुद्रा की असहनीय व्यवस्था होगी जो स्वयं अपनी आजीविका के लिए अपनी मुद्रा पर आश्रित है।

5

भारतीय मुद्रा की वर्तमान समस्या*

(2 शिलिंग बनाम 1 शिलिंग 4 पैंस का अनुपात)

अभी तक प्रथम प्रश्न के लिए, अब मैं इस विवाद से उत्पन्न दूसरे प्रश्न पर आया हूं, यानि कि अपनी मुद्रा को हमें किस दर पर स्थिर करना चाहिए? क्रय-शक्ति के रूप में व्याख्या करने पर यह प्रश्न घटकर इस बात पर आ जाता है, क्या हम वर्तमान मूल्य स्तर में गिरावट लाएंगे, अर्थात क्रय-शक्ति को बढाएंगे और उससे रुपये के विनिमय मूल्य में वृद्धि करेंगे? अब रुपये के मूल्य में परिवर्तन यदि सभी लेन-देन तथा सभी वर्गों को समान रूप में प्रभावित करते हैं तो उनका कोई परिणाम नहीं निकलेगा और ऊपर जैसे प्रश्न किसी प्रकार का विचार-विमर्श करने के योग्य नहीं होंगे। परन्तु जैसा कि हम सब जानते हैं कि जब रुपये का मूल्य बदला है तो वह सब कार्यों के लिए एक समान अनुपात में नहीं बदलता जिससे एक व्यक्ति की आय तथा उसके व्यय उसी सीमा तक प्रभावित हों। फलतः हमें उस दिशा में स्थिर करने से पहले जिसमें हमारा मूल्य स्तर जाना है, हमें यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि हमारे समाज के विभिन्न वर्गों के कल्याण पर उचित तथा न्यायसंगत प्रभाव पड़ेगा।

समाज के वर्तमान संगठन में, निवेश करने वाले वर्ग, व्यापारी वर्ग तथा कमाने वाले वर्ग में तेहरा वर्गीकरण, एक वास्तविक सामाजिक विभेद तथा हित के वास्तविक अन्तर के अनुरूप होता है। तदैव, व्यापारी वर्ग, समस्त आर्थिक क्रिया–कलाप का केन्द्र है, एक ओर यह निवेश करने वाले वर्ग से रुपया उधार लेता है और दूसरी ओर यह कमाई करने वाले वर्ग को काम पर लगाता है वहीं एक संविदा तथा करार है कि कितना रुपये का भुगतान होगा। इन संविदाओं को करने के बाद यदि रुपये के मूल्य में, एक या दूसरे तरीके से परिवर्तन होता है, तो यह स्पष्ट है कि संविदा झूठी पड़ जाएगी, यदि रुपये के मूल्य में गिरावट होती है, अर्थात यदि मूल्यों में वृद्धि होती है तो निवेश करने वाले तथा कमाने वाले वर्गों को हानि होती है और व्यापारी वर्ग को लाभ होता है। यह सच है

* दि सर्वेंट आफ इंडिया, 16 अप्रैल, 1925

कि निवेश करने वाला वर्ग तथ कमाने वाला वर्ग व्यापारी वर्ग से ठेके के रुपये की राशि प्राप्त करता है। परन्तु यह पता चलेगा कि मूल्यों की वृद्धि के कारण जब व्यापारी को रुपये के मूल्य के स्थिर रहते समय मिलने वाले रुपये की अपेक्षा अपने उत्पादन के लिए अधिक रुपया मिलता है तो वह अन्य वर्गों को केवल उतनी राशि का ही भुगतान नहीं करता बल्कि वह उनको अपेक्षाकृत कम मूल्य के रुपये का भुगतान करता है। इसी प्रकार, यदि रुपये के मूल्य में वृद्धि होती है अर्थात यदि मूल्यों में गिरावट आती है तो व्यापारी वर्ग को हानि होती है और निवेश करने वाले व कमाने वाले वर्ग को लाभ होता है। इसमें संदेह नहीं कि पहले की तरह ही, व्यापारी, निवेश करने वाले तथा कमाने वाले वर्ग को उतनी ही राशि का भुगतान करता है, जितनी के लिए उनके साथ संविदा की गई थी। परन्तु यह पता चलेगा कि मूल्यों में गिरावट के कारण, जब व्यापारी को अपनी उपज के मूल्य के रूप में रुपये के मूल्य के स्थिर रहने की स्थिति में मिलने वाले मूल्य की अपेक्षा कम रुपया मिलता है, जब वह अन्य दो वर्गों को केवल उतनी ही राशि का भुगतान नहीं करता, बल्कि वह उनको अधिक मूल्य के रुपये का भुगतान भी कर रहा होता है।

तब स्पष्टतः यदि हम 2 शि. अनुपात की ओर नीचे की ओर अग्रसर होंगे अर्थात अपने मूल्यों में गिरावट लाएंगे तो हम अपने समाज के निवेशकर्ता तथा कमाई वाले वर्गों की सहायता करेंगे। इसके विपरीत, यदि हम 1 शि. 4 पैं. अनुपात की ओर अग्रसर होंगे तो हम अपने समाज के व्यापारी वर्ग की सहायता करेंगे। अतः न्यायसंगत होने के लिए बकाया रुपये की उन संविदाओं की मात्रा का सुविस्तृत अनुमान लगाया जाना चाहिए जो संविदाएं व्यापारी वर्ग तथा सरकार द्वारा निवेशकर्ता तथा कमाने वाले वर्गों द्वारा किया गया है और जिनको उनकी अवधि के अनुसार वर्गीकृत किया गया है तब यह पता चलेगा कि किसी निश्चित समय पर बकाया संविदाओं में वे संविदाएं शामिल होती हैं जो विगत 100 वर्ष के मूल्यहृास तथा मूल्य वृद्धि से पूर्व की किसी भी तथा प्रत्येक अवस्था में की गई है। उनमें से प्रत्येक के प्रति न्याय करने के लिए यह आवश्यक होगा कि रुपये के उस मूल्य के अनुसार विभिन्न मानों पर स्थिर किया जाए जो उस समय प्रचलित थे जब ये संविदाएं की गई थी। परन्तु अलग-अलग संविदाओं के लिए अलग मान रखना एक भौतिक असंभावना होगी। यदि इस समय विद्यमान सभी संविदाए 1914 में की गई होती तो आदर्श न्याय के लिए यह हमें अपेक्षित होगा कि हम मुद्रा की युद्ध से पूर्व की सममूल्यता को पुनःस्थापित करें, यह ऐसी स्थिति द्वारा किया जाए जो मूल्यों के सामान्य स्तर को कम करके ठीक 1914 के स्तर तक ले आए। यदि इसके विपरीत यह पता चला कि इस समय विद्यमान समस्त संविदाएं, 1924 में की गई थीं, तब न्याय के लिए यह अपेक्षित होगा कि हमें

1924 का मूल्य स्तर बना कर रखना चाहिए। निःसंदेह, हम सबसे अच्छा काम जो कर सकते हैं, वह इन दो चरम सीमाओं के बीच गतिशील रहना है। अब इस अवधि के दौरान, हमारे रुपये के विनिमय मूल्य की दो चरम सीमाएं। 1 शि. 4 पैं. तथा 1 शि. 6 पैं. हैं। इससे कुछ लोगों को आश्चर्य हो सकता है। क्योंकि यह बात सुविदित है कि एक समय रुपया 3 शिलिंग तक पहुंच गया था और हमारा संविधि रुपये को 2 शिलिंग सोने के बराबर मानता है। परन्तु मेरी राय में, हमें उसकी पूरी उपेक्षा करनी चाहिए। एक दम यह कहा जा सकता है कि भारतीय मुद्रा की छानबीन करने के लिए समय-समय पर नियुक्त विभिन्न समितियों द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों में से कोई भी रिपोर्ट इतनी मूर्खतापूर्ण नहीं थी, जितनी कि बेबिंग्टन स्मिथ समिति की रिपोर्ट थी, जिसकी सिफारिश पर यह संविधि बनाई गई थी। यह इतनी अनभिज्ञ समिति थी कि वह उस समस्या को नहीं समझ सकी जिसकी छानबीन करने के लिए इसे नियुक्त किया गया था, इसके फलस्वरूप वह सब बातों को अस्त-व्यस्त कर गई। जैसा कि सुविदित है, इस समिति ने यह रिपोर्ट की थी कि रुपये का मूल्य बढ़ाकर 2 शि. सोना कर दिया जाए। वह इस बात को कहने के बराबर था कि रुपये के मूल्य में वृद्धि हो गई है। दूसरे शब्दों में यह कहना था कि भारत में मूल्य गिर गए हैं। तथ्य क्या थे? निम्नलिखित तालिका से समूचा चित्र सुविधापूर्वक सामने आ जाता है :–

तारीख	भारत में स्वर्ण छड़ का मूल्य (बम्बई) 180 ग्राम का प्रति तोला	भारत में चांदी का मूल्य (बम्बई) प्रति 100 तोला	भारत में मूल्य के लिए इंडैक्स नं. 1913=100
	रु. आ.	रु. आ.	
1914	24-10	65-11	
1915	24-14	61-2	112
1916	27-2	78-10	125
1917	27-11	94-10	142
1918 (जुलाई)	34-0	117-2	178
(अगस्त)	30-0		—
(सितम्बर)	32-4		—
1919 (मार्च)	32-3	113-0	200

तालिका से यह स्पष्ट है कि रुपये के मूल्य में वृद्धि होने के बजाय रुपये के मूल्य में अत्यधिक ह्रास हो गया था। चांदी के मूल्य में निःसंदेह कल्पनातीत वृद्धि हो गई थी। और समिति ने बिना किसी अधिक परेशानी के यह निष्कर्ष

निकाल लिया था कि रुपये के मूल्य में वृद्धि हो गई है। वास्तव में, यह परिस्थिति ही रुपये के मूल्य के कम होने का सबूत थी। यह अवमूल्यन चांदी के रूप में तथा सामान्यतः वस्तुओं के रूप में हुआ था। यदि 1920 में, चांदी की उतनी ही मात्रा खरीदने के लिए 1913 की अपेक्षा अधिक रुपयों की आवश्यकता थी तो इसका अभिप्राय यह था कि रुपये का मूल्य गिर गया था। समिति ने एक भारी गलती की, क्योंकि यह रुपये को मुद्रा के रूप में पृथक करने में असफल रही तथा चांदी की एक सिल्ली के रूप में रुपये से मूल्य का माप नहीं कर सकी। मूल्य का एक माप के रूप में रुपये का 2 शि. स्वर्ण विनिमय मूल्य कभी तथ्य नहीं था और इसलिए वर्तमान के समाधान में यदि हम उस सीमा को ध्यान में नहीं रखते तो यह पूर्णतया न्यायसंगत एवं उचित है। इसका एकमात्र औचित्य, यदि इसे एक वैद्य औचित्य माना जा सके तो उसे 2 शि. स्वर्ण अनुपात कहा जा सकता है, जो इसमें शामिल है। जो लोग 1 शि. 4 पैं. अनुपात की मांग करते हैं, उनमें से कुछ ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि उनकी राय में इसका अभिप्राय युद्ध से पूर्व की स्थिति पर लौटना है। अब यदि यह युद्ध से पूर्व की स्थिति पर लौटना है तो वह वांछित है, तब सरकार यह कह सकती है कि 1924 में 1 शि. 4 पैं. मूल्य के रूप में माप वही नहीं है, जो 1914 में 1 शि. 4 पैं. मूल्य की थी। अनेक लोग इस बात को महसूस नहीं करते। परन्तु यह एक अकाट्य तथ्य है। 1924 में तथा 1914 दोनों में ही विनिमय 1 शि. 4 पैं. था। परन्तु भारत में बिक्री मूल्य का सूचकांक दिसम्बर 1924 में 176 था जबकि जुलाई, 1914 में वह 100 था। अतएव, इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि हम युद्ध से पूर्व की स्थिति पर लौटना चाहते हैं तो रुपये का विनिमय मूल्य 1 शि. 4 पैं. रखकर काम नहीं चलेगा। क्योंकि युद्ध पूर्व की स्थिति पर लौटने का अर्थ है युद्ध-पूर्व मूल्य का होना। हमें अपने वर्तमान मूल्यों को 76 प्रतिशत घटाना चाहिए अर्थात् रुपये का मूल्य 76 प्रतिशत बढाना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि अंततोगत्वा, इसका अर्थ 2 शि. का अनुपात होता है। परन्तु यह पूछा जा सकता है कि हमें युद्ध पूर्व की स्थिति पर क्यों लौटना चाहिए? वैसा करने की आवश्यकता नहीं है। यह याद रखना चाहिए कि पुरानी संविदाएं अब लागू नहीं है। उनमें से अधिकांश पूरे कर दिए गए हैं और उनको पूरा करने में जो भी गलती हो चुकी हैं, उसे अब ठीक नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि यद्यपि किसी निश्चित समय पर बकाया आर्थिक संविदाओं की अवधि अलग-अलग होती है कुछ एक दिन की, कुछ कई वर्षों की अवधि की, कुछ एक दशक अवधि की और यहां तक कि कुछ की अवधि एक शताब्दी की फिर भी अधिकांश बहुत हाल की तारीखों की गई हैं। क्योंकि ऐसी स्थिति थी, अतः हमें युद्ध से पहले प्रचलित स्तरों से नहीं बल्कि चालू व्यापार के स्तर से नवीन मानक के लिए अपना प्रारंभिक बिन्दु चुनना चाहिए इसे केवल इसलिए करना कि इससे हमें निम्न स्तर के मूल्य

प्राप्त होंगे, अपने व्यापार तथा उद्योग को विस्थापित करना है और इसका फल यह होगा कि सम्पन्नता खतरे में हो जाएगी। हमारे रुपये के वर्तमान मूल्य से ऊपर इसके मूल्य को 76 प्रतिशत तक बढ़ाने का अर्थ केवल यह नहीं है कि प्रत्येक व्यापारी तथा प्रत्येक निर्माता को उसके उत्पादन से 76 प्रतिशत कम प्राप्ति होगी, बल्कि इसका प्रभाव यह होगा कि उसे निवेशकर्ता वर्ग को 76 प्रतिशत देना पड़ेगा, जिससे उसने उधार लिया था और कमाने वाले वर्ग को देना होगा जिसको उसने काम में लगाया था। इस प्रकार, समाज के सक्रिय तथा श्रमिक वर्ग पर लादा गया भार असहनीय होगा। तथापि मुझे सम्भावित गलतफहमी से बचाव करना चाहिए। क्योंकि मैं निम्न मूल्य के विरुद्ध हूं अतः किसी को इस बात की कल्पना इसलिए नहीं करनी चाहिए मैं तो उच्चतर मूल्य के पक्ष में हूं। मैं इस बात पर बल देता हूं कि यदि एक बार वह मूल्य स्तर स्थापित हो जाए तो हमें उच्च मूल्य के प्रति शिकायत नहीं करनी चाहिए। क्योंकि एक बार वे जब स्वयं समायोजित हो जाती है तो वे चीजें हमारे सामान्य स्तर की हो जाती हैं। युद्ध पूर्व का स्तर असामान्य होगा और इसलिए उसे अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए।

इसलिए हमें 1 शि. $3^7/_8$ पैं. तथा 1 शि. 6 पैं. के बीच छांट करनी चाहिए। चूंकि दोनों में से एक या दूसरे की छांट करने के लिए हमें जो बात न्यायसंगत तथा साफ है उसके द्वारा निर्देशित होना चाहिए। हम यह चाहते हैं कि उद्यम की संचय के विरुद्ध सहायता करनी चाहिए और संभवतः हम यह चाहते हैं कि धनी और अधिक धनी हो जाए। परन्तु मेरा निश्चय है कि हममें से कोई यह नहीं चाहता कि संचित करने की प्रवृत्ति, जो पूंजी का आधार है, पर ध्यान न दिया जाए, या निर्धन व्यक्ति और निर्धन होता चला जाए। परन्तु यह वास्तव में 1 शि. 6 पैं. की ओर झुकाव का परिणाम होगा। दूसरी ओर यद्यपि हम यह चाहते हैं कि पूंजी में वृद्धि हो और निर्धन व्यक्ति की स्थिति बेहतर हो फिर भी हममें से कोई भी यह नहीं चाहता कि उद्योग का अनादर किया जाए। फिर भी, ऐसा 1 शि. 6 पैं. तक अनुपात रखने का परिणाम होगा।

मैं स्वयं अनुपात के रूप में 1 शि. 6 पैं. का चयन करूंगा जिस पर हमें, यदि हम ऐसा कर सकें निम्नलिखित कारणों से स्थिर करना चाहिए :

(1) इससे निवेश करने वाले एवं कमाई करने वाले वर्ग की स्थिति की रक्षा होगी;

(2) यह व्यापारी वर्ग पर कोई अतिरिक्त भार डालकर हमारे व्यापार तथा समृद्धि को दांव पर नहीं लगाएगी; और

(3) बिल्कुल हाल की होने के कारण इससे यहां संभावना है कि यह आर्थिक संविदाओं की बहुत बड़ी संख्या को बड़ा न्याय करेगी। इनमें से अधिकांश संविदाएं हाल में की हुई होंगी।

सौभाग्यवश, हम अपने मूल्य स्तर की स्थिरता के लिए तो दूसरे देशों पर निर्भर नहीं है, वास्तव में हमने अपने विनिमय के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहना चाहिए। विनिमय की स्थिरता यदि हम चाहें भी तो भी हम नहीं कर सकते। परन्तु हमारे मूल्यों के स्थिरीकरण को हम यदि चाहें तो कर सकते हैं। यदि हम अपने मूल्यों तथा अपने विनिमय को स्थिर कर सकें तो बेहतर होगा। परन्तु क्योंकि अन्य देश अपने मूल्य स्तर को स्थिर नहीं कर सकते अतः हम ऐसे उपाय क्यों न करें जो हमें अपने यहां स्थिर मूल्य प्रदान करें, यह वास्तव में मुद्रा के माध्यम से बाहर निकालने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मेरी राय में हमें रुपये को, 1 शि. 6 पैं. पाउंड पर सोने के साथ जोड़कर अपने मूल्य को तुरंत स्थिर करना चाहिए। यूरोपीय देश शीघ्र ही यह महसूस करेंगे कि सोने के साथ युद्ध-पूर्व सममूल्यता की स्थिति पर वापस पहुंचना पागलपन है और उन्हें यह जानकारी होगी कि मुद्रा के मामले में किसी निश्चित समय पर वास्तविकता प्राकृतिक तथा सामान्य है। यदि वे हमारी आशा से पहले इस बात को जान जाएंगे तो हमें यह पता चलेगा कि वे वर्तमान स्तर पर सोने के रूप में, अपनी मुद्रा को स्थिर कर रहे हैं। उस मामले में, सोना, मूल्य के एक अंतर्राष्ट्रीय मान के रूप में, पुनः कार्य करना आरंभ कर देगा और हमारे पास एक स्थिर विनिमय होगा। परन्तु उससे पहले, यदि हमारे पास सोने के रूप में स्थिर कीमतें हैं तो उससे निश्चय ही हमारी कोई हानि नहीं हो सकती है।

इस विवाद के दौरान एक नए दृष्टिकोण का उदय हुआ जिसके अनुसार हमें उस समय तक अपनी मुद्रा की पुनःव्यवस्था के मामले में कुछ करने की आवश्यकता नहीं है जब तक हम पहले वे उपाय नहीं कर लें जो नियंत्रित मुद्रा की वर्तमान प्रणाली के स्थान पर स्वचालित नई मुद्रा प्रणाली को लाए। इस दृष्टिकोण के साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति है, इसलिए नहीं कि मुझे यह यकीन है कि एक स्वचालित मुद्रा, एक नियंत्रित मुद्रा की अपेक्षा हमेशा अधिक स्थिर होगी, बल्कि इसलिए है कि इससे हमें उस प्रश्न की याद आ जाती है, कि स्थिरता को प्राप्त करने के बाद हम उसे किस प्रकार बनाए रख सकते हैं? यह प्रश्न स्थिरता को प्राप्त करने की अपेक्षा अधिक विचारणीय है। परन्तु इस बात का सुझाव देना कि अपने मूल्य स्तर को स्थिर करने के लिए हमें उस समय तक कुछ नहीं करना चाहिए जब तक हम नियंत्रित प्रणाली तथा स्वचालित प्रणाली के बीच निर्णय करें पृथ्वी पर नरक बनाना है क्योंकि स्वर्ग दूत इस पर स्वर्ग बनाने की स्वीकृति प्रदान नहीं करते। इसी कारण मैंने सोचा था कि यह एक बिल्कुल अलग मामला है। कुछ लोगों का उसके संबंध में यह कहना है कि वह किसी अन्य समय पर लाभदायक हो सकता है। लेकिन इस समय नहीं।

6

समीक्षा

मुद्रा तथा विनिमय*

भारतीय मुद्रा तथा विनिमय,

लेखक

एच.एल. चाबलानी, एम.ए. (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बंबई) 1925

8 वाई 2x5 वाई 2 पृ० 184 रुपये 04-8-0

यह पुस्तिका निम्न स्तर का प्रकाशन है। लेखक ने एक जटिल विषय का जल्दी में कुछ विवेचन किया है, इस विषय को 180 पृष्ठों की एक छोटी सी परिधि में बांधा गया है। इसमें न तो पर्याप्त जानकारी है और न पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। कार्य पद्धति की सुस्पष्टता का अभाव है। परस्पर विरोधी कथनों, दुविधापूर्ण स्थिति के कारण लेखक की सही स्थिति समझना कठिन है। एक स्थान पर वह कहता है कि सोने का भारत में परिसंचरण इसलिए नहीं किया जा सकता क्योंकि भारत एक निर्धन देश है। एक दूसरे स्थान पर वह कहता है कि भारत में सोने का परिसंचरण इसलिए नहीं है क्योंकि यहां रुपये हैं। रुपये के मात्रा–सिद्धांत-स्वयं में सबसे सरल तथा राजनीतिक अर्थनीति में सबसे स्पष्ट प्रस्ताव का विवेचन एक पूरे अध्याय में करने के बाद, वह कहता है कि १८६३ के बाद रुपये का उत्थान कुल मिलाकर उसके निर्गम की सीमा के कारण नहीं था। इसी प्रकार के परस्पर विरोध कथन वाले विदेशी विनिमय संबंधी अध्याय में व्यक्त किए गए हैं। वहां पर वह दो सिद्धांतों यानी क्रय-शक्ति की समानता का सिद्धांत तथा व्यापार के संतुलन का सिद्धांत, में भेद करता है और वह पहले सिद्धांत के पक्ष में अपना निर्णय देते हुए इसे सच्चा सिद्धांत बताता है। फिर भी तमाम पुस्तक में वह एक गलत सिद्धांत यानी व्यापार का संतुलन पर अपना तर्क देता है। फिर अपने प्रारंभ के अध्याय में वह कहता है कि रजत मानक पर वापस लौटने में कोई बेतुकी बात नहीं है। लेखक के निष्कर्ष के अनुसार मुद्रा का प्रबध

* दि सर्वेंट ऑफ इंडिया, 25 जून 1925

हमारी मुद्रा में सबसे बड़ा दोष है। फिर भी, इस दोष को दूर करने के एक उपाय के रूप में वह परिवर्तनीय रुपये की सिफारिश करता है।

दुविधापूर्ण स्थित वे इस तथ्य द्वारा प्रमाणित होती हैं कि वह भारतीय मुद्रा के पुनर्निर्माण के लिए किए गए प्रायः प्रत्येक प्रस्ताव से सहमत हैं। वह डा. फिशर की योजना, रजतमानक पर वापस लौटने में तथा एक विश्वजनीन स्वर्ण विनिमय मान में अच्छाई देखता है। फिर भी, लेखक की अपनी एक प्रिय योजना है और वह योजना है एक परिवर्तनीय रुपये का रखना, जो सोने के सिक्के में परिवर्तनीय नहीं, बल्कि केवल स्वर्ण बुलियन में परिवर्तनीय है। लेखक इस बात को प्रकट नहीं करता, बल्कि यह रिकार्डो द्वारा सुझाई गई योजना है जो उसने अपनी एक मितव्ययी तथा सुरक्षित मुद्रा के लिए प्रस्ताव में दी है। सौभाग्य से इसे इंग्लैंड के लिए नहीं अपनाया गया था। इसके कारण सरल थे। नोटों को कुछ निश्चित भार की स्वर्ण छड़ों में परिवर्तित किया जाएगा, इस कानून को बनाने का अभिप्राय यह था कि केवल वे लोग ही परिवर्तित कर सकें जिनके पास सोने की छड़ों की कीमत के नोट हों, शेष व्यक्ति परिवर्तन न कर सकें। दूसरे शब्दों में, यह महसूस किया गया कि ऐसी प्रणाली परिवर्तनीयता के प्रभाव को अत्यधिक कमजोर करेगी और इसके फलस्वरूप मुद्रास्फीति की शुरूआत होगी। अतएव, इस प्रस्ताव को पर्याप्त सुरक्षित नहीं माना गया। यह प्रस्ताव कम खर्चीला है या नहीं, इस विषय में उस समय कोई वाद-विवाद नहीं हुआ, अतः उस पर यहां सुविधापूर्वक विचार किया जा सकता है। चूंकि भारत में अनेक लेखक हैं-और हमारा यह लेखक भी उनमें से एक है—जो स्वयं को सभ्य दिखाने के लिए, वे उसके खिलाफ निन्दा करते हैं सोने की मुद्रा के रूप में प्रयोग करना बर्बरता है। मुद्रा के संबंध में लिखने वाले ये सभी सभ्य लेखक अपनी शक्ति स्वयं सिद्ध प्रतिज्ञप्ति को प्रदर्शित करने में खर्च करते हैं जबकि कोई भी विवाद नहीं करता कि कागज को विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग करना, सोने को प्रयोग करने की अपेक्षा अधिक किफायती है। परन्तु ये ही लेखक कभी भी इस बात को सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करते कि ऐसी योजना किफायती होने के साथ-साथ मूल्यों की स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए भी सुरक्षित होगी। केवल एक ऐसी किफायती योजना से जो सुरक्षा की गारंटी नहीं देती कोई लाभ नहीं। स्वीकार करने योग्य योजना, किफायती तथा सुरक्षित दोनों ही होनी चाहिए। यदि वह मितव्ययी नहीं भी है तो भी चलेगी, परन्तु यदि वह सुरक्षित नहीं है तो निश्चय ही नहीं चलेगी। अब मेरा यह निवेदन है कि यह विचार कि एक मुद्रा के रूप में सोने को मूल्य के मान के रूप में किफायती बनाना, उसकी उपयोगिता को कम करना है, उतना ही स्वयं सिद्ध है जितना सभ्य लेखकों का यह विचार कि विनिमय के माध्यम के रूप में कागज का प्रयोग करना, सोने का प्रयोग करने की अपेक्षा अधिक किफायती

है। मुद्रा के रूप में प्रयोग से सोने को निकाल देने का क्या अर्थ है? इसका सीधा सा अर्थ यह है, कि सोने के प्रयोग को किफायती करके आप उसकी आपूर्ति को बढ़ाते हैं और उसकी आपूर्ति को बढ़ाकर आप उसके मूल्य को कम करते हैं अर्थात सोने के प्रयोग में यह मितव्ययता होने के कारण सोना एक ऐसी वस्तु हो जाती है और जिसके मूल्य में कमी हो गई है और इसलिए वह, उस सीमा तक मूल्य के मानक के रूप में कार्य करने के अयोग्य हो जाती है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि कागज की मुद्रा का निर्गम या उस मामले में कोई और स्थानापन्न वस्तु, धात्वीय मुद्रा के लिए मांग को प्रभावित करती है। इसमें संदेह नहीं है कि जो लोग यह संशय रखते हैं कि धात्वीय मुद्रा की मांग कागज निर्गम द्वारा प्रभावित होगी कि नहीं जिस प्रकार मुद्रा की परिवर्तनीयता या अपरिवर्तनीयता है। परन्तु यह एक गलती है। इसकी जांच यह है क्या कागज का निर्गम धात्वीय रिजर्व द्वारा आवृत्त है या अनावृत्त है परन्तु यदि वे आवृंत्त नहीं हैं तब वे धात्वीय मुद्रा की मांग को प्रभावित करेगी चाहे वे परिवर्तनीय हों या अपरिवर्तनीय हों। व्याख्या यह है कि आवृत्त नोट केवल धात्वीय मुद्रा को प्रतिबंधित करते हैं, परन्तु अनावृत्त नोट कीमती भंडार में वृद्धि करते हैं। अतएव आप सोने को किफायती बनाने तथा उसके मानक के रूप में भी प्रयोग करने के दोनों कार्य नहीं कर सकते। यदि आप सोने को किफायती बनाना चाहते हैं तो आपको चाहिए कि आप सोने को मूल्य के एक मानक के रूप में बनने से रोकें। इसके अलावा, वर्तमान समय में, सोने को किफायती बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि समस्त संसार में रुपये का इतना भारी आधिक्य है कि हम सोने को जितना कम किफायती बनाएं उतना ही बेहतर है। इस दृष्टि से स्वर्ण विनिमय मान जो एक समय वरदान था, अब अभिशाप हो गया है। कुछ समय तक इसने बहुत ही उपयोगी कार्य किया। 1873 से सोने के उत्पादन में गिरावट आई थी और स्वर्ण विनिमय मान द्वारा प्रभावित मितव्ययता का वास्तव में बहुत स्वागत किया गया था, क्योंकि इसने संकुचन की अवधि में, विश्व के देशों के रुपये का प्रसार करने में सहायता की और उससे उसने अंतर्राष्ट्रीय मूल्य प्रणाली की स्थिरता को बनाए रखने में सहायता मिली। यह कार्य उसने मूल्यों में तेजी से गिरावट को रोकने के लिए किया। यदि स्वर्णमान को स्थापित करने वाले समस्त देश भी सोने को मुद्रा के रूप में अपना लेते तो मूल्यों में गिरावट अपरिहार्य थी। परन्तु 1910 के बाद, स्थिति में परिवर्तन हुआ और सोने के उत्पादन में वृद्धि हुई, इसका परिणाम यह हुआ कि उसके बाद स्वर्ण विनिमय मान के निरंतर बने रहने से मूल्यों की वृद्धि को रोक कर देशों की सहायता नहीं की बल्कि वास्तव में उनको बढ़ाकर उनकी सहायता की जो सोने के प्रयोग में मितव्ययता के कारण, पहले से अधिक उत्पन्न सोना फालतू हो गया। लेखक समर्थन के रूप में प्रो फिशर

तथा अन्य विद्वानों को उद्धृत करता है जो 1911 के बाद मूल्यों की वृद्धि के लिए स्वर्णमान को दोष देते हैं। परन्तु प्रो. फिशर इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देते कि स्वर्ण विनिमय मान के अन्यत्र जारी रहने के कारण सोना मूल्य का एक खराब मानक हो गया था। क्योंकि यदि 1911 के बाद, स्वर्ण विनिमय मान को समाप्त कर दिया जाता और देश सोने की किफायत करने के बजाय उसका प्रयोग करते, तो सोने का कोई बाहुल्य न होता और इसके फलस्वरूप, मूल्यों में वृद्धि को रोक दिया जाता। इस दृष्टि से स्वर्ण विनिमय मान अपने लक्ष्य से भी अधिक समय तक बना रहा है और अब वह सकारात्मक हानि पहुंचा रहा है। इन तर्कों के परिप्रेक्ष्य में उन परियोजनाओं के साथ सहानुभूति होना संभव नहीं है जो सोने के प्रयोग में किफायत करते हैं और फिर भी इसे मूल्य के एक मानक के रूप में बनाए रखते हैं।

ये बातें लेखक की निगाह से उस समय बिल्कुल बच गई हैं जब रुपये की अपनी परियोजना को उसने स्वर्ण बुलियन में परिवर्तनीय का विचार किया। परन्तु स्वर्ण की छड़ों में परिवर्तनीयता में लेखक की समूची योजना सम्मिलित नहीं होती। परिवर्तनीयता के साथ-साथ वह कहता है कि रुपयों तथा छोटे नोटों के निर्गम पर एक सीमा व प्रतिबंध रखा जाना चाहिए और यह सीमा तक की रहनी चाहिए जब ये स्वर्ण बुलियन में कानूनी तौर पर परिवर्तनीय हों। भारत में मुद्रा के प्रतिवर्ष केवल बहुत कम प्रतिशत में प्रसार करने की अनुमति होनी चाहिए जो व्यापार में प्रगति की सामान्य दर को प्रस्तुत करे। उस प्रतिशत से अधिक मुद्रा को बढ़ाने की शक्ति सरकार के पास नहीं होनी चाहिए। रुपये तथा छोटे नोटों के निर्गम पर इस उतार-चढाव की सीमा के लिए कारण बताते समय लेखक कहता है, "एक परिवर्तनीय रुपया, अपने मूल्य वर्ग में चूंकि छोटा होता है, अत: वह मुद्रा स्फीति के प्रति पर्याप्त सुरक्षा नहीं है। चूंकि जैसा कि पुराने अर्थशास्त्रियों ने स्पष्ट रूप में यह दर्शाया है, छोटे नोटों की वास्तविक आस्थगित परिवर्तनीयता, उसे व्यवहारिक रूप में अपरिवर्तनीय बना देती है और उसके अधिक निर्गम की ठीक उतनी ही संभावना होती है जितनी संभावना अपरिवर्तनीय कागज की होती है।" यदि यह सब आश्चर्यजनक नहीं तो विलक्षण है। यह आश्चर्यजनक इसलिए है क्योंकि एक स्थान पर लेखक कहता है, "परिवर्तनीयता मुद्रा की प्रचुरता के लिए सर्वोत्तम सुरक्षित उपाय है। यह मुद्रा में स्फीति करने वाली सरकार को सबसे आसान स्वयं चालित खतरे का संकेत प्रदान करता है।" अब, यदि ऐसा है तो परिवर्तनीय रुपया, उस उद्देश्य के लिए पर्याप्त क्यों नहीं, जो लेखक की दृष्टि में है? लेखक का यह कहना गलत है कि पुराने अर्थशास्त्रियों का यह विश्वास था कि छोटे नोटों की परिवर्तनीयता, अति निर्गम के विरुद्ध पर्याप्त सुरक्षा नहीं है। पुराने अर्थशास्त्रियों को यह डर नहीं था कि परिवर्तनीयता, सोने की उस स्थिति

में परिसंचरण में बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं थी, यदि बैंकों को छोटे मूल्य वर्ग के नोट जारी करने की अनुमति दे दी जाती है। यह विचार पुराने अर्थशास्त्रियों के विचार से बिल्कुल भिन्न है। फिर, उनके लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, पुराने अर्थशास्त्रियों ने उनके निर्गम पर कोई प्रतिबंध लगाने के लिए आग्रह नहीं किया था जैसा कि हमारे इस लेखक ने बताया है कि उन्होंने वैसा किया था। उन्होंने छोटे मूल्य वर्ग का पूर्ण निषेध करने के लिए आग्रह किया था। यही कारण है कि हमें यह पता चलता है कि बैंक आफ इंग्लैंड को चार्टर एक्ट द्वारा 5 पाउंड से कम मूल्यवर्ग के नोट जारी करने से रोक दिया गया था। इसके समनुरूप होने के लिए, लेखक को यह सिफारिश करनी चाहिए थी कि भारत सरकार को पांच रुपये मूल्यवर्ग से कम के रुपये या चांदी के नोट जारी नहीं करने चाहिए। इसके स्थान पर, वह एक ऊलजलूल, तथा अव्यवहार्य योजना की सिफारिश करता है। मान लिया, इस प्रतिशत को निर्धारित करना संभव होता लेखक ने हमें नहीं बताया कि यह कैसे होगा तो क्या उस प्रतिशत को हमेशा बनाए रखना होगा? या यह पर्याप्त होगा, कि यदि प्रत्येक वित्त वर्ष के अंत में यह पाया जाए कि प्रतिशत उससे आगे नहीं बढ़ी है? यदि दूसरी बात, यही सब योजना की मांग है, तब उस मुद्रा की मात्रा की वृद्धि या ह्रास पर कोई प्रतिबंध नहीं हो सकता जो मुद्रा वर्ष के दौरान जारी की जा सके बशर्ते कि इस बात का ध्यान रखा जाए कि वर्ष के अंत में शेष जो कि सामान्य से अधिक निश्चित प्रतिशत के बराबर है वृद्धि की ओर अग्रसर है। फिर क्या सामान्य एक ऐसी संख्या हो जो हमेशा के लिए निर्धारित कर दी जाए या वह एक ऐसी संख्या हो जिसे संशोधित किया जा सके? यदि वह संशोधन करने के योग्य है तो इसमें संशोधन किस प्रकार किया जाए और उस सामान्य संख्या में संशोधन कौन प्राधिकारी कर सकता है? इस योजना को स्वीकार करने से पहले, ये कुछ प्रश्न है जिनका उत्तर देना होगा। परन्तु इस बात पर आश्चर्य होता है कि ऐसी प्रवीणता में रत होने के बजाए क्या यह बेहतर न होता, कि लेखक एक सामान्य भूमिका अदा करता और निर्गम की निश्चित परिवर्तनीय रुपये या सीमा सहित अपरिवर्तनीय रुपये की सिफारिश करता।

इस पुस्तक में वे भाषण दिए गए हैं जो लेखक ने एलिंगस्टन कालेज बम्बई, तथा सेन्ट्रल हिन्दू कालेज, बनारस में, अपने विद्यार्थियों के समक्ष प्रोफेसर के रूप में दिए थे और यह पुस्तक दो भागों में विभक्त है। भाग एक अधिकांशतः सूचनात्मक है, इसके सम्बन्ध में लेखक कहता है कि यह भाग उन उम्मीदवारों के लिए है जो अर्थशास्त्र में स्नातक डिग्री के लिए तैयारी कर रहे हैं, "भाग 2 मुख्यतः आलोचनात्मक है और यह मुख्यतः "ऑनर्स डिग्री के लिए तैयारी करने वाले उम्मीदवारों के लिए है।" अर्थशास्त्र में परीक्षक के रूप में मुझे हमेशा यह

आश्चर्य हुआ कि पॉलिटिकल इकोनोमी में पास कोर्स के अधिकांश विद्यार्थियों के उत्तर बच्चों द्वारा शिशुओं की कहानियों को सुनाने के पाठ की तरह और ऑनर्स कोर्स के उम्मीदवारों के उत्तर उधार टिप्पणियों के विकृत रूपान्तरों की तरह क्यों पढ़े जाते हैं। जैसा कि लेखक सहज रूप में सुझाव देता है इससे स्पष्ट है कि यह सब इस कारण है कि दो वर्गों के विद्यार्थियों को दो भिन्न प्रकार का भोजन प्रदान किया जाता है परन्तु इनमें से कोई सा भी उनको प्रचुर मात्रा में या व्यावहारिक रुप में उपलब्ध नहीं कराया जाता है।

7

समीक्षा

कराधान जांच समिति की रिपोर्ट 1926*

कराधान जांच समिति, 1926 की रिपोर्ट-1

रिपोर्ट देने के लिए आयोगों का गठन और जांच के लिए समितियों का निर्माण कर देना, ब्रिटिश शासन प्रणाली की एक अजीब विशेषता है। अंग्रेजी संसदीय कार्यवाही का यह एक मूलभूत सिद्धांत है कि सामाजिक एवं आर्थिक विधि निर्माण के मामले में वह कभी भी अंधेरे में छलांग नहीं लगाती। समितियां तथा आयोग, संसद के अधिनियम की आवश्यक प्रारंभिक तैयारी है। इस कार्य में सुप्रसिद्ध कहावत ज्ञान ही शक्ति है, का अनुसरण किया जाता है। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि अंग्रेजी संसदीय प्रक्रिया के इस सिद्धांत का अनुसरण भारत में भी किया गया है और हमारे जो राजनीतिज्ञ प्रायः आयोगों तथा समितियों की नियुक्ति का विरोध करते हैं, उनके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वे देश के सर्वोत्तम हित में कार्य कर रहे हैं।

तथापि, कराधान जांच समिति के मामले में सरकार ही इसे रोकने का प्रयास कर रही थी और जब उसने जांच कराई तो वह जांच उस प्रकार की नहीं थी जिसकी मांग विधान सभा द्वारा की गई थी। एसेम्बली यह चाहती थी कि लोगों की कर देने योग्य क्षमता का पता लगाया जाए। परन्तु सरकार इसका सामना इस डर के कारण नहीं करना चाहती थी कि ऐसी जांच से यह जाहिर हो सकता है कि लोगों के ऊपर कराधान का भार उनकी कर योग्य क्षमता के साथ मेल नहीं खाता था। परन्तु जब जनमत ने इस बात पर. जोर दिया कि ऐसी जांच कराई जाए तो उसने एक प्रकार के प्रपंच से जांच को दो भागों में विभक्त कर दिया (1) कराधान जांच समिति और (2) आर्थिक जांच समिति। इसका परिणाम यह हुआ कि इनमें प्रत्येक समिति की रिपोर्ट की उपयोगिता ही समाप्त हो गई। कराधान जांच समिति के लिए विचारणीय विषयों में उसे यह निर्देश दिया गया था कि वह (1) उस तरीके की जांच करें जिससे कराधान के भार को इस समय जनसंख्या के विभिन्न वर्गों के बीच विभाजित किया गया है (2) इस बात पर विचार करें कि क्या कराधान की समूची योजना न्यायसंगत तथा आर्थिक सिद्धांतों के अनुरूप है, और यदि नहीं है तो उसमें किस प्रकार की कमी है। और (3) यह कराधान के वैकल्पिक स्रोतों की उपयुक्तता के संबंध में रिपोर्ट दे। अपनी रिपोर्ट

---

* दि सर्वेंट ऑफ इंडिया खंड 9 सं. 13, 29 अप्रैल 1926 पृष्ठ 163–64

को तैयार करते समय समिति ने इन तीन प्रश्नों को ध्यान में रखकर इनको समुचित स्थान प्रदान करने में बहुत न्यायपूर्ण कार्य नहीं किया है। समिति को सौंपे गए समूचे दायित्व में इन तीनों प्रश्नों में से प्रथम प्रश्न स्पष्टतया सबसे महत्वपूर्ण था। फिर भी, 447 पृष्ठों की पुस्तक में इस प्रश्न पर विचार की सामग्री केवल 13 पृष्ठों में दी गई है। इसके अलावा, इस विषय पर चर्चा भी संतोषजनक नहीं की गई है। समिति ने कोई भी कारण बताए बिना देश की जनसंख्या को 11 वर्गों में विभक्त किया है और उनके द्वारा वहन किए जाने वाले भार पर साढे दस पृष्ठों में चर्चा की गई है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न अर्थात भारतीय वित्तीय प्रणाली के अधीन थोपे गए व्यक्तिगत करों की घटनाओं को छुआ नहीं गया। अब कोई भी व्यक्ति यह भी जानकारी प्राप्त करना चाहेगा समिति ने क्योंकि यह 11 वर्गों में वर्गीकरण की दृष्टि से विस्तारपूर्ण क्यों मान लिया। यदि वर्गीकरण करने का ही प्रश्न था तो यह 13 वर्गों में क्यों नहीं किया? फिर समिति पूर्णतया कैसे कह सकती है कि एक व्यापारी करों का कितना भार वहन करता है यदि वे व्यक्तिगत करों के प्रभाव की जांच कर लेते तो शायद उन्हें यह पता चलता कि वह उनमें से किसी प्रकार के भार का वहन नहीं करता था। फिर एक दूसरा विशेष उदाहरण लीजिए, यह उदाहरण कपास उत्पादन शुल्क का है। समिति को इस बात को कहने में कोई कठिनाई नहीं है कि इसके उन्मूलन से श्रमिक वर्ग को लाभ होगा। परन्तु क्या समिति को इस बात का बिल्कुल निश्चय है कि इसे उपभोक्ता पर हस्तांतरित कर दिया गया था? मैं समिति के प्रति अन्यायपूर्ण बिल्कुल होना नहीं चाहता। परन्तु मैं यह बात कहने के लिए बाध्य हूं कि इस संबंध में समिति की रिपोर्ट सबसे निराशाजनक दस्तावेज है। समिति ने भारत में कराधान के विभिन्न स्रोतों के विस्तृत इतिहास को इस पुस्तक में बहुत अधिक स्थान प्रदान किया है। चलिए, यह बहुत अच्छा है। परन्तु यदि समिति प्रत्येक कर के अलग-अलग विवरण के विवेचन को आधा स्थान प्रदान कर देती तो यह उससे भी अधिक बेहतर बात होती, परन्तु समिति ने ऐसा करना बिल्कुल छोड़ दिया। यदि वैसा कर दिया जाता तो समिति करों के भार के वितरण, तथा अन्यायपूर्ण करों को समाप्त करने के प्रश्न पर विचार करने की बेहतर स्थिति में होती। इस समिति से जो आशा की गई थी वह उसके अनुसार कार्य करने में असमर्थ रही। इस समिति पर देश का साढ़े चार लाख रुपया खर्च हुआ। यह खर्च मुद्रण के अतिरिक्त है। ऐसा इस कारण हुआ कि वह कर के विवरण देने के प्रश्न पर विचार करना भूल गई जोकि अंततः उसकी जांच का सबसे महत्वपूर्ण भाग था।

मूल्य समस्या का समाधान करने में इस समिति के असफल रहने का कारण मुख्यतः समिति के कार्मिकों को बताया जाता है कि अधिकांश कार्मिक इस कार्य में विशेषज्ञ नहीं थे। यदि यह अफवाह सच है, तो कहा जाता है कि उनमें से

अधिकांश लोगों ने, इस समिति में नामित होने के बाद, पंजाब वित्त व्यवस्था की ए.बी.सी. सीखना आरंभ किया। इसमें आश्चर्य नहीं कि ऐसी संस्था से निकलने वाली रिपोर्ट, इस विषय के विद्यार्थियों के लिए निरर्थक सिद्ध होती है। तथापि, रिपोर्ट के पक्ष में एक बात कही जा सकती है। यह एक ऐसी रिपोर्ट है जो सहजबुद्धि से परिपूर्ण व सफाईपूर्वक व्यवस्थित की गई है। यदि वह विद्यार्थियों को संतुष्ट नहीं कर सकती, तो यह निश्चय ही उसके बौद्धिक कार्यों के लिए एक आधार के रूप में कार्य अवश्य करेगी। मुझे आशा है कि समिति के कुछ प्रस्तावों की जांच पडताल, परवर्ती लेखों में की जाएगी। इस समय मैं, रिपोर्ट पर सामान्य रूप में अपने विचार इस विवरण में प्रस्तुत कर अपनी बात समाप्त करता हूं।

8

प्राक्कथन*

मुझे श्री साल्वी के अनुरोध पर भारत में वस्तु विनिमय पर उनकी पुस्तक की प्रस्तावना के रूप में कुछ शब्द लिखते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। यह स्पष्ट है कि उनकी यह कृति यद्यपि एक मार्गदर्शक कृति नहीं, तथापि यह इस क्षेत्र में अब तक प्रकाशित समस्त कृतियों की अपेक्षा अधिक विस्तृत कृति है। नौ अध्यायों में लेखक ने वस्तु विनिमय का उनके समस्त पहलुओं की दृष्टि से परीक्षण किया है और इस प्रकार एक अज्ञात विषय पर प्रचुर प्रकाश ड़ाला है। वस्तु विनिमय के विषय का कृषि के साथ घनिष्ठ संबंध है। भारत एक कृषि प्रधान देश है, फिर भी, इस विषय की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है, जिन लोगों की भारत के कृषकों के हित व कल्याण में रुचि है, वे इस सुविस्तृत तथा शिक्षाप्रद अध्ययन के प्रकाशन का स्वागत करेंगे।

बम्बई, 29 दिसम्बर, 1946

—बी.आर. अम्बेडकर

---

* वस्तु विनिमय (कमोडिटी एक्सचेंज) :
लेखक पी.जी.साल्वी, एम.ए.
दि कोआपरेटर्स बुक डिपो, 9, बेकहाउस लैंड, फोर्ट, बम्बई 1947

9

प्राक्कथन*

सामाजिक बीमा तथा भारत पर श्री एम. आर. इदगुंजी की पुस्तक एक सुनियोजित शोध प्रबंध है।

यह दो भागों में विभक्त है। भाग I, का सामान्य है और इसमें दो मुख्य विषयों का विवेचन किया गया है–(1) सामाजिक बीमा की दो प्रमुख शाखाएं जैसे (1) श्रमिक की क्षतिपूर्ति (2) सामाजिक बीमा के विभिन्न वित्तीय पहलू जैसे वित्तीय साधन, बीमा विज्ञाता की तकनीक तथा वित्तीय प्रशासन। सामाजिक बीमा के वित्तीय पहलुओं के विवेचन का उद्देश्य, उन वित्तीय साधनों से संबंधित विभिन्न समस्याओं को स्पष्ट करना है जिनकी आवश्यकता सामाजिक बीमा योजनाओं की क्रियाविधि तथा विभिन्न प्रणालियों के लिए पड़ती है जिनके अनुसार, साधनों को इस प्रकार संगठित किया जा सकता है जिससे सामाजिक बीमा योजनाएं स्वस्थ ढंग से कार्य करें और सामाजिक बीमा के वित्तीय पक्ष से जुड़े प्रशासन की समस्याएं सुझाई जा सकें।

भाग II, में, भारत में विद्यमान स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक बीमा की समस्या का विवेचन किया गया है। इस भाग में भारतीय श्रमिक का क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 तथा रोग बीमा के प्रावधानों का आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है। इसके अलावा, सामाजिक सुरक्षा की बेवरिज योजना तथा न्यूजीलैंड में अपनाई गई सामाजिक सुरक्षा की योजना पर चर्चा की गई है। यह चर्चा, भारत में सामाजिक सुरक्षा के उपायों संबंधी सम्भावनाओं की खोज व छानबीन से समाप्त होता है। लेखक का यह मत है कि स्वस्थ सामाजिक बीमा के उपाय भारत में उस समय तक व्यवहार्य नहीं है जब तक कुछ मूलभूत कठिनाइयों को समाप्त न कर दिया जाए और देश आर्थिक रूप में पर्याप्त प्रगति न करें और आज देश में जो नितान्त गरीबी विद्यमान है उससे छुटकारा न मिल जाए। लेखक ने जो दृष्टिकोण अपनाया है, उसके समर्थन में कारणों को स्पष्ट रूप में व निडर होकर निर्दिष्ट किया है। इस बात को महसूस करके कि भारत प्रमुख रूप से एक कृषि प्रधान देश है और कृषि में लगे लोगों को सुरक्षा की आवश्यकता पड़ती है, लेखक ने फसल बीमा की एक योजना का सुझाव दिया है जो सामाजिक बीमा के सिद्धांत पर आधारित है। यदि लेखक द्वारा सुझाई गई रूपरेखा के आधार पर, वास्तव

---

* भारत में सामाजिक बीमा (सोशल इन्स्योरेंस इन इंडिया) लेखक : मनोहर आर. इदगुंजी ठाकर एंड कंपनी लि० बम्बई, प्रथम बार प्रकाशित 1948

में फसल बीमा की योजना को तैयार किया जाए तो वह ऐसी होगी जो हमारे देश की ग्रामीण जनता की दशा को काफी हद तक बेहतर बनाएगी, अकाल के भय को कम कर देगी।

सामाजिक बीमा भारत में एक नई चीज है। इस विषय से संबंधित साहित्य में भारत का योगदान स्वाभाविक रूप में बहुत कम है। इन परिस्थितियों में, श्री इदगुंजी की पुस्तक का इस विषय के सब विद्यार्थियों द्वारा निश्चय ही स्वागत किया जाएगा, क्योंकि यह विषय पर अपर्याप्त साहित्य में एक योगदान है और उससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं की आलोचनात्मक जांच भी है। उसकी शैली प्रांजल है और उसका प्रतिपादन अत्यंत स्पष्ट है।

—बी.आर. अम्बेडकर

ग्रंथ-सूची

इस ग्रंथ सूची में प्रदर्शित पुस्तकों, रिपोर्टों तथा पत्रिकाओं से लेखक ने मूल पाठ के लिए उद्धरण लिए हैं

पुस्तक 2 : **ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास**

आस्टिन : जूरिसप्रूडेंस, खंड I (चतुर्थ संस्करण)

ब्राइस, जेम्स : द अमेरिकन कामनवैल्थ, 1910

बुचानन, डा. फ्रांसिस : जरनी फ्राम मद्रास खंड II

बर्के, सर एडमंड : रिफलैक्शस आन द रेवोलूशन इन फ्रांस कलकत्ता रिव्यू, खंड 16, 1851

कौवैल, हर्बर्ट : द हिस्ट्री आफ द कंसटीय्यूशन ऑफ कोटर्स एंड लेजिसलेटिव अथारिटीज़ इन इंडिया, कलकत्ता।

डाइसी, ए.वी. : ला आफ दि कंसटीय्यूशन (आठवां संस्करण) 1915

फिशर, एच.ए.एल. : दि एम्पायर एंड दि फ्यूचर, 1916

फ्रेरे सर, बी : निटस पेपर्स ऐटसेटरा आन दि एक्सटेशन आफ फाइनेंशल पाषर्स टु लोकल गवर्नमेंटस 1860

घोष, एन : कम्पैरेटिव एडमिनिस्ट्रेटिव ला, 1918

हैल्सबरी : लॉस ऑफ इंग्लैड

हॉग्टन,बेनार्ड : ब्यूरोक्रेटिक गवर्नमैंट

हर्न : दि गर्वनमेंट ऑफ इंग्लैंड

हैंडिक्स : पार्लियामैंट कमेटी आन ट्रेड 1821

हटर, डब्ल्यू डब्ल्यू : लाईफ ऑफ मायो खंड–I

केल्कर एन.सी. : दि केस फॉर इंडियन होम रूल

लो, सर सिडनी : द गवर्नेंस आफ इंग्लैंड, 1914

मेंसफील्ड, सर डब्ल्यू.आर : मिनरस–पेपर्स ऐटसैटरा आन दि ऐक्सटैंशन ऑफ फाइनेंशल पावर्स टु लोकल गवर्नमेंटस 1967

मार्टिन, एम : ईस्टर्न इंडिया, 3 खंड

रघुवैय्यंगर : प्रोग्रैस ऑफ दि मद्रास प्रैसीडेंसी, 1893

रैडिच, जे. : पार्लियामेंटरी प्रोसिजर

सैलिगमैन, प्रा.ई.आर.ए. : ऐसेज इन टैक्सेशन (आठवां संस्करण) 1913

स्ट्रैची हॉन जॉन : दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि अर्ल ऑफ मायो एज वाइसराय एंड गवर्नर जनरल ऑफ इंडिया, गर्वनमेंट प्रिंटिग प्रैस, कलकत्ता 1872

स्ट्रैची, कर्नल आर : नोटः– इन फिनलेज हिस्ट्री ऑफ प्रोविंशियल फाइनेंशल अरेंजमेंटस 1867

साईक्स, कर्नल : पास्ट, प्रेजेंट एंड प्रोस्पैक्टिव फाइनेंशल कंडीशन ऑफ ब्रिटिशइंडिया, जर्नल ऑफ दि रायल स्टैटिस्टीकल सोसायटी खंड 23, 1859

टैम्पल सर रिचर्ड : पेपर्स ऐटसैटरा आन दि ऐक्सटेंशन ऑफ फाइनेंशल पावर्स टु लोकल गवर्नमेंटस, 1867

साईक्स, कर्नल : पास्ट, प्रेजेंट एंड प्रोस्पैक्टिव फाइनेंशल कंडीशन ऑ ब्रिटिश इंडिया जर्नल ऑफ दि रायल स्टैटिस्टीकल सोसायटी खंड 23, 1859

टैम्पल सर रिचर्ड : पेपर्स ऐटसैटरा आन दि ऐक्सटेंशन ऑफ फाइनेंशल पावर्स टु लोकल गवर्नमेंटस १८६७

थोर्नटन (संकलन) : स्टैटिस्टीकल पेपर्स रिलेटिव टु ब्रिटिश इंडिया 1953

ट्रैवलियन : सिस्टम ऑफ ट्रांसिट एंड टाऊन डयूटीज इन दि बंगाल प्रैजीडेंसी

वैंकटरमैय्या, वाई : एकाऊंटेंटस मैनुअल मद्रास 1866

वाईनवर्ग : सैपरेशन आफ स्टेट एंड लोकल रैवेन्यूज इन कैनेडा

वैबु, एस : ग्रान्टस इन एड, 1911

वैस्ट : सर चार्ल्स वुडस एडमिनिस्ट्रेशन

— रिपोर्ट ऑफ दि रॉयल कमिशन आन कमिशन आन डिसेंट्रलाइजेशन इन ब्रिटिश इंडिया 1909

— रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी आन दि अफेअर्स ऑफ ईस्ट इंडिया कम्पनी 1852

— रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी आन इंडियन रिफामर्स 1918

— रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी एप्वायंटिड वाई सैक्रेटरी ऑफ स्टेट फार इंडिया टु एडवाईज आन दि क्वशचन ऑफ दि फाइनेंशल रिलेशंस विटवीन दि सेन्ट्रल एंड प्रोविंशियल गवर्नमेंटस इन इंडिया।

— रिपोर्ट एंड एवीडेंस ऑफ दि कमेटी आन ईस्ट इंडिया प्रोडयूस 1846।

— रायल कमीशन आन लोकल टैक्सेशन इन इंग्लैड खंड I मिनटस ऑफ ऐवीडेंस 1898

— सैंकड रिपोर्ट आफ दि ज्वायंट कमेटी एप्वायंटिड टु रिवाईज दि रूल्स मेड अंडर दि गर्वनमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट 1920.

— रिपोर्ट ऑफ मेजर जनरल हैंकाक आन दि रिआर्गेनाइजेशन आफ दि इंडियन आर्मी

— रिपोर्ट ऑफ दि सिविल फाईनेंस कमेटी आन नेटिव एस्टेब्लिशमेंट ऐट दि थ्री प्रेसीडेंसिस.।

— हाऊस ऑफ कामसं; रिटर्न 33 ऑफ 1860, 307 ऑफ 1861 326 ऑफ 1874, 202 ऑफ 1919

— हेंसाइर्स पार्लियामेंटरी डिबेटस, 1868

— ऐनुअल फाइनेंशल स्टेटमेंटस फार दि अधिशियल इयर्स 1860-1 टु 1873-4, कलकत्ता 1873

— फाइनेंशल स्टेटमेंटस आफ गवर्नमेंट आफ इंडिया, 1879-80, 1902-03
— एनुअल फाइनेंस एंड रैवेन्यु एकाऊंटस आफ गवर्नमेंट आफ इंडिया
— लैजिसलेटिव एसेम्बली डिबेटस, खंड–3
— मद्रास मैनुअल खंड–I
— सिविल एकाऊंट कोड
— मोरल एंड मैटेरियल प्रोग्रैस रिपोर्ट फार 1882-3
— पार्लियामेंटरी पेपर्स 1859: रिपोर्ट ऑफ मेजर–जनरल हैंकाक आन दि रिआर्गेनाइजेशन ऑफ दि इंडियन आर्मी

पुस्तक : रुपये की समस्या : दि प्राबलम ऑफ रुपी

ऐंड्रीडिस : हिस्ट्री आफ दि बैंक ऑफ इंग्लैंड

एटकिंसन, एफ : दें अंडियन करंसी क्विस्चेन, 1894

बेगहोट, वाल्टर : आर्टिकल्स ऑन दि डिप्रिसिएशन आफ सिल्वर, लंदन, 1877

बारबर, सर डेविड : स्टैन्डर्ड ऑफ वैल्यू, 1912

केनन, प्रो. : बुलियन रिपोर्ट–मनी इट्स कनक्शन विद राइजिंग एंड फालिंग प्राइसिज तृतीय संकलन दि पेपर पाउंड आफ 1797, 1821

केसल : मनी एंड फारेन एक्सचेंज ऑफ्टर 1914, लंदन 1922

चाल्मर्स, रोबर्ट : हिस्ट्री आफ कोलोनियल करंसी, 1893

डालरिम्पिल, ए : आब्जर्वेशन्स आन दि कॉपर कॉइनेज वांटिड इन सिकार्स, लन्दन, 1794

डेवनपार्ट : इकोनोमिक्स आफ एन्टरप्राइजेज, 1913

डोडवेल, एच : एब्सटिट्यूशन आफ सिल्वर फॉर गोल्ड इन साउथ इंडिया, इंडिया जरनल ऑफ इकोनोमिक्स, 1921

ए गोल्ड करेंसी फार इंडिया, इकोनोमिक जर्नल, 1911 रिपोर्ट ऑन दि इनक्वायरी इन्टू दि राइज आफ प्राइसिज इन इंडिया, 1914

दोरैस्वामी, एस.वी. : इंडियन करंसी, मद्रास 1915

डनिंग, एम एम इंडियन करेंसी, 1898

फॉकनर, आर.पी. : ए डिस्कशन ऑफ दि इन्ट्रोगेट्रीज ऑफ दि इंडियनापोलिस कनर्वेशन यूनिसर्विटी आफ पेनसिलवानिया, 1898.

फैटर, एफ.ए. : दि गोल्ड रिजर्व इट्स फंक्शन एंड इट्स मेंटीनेंस, पोलिटिकल साइंस, क्वार्टरली 1896

फिशर, प्रो. : परचेजिंग पावर आफ मनी, 1911

एलिमेंट्री प्रिंसिपलस आफ इकोनोमिक्स, 1912

फोर्बस, एफ.बी. : दि बाइमेटालिस्ट, 1897

फोक्स वैल (सं.) : इनवेस्टीगेशन्स इन करेंसी एंड फाइनेंस, 1884 बाइमेंटलिम : इट्स मोनिंग एंड ऐम्स दि (आक्सफोर्ड) इकोनोमिक रिव्यू, 1893

गिब्स : ए कोलोक्यू ऑन करेन्सी, 1894

गेगिमोटी टी.ई. : फारेन एक्सचेंजिज

हेरिस : एन एस्से अपोन मनी एंड कोमन्स

हैरिसन, एफ.सी : दि पास्ट एक्शन ऑफ दि इंडियन गवर्नमेंट विद रिगार्ड टू गोल्ड, इकोनोमिक जर्नल, वाल्यूम-3

हर्टन, डाना : दें सिल्वर पाउण्ड, 1887

हॉफट, ऑटोमर : डिस्ट्रिब्यूशन आफ स्टॉक ऑफ मनी इन डिफ्रेन्ट कन्ट्रीज, इफिंघम, विल्सन एंड कं., लन्दन 1892

हॉट्रे, आर.जी. : क्रेडिट एंड करेंसी, 1919

हयूगेस–हैलेट कर्नल : दि डिप्रिसिएशन आफ दि रुपी, लन्दन 1887

जेवोन्स, एच.एस. : मनी एंड मैकेनिज्म आफ एक्सचेंज, 1890 थ्योरी ऑफ पॉलिटिकल इकोनोमी, 1911–फयूचर आफ एक्सचेंज एंड इंडियन करेंसी 1922

जेविस, कैप्टेन : एर्नाटिकल रिव्यू ऑफ दि वेट्स

मैजर्स एंड कोमन्स आफ इंडिया, बम्बई 1836

केई (सं.) : मेमोरियल्स ऑफ इंडियन गवर्नमेंट, 1853

केली, डा.पी. : दि यूनिवर्सल कैम्बिस्ट, 1811

केमेरर ई.डब्ल्यू : मॉडर्न करेंसी रिफार्मस, 1916

सीजनल वेरिएशन्स इन दें न्यूयार्क मनी मार्केट, अमेरिकन इकोनोमिक निव्यू, 1911 मनी इट्स कनक्शन विद राइजिंक एंड फालिंग प्राइसिज तृतीय संस्करण

प्रो. कीन्स : इंडियन करंसी एंड फाइनेंस रिसेंट इकोनोमिक इवेन्टस इन इंडिया, इकोनोमिक जर्नल, 1909

किरकाडी : ब्रिटिश वार फाइनेंस, 1921

किचिन, जोसफ : रिव्यू आफ इकोनोमिक स्टेटिस्ट्रिक्स 1921

लाफलिन, जेएल : हिस्ट्री आफ बाहमोलिज्म, न्यूयार्क

लेक्सिम्स, प्रो. डब्लू : दि प्रजेन्ट मानीटरी सिचुएशन 1886 इकोनोमिक स्टडीज आफ दि अमेरिकन इकोएसोसिएट, 1896

लिवरपूल लार्ड : ट्रिटाइज आन दि कोमन्स आफ रिमल्स रिप्रिन्ट आफ 1880.

लन्दन एसीबी : हाऊ टू मीट दि फाइनेंशियल डिफिकल्टीज इन इंडिया, लन्दन 1859

मदन : इन्डियन जर्नल आफ इकोनोमिक्स, वाल्य-3

मार्शल : कन्टेम्परेरी रिव्यू, 1887

रिमेडीज फार

: फलक्चुएशन आफ जनरल प्राइसिज कन्टम्परेरी रिव्यू 1887

मार्टिन आर एम : दि इंडियन एम्पायर, वाल्यूम-1, 1856

मेमो : प्राइस मूवमेंटस एंड इंडिविजुअल वेल्फेयर पॉलिटिकल

साइंस क्वार्टरली, 1900

मिचेल, डब्ल्यू सी : दि राशनलिटी आफ इकोनोमिक एक्टिविटी, जर्नल ऑफ पालिटिकल इकोनोमी वाल्यूम 18, 1910 दि रोल आफ मनी इन इकोनोमिक थ्योरी अमेरिकन इकानोमिक रिव्यू (सप्लीमेंट) वोल्यू, 1, 1916 गोल्ड प्राइसिज एंड वेजिज अंडर दिं ग्रीन बैंक स्टैंन्डर्ड, 1908.

मुलर, जॉन : इंडियन टेबिल्स, कलकत्ता, 1836

निकल्सन, प्रो. : मनी एंड मॉनीटरी प्राब्लम, 1895 प्रिंसिपल्स ऑफ पोलिटिकल इकोनोमी, 1897

पाल कामन : मनी एंड दि मैकेनिज्म ऑफ एक्सचेंज, लन्दन 1890

प्रो. पियरसन : प्रिंसिपल्स आफ इकोनोमिक्स

पोर्टर जी.आर : प्रोग्रेस ऑफ दि नेशन

प्रिंसप जे : यूजफुल टेबिल्स, कलकत्ता, 1834

श्री प्रोबीन : इंडियन कॉइनेज एंड करंसी, इफिंघम विल्सन लन्दन, 1890

रानाडे, एम.जी. : एसेज ऑन इंडियन इकोनोमिक्स

रिकार्डो डेविड : हाई प्राइस आफ बुलियन प्रोपोजल फार दि इकोनोमिक्स एंड सिक्योर करंसी

रॉस, एच.एम. : दि ट्रायम्फ आफ दि स्टैंन्डर्ड; कलकत्ता

रूडिंग : एनल्स आफ कॉइनेज, तृतीय संस्करण वाल्युम-1

रसेल, एच.बी. : इन्टरनेशनल मॉनीटर कान्फ्रेंस, 1898

सेलिगमैन, ई आर ए : करंसी इन्फलेशन एंड पब्लिक डैट्स, न्यूयार्क 1922

शिटस, : इंडियन फाइनेंस एंड बैंकिंग

शोर, सर जान : ए ट्रिटाज आन दि कोमनैज आफ दि रियल्म

स्मिथ, कर्नल जे.टी. : सिल्वर एंड दि इंडिया एक्स्चेंजिज, इफिंघम, विल्सन, लन्दन, 1876

प्रो. समनर : ए हिस्ट्री ऑफ अमेरिकन करंसी, न्यूयार्क, 1874

टासिंग, एफ.डब्लू : प्रिंसिपल्स, 1918

टेम्पिल, सर रिचार्ड : जनरल मॉनीटरी प्रेक्टिस इन इंडिया, जर्नल ऑफ दि इंस्टीटयूट ऑफ बैंकर्स इंडिया इन 1880

सरचार्ल्स वुडस एडमिनिस्ट्रिेशन आफ इंडियन अफेयर्स

दि इंडियन स्टेटसमैन, 1884

प्रो. वेंकटेश्वर एस वी, : मुगल करंसी एंड कॉइनेज

इंडियन जर्नल आफ इकोनोमिक्स, 1918 एन अपील टू सीजर, लन्दन, 1660

वॉकर, एफ.ए. : दि फ्री कॉइनेज आफ सिल्वर दि जर्नल ऑफ पॉलिटिकल इकोनोमी, शिकागो मनी इन इट्स रिलेशन टू ट्रेड

वाल्श, सी एम फंडामेंटल प्राब्लम इन मॉनिटरी साइंस।

व्हिटाकर, ए.सी. फोरन एक्सचेंज, एपिल्टन, न्यूयार्क, 1920

वाजर, एफ. रिजम्बशन ऑफ स्पीशी पैमेंट इ आस्ट्रिया–हंगरी, जर्नल ऑफ पालिटिकल इकोनोमी, वाल्यूम-1

विलिस, ए.बी. हिस्ट्री आफ दि लेटिन मॉनिटरी, यूनियन, शिकागो 1910

दि विमना मॉनिटरी ट्रिटी आफ 1857,

जर्नल ऑफ पॉलिटिकल इकोनोमी, वाल्यूम 4

विल्सन, जेम्स : कैपिटल करंसी एंड बैंकिंग, 1847

रिपोर्ट ऑफ दि फैमिन कमीशन आफ 1880

रिपोर्ट ऑफ दि रॉयल कमीशन, आफ एग्रीकल्चरल डिप्रेशन इन इंग्लैंड, 1897

रिपोर्ट ऑफ दि रॉयल कमीशन ऑन गोल्ड एंड सिल्वर

कामन्स पेपर सी 4868 ऑफ 1886, 495 ऑफ 1913, 449 ऑफ 1893 44, 44वीं कांग्रेस, दूसरा सत्र/अधिवेशन, सीमेंट डाकु मेंट सं. 703

लाड्स पेपर, 178 ऑफ 1876, 7 आफ 1894

रिपोर्ट ऑफ दि सैलेक्ट कमेटी आन डेप्रिंसिएशन आफ सिल्वर, 1876

रिपोर्ट ऑफ दि गोल्ड एंड सिल्वर कमीशन 1886

रिपोर्ट ऑफ दि मोनीटरी कमीशन ऑफ दि इंडियन–

पोलिश कर्नवेंशन, शिकागो, 1898

रिपोर्ट ऑफ दि डेलिगेट्स आफ दि यूनाइटिड स्टेट्स,

सिंसिकटी टू दि इन्टरनेशनल मॉनीटरी, कान्फ्रेंस, 1881

रिपोर्ट ऑफ दि कमीशन आन इन्टरनेशनल एक्सचेंज, हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव, डोकुमेंट, वाशिंगटन 1903

रिपोर्ट ऑफ दि इंडिया डेलिगेशन टू दि इन्टरनेशनल मॉनीटरी कान्फ्रेंस 1882

रिपोर्ट ऑफ दि (प्रथम) रॉयल कमीशन आन गोल्ड एंड सिल्वर 1886

सीनेट एक्जीक्यूशन डाकुमेंट, 45वीं कांग्रेस वाशिंगटन, 1879

रिपोर्ट ऑफ दि अमेरिकन डेलिगेट्स टू दि इन्टरनेशनल मानीटरी कान्फ्रेंस, वाशिंगटन, 1893

रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी टू इनक्वायर इनटू इंडियन करंसी, 1899

रिपोर्ट ऑफ दि चैम्बर लेन कमीशन।

रिपोर्ट ऑफ दि फाउलर कमेटी

रिपोर्ट ऑफ दि प्राइस इनक्वायरी कमेटी, कलकत्ता

–मेमोरेंडम आन करेंसी, बाई लीग ऑफ नेशन्स, 1914

–इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, वाल्यूम.4

ओरियन्टल रिपरटरी, 2 वाल्यूम, लन्दन, 1803

–एच आफीस रिटर्न 127 ऑफ 1898, 254 ऑफ 1860, 31 ऑफ 1830 109 आन 505 ऑफ 1864, 755 ऑफ 1931-32, 495 ऑफ 1913

–रिपोर्ट ऑफ दि यू.एस.सिल्वर कमीशन ऑफ 1876

–कलकत्ता रिव्यू, 1892, 1878

–बोम्बे क्वार्टरली रिव्यू, अप्रैल, 1857

–एशियाटिक जर्नल एंड मंथली रजिस्टर फार ब्रिटिश एंड फारेन–इंडिया चाइना एंड आस्ट्रेलिया लन्दन, 1842

–होम मिसलेनियस सिरीज, वाल्यूम 456, इंडिया आफिस रिकार्डस

–रिपोर्ट ऑफ दि बाम्बे चैम्बर ऑफ कॉमर्स 1863-64

–पेपर्स रिलेटिंग टू दि इन्ट्रोडक्शन आफ गोल्ड करंसी इन इंडिया, कलकत्ता 1866

–हंसार्ड पार्लियामेंट्री डिबेट्स, 24

–रिपोर्ट आफ दि रॉयल कमीशन आन एग्रीकल्चरल डिप्रेशन इन इंग्लैंड, 1892(400)

–रिपोर्ट आफ दि डिप्रिशिएशन आफ सिल्वर 1878 (401)

–रिपोर्ट ऑफ दि डायरेक्टर्स आफ दि मिन्ट, वाशिंगटन 1893

–रिपोर्ट ऑफ दि इंडिया करंसी कमीशन 1893

–रिपोर्ट ऑफ दि पब्लिक सर्विस कमीशन, 1887

–रिपोर्ट ऑफ दि सिविल फाइनेंस कमीशन 1887

–रिपोर्ट ऑफ दि सिविल फाइनेंस कमीशन 1887

–रिपोर्ट ऑफ दि कलकत्ता सिविल फाइनेंस, कमीशन 1886

–सुप्रीका लेजिस्लेटिव प्रोसिडिंगस, एल 7, वाल्यूम. एल,

–रिपोर्ट ऑफ दि प्राइस इनक्वायरी कमेटी, 5 खंडों में 1914

–ईस्ट इंडिया–एकाउंटस एंड एस्टिमेंटस, 1921

–लेजिस्लेटिव एसेम्बली डिवेटस, 1921

दि जर्नल ऑफ दि रॉयल स्टेटिस्टिकल सोसायटी 1920

–रिपोर्ट आफ दि डिप्टी मिनिस्टर आफ दि रॉयल मिन्ट, 1921

–फाइनेंसियल स्टेटमेंटस-1900-1, 1908-9, 1910-1, 1894-5, 1888-9

–इन्टरिम रिपोर्ट ऑफ दि चैम्बरलेन कमीशन, 1913

–रिपोर्ट बाई काम्पवैल हालैंड एंड माइनर

–रिपोर्ट ऑफ स्मिथ करंसी कमेटी ऑफ 1919

अनुक्रमणिका

अकबर, 2

अदला – बदली, 6,7

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, 102–104, 108, 316

आवरस्टोन, लार्ड, 156

आर्थिक जांच समिति, 369

अत्यरिथ कमेटी आन एक्सचेंज, 231

आरक्षित निधि, 320–332, 341

आंतरिक व्यापार, 319

ईस्ट इंडिया कंपनी, 3, 8, 15, 20, 95, 256

एकल धातु मानक, 15

एकत धातुवाद, 24, 25 27, 35, 41

एडवर्ड लॉ, सर, 272, 275–77, 324, 329–333

औद्योगिक व्यवसाय, 98

कर्जन, लार्ड, 269

कराधान, 370

कराधान जांच समिति, 369

क्रय शक्ति, 357

कृषि, भारतीय, 100

केन्स, प्रो., 166, 167, 195, 206, 224, 241–42, 244, 249–50, 294, 316

केनन, प्रो., 290, 305, 320, 326, 330

केमरेर, प्रो. 166, 247, 287–88

कैसलरीग, लार्ड, 204

कोयाजी, प्रो. 328

कौंसिल बिल, 161, 181, 206, 208, 213, 218, 256–258, 271

गवर्नर–इन–कौंसिल, 37, 51

गिफन, सर राबर्ट, 127

ग्रेगरी, प्रो., 322
ग्रेशम नियम, 135, 281
गोखले, 251
चांदी,
— उत्पादन, 74, 75
— प्रतिमान, 180
— बुलियन 82, 120–121, 125, 131, 206
— मानक, 37, 41–45
— मुद्रा, 43
— विमुद्रीकरण, 71, 79, 83, 119, 130
— सिक्के, 32, 53, 73
चेम्बरलेन कमीशन, 159, 161, 165–66, 174, 180–181, 213, 226–27, 229, 233, 241–242, 249, 252, 255, 264–66, 269, 277, 294
चैक पद्धति, 61, 62
जान लुबक, सर, 151
जेम्स, सर, 269
जेवान्स, 60, 80, 83, 130, 136, 157, 229, 303
जिनेवा सम्मेलन, 346
जोसफ किचन, 322
टकसाल पद्धति, 50
टकस्पल, स्वर्ण, 265, 266, 268
टैम्पल, सर रिचार्ड, 117–118
ट्रैवेलियन, सर चार्ल्स, 39, 42, 118
डाकिन्स, सर सी. ई., 268–269, 271, 331
डारविन, मेजर, 151
डेविड रिकार्डो, 26
थैकरसे, सर. वी., 264, 267
द्विधातु पद्धति, 14–16, 18, 21, 24, 42

द्विधातु मानक, 20

द्विधातुवाद, 14, 24, 35, 79, 82, 83, 133–38,

दोहरे मानक, 12, 13, 15

नकद अधिशेष, 160

नकदी, 28, 29

नारकोट वारेन, सर, 331

निकल्सन, प्रो. 123

पगोडा मानक, 3, 12–14

परिवर्तनीय मान, 302

परिवर्तनीयता, 347–350, 364, 368

पिटमैन एक्ट, 211

पियरसन, प्रो, 129, 154

पील, सर राबर्ट, 28, 30, 114, 151

पुरूषोत्ततदास ठाकुरदास, सर, 333, 343

पेटरी, लार्ड हैरिस ओ. पेटरी, 24, 29

पोर्ट, प्रो. डावेन, 250

प्रोबीन, 149–151

फाउलर समिति, 157, 159, 161, 230, 255, 257, 263–65, 269, 276–78, 282, 286, 307, 324, 329–333

फाक्सवेल, प्रो. 235

फारेन बिल्स, 166–167

फिशर, प्रो. 83, 243, 250, 256, 303, 308, 319, 339, 343–344, 364–366

वर्ग, वैन डैन, 58, 59

ब्लैंड एलिसन अधिनियम, 130

बागेहॉट, वाल्टर, 128, 129, 263

बेकर, 293

बैंकिग पद्धति, 33

मुक्त, 51

भारतीय कागजी मुद्रा अधिनियम, 60, 61, 65

भारतीय मुद्रा पद्धति, 159

भारतीय मुद्रा समिति, 127

भारतीय मुद्रा संबंधी आयोग, 301

माणोकजी दादाभाई, सर, 343–344

मांट, सर रेजिनाल्ड, 342

मानक धातु, 26

मानक माप, 114

मार्शल, प्रो. 105, 134, 197, 249, 337

मिशल, प्रो. उब्ल्यु, सी., 234, 249

मुगल साम्राज्य, 4, 8

मुद्रा

अपरिवर्तनीय –, 168–171, 210, 230, 288, 346

आम –, 19–21

आंतरिक –, 316–19

कागजी –, 37–39, 43, 51, 53–56, 59, 60, 63, 160, 171, 204, 206–07, 220–223, 231, 253–255, 277, 281, 284, 286–288, 291, 293, 294, 307, 309, 315, 347

चांदी –, 163

धातु –, 53, 61

– निधि, 306

– पद्धति, 7, 15, 57, 65

– प्रणाली, 154–57, 167, 171, 178, 188, 309, 317

परिवर्तनीय –, 168–171, 287–288, 318

– बाजार, 309

भारतीय –, 57–59, 63, 168, 186, 351, 359

मिश्रित –, 54, 171

— की मुख्य इकाई, 10
वैद्य —, 284, 293, 325
—, सुधार, 110, 123, 141, 325
सांकेतिक —, 314–315
स्थानीय —, 166
मुरे, सर एलेक्जेंडढर, 329, 332–333, 341
मूल्य–ह्रास, 234–239, 249, 295
मेस्टन, 269
मैके, सर जेम्स, 206
मोहर, 2, 12–15, 17, 117–118
रजतमान, 138
रजत मुद्रा, 126
राफेल, 151
रिजर्व, 224, 226–27, 229–230, 273, 275–277
रिजर्व कौंसिल्स, 160, 165, 213, 218–119, 221
रुपया, 2, 12–17, 160, 164–65, 173, 181, 184, 187–89, 192, 199–201, 207–209, 219, 238–239, 251–252, 274–79, 286, 288, 293–295, 309–310
— सिक्के, 329–333
रोकड़ शेष, 220–223
रोथ शील्ड, लार्ड, 151
लिंडसे, ए. एम., 149–151, 159–161, 230–232, 270, 282
लिवरपूल, लार्ड, 24, 26, 178
लैंग, 37, 38, 290
वित्त व्यवस्था, 86, 90
वित्तीय पद्धति, 19
विदेश व्यापार, 318
विनिमय, 337, 352, 355, 362

— अनुपात, 354–355

— में उतर–चढ़ाव, 112

— दर, 95, 168, 169, 175, 180–181, 183, 188–189, 195, 201, 202, 213, 232, 242, 246, 247

— नीति, 218

— प्रतिमान, 185–186, 189, 195, 200

— मान, 301–306, 317

— मानक, 222, 224, 226, 232–234, 236, 239–241

— मूल्य, 350, 354–55, 357

रुपये–स्टर्लिंग —, 67

सोना–चांदी —, 67

ह्रासमान —, 104, 107–08, 110, 119

विमुद्रीकरण, 17

विल्सन, सर जेम्स, 7, 37, 39, 41, 322

विलियम म्यूर, सर, 120, 293

वुड, सर चार्ल्स, 291

वेस्टलैंड, सर जेम्स, 270, 331–332

व्यापार संतुलन, प्रतिकूल, 202–204, 224

शाही आयोग, 311

शिराज, 195, 242, 294

शेरगन एक्ट, 139

सोना,

— उत्पादन, 74

— मानक, 37, 44

— सिक्का, 23, 32, 35, 53, 329

सावरेन, 35, 41–44, 117–118, 144, 148, 151–155, 199, 254, 264, 269, 273, 275

सांख्यिकीय कांग्रेस, 69

सिक्का ढलाई अधिनियम, 125

सुमनेर, प्रो., 169

सूबेदार, 256

सेमुअल मोंटेगु, सर, 151

सेसेल्स, 30, 32, 39

स्क्रोप, 110

स्ट्राकेश, सर हेनरी, 346

स्मिथ, कर्नल जे. टी., 119, 122, 127, 141

स्मिथ, वैलिंगटन, 188

स्मिथ कमेटी, 195, 242, 256

स्वर्ण, 252, 274, 276–77, 279

— दर, 184

— निधि, 332

— प्रतिमान, 161–163, 166, 180, 218, 220–222

— बुलियन, 83, 120–121, 144, 364, 366

— भंडार, 213

— भुगतान, 86, 88, 90, 93, 125, 180

— मान, 126–127, 139, 147–148, 150, 152–156, 250, 252, 274, 278, 280, 286, 301, 303, 314, 319 321, 328, 331, 343, 347, 349, 355, 365, 366

— मानक, 162

— मानक रिजर्व, 223, 227

— निधि, 303

— मान निधि, 341, 305–307, 311, 323, 325, 328, 330

— मान रिजर्व, 288

— मुद्रा, 37–39, 43, 44, 70, 117, 119, 130, 139, 150–151, 160–161, 163, 171, 252, 253, 255, 267, 270, 272, 305, 314–315, 320–321, 342

— रिजर्व, 226–227, 280, 286, 295

स्वर्ण विनिमय प्रतिमान, 161, 218

स्वर्ण विनियम मान, 252, 315, 319, 342, 346–348, 364–366

स्वर्ण विनिमय मानक, 172, 232

स्वर्ण साधन, 220

स्वतंत्र खजाना पद्धति, 63

हर्शल समिति, 142–144, 281–182, 286, 333

हार्नर, 204, 235, 238

हेनरी पावलर, सर, 150

हैमिल्टन, लार्ड जार्ज, 153

हैलिफैक्स, लार्ड, 118